मरणोत्तर-जीवन की इस विचार धारा का सबसे अधिक विस्तार 'गरुड-पुराण' मे किया गया है। यद्यपि इसमें और भी अनेक जीवनोपयोगी विषयों का वर्णन पाया जाता है, पर यमलोक तथा नरकों का वर्णन और मृत्यु के उपरान्त किये जाने वाले कर्मकाण्डो का विधि-विधान ही इसकी सबसे बडी विशेषता मानी गई है। इस कारण अनेक हिन्दू घरो मे किसी व्यक्ति का देहान्त होने के अवसर पर इस पुराण का पारायण किया जाता है और इसके अनुसार न्यूनाधिक मात्रा मे दान-दक्षिणा भी किसी पुरोहित या 'महाब्राह्मण' आदि को दी जाती है। इसमे यमपुर के मार्ग तथा नरको के कष्टो का वर्णन ऐसे भयङ्कर और बीभत्स रूप मे किया गया है कि सुनने वाले का हृदय काँपने लगता है। यह तो नही कहा जा सकता कि सब लोगो पर इसका प्रभाव स्थायी होता है, पर भारतीय-समाज मे नरक' का जिक्र होना एक सामान्य बात है और किसी के दुष्कर्म करने पर उसके 'नरक-वास' की सम्भावना भी प्रकट कर दी जाती है। यह बात दूसरी है कि कहने और सुनने वालो को इस पर कितना विश्वास होता है।

'गरुड़-पुराण' की शिक्षायें—

'गरुड-पुराड' के 'प्रेत खण्ड' मे ३५ अध्याय हैं। इनमें दान का फल बतला कर उसके द्वारा मृतात्मा की सद्‌गति का वर्णन किया गया है। यमलोक के भयकर कष्टो का वर्णन करके यह बतलाया गया है कि सबधियो के दान आदि के द्वारा परलोक मे मृतात्मा के कष्टो मे किस प्रकार कमी हो सकती है। इसके लिये 'वृषोत्सर्ग' (बिजार या साँड छोडना) का बडा महत्त्व दर्शाया है। यम-राज के न्यायालय और उनके कार्याध्यक्ष चित्रगुप्त के स्थानो का वर्णन भी कई जगह विस्तार पूर्वक किया गया है। इसका उद्देश्य यही हो सकता है कि जन-साधारण उन पाप कर्मों से यथासम्भव बच कर रहे, जिनसे यमलोक मे कष्ट पाने की सम्भावना हो। आगे चलकर अपमृत्यु मरने वाले व्यक्तियो के प्रेत होने का वर्णन और प्रेतयोनि मे जीव की घोर दुर्दशा वर्णन किया गया है। क्योंकि इस बात का कोई निश्चय नही होता है कि कौन व्यक्ति प्रेतयोनि को प्राप्त हुआ है और वह कब तक उसमे पडा रहेगा, इसलिये प्रत्येक जीवित व्यक्ति का यह

कर्तव्य बतलाया गया है कि अपने किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने पर किसी धर्म-काण्ड के ज्ञाता द्वारा उन क्रियाओं को करावे जिनसे मनुष्य प्रेतयोनि से छुटकारा पा सकता है।

प्रेत होने के कारण बतलाते हुए पुराणकार ने अकालमृत्यु के अतिरिक्त धन अनैतिक और चरित्र-हीनता की बातों का ही वर्णन किया है, जिनसे व्यक्ति और समाज का अनिष्ट और पतन होता है। उदाहरण के लिये 'सततक' नामक तपस्वी ब्राह्मण से अपनी दुर्दशा बतलाते हुये प्रेतों ने कहा कि "दूसरों की धरोहर का अपहरण करने वाला, अपने मित्रों से द्रोह करने वाला, विश्वास घात करने वाला और कूट पुरुष प्रेतत्त्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार ब्राह्मण, देव-मन्दिर और गुरु की सम्पत्ति हरण करने वाला, कन्या विक्रय करने वाला, अपनी माता, भगिनी, भार्या, पुत्र-वधू तथा पुत्री को कोई दोष न होने पर त्याग देने वाला भी प्रेत हो जाता है। जो सदा मिथ्या कर्म और भाषण में रुचि रखता है और दूसरों की भूमि तथा स्वर्ण को अपहरण करता है वह अवश्य ही प्रेत होता है।" इससे प्रकट होता है कि जो व्यक्ति ऊपर से धर्म-कर्म का ढोंग करते हुये भी वास्तविक धर्म का पालन नहीं करते, जो स्वार्थ-साधन के लिये दूसरों को हानि पहुंचाने में संकोच नहीं करते, जो सत्य, न्याय, प्रतिज्ञापालन, आपत्तिग्रस्तों की सहायता आदि जैसे सत्कर्मों से विमुख रहते हैं वे मरणोपरान्त दुर्दशा को प्राप्त होते हैं और निकृष्ट प्रेत-योनि को प्राप्त होकर तरह-तरह के कष्ट सहन करते हैं।

इसी प्रकार राजा बभ्रुवाहन की कथा में बतलाया गया है कि "जो लोग देवोत्तर सम्पत्ति (सार्वजनिक हित के कार्यों का धन), स्त्रियों का धन, बालकों का धन हरण किया करते हैं वे प्रेत योनि को प्राप्त होते हैं। जो किसी तापसी नारी, सगोत्र स्त्री, गमन करने के अयोग्य नारी के साथ दुराचार करते हैं वे महाप्रेत हो जाते हैं। जो किये हुए उपकार के प्रति कृतघ्न हों, ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करें, रौद्र, दुस्साहसी, कठोरतापूर्ण स्वभाव के हों वे भी प्रेत बना करते हैं।" निस्सन्देह अनुचित लालच के वशीभूत होकर किसी असहाय अथवा निर्बल का सम्पत्ति छल-बल से हड़प कर जाना समाज में बहुत बड़ा पाप है। यद्यपि इस समय धन की लालसा ने लोगों को इस

प्रकार वशीभूत कर लिया है कि प्रसिद्ध और प्रभावशाली माने जाने वाले व्यक्ति भी दूसरों के स्वत्व को बेईमानी और धोखे से अपहरण कर लेने में लोक और परलोक का डर नहीं करते, पर यह निश्चय है कि इस प्रकार के आचरण का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। ऐसे अर्थ-पिशाच इस जीवन में ही भीतर ही भीतर धन की लालसा से व्याकुल हुआ करते हैं और जितना अधिक धन पाते जाते हैं उतना ही तृष्णा के जाल में फँस कर अध पतन की ओर अग्रसर होते जाते हैं। जो लोग इस संसार में जीवित अवस्था में ही धन की तृष्णा से दग्ध हुआ करते हैं वे यदि मरने के पश्चात् भी अशान्ति और अभाव का अनुभव करते रहें तो इसमें क्या आश्चर्य है?

अकाल मृत्यु का कारण—

इसमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है कि जब भगवान् ने मनुष्य की स्वाभाविक आयु सौ वर्ष की नियत कर दी है तब वह अकाल मृत्यु का ग्रास बन कर प्रेत-योनि को क्यों प्राप्त होता है? इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण ने यह स्वीकार किया कि वास्तव में संसार में जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों की उम्र सौ वर्ष की नियत होती है, पर मनुष्य अपने दुष्कर्मों दुराचरणों अथवा पूर्व जन्म के पापों से स्वयं ही अपनी आयु को क्षीण करने का कारण बनता है और समय से पूर्व ही इस लोक को छोड़ कर परलोक को प्रयाण करता है। इस प्रसङ्ग से इस बात का स्पष्ट रूप से खंडन हो जाता है कि 'ब्रह्मा ने मनुष्य की जो आयु नियत कर दी है उसमें एक क्षण का भी अन्तर नहीं हो सकता।' जो लोग भाग्यवाद के सिद्धान्त का वास्तविक तात्पर्य न समझ कर "राई घटे न तिल बढ़े रहु रे जीव निशङ्क" की उक्ति को प्रमाण माना करते हैं वे विचार-शक्ति से शून्य ही होते हैं। गरुड़ की शङ्का का समाधान करते हुए कृष्ण भगवान् कहते हैं—

'हे पक्षीन्द्र! मनुष्य वास्तव में सौ वर्ष जीवित रहने वाला प्राणी है, जैसा कि वेद-भगवान् ने 'जीवेन शरदाशतम' आदि वाक्यों से सुस्पष्ट कर दिया है। पर अपने ही अपकर्मों के प्रभाव से वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। वह मनुष्य वेदों का अभ्यास नहीं करता और वंश परम्परा से चले आये धर्मानुकूल कत्०व्य

का भी पालन नही करता । इसमे बहुत अधिक आलस्य भर गया है जिससे यह श्रेष्ठ कर्मों से विमुख होकर नीच मार्ग मे प्रवृत्त हो जाता है । यह जहाँ–तहाँ खा लेता है और चाहे जहाँ रति करने लगता है । इस प्रकार भोजन और भोग मे उच्छृङ्खल हो जाने और इसी प्रकार के अन्य खोटे कर्मों से यह अपनी आयु का क्षय करता रहता है ।"

"जो ब्राह्मण श्रद्धा न रखने वाला, अपवित्र रहने वाला, जप-तप से परामुख, मंगल कार्यों को त्याग देने वाला मदिरापान आदि दुष्कर्मों मे आसक्त होगा वह शीघ्र ही यमराज द्वारा क्यो न दण्डित किया जायगा ? इसी प्रकार जो क्षत्रिय राजा प्रजा की रक्षा न करके उसका उत्पीडन करता है और अपना सब समय तथा राज्य–कोष दुर्व्यसनो मे खर्च करता रहता है, अथवा जो पापो के भय से युद्ध मे कायरता दिखाता है, उसे यमराज की अदालत मे क्यो न दोषी बनना पडेगा ? वैश्य वर्ण का जो व्यक्ति समाजोपयोगी कार्यों को त्याग कर झूँठे व्यवहार से केवल मनुष्यो को ठगने और धन बटोरने मे लगा रहेगा उसे भी दण्ड स्वरूप यम-यातना सहन करनी ही पडेगी । समाज-सेवा के कार्यों से विमुख होकर हानिकारक मार्ग पर चलने वाला शूद्र भी यमराज द्वारा दण्ड-नीय होता है । सब बातो का सार यही है कि जो मनुष्य नित्यप्रति स्नान, ध्यान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि धर्मविहित कर्मों को त्याग कर आलस्य और प्रमाद मे पड़ा रहता है उसका वह दिन व्यर्थ ही जाता है । इस प्रकार जो व्यक्ति अपने जीवन के उपयोगी दिनो को नष्ट करता रहता है उसकी आयु भी चाहे जब नष्ट हो जाती है, क्योंकि यह मानव-देह अध्रुव (अनिश्चित) है । जीव को यह देह इसलिए दी जाती है कि वह कर्म–बन्धनो को काट कर ऊँची गति को प्राप्त करे । पर जो इसके विपरीत इसको निरर्थ भोग–विलास मे ही लगा देता है तो दण्ड स्वरूप उसे शीघ्र ही इस ईश्वरीय अनुग्रह से वञ्चित कर दिया जाता है ।"

मानव-जीवन की श्रेष्ठता—

वास्तव मे मानव–जीवन और मानव–देह का प्राप्त होना सृष्टि का सबसे बड़ा अनुदान है । चाहे हम धर्म की दृष्टि से देखें और चाहे विज्ञान की

दृष्टि से,संसार मे जितने भी चराचर प्राणी पाये जाते हैं मनुष्य उनमें सर्वोच्च है। उसे जो विवेक बुद्धि, सूक्ष्म विषयो को समझ सकने योग्य मस्तिष्क और आश्चर्य-जनक क्षमता युक्त कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की गई हैं, उनकी तुलना और कहीं दिखाई नहीं पड़ती। मनुष्य को ससार में जो अपार सुविधायें और उपयोगी कर्म करने के अवसर प्राप्त हुए है वे ऐसे महान् और अलभ्य हैं कि 'देवगण' भी सदैव उनकी अभिलाषा किया करते हैं। इसी तथ्य को समझ कर 'विष्णु-पुराण' में कहा गया है—

गायन्ति देवा. किलगीतिकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूय पुरुष. सुरत्वात्॥

अर्थात् यह कर्मभूमि भारतवर्ष अत्यन्त धन्य है, जिसकी महिमा देवगण भी गाते रहते हैं। क्योंकि स्वर्ग और मोक्ष जैसी सर्वोच्च गतियो को यहाँ पर सत्कर्म करके ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वर्ग कहे जाने वाले लोक मे चाहे भोगों की कितनी भी अधिकता क्यों न हो, चाहे वहाँ के प्राणी बिना परिश्रम किये अपनी सब मनोभिलाषाओं की पूर्ति क्यो न कर लेते हो, पर उनको इस बात का अवसर कभी नहीं मिलता कि त्याग, तपस्या परोपकार के मार्ग पर चलकर दूषित कर्म-बन्धनो को काट सकें और आत्म-शक्ति की वृद्धि करते हुए स्वावलम्बन पूर्वक 'ब्रह्म-निर्वाण' की ओर अग्रसर हो सकें।

इस प्रकार 'गरुड पुराण' का मुख्य उद्देश्य मृतक कर्म-काण्ड के रूप मे दान-दक्षिणा का विधि-विधान बतलाना होने पर भी उसमें स्थान-स्थान पर यही कहा गया है कि परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को शुभकर्म करना अनिवार्य है। शास्त्रकारो ने जो 'कर्म' को प्रधानता दी है उसका आशय यही है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका परिणाम अवश्य मिलता है, चाहे वह उसे समझे या न समझ पाये। बुरे काम करके सुफल की आशा करना बिल्कुल मूर्खता है। आम का बीज बोने से मीठे फल मिलना और बबूल का बोने से तीक्ष्ण काँटों का सहन करना एक ऐसा प्राकृतिक सिद्धान्त है, जो पलट नहीं सकता। 'गरुड-पुराण' मे भी विभिन्न अध्यायों मे सामान्य तथा विशेष नैतिक तथा धार्मिक नियमों के पालन करने के रूप में यही उपदेश दिया गया है—

"किसी भी श्रेष्ठ उद्देश्य की पूर्ति के लिये सदा सत्पुरुषों का स
करना चाहिये। असत्पुरुषों की सगति से इस लोक और परलोक में कहीं
हित नहीं हो सकता। पराया व्यक्ति भी हित–सम्पादन करने वाला होता
और अपना बन्धु भी परम शत्रु बन सकता है। इसलिये जो अपना सच्चा हि
करे उसी को बन्धु समझना चाहिये। उसी मनुष्य को वास्तव में जीवित मान
चाहिये जिसमें अच्छे गुण और विचार पाये जायें और जो धर्म की भाव
रखता है। गुण और धर्म रहित व्यक्ति का संसार में जन्म लेना निष्फल ही है
दुष्ट चरित्र वाले घर में रहने से तो नरक में निवास करना भी अच्छा है
क्योंकि नरक में रहने से तो क्रमश: पापों का क्षय होता है पर दुष्ट-गृह में रह
से पाप उल्टा बढ़ता जाता है। जिसका धन नष्ट हो जाता है वह घर–ब
त्याग कर तीर्थ–सेवन के लिये चला जाता है, पर जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता
उसे तो रौरव नरक में ही जाना पड़ता है। जो किसी को वचन देकर उस
पालन नहीं करते, जो चुगली किया करते हैं, झूँठी गवाही देते हैं, मद्य-पा
करते हैं वे सब नरक की घोर कष्टदायक वैतरणी नदी में निवास करते हैं
किसी घर में अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, स्वयं दान करके फिर उस
अपहरण करने वाला, खेत, पुल आदि सार्वजनिक स्थानों को नष्ट करने वाल
पराई स्त्री से दुराचार करने वाला आदि व्यक्ति भी वैतरणी में महाकष्ट पा
हैं। जो कृपण हैं, नास्तिक है, क्षुद्र स्वभाव वाले हैं, सदा क्रोध करते रहते
स्वयं अपनी ही बात को प्रमाण बतलाते वाले है, अत्यन्त अहङ्कारी हैं, कृतघ्न
विश्वासघाती हैं वे सब वैतरणी नदी में दीर्घकाल तक नारकीय स्थिति में प
रहते हैं।"

जो लोग केवल शारीरिक या अर्थ सम्बन्धी दुष्कर्मों को ही नरकवा
का कारण समझते हैं, वे वास्तविकता से परे ही समझे जायेंगे। मानसि
दुर्भाव और अहङ्कार जनित दोष प्रत्यक्ष पापों से भी बढ़कर नरक वास
कारण होते हैं, क्योंकि भावना रूप पाप ही आगे चल कर स्थूल पापों
रूप में प्रकट होते हैं। जिस व्यक्ति की मनोभूमि शुद्ध है और विचार-धा
पवित्रता की ओर प्रेरित रहती है, उसकी अभिरुचि पापकर्मों की तर
होगी ही नहीं। इस लिये यदि 'गरुड़ पुराण' के कर्ता ने अहङ्कार, नास्तिकता

क्षुद्रता, कृपणता, क्रोध आदि को नरक का कारण लिखा है तो उसमे कोई भूल की बात नही है ।

प्रेतों का स्वरूप और कार्य—

यद्यपि इस पुराण मे मृत्यु के उपरान्त प्रेत बनने वालो और यमपुर की यात्रा करने वालो का जो वर्णन किया गया है उसके पढने से यही प्रतीत होता है कि मरणोपरान्त मनुष्य का सूक्ष्म शरीर निस्सन्देह किसी दैवी प्रदेश की यात्रा करता है और वहाँ चित्रगुप्त नगर, यमपुरी आदि मे उसका विचार उसी प्रकार किया जाता है जैसा कि हम लौकिक न्यायालयो में होता देखते हैं । पर कई स्थानो पर प्रेतो के स्वरूप और कार्यो का जो वर्णन पाया जाता है उसमे यह भी प्रकट होता है कि नरको और यमपुरी का जो वर्णन किया गया है वह बहुत अशो मे अलङ्कारिक है और पाठको के चित्त पर अनुकूल प्रभाव डालने के उद्देश्य से किया गया है । ऐसा न होता तो स्वय पुराणकार यह न लिखता कि प्रेतत्व को प्राप्त होना और प्रेतो द्वारा ससार के मनुष्यो को पीडा पहुँचाया जाना कलियुग मे ही होता है सत्युग, त्रेता, द्वापर आदि मे ऐसा नही होता था । वे लिखते हैं—

कलौ प्रेतत्वमाप्नोति ताक्ष्यशुद्ध क्रिया परः ।
कृतादौ द्वापर यावन्न प्रेता नैव पीडनम् ॥
(प्रेतकल्प १०—१७)

अर्थात् कलियुग मे मनुष्यो के रहन-सहन के अशुद्ध हो जाने से वे प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं । सतयुग, द्वापर आदि मे न कोई प्रेत बनता था न किसी को प्रेत सम्बन्धी पीडा होती थी ।"

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यमराज, उनकी यमपुरी, नरक आदि तो अनादि काल से हैं, तब क्या य सब द्वापर तक निकम्मे बैठे रहते थे ? फिर मार्कण्डेय पुराण आदि विभिन्न ग्रन्थों मे भूतात्माओ के आवागमन की जो कथायें दी गई हैं उनमे नरको का वर्णन बडे विस्तार से किया गया है । धर्मराज युधिष्ठिर जब एक असत्य-भाषण के लिये थोडी देर के लिये नरक मे ले जाये गये तो उन्होने देखा कि नर्क पापियो से भरे हुये हैं । इससे हम

इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रेतत्व और नरकों का जो वर्णन पुराणों में लिखा गया है उसे अक्षरशः ज्यों का त्यों मानने के बजाय उसका अर्थ रूपक अलङ्कार की दृष्टि से ही समझना उचित है। उपनिषदों में महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक जो विवेचन किया है उनसे भी पुनर्जन्म और नरकों का ऐसा ही स्वरूप सिद्ध होता है। 'कठोपनिषद' में जब नचिकेता ने यमराज से यह प्रश्न किया कि मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होती है तो उसने यही उत्तर दिया—

न प्राणेन न. पानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता वुपाश्रतौ॥

"कोई भी प्राणी प्राण अथवा अपान वायु के आधार पर ही जीवित नहीं रह रहता, वरन् प्राण और अपान जिस शक्ति के आश्रित है प्रत्येक प्राणी उसी के आधार पर जीवित रहता है।" मृतात्मा देहान्त के पश्चात् कैसे रहता है उसके सम्बन्ध में कहा गया है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन।
स्थाणुमन्ये ऽनुसयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

"जिसने श्रवण-मनन द्वारा जैसा मनोभाव प्राप्त किया है उसी के आधार पर अपने-अपने कर्मों के अनुसार कितने ही जीवात्मा देह धारणार्थ विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्षलता, पर्वत आदि स्थानों पर पदार्थों के रूप को ग्रहण कर लेते है।"

इससे विदित होता है कि दुष्कर्मो के फल से मनुष्य जो पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों की योनियों मे जाते हैं अथवा वृक्ष, लता आदि स्थावर पदार्थों के रूप को प्राप्त हो जाते हैं वही उनके लिये एक तरह का नरकवास माना गया है। मनुष्य के मुकाबले मे इन जीवों को अनेक प्रकार की असुविधायें और कष्ट सहन करने पड़ते हैं। 'गरुड पुराण' मे नरकों की संख्या ८४ लाख बतलाई गई है। अन्य स्थानों मे योनियों की संख्या भी ८४ लाख मानी गई है। इससे यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि संभवतः 'गरुड पुराण' ने ८४ लाख योनियों मे जीव के भ्रमण करने का ही ८४ लाख नरकों के रूप मे वर्णन किया है।

गीता में 'नरक' का स्वरूप—

'भगवद्गीता' मे दुष्कर्मों से जीव की अधोगति और शुभ कर्मों से उच्च गति पाने का वर्णन किया गया है, पर उसमें 'गरुड-पुराण' की तरह किसी रहस्यपूर्ण यमराजपुरी और उसके महाभयङ्कर कारागारों का वर्णन नही है। उसमे यही बताया गया है कि जो लोग पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी, अज्ञान आदि आसुरी लक्षणो से युक्त होते हैं वे मृत्यु के बाद अवाछनीय गति को प्राप्त होते हैं। 'गीता' म 'नरक' का शब्द भी आया है पर उसका आशय जीव की नीच और कष्ट पूर्ण स्थिति से ही जान पडता है। इस सम्बन्ध मे १६ वे अध्याय मे कहा गया है—

> तानह द्विषत. क्रूरान्ससारेपु नराधमान् ।
> क्षिपाम्यजस्रम शुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१६॥
> आसुरी योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
> माम प्राप्यैव कौन्तेय ततोयान्त्य धमा गतिम् ॥२०॥
> त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन ।
> काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रय त्यजेत् ॥२१॥

अर्थात्—'इस प्रकार के इन द्वेष बुद्धि रखने वाले दुष्कर्मों म लिप्त और निर्दय स्वभाव के नीच व्यक्तियो को मैं ससार मे बारम्बार आसुरी योनियो में ही गिराया करता हू ॥१६॥ हे अर्जुन ! वे मूढ पुरुष जन्म-जन्म मे आसुरी योनियो को प्राप्त होकर मुझसे (परमात्मा से) दूर होते जाते हैं और पहले की अपेक्षा भी नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥२०॥ काम, क्रोध, तथा लोभ—ये तीन प्रकार के नर्क के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं, आत्म-कल्याण के इच्छुक को इन्हे त्याग देना चाहिये।"

गीताकार ने कुछ योनियाँ मनुष्य मे नीची और कुछ ऊँची बतलाई है और स्पष्ट कह दिया है कि आसुरी प्रवृत्ति वाले लोग अधोगति को तथा दैवी प्रवृत्ति वाले उच्च गति को प्राप्त होते हैं। यदि मनुष्य मृत्यु के उपरान्त नीच योनियों मे जाकर कष्ट पाता है तो उसका कारण अहङ्कार, पाखड क्रोध, पर-पीडन आदि ही है। आसुरी अथवा निन्दनीय प्रवृत्तियाँ होती हैं। जब तक मनुष्य

इनको त्याग कर अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अद्रोह, क्षमा आदि दैवी अथवा सत् प्रवृत्तियो को नही अपनाता तब तक उसका आत्म-कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त हो सकना असम्भव होता है। 'गीता' मे यह नही कहा है कि मरते समय 'गोदान' करने से मनुष्य नरक-प्रदेश की वैतरणी नदी से पार हो जायगा अथवा पुत्र या सम्बन्धियो द्वारा मासिक पिण्डदान करने से यमलोक के मार्ग में उसकी भूख शान्त होती रहेगी। वरन् महाभारत का ही यह आदेश है—

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते पुन दत्ताना पिण्डाना नैव काक्षिण.॥

अर्थात् 'ज्ञानी मनुष्य तो अपने सच्चे स्वरूप को समझ कर और तद्-नुसार आचरण करके सदा ही मुक्त होते हैं। उनको पुत्रो द्वारा दिये गये पिण्डो की आकाक्षा कभी नही होती।"

'बृहदारण्यक उपनिषद्' की सम्मति से भी यही सिद्ध होता है कि आत्मा स्वभाव से ऊर्ध्व पथगामी है और जब तक मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग पर चलता हुआ सत्कर्मों मे सलग्न रहता है। तब तक वह उच्च गति को ही प्राप्त होता है—उसके चौथे ब्राह्मण मे कहा गया है—

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रा मादायन्यन् नवतर कल्याणतर रूप तनुते एवमेवायमात्मेद शरीर निहत्य विद्यामगमयित्वा अन्यन्नवतर कल्याणतर रूप कुरुते पित्र्य वा गन्धर्व वा देव वा प्राजापत्य वा ब्राह्म वा अन्येषा वा भूतानाम्।

अर्थात् 'जैसे कोई स्वर्णकार (सुनार) थाडे मे पुराने सोने को लेकर उससे नया और सुन्दर आभूषण बना देता है उसी प्रकार आत्मा इस जीर्ण शरीर को नष्ट करके और अज्ञान से पार होकर दूसरे नये और कल्याणकारी (श्रेष्ठ) रूप को धारण करती है। वह रूप चाहे पितृलोक मे हो, चाहे गन्धर्व लोक या देवलोक मे, चाहे प्रजापति लोक अथवा ब्रह्मलोक मे या किसी अन्य भौतिक लोक मे।"

'ईशावास्योपनिषद्' मे बहुत स्पष्ट शब्दो में कहा गया है कि जो लोग इस ससार मे कुमार्ग पर चलते हैं और आत्मा को नीचे गिराने वाले कार्य करते हैं वे ही घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता ।
तां९७स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महतो जनाः ॥

अर्थात्—"असुरो के जो लोक हैं वे अज्ञान और अन्धकार से ढके हुए हैं। जो मनुष्य आत्मा-हत्या करते हैं अथवा जो आत्मा के पतन कराने वाले कर्म किया करते हैं वे उन्ही कष्टपूर्ण लोको को प्राप्त होवे है।"

ज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि है—

'गरुड-पुराण' मे भी सिद्धान्त रूप से यही कहा गया है कि जो मनुष्य ज्ञानी और सदाचारी होता है उसकी सदैव सद्गति होती है और वह मरने के उपरान्त स्वय ही उत्तम लोको मे जाता है। सासारिक माया, मोह और स्वार्थ मे फँसे हुए व्यक्तियो की दुर्दशा का वर्णन करने के साथ ही उसमे यह भी कहा गया है—

आहारो मैथुनं निद्रा भय क्रोधस्तथैव च ।
सर्वेपामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभ. पर. ॥
भूतानां प्राणिन श्रेष्ठा प्राणिना मति जीवनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेपु ब्राह्मणा. स्मृताः ॥
ब्राह्मणेपु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिपु कर्तारः कर्तृपु ब्रह्मवादिन ॥

अर्थात्—"आहार करना, मैथुन, निद्रा, भय, क्रोध आदि प्रवृत्तियाँ तो सभी प्राणियो मे पाई जाती हैं, पर विवेक (ज्ञान) का होना बडा दुर्लभ है। भौतिक जगत मे प्राणी श्रेष्ठ माने गये हैं, प्राणियो मे बुद्धियुक्त श्रेष्ठ होते हैं, बुद्धियुक्तो मे मनुष्य को सबसे बडा कहा गया है, मनुष्यो मे ब्राह्मण उत्तम होता है। ब्राह्मणो मे भी विद्वान् प्रशंसा के योग्य होता है। विद्वानो मे कृत-बुद्धि (व्यवहारिक बुद्धि वाला) और कृत बुद्धियो में भी तदनुसार आचरण करने वाला और उनमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं।"

इस प्रकार के ज्ञानी और श्रेष्ठ पुरुषों की गति सदा उत्तम होती है यह पहले ही कह दिया गया है—

नाभेस्तु मूर्द्धपर्य्यन्तमूर्द्धच्छिद्राणि चाष्ट वै ।
सन्ता: सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ।
अधश्छिद्रेण ये यन्ति ते यान्ति विगति नरा: ॥

अर्थात्—"मानव देह मे नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक जो आठ छिद्र हैं, सन्त और पुण्यात्मा लोगो की आत्मा इन्ही मार्गों से निकल कर ऊर्द्ध गति को प्राप्त करती है । पर जो लोग इसके विपरीत होते हैं उनके प्राण नाभि के नीचे के छिद्रो से निकला करते हैं और उनको निकृष्ट गति प्राप्त होती है ।"

पर उपनिषदो तथा गीता आदि मे जहाँ केवल ज्ञान-मार्ग की श्रेष्ठता का निरूपण करके मनुष्यो को कम करने के लिये स्वतन्त्र छोड दिया गया है वहाँ 'गरुड पुराण' मे लौकिक व्यवहार का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है और लोग उन कर्मों के करने मे लापरवाही न करें, इसलिये उनको यमपुरी तथा नरको के कष्टो का हर तरह से भय दिखाया गया है । इसका निश्चय कर सकना कि नरक और स्वर्ग इस संसार मे ही हैं या इसके बाहर किसी अन्य स्थान मे है बडा कठिन और सन्देहास्पद है । वेद और उपनिषदो आदि मे मरणोपरान्त 'पितृयान' और देवयान' दो विभिन्न मार्गो की चर्चा की गई है और अध्यात्मवादियो ने भी मरने के बाद जीवात्मा के कुछ समय तक चन्द्रमा अथवा किसी सूक्ष्मलोक (ऐस्ट्रल वर्ल्ड) मे रहने की सम्भावना को स्वीकार किया है । इसलिये हम 'गरुड-पुराण' के नरको के वर्णन को सर्वथा अग्राह्य नही कह सकते ।

कर्मकाण्ड का अत्यधिक विस्तार—

जीवात्मा के पुनर्जन्म और कर्मानुसार विभिन्न योनियो को प्राप्त कर सुख—दु ख भोगने के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर भी अनेक विद्वान् 'गरुड—पुराण' मे वर्णित पिण्डदान तथा मृतक सम्बन्धी अन्य कर्मकाण्डो के अति विस्तार को व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी नही मानते । उनके कथनानुसार जन-साधारण मे इस प्रकार की कथाओ ने अनेक प्रकार के अ ध-विश्वासो का रूप धारण कर लिया है और उनके कारण वे तरह—तरह के कष्ट उठाया करते हैं । उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि यहाँ की अशिक्षित जनता

जो विभिन्न रोगों का कारण भूत-प्रेतों का प्रभाव मानती है उसके फलस्वरूप वे अपना उचित इलाज करने के बजाय टोना-टोटका और स्याने (ओझा) लोगों के चक्कर में फँस जाते है। इमसे उनका पैसा व्यर्थ मे बर्बाद होता है और वे शारीरिक कष्ट भी उठाते हैं। इस धारणा का मूल 'गरुड़-पुराण' में पाया जाता है। उसके दसवें अध्याय में 'प्रेत-पीडा' का वर्णन करते हुए कहा है—

'ये पराये धन, परायी पत्नी और अपने ही सम्बन्धियों को कष्ट देने वाले महा पापिष्ठ प्रेतगण नरकवास के पश्चात् बिना शरीर के भूख-प्यास से पीडित होकर सर्वत्र विचरण किया करते हैं। वे अपने ही सहोदर को मार देते हैं और इस प्रकार पितृगण के मार्ग का रोध करने वाले बन जाते हैं। वे पित्रों के भाग को मार्ग के तस्करों की भाँति अपहरण कर लेते हैं। अपने घर में फिर आकर वे मूत्रोत्सर्ग में प्रवेश कर जाते हैं और वहाँ स्थित होकर स्वजनों का रोग-शोक दिया करते हैं। वे ज्वर और इकतरा के रूप में लोगों को कष्ट देते हैं। वे जीवित अवस्था में अपने कुल के जिन लोगों से स्नेह करते हैं प्रेत बनने पर उन्हीं को पीडा देने लगते हैं। जिसको प्रेत-पीडा होती है वह नित्य-कर्म, मन्त्र-जप, होम सब छोड देता है, तीर्थों में जाकर भी परम आसक्त हो जाता है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य का ऐसा नाश होता है कि सुभिक्ष मे भी कृषि का नाश हो जाता है और जितना भी सद्व्यवहार होना है वह सब विनष्ट हो जाता है। उसका दूसरो से कलह होने लगता है। अनेक बार मार्ग मे गमन करते हुए ही पीडा उत्पन्न हो जाती है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य हीन कर्म करने लगता है और उसका सम्पर्क हीन श्रेणी के व्यक्तियों से ही होने लगता है।"

'प्रेत के प्रभाव से ऐसे बहुत से व्यसन लग जाते हैं जिनमे अपनी समस्त सम्पत्ति स्वाहा हो जाती है। चोर, अग्नि, राजा द्वारा हानि होती है। किसी महान् रोग की उत्पत्ति, अपने शरीर में पीडा होना, अपनी स्त्री का सताया जाना—ये सभी बातें प्रेत-पीडा के कारण होती हैं। स्त्रियों के गर्भ का विनाश हो जाता है, उनका रजोदर्शन नहीं होता, बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं—

ये सब उपद्रव प्रेत-पीडा के कारण होते है। जिसके यहाँ प्रेत पीडा देता है वहाँ रात-दिन कलह रहता है, अथवा पुत्र ही शत्रु के समान घात करने वाला हो जाता है। जिस घर मे दाँता-किटकिट हो, भोजन के समय कोप का आवेश होता हो, सदा दूसरो के साथ द्रोह करने की बुद्धि रहे—तो ये सभी दुष्परिणाम प्रेत के द्वारा दी गई पीडा के समझने चाहिये। जिस पर प्रेत का असर होता है वह अपने माता-पिता के वचनो का पालन नही करता, अपनी स्त्री से प्रेम नही करता, वरन् पराई स्त्रियो पर कुदृष्टि किया करता है। दुष्ट मृत्यु के होने से भी प्रेत योनि मिलती है और मृत शरीर का दाह-संस्कार न होने से भी प्रेतत्त्व प्राप्त होता है। खाट पर ही जिसकी मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित ही समझना चाहिये।"

इस अध्याय मे प्रेत-पीडा के जो लक्षण बतलाये गये हैं अगर विचार-पूर्वक देखा जाय तो वे मनुष्य की दुष्ट बुद्धि और विकृत मस्तिष्क के परिणाम होते हैं। माता-पिता की आज्ञा न मानना आवारागर्दी का लक्षण है और पराई स्त्रियो से दुराचार की भावना व्यभिचारी मनोवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम है। शास्त्रो में कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को विवेक बुद्धि देकर कर्म करने मे स्वतन्त्र बनाया है। इस सिद्धान्त के अनुसार ही ज्ञानीजन मनुष्य के प्रत्येक सुख-दुःख का कारण उसके कर्तव्य-कर्मों को मानते है।

इस लिये जब हम 'गरुड पुराण' के प्रेत-सम्बन्धी विधि-विधानो पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका कारण या तो अनार्य जातियों मे प्रचलित अवैदिक प्रथाओ का परम्परागत चला आया प्रभाव है अथवा कर्मकाण्ड मे अनुरक्त किन्ही व्यक्तियो ने इनका अनावश्यक विस्तार कर दिया है। वैदिक अध्यात्मवाद के अनुसार आत्मा की अमरता और मृत्यु के पश्चात् उसका अन्य शरीर मे जाना तो निश्चित ही है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानिगृह्णाति नरो ऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २–२२)

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।"

भारतीय अध्यात्मवादी मनीषियों को पुनर्जन्म के विषय में कभी किसी तरह का सन्देह नहीं रहा, उनके विचार तर्क और विज्ञान के अनुकूल थे। आज वैज्ञानिक भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और आत्मा के स्थायी संस्कारों को कुछ-कुछ मानते जाते हैं। 'गीताकार' ने इन शब्दों में इसकी बहुत स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुव जन्म मृतस्य च।

इसी सिद्धान्त को 'गरुड़ पुराण' ने अविकसित और अल्प बुद्धि वालों को समझाने के उद्देश्य से कथा का रूप दे दिया है और जीवात्मा की सद्गति के लिये कर्म-काण्ड के विधि-विधानों को अनिवार्य बतला दिया है। ऐसी पौराणिक कथाओं का भी अशिक्षित जनता को समझाने के लिये उपयोग स्वीकार किया जा सकता है। इस दृष्टि से 'गरुड़ पुराण' का अध्ययन करना और उसकी उपयोगी बातों को विवेक सम्मत रूप में जनता को समझाना लाभदायक हो सकता है।

× × ×

'गरुड़पुराण' की एक विशेषता यह है कि इसके प्रथम खण्ड में जिन जीवनोपयोगी विद्याओं की जानकारी संग्रह की गई है, उनको ऐसे साररूप में दिया गया है कि पाठक थोड़े समय में ही अधिक लाभ उठा सकता है। इसमें विभिन्न देवताओं की उपासना तथा पूजा की जो विधियाँ दी गई हैं वे निष्पक्ष भाव से एकत्रित की गई हैं और पूजा-पाठ करने वाले मनुष्यों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसी प्रकार औषधियों के विषय में भी जो कुछ लिखा गया है वह प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर और अनुभूत है। तीर्थ, व्रत, दैनिक धर्म कृत्य आदि का वर्णन ऐसे ढङ्ग से किया गया है जिसे सामान्य पाठक भी सहज में समझ सकता है। 'रामायण' 'महाभारत' 'हरिवंश' 'भगवद्गीता' 'यमगीता' आदि प्रसिद्ध धार्मिक रचनाओं का सारांश

भी दे दिया गया है। हीरा, मोती, पुखराज, नीलम आदि रत्नों का वर्णन और गुण-दोष बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरोदय, अष्टाङ्ग-योग की विधियों का उत्तम रीति से संग्रह किया गया है। इस प्रकार यह प्रथम खण्ड 'अग्निपुराण' के नमूने पर भारतीय विद्याओं का 'सार-संग्रह' या 'विश्वकोश' माना जा सकता है।

सर्व श्रेष्ठ योग-मार्ग—

विभिन्न देवताओं की नाना प्रकार से पूजा और उपासना के विधान बतला कर अन्त में यही बतलाया गया है कि मनुष्यों के कल्याण के लिए सबसे श्रेष्ठ साधन-विधि यही है सब प्रकार की उपासनाओं के साथ परमात्मा का ध्यान अवश्य कर लिया जाय। "वह परमात्मा ही सब पापों को नष्ट करने वाले, सबके रचयिता और सच्चे ईश्वर हैं। वे ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्म रूप हैं जो सब देहधारियों की देह में सर्वदा रहते हैं पर उनके बंधन में कभी नहीं पड़ते। आत्मा रूप से देह के भीतर रहने वाला यह ईश्वरांश इन्द्रियों की पहुँच से परे है। वह मन का सञ्चालन करता है पर मन के धर्मों से रहित है। वे ही ज्ञान-विज्ञान स्वरूप वाले और सबके साक्षी हैं। वह बुद्धि से भी विवर्जित हैं अर्थात् बुद्धि के जो भी लक्षण हैं उनसे परे हैं। वे ही प्राणियों के प्राण, महान् शान्त स्वरूप, भय से विवर्जित और अहङ्कार आदि से रहित हैं। वे सबके साक्षी, नियन्ता, परम आनन्द रूप वाले हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति-तीनों दशाओं में स्थित उसके साथी, पर उससे विवर्जित हैं। तुरीय (चतुर्थ स्थिति) परम धाता, दृश्य के रूप वाले गुणों से रहित, मुक्त, बोधयुक्त, जरा से रहित, व्यापक, सत्य और शिव आत्मा वे ही हैं। जो विज्ञ मानव इस प्रकार से परमब्रह्म का ध्यान किया करते हैं वे परम पद को और उसके रूप को प्राप्त किया करते हैं।"

संसार में जितने प्रकार के ज्ञान हैं उनमें आत्मज्ञान का दर्जा सर्वोच्च है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा और उसकी अपार शक्तियों को नहीं जानता वह कभी मानवता के अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। न वह संसार में पाई जाने

वाली आधि-व्याधि और जीवन-मरण के चक्र से सर्वथा मुक्त हो सकता है। इसीलिये पुराणकार की सम्मति है—

"जो आत्म ज्ञान की इच्छा रखता है उसे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार से रहित, भूत, तन्मात्रा, गुण, जन्म आदि से पृथक स्वयं प्रकाश, निराकार, सदानन्द स्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, सत्य, अद्वय, तुरीय, अक्षर ब्रह्म का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ।"

× × ×

इस प्रकार 'गरुड पुराण' में संग्रहीत सामग्री और उसकी वर्णन शैली में उसकी एक निजी विशेषता है। उसने सामान्य जनता के एक विशेष वर्ग के उपयोग की दृष्टि से विविध प्रकार की जानकारियों और आवश्यक विषयों का संक्षिप्त रूप में संग्रह किया है। सम्भवतः प्राचीन समय प्रचलित बहुसंख्यक विभिन्न विषयक ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। तो भी सबको अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक विशेष रूप दिया गया है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

'गरुड-पुराण' का 'प्रेत खण्ड' ही जनता में अधिक प्रचलित है और सामान्य पाठक उसने को ही 'गरुड पुराण' समझते हैं। कितने ही प्रकाशकों ने उसी अंश को 'गरुड-पुराण' के नाम से छापा भी है। पर इसके प्रथम खण्ड में जो विविध विषयक उपयोगी सामग्री एकत्रित की गई है वह भी कम आकर्षक नहीं है। जैसा हम लिख चुके हैं इसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग 'प्रेतखण्ड' में दिये गये 'यमराजपुरी' के वर्णन और नरकों की भयङ्करता को समझ कर पाप कर्मों से बचे रहने का प्रयत्न करना ही है। जो पाठक इसको ऐसी भावना से पढ़ेंगे वे अवश्य इससे लाभान्वित होंगे।

—:०:—

गरुड़पुराण की विषय-सूची

[प्रथम खण्ड]

अध्याय	पृष्ठ संख्या

श्रीगरुड महापुराणम्

पूर्वार्द्धम्

१--नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम् ।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥१

नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा ॥२
सूतं पौराणिकं शान्तं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
विष्णुभक्तं महात्मानं नैमिषारण्यमागतम् ॥३
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन उपविष्टं शुभासने ।
ध्यायन्तं विष्णुमनघं तमभ्यर्च्यास्तुवन् कविम् ॥४
शौनकाद्या महाभागा नैमिषीयास्तपोधनाः ।
मुनयो रविसङ्काशाः शान्ता यज्ञपरायणाः ॥५

प्रारम्भ में मङ्गलाचरण करते हुए देव वन्दना की जाती है । मैं मल और माया से रहित-सर्वत्र गमन करने वाले भगवान् हरि को वन्दना करता हूँ जो अजन्मा-अजर और अनन्त हैं, जो ज्ञान के स्वरूप वाले-महान्-अमल-अनादि-भूत देहादि से हीन हैं । जो समस्त करणों से रहित और सम्पूर्ण भूतों में वर्तमान हैं ॥ १ ॥ मैं भगवान् हरि-रुद्र-ब्रह्मा-गणों के स्वामी (गणेश)

—देवी सरस्वती इन सब देवगणों को मन, वाणी और कर्म के द्वारा सदा नमन करता हूं ।। २ ।। सम्पूर्ण शास्त्रों के महामनीषी-परमशान्त स्वरूप वाले, पुराणों के विद्वान् एवं प्रवक्ता, विष्णु के भक्त महान् आत्मा वाले और तीर्थों की यात्रा के प्रसङ्ग से नैमिषारण्य में आये हुए, शुभ आसन पर संस्थित भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले और पापरहित सूत जी की अभ्यर्चना करके उन कवि का स्तवन किया था ।। ३ ।। ४ ।। तपश्चर्या रूपी धन वाले, नैमिष नामक महारण्य के निवासी—महान् भाग्य से सम्पन्न—सूर्य के समान तेजस्वी—शान्त रूप और निरन्तर यज्ञादि में परायण रहने वाले शौनक आदि महर्षिगण थे ।।५।।

सूत जानासि सर्वं त्वं पृच्छामस्त्वामतो वयम् ।
देवतानां हि को देव ईश्वरः पूज्य एव क. ।।६
को ध्येयः को जगत्स्रष्टा जगत्पाति च हन्ति कः ।
कस्मात् प्रवर्त्तते धर्मो दुष्टहन्ता च कः स्मृतः ।।७
तस्य देवस्य किं रूपं जगत्सर्गः कथं मतः ।
कैर्व्रतैः स तु तुष्ट स्यात् केन योगेन वाप्यते ।।८
अवताराश्च के तस्य कथं वंशादिसम्भवः ।
वर्णाश्रमादिधर्माणां कः पाता क प्रवर्त्तकः ।।९
एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते ।
नारायणकथाः सर्वा कथयास्माकमुत्तमाः ।।१०

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप सभी कुछ जानते हैं । इसी कारण से हम लोग आप से पूछते हैं । आप हम लोगों को यह बतलाइये कि देवों का देव तथा इनका स्वामी एवं पूज्य कौन है ।। ६ ।। ऐसा कौन-सा देव है जिसका ध्यान करना चाहिए ? इस जगत् के सृजन करने वाला, विश्व का पालक और अन्त में संहार करने वाला कौन है ? किसके द्वारा लोक में धर्म प्रवृत्त हुआ करता है और संसार में उत्पन्न होने वाले दुष्ट पुरुषों का हनन कौन किया करता है ? ।। ७ ।। उस देव का कैसा स्वरूप है ? इस जगत् का सर्ग किस प्रकार से माना गया है ? वह सर्वोपरि विराजमान देवेश्वर किन व्रतों के द्वारा

परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ करता है और किस योग से वह प्राप्त किया जाता है ? ॥८॥ उस सर्वेश्वर के कौन-से अवतार होते हैं और किस प्रकार से उनकी वंश आदि मे समुत्पत्ति हुआ करती है ? लोक मे जो ये वर्ण ब्राह्मण क्षत्रियादि हैं तथा ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम हैं इन सबका पालन करने वाला और प्रवर्तक कौन है ? ॥९॥ यह सब तथा इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी बनाने के योग्य हो उस सबको हे सूतजी ! आप हमको बताइये क्योंकि आप तो महान् मति वाले है। भगवान् नारायण से सम्बन्धित सभी उत्तम कथायें आप हम को बताइये ॥१०॥

पुराण गारुडं वक्ष्ये सार विष्णुकथाश्रयम् ।
गरुडोक्तं कश्यपाय पुरा व्यासाच्छ्रुत मया ॥११
एको नारायणो देवो देवानामीश्वरेश्वरः ।
परमात्मा पर ब्रह्म जन्माद्यस्य यतो भवेत् ॥१२
जगतो रक्षणार्थाय वासुदेवोऽजरोमरः ।
स कुमारादिरूपेण अवतारान् करोत्यजः ॥१३
हरि स प्रथम देव कौमार सर्गमास्थित ।
चचार दुश्चर ब्रह्मन् ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥१४
द्वितीय तु भवायास्य रसातलगता महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्ते यज्ञेश शौकर वपु ॥१५
तृतीयमृषिसर्गं तु देवर्षित्वमुपेत्य स ।
तन्त्र सात्वतमाचष्टे नैष्कर्म्यं कर्मणा यतः ॥१६
नरनारायणो भूत्वा तुर्ये तेपे तपो हरि. ।
धर्मसरक्षणार्थाय पूजित स सुरासुरैः ॥१७

श्री सूतजी ने कहा—मैं अब आप लोगो के समक्ष मे गारुड पुराण बनाऊँगा जो कि परम सार स्वरूप है और विष्णु भगवान् की कथा के आश्रय वाला है । यह महापुराण पहिले गरुड ने कश्यप मुनि से कहा था और मैंने व्यास मुनि से इसका श्रवण किया था ॥११॥ समस्त देवो के और ईश्वरों के भी

ईश्वर भगवान् नारायण देव परमात्मा एक ही हैं। यही परब्रह्म हैं और इनसे ही इस सम्पूर्ण विश्व का जन्मादि होता है ॥१२॥ भगवान् वासुदेव वैसे स्वयं अजर एवं अमर हैं किन्तु इस जगत् की रक्षा के लिये वह कुमार आदि के स्वरूप से अजन्मा होकर भी अवतार धारण किया करते हैं ॥१३॥ उस देव हरि ने सबसे प्रथम कौमार सर्ग को ग्रहण कर हे ब्रह्मन् ! अति कठिन अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन किया था ॥१४॥ दूसरा स्वरूप अर्थात् अवतार इन भगवान् का रसातल को प्राप्त हुई भूमि का उद्धार करते हुए हुआ था जिसमें यज्ञों के स्वामी ने वाराह का शरीर धारण किया था।१५। तृतीय ऋषि का सर्ग हुआ था जिसमें उनने देवर्षित्व की प्राप्ति की थी अर्थात् नारद का शरीर धारण किया था और कर्मों की निष्कर्मता का सात्वत तन्त्र प्रचलित किया था ॥१६॥ चौथे अवतार में हरि ने नर-नारायण का स्वरूप धारण कर तपश्चर्या की थी। धर्म के संरक्षण करने के लिये देव और असुरों ने उनकी अर्चना की थी ॥१७॥

पञ्चम कपिलो नाम सिद्धेशं कालविप्लुतम् ।
प्रोवाच सूरये सांख्य तत्वग्रामविनिर्णयम् ॥१८
षष्ठमत्रेरपत्यत्वं दत्तः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्कायप्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥१९
ततः सप्तम आकूत्या रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
सत्यामात्यैः सुरगणैर्यष्ट्वा स्वायम्भुवान्तरे ॥२०
अष्टमे मेरुदेव्या तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।
दर्शयन्वर्त्म नारीणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥२१
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धेमहौषधीर्विप्रास्तेन संजीविता प्रजाः ॥२२
रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषान्तरसम्प्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥२३
सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥२४

धान्वन्तर द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
आप्याययत् सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥२५

पाँचवाँ अवतार सिद्धेश कपिल का हुआ था जिसने अधिक काल से विलुप्त हुए सांख्य शास्त्र की व्याख्या कर तत्त्वों का विशेष निर्णय बताया था। ॥१८॥ छटा अवतार अत्रि मुनि की पत्नी के स्वरूप में अनसूया के द्वारा प्राप्त हुआ जिसने आन्विक्षिकी विद्या को प्रह्लादादि के लिये बताया था ॥१६॥ सप्तम सर्ग रुचि से आकूति में यज्ञ स्वरूप हुआ था और स्वायम्भुव मन्वन्तर में सामान्य सुरगणों के साथ यजन किया था ॥२०॥ आठवें अवतार में नाभि से मेरु देवी में उरुक्रम हुए थे और सम्पूर्ण आश्रमों का वन्द्यमान नारियों का धर्म प्रदर्शित किया था ॥२१॥ ऋषियों के द्वारा याचना करने पर नवम पार्थिव शरीर धारण किया था। हे विप्रगण ! इस अवतार में दुग्ध एवं महौषधियों के द्वारा प्रजाओं को सञ्जीवित किया था ॥२२॥ उसने चाक्षुषान्तर सम्प्लव में मत्स्य का रूप धारण किया था और मही मयी नौका में चढ़ाकर वैवस्वत मनु की रक्षा की थी ॥२३॥ उस व्यापक प्रभु ने समुद्र के मन्थन करने में प्रवृत्त होने वाले दैत्यों के मन्थन दण्ड की स्थिति में रहने वाले मन्दराचल को एकादशवें अवतार में कमठ के रूप में पीठ पर धारण किया था ॥२४॥ भगवान् धनवन्तरि का बारहवाँ अवतार हुआ है। तेरहवें अवतार में परम सुन्दरी मोहिनी का स्वरूप धारण कर अपने रूप लावण्यातिरेक से सबको मोहित करते हुए देवों को सुधा का पान करा कर तृप्त किया था ॥२५॥

चतुर्दशे नारसिंह चैत्य दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैरग्रै रेरका कटकृद्यथा ॥२६

पञ्चदश वामनको भूत्वाऽगादध्वरं बलेः ।
पादत्रय याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥२७

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिः सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥२८

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखां दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२९
नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे कार्याण्यतः परम् ॥३०
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥३१
ततः कलेस्तु सन्ध्यान्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥३२
अथ सोऽष्टमसन्ध्यायां नष्टप्रायेषु राजसु ।
भविता विष्णुयशसो नाम्ना कल्की जगत्पतिः ॥३३
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
मनुर्वेदविदो ह्याद्याः सर्वे विष्णुकलाः स्मृताः ॥३४
तस्मात्सर्गादयो जाताः संपूज्याश्च व्रतादिना ।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च ॥३५

चौदहवाँ अवतार भगवान् नृसिंह का हुआ था जिसमें अत्यन्त बलवान् दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यपु को एरकाकटकृत की भांति अपने अत्युग्र नखों से ही विदीर्ण किया था ॥२६॥ पन्द्रहवाँ अवतार वामन देव का हुआ था जिसमें बहुत ही छोटा वामन अँगुल का बौना रूप धारण कर भगवान् राजा बली के यज्ञ में गये थे। वहाँ केवल तीन पैंड़ भूमि की याचना करके तीन लोकों के त्रिविष्टप को ही नाप डाला था ॥२७॥ सोलहवें अवतार में परशुराम का स्वरूप धारण किया था। जब यह देखा था कि राजा लोग ब्रह्मद्रोही हो गये हैं तो क्रोधित होकर ऐसा सङ्कल्प किया था कि मैं भूमि को क्षत्रियों से रहित कर दूँगा और इक्कीस बार उसे क्षत्रिय विहीन कर दिया था ॥२८॥ फिर सत्रहवें अवतार में पराशर मुनि से सत्यवती नाम वाली धीवर कन्या में व्यास के स्वरूप में समुत्पन्न हुए थे और मनुष्यों को अल्प बुद्धि वाले देखकर वेदरूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाओं की रचना करदी थी ॥२९॥ इसके पश्चात् देवों के

कार्यों के सम्पादन करने की इच्छा से नरदेवत्व को प्राप्त होकर समुद्र का निग्रह आदि कर्म किये थे ॥३०॥ उन्नीसवें और बीसवें अवतारों में वृष्णियों के वंश में जन्म ग्रहण करके बलराम और कृष्ण इन शुभ नामों वाले अवतार हुए थे और भगवान् ने इस वसुधा का भार हलका किया था ॥३१॥ इसके अनन्तर कलियुग के सन्ध्यान्त में सुरद्विपों के सम्मोह के लिये कीटकों में जिनका पुत्र 'बुद्ध' इस नाम वाला अवतार होगा ॥३२॥ इसके पश्चात् अष्टम सन्ध्या में जबकि सभी राज्य प्रायः नष्ट जैसे हो जायेंगे तब विष्णुयश से कल्की नाम वाला इस जगत् के स्वामी का अवतार होगा ॥३३॥ हे द्विजगण ! सत्वनिधि भगवान् के यों तो असंख्य अवतार हैं। मनु वेदों के ज्ञाता आदि सभी विष्णु के ही कलांशावतार कहे गये हैं। इसीलिये ये सर्ग आदि हुए हैं कि इनकी व्रतादि के द्वारा भली-भाँति पूजा करनी चाहिए। पहिले व्यास मुनि ने आठ हजार आठ सौ पद्यों से पूर्ण यह गरुड-पुराण को मुझे सुनाया था ॥३४॥३५॥

२—गरुड़ पुराण की उत्पत्ति

कथं व्यासेन कथितं पुराणं गारुडं तव ।
एतत्सर्वं समाख्याहि परं विष्णुकथाश्रयम् ॥१
अहं हि मुनिभिः सार्द्धं गतो बदरिकाश्रमम् ।
तत्र दृष्टो मया व्यासो ध्यायमानः परमेश्वरम् ॥
तं प्रणम्योपविष्टोऽहं पृष्टवान्हि मुनीश्वरम् ॥२
व्यास ब्रूहि हरे रूपं जगत्सर्गादिकं ततः ।
मन्ये ध्यायसि तं यस्मात्तस्माज्जानासि तं विभुम् ॥३
एवं पृष्टो यथा प्राह तथा विप्रा निबोधत ॥४
शृणु सूत प्रवक्ष्यामि पुराणं गारुडं तव ।
सह नारददक्षाद्यैर्ब्रह्मा मामुक्तवान्यथा ॥५
दक्षनारदमुख्यैस्तु युक्तं त्वां कथमुक्तवान् ।
ब्रह्मा श्रीगारुडं पुण्यं पुराणं सारवाचकम् ॥६

अहं हि नारदो दक्षो भृग्वाद्याः प्रणिपत्य तम् ।
सारं ब्रूहीति पप्रच्छुर्ब्रह्माणं ब्रह्मलोकगम् ॥७
पुराणं गारुड़ं सारं पुरा रुद्रश्च मां यथा ।
सुरैः सहाब्रवीद्विष्णुस्तथाऽहं व्यास वच्मि ते ॥८

ऋषियों ने कहा—महामुनि व्यास ने आपको यह गरुड महापुराण कैसे सुनाया था— भगवान् विष्णु के माश्रय युक्त इसे सबको हमें श्रवण कराइये । ॥१॥ सूतजी ने कहा—एक समय मैं मुनियों के साथ बदरिकाश्रम को गया था और वहाँ मैंने परमात्मा के ध्यान में समास्थित व्यास मुनि का दर्शन किया था । उस वक्त मैं उनको प्रणाम करके उनके समीप में बैठ गया था और फिर मैंने उस महामुनि से पूछा था—हे महा मुनीश्वर व्यास देव ! भगवान् हरि के स्वरूप और फिर उनके द्वारा इस जगत् के सर्गादिक का वर्णन कीजिये । मैं यह समझता हूँ कि आप सर्वदा उनका ही ध्यान किया करते हैं अतएव व्यापक भगवान् के स्वरूप आदि को भली-भाँति जानते होंगे । हे विप्रगण ! इस प्रकार जब मैंने उनसे पूछा था तो जिस प्रकार से उन्होंने मुझसे कहा था उसी तरह मैं तुमको बताता हूँ उसे तुम लोग मुझ से समझ लो ॥२॥३॥ व्यासजी ने मुझसे कहा था—हे सूत मैं अब तुमको गरुड पुराण को सुनाता हूँ जो कि नारद दक्ष आदि तथा ब्रह्मा ने मुझे कहा था । सूतजी ने कहा मैंने व्यासजी से भी इसी तरह पूछा था कि दक्ष नारद आदि प्रमुख देवों ने तथा ब्रह्माजी ने यह परम सार वाचक गरुड-पुराण अत्यन्त योग्य आपको क्यों सुनाया था ? व्यासजी ने इसके उत्तर में मुझ से कहा था कि एकबार मैं,नारद, दक्ष तथा भृगु प्रभृति सबने ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी से पूछा था कि आप परम सार वस्तु हमको बताइये तब ब्रह्माजी ने कहा था—हे व्यास ! पहिले समय में भगवान् विष्णु ने देवों के सहित रुद्र को और मुझ को जो यह सारभूत गरुड पुराण कहा था वही अब मैं तुमको बताता हूँ ॥४॥५॥६॥७॥८॥

कथं रुद्रं सुरैः सार्द्धमब्रवीद्वा हरिः पुरा ।
पुराणं गारुडं सारं ब्रूहि ब्रह्मन् महार्थकम् ॥९

अहं गतोऽद्रिकैलासमिन्द्राद्यैर्दैवतैः सह ।
तत्र दृष्टो मया रुद्रो ध्यायमानः परं पदम् ॥१०
पृष्टो नमस्कृतः कं त्वं देवं ध्यायसि शङ्कर ।
त्वत्तो नान्यं परं देवं जानामि ब्रूहि मां ततः ॥
सारात् सारतरं तत्वं श्रोतुकामं सुरैः सह ॥११
अहं ध्यायामि तं विष्णुं परमात्मानमीश्वरम् ।
सर्वदं सर्वगं सर्वं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥१२
भस्मोद्धूलितदेहस्तु जटामण्डलमण्डितः ।
विष्णोराराधनार्थं मे व्रतचर्या पितामह । १३
तमेव गत्वा पृच्छाम सारं यं चिन्तयाम्यहम् ।
विष्णुं जिष्णुं पद्मनाभं हरिं देहविवर्जितम् ॥१४
शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेश्वरम् ।
युक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥१५

व्यास ने ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन् ! पहिले हरि भगवान् ने इस महान् से भी महान् अर्थ वाले गरुड-पुराण को देवों के साथ रुद्र देवको क्यों बताया था। तब ब्रह्माजी ने व्यास से कहा—एक बार मैं समस्त देवों को साथ में लेकर कैलास पर्वत पर गया था। वहाँ पर मैंने परम पद के ध्यान में स्थित भगवान् रुद्र देव का दर्शन किया था ॥६॥१०॥ हम लोगों ने उनको नमस्कार करके उनसे पूछा था—हे भगवन् शङ्कर ! आप किस देव का ध्यान कर रहे हैं क्योंकि आपसे पर तो अन्य कोई भी देव नहीं है। हम इस बात को अच्छी तरह से समझते हैं। वह देव कौन है ? आप ठीक प्रकार से मुझको बताइये। मैं इन सब देवों के साथ यहाँ सार से भी सार स्वरूप जो देव हो—उसे सुनना चाहता हूँ ॥११॥ मेरे इस प्रश्न का उत्तर रुद्र देव ने देते हुए कहा था मैं उस परमात्मा ईश्वर भगवान् विष्णु का ध्यान किया करता हूँ जो सभी कुछ प्रदान करने वाले—सर्वत्र गमन करने वाले—समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित और सर्व स्वरूप हैं। हे पितामह ! भस्म से सम्पूर्ण शरीर को उद्धूलित

करके शिर पर जटाजूट धारण करने वाले मेरी उसी भगवान् विष्णु के आराधना करने की व्रतचर्या है ॥१२॥१३॥ जिसका मै अहर्निश चिन्तन किया करता हूँ उन्ही के समीप मे चलो चल कर सार को पूछें। वे विष्णु हरि विष्णु पद्मनाभ और देह से रहित हैं। वे स्वय शुचि हैं—उनका पद (स्थान) परम शुचि (पवित्र) है। वे ब्रह्म स्वरूप हैं—परम ईश्वर हैं। वे सर्वात्माओ से युक्त होकर विराजमान हैं उन्ही परात्पर परम देव का मैं ध्यान किया करता हू ॥१४॥१५॥

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठन्ति च विशन्ति च ।
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ॥१६

सहस्राक्ष सहस्राङ्घ्रि सहस्रोरु वराननम् ।
अणीयसमाणीयास स्थविष्ठञ्च स्थवीयसाम् ॥
गरीयसां गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च श्रेयसामपि ॥१७

य वाक्येष्वनुवाक्येषु निषत्सूपनिषत्सु च ।
गृणन्ति सत्यकर्माण सत्य सत्येषु सामसु ॥१८

पुराणपुरुष प्रोक्तो ब्रह्मा प्रोक्तो द्विजातिषु ।
क्षये सङ्कर्षण प्रोक्तस्तमुपास्यमुपास्महे ॥१९

यस्मिन्लोका स्फुरन्तीमे जलेषु शकुलो यथा ।
ऋतमेकाक्षर ब्रह्म यत्तत्सदसत परम् ॥
अर्चयन्ति च य देवा यक्षराक्षसपन्नगा ॥२०

यस्याग्निरास्य द्यौर्मूर्द्धा ख नाभिश्चरणौ क्षिति ।
चन्द्रादित्यौ च नयने त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२१

यस्य त्रिलोकी जठरे यस्य काष्ठाश्च बाहव ।
यस्योच्छ्वासश्च पवन त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२२

यस्य केशेषु जीमूता नद्य सर्वाङ्गसन्धिषु ।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्त देव चिन्तयाम्यहम् ॥२३

समस्त भूतों के ईश उनमें सूत्र में मणियों की भाँति इस सम्पूर्ण विश्व में स्थित रहा करते हैं और गुणभूत होकर प्रवेश किया करते हैं ॥१६॥ वे भगवान् विष्णु सहस्र नेत्रों वाले हैं—सहस्रों चरणों से युक्त हैं—उनके सहस्रों ऊरु हैं—श्रेष्ठ मुख वाले—सूक्ष्मों में भी परम सूक्ष्म—स्थूलों से भी अति स्थूल—गुरुओं में सबसे अधिक गुरु और श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ हैं। जिनको वाक्यों—अनुवादों में, उपनिषदों में सत्य कर्म करने वाला ग्रहण किया जाता है और सत्य सामों में उनका सत्य स्वरूप बताया जाता है ॥१७॥१८॥ उन्हें ही पुराण पुरुष और द्विजातियों में ब्रह्म कहा गया है और उनको ही इस सृष्टि के क्षय काल में सङ्कर्षण नाम से पुकारा गया है। उसी उपासना करने के योग्य भगवान् की हम उपासना किया करते हैं ॥१९॥ जिस में यह समस्त लोकों का समुदाय जल में पाकुल की भाँति स्फुरित हुआ करता है। वह ऋत—एकाक्षर ब्रह्म और सत् अथवा असत् से भी पर है। जिसकी अर्चना ये सभी यक्ष–राक्षस और पन्नग किया करते हैं ॥२०॥ अग्नि जिसका मुख है—दिव लोक जिसका मूर्द्धा है—आकाश नाभि—चरण क्षिति तल और चन्द्र एवं सूर्य जिस परमात्मा के दोनों नेत्र हैं मैं उसी देव का निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन किया करता हूँ ॥२१॥ यह त्रैलोक्य अर्थात् तीनों लोक जिसके उदर में हैं—समस्त दिशाऐं जिसकी बाहु हैं—पवन जिसका उच्छ्वास है उसी परम देव का मैं चिन्तन किया करता हूँ। ॥२२॥ जिसके केशों में मेघ हैं और नदियाँ समस्त अङ्गों की सन्धियों में हैं तथा जिसकी कुक्षि में चारों समुद्र स्थित रहा करते हैं उसी देव का मैं ध्यान करता हूँ ॥२३॥

परः कालात्परो यज्ञात्परः सदसतश्च यः ।
अनादिरादिविश्वस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२४

मनसश्चन्द्रमा यस्य चक्षुषोश्च दिवाकरः ।
मुखादग्निश्च सञ्जज्ञे तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२५

पद्भ्यां यस्य क्षितिर्जाता श्रोत्राभ्यां च तथा दिशः ।
मूर्द्धभागाद्दिवं यस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२६

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं यस्मात्तं देव चिन्तयाम्यहम् ॥२७
य ध्यायाम्यहमेतस्माद् व्रजामः सारमीक्षितुम् ॥२८
इत्युक्तोऽहं पुरा रुद्र श्वेतद्वीपनिवासिनम् ।
स्तुत्वा प्रणम्य तं विष्णुं श्रोतुकामाः किल स्थिराः ॥२९
अस्माकं मध्यतो रुद्र उवाच परमेश्वरम् ।
सारात्सारतरं विष्णुं पृष्टवांस्त प्रणम्य वै ॥३०
यथा पृच्छसि मां व्यासस्तथासौ भगवान्भवः ।
पप्रच्छ विष्णु देवाद्यैः शृण्वतो मम वै सह ॥३१

जो परमेश काल से भी पर हैं—यश से और सत् तथा असत् से भी पर है—जिसका कोई आदि काल नहीं है ऐसे इस विश्व के आदि स्वरूप उस देवेश्वर का मैं चिन्तन करता हूं ॥२४॥ जिसके मन से चन्द्रमा—नेत्रों से दिवाकर (सूर्य)—मुख से अग्नि—की उत्पत्ति होती है उस देव की मैं आराधना करता हूँ ॥२५॥ जिसके चरणों से भूमि समुत्पन्न हुई है तथा श्रोत्रों से सम्पूर्ण दिशाओं की उत्पत्ति हुई है और जिसके मूर्द्धा के भाग से दिवलोक पैदा हुआ हैं मैं उसी देव का ध्यान करता हूं ॥२६॥ सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश—मन्वन्तर और वंशानुचरित जिससे ये सभी हुए हैं मैं उस देव का चिन्तन किया करता हूं । ॥२७॥ मैं जिसका ध्यान करता हूं उसी से इसका सार जानने को हम सब चलते है ॥२८॥ इस प्रकार से कहे जाने पर मैं और रुद्र श्वेत द्वीप में निवास करने वाले भगवान् विष्णु के पास जाकर सबने उन्हें प्रणाम किया और श्रवण करने की इच्छा वाले वहाँ स्थिर होकर बैठ गये थे ॥२९॥ हम सबमें से रुद्रदेव परमेश्वर से बोले और सार से भी जो सार है उसे विष्णु से उन्होंने पूछा था और उनको प्रणाम किया था ॥३०॥ ब्रह्मा ने कहा—जैसे व्यास मुझसे पूछते हैं वैसे ही भगवान् भव ने विष्णु से पूछा था । वहाँ उस समय समस्त देवों के सहित मैं भी श्रवण कर रहा था ॥३१॥

हरे कथय देवेश देवदेव. क ईश्वर. ।
को ध्येय. कश्च वै पूज्य: कैर्व्रतैस्तुष्यते पर. ॥३२
कैर्धर्मै कैश्च नियमैः कया वा धर्मपूजया ।
केनाचारेण तुष्ट स्यात्कि तद्रूपञ्च तस्य वै ॥३३
कस्माद्देवाज्जगज्जात जगत्पालयते च कः ।
कीदृशैरवतारैश्च कस्मिन्याति लयं जगत् ॥३४
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
यस्माद्देवात्प्रवर्तन्ते कस्मिन्नेतत्प्रतिष्ठितम् ॥
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि यच्चान्यदपि किञ्चन ॥३५
परमेश्वरमाहात्म्य युक्तयोगादिक तथा ।
तथाऽष्टादशविद्याश्च हरी रुद्रं ततोऽब्रव त् ॥३६
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरैः सह ।
अह हि देवो देवाना सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥३७

भगवान् रुद्र ने कहा—हे देवो के स्वामिन् ! हे हरे ! आप कृपा कर हमको यह बताइये कि देवो का भी देव ईश्वर कौन है ? कौन ध्यान करने योग्य है और किसकी पूजा करनी चाहिए ? वह परदेव जो भी कोई हो, किन व्रतो से तुष्ट हो जाता है ? ॥३२॥ किन धर्मों के द्वारा तथा कौन-से नियमो की उपासना करने से अथवा किस धर्म की अर्चना से और किस प्रकार के कौन-से आचार से वह सन्तुष्ट एव प्रसन्न होता है ? यह भी बताइये उनका स्वरूप क्या है ? ॥३३॥ किस देव से यह जगत् समुत्पन्न हुआ है और इसका कौन पालन किया करता है ? वे किस प्रकार से अवतार हुआ करते हैं ? अन्त में यह जगत् किस मे विलीन हो जाया करता है ॥३४॥ सर्ग—प्रतिसर्ग—वश—मन्वन्तर और वशानुचरित किस देवसे प्रवृत्त हुआ करते हैं और किस मे जाकर प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ? हे हरे ! यह सब बताइये । इसके अतिरिक्त अन्य भी कुछ बताने के योग्य हो वह भी बता दीजिये ॥ ३५॥ इसके अनन्तर भगवान् हरि ने रुद्र देव को परमेश्वर का माहात्म्य—युक्त का योगादिक तथा अठारह विद्यायें बताई थीं ।

॥३६॥ हरि ने कहा—हे रुद्र ! ब्रह्मा और समस्त देवो के सहित आप श्रवण करो, मैं अब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। मैं ही सम्पूर्ण देवो का देव तथा समस्त लोको के ईश्वरो का भी ईश्वर हूँ ॥३७॥

अहं ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुत्योऽहं स्तुतिभि सुरैं ।
अहं हि पूजितो रुद्र ददामि परमा गतिम् ॥३८
नियमैश्च व्रतैस्तुष्ट आचारेण च मानवैं ।
जगत्स्थितेरहं वीजं जगत्कर्त्ता त्वहं शिव ॥३९
दुरनिग्रहकर्त्ता हि धर्मगोप्ता त्वहं हर।
अवतारैश्च मत्स्याद्यै पालयाम्यखिलं जगत् ॥४०
अहं मन्त्राश्च मन्त्रार्थं पूजाध्यानपरो ह्यहम्।
स्वर्गादीनाच कर्त्ताऽहं स्वर्गादीन्यहमेव च ॥४१
ज्ञाता श्रोता तथा मन्ता वक्ता वक्तव्यमेव च।
सर्वं सर्वात्मको देवो भुक्तिमुक्तिकर परः ॥४२
ध्यानं पूजोपहारोऽहं मण्डलान्यहमेव च।
इतिहासान्यहं रुद्र सर्वदेवो ह्यहं शिव ॥४३
सर्वज्ञानान्यहं शम्भो ब्रह्मात्माहमहं शिव ।
अहं ब्रह्मा सवलोक सर्वदेवात्मको ह्यहम् ॥४४
अहं साक्षात्सदाचारो धर्मोऽहं पुरातनः ॥४५
यमोऽहं नियमो रुद्र व्रतानि विविधानि च।
अहं सूर्यस्तथा चन्द्रो मङ्गलादीन्यहं तथा ॥४६

मैं ही ध्यान करने के योग्य हूँ—पूजा करने के योग्य हूँ। हे रुद्र ! मैं ही पूजित होकर परम प्रसन्न होते हुए परम गति प्रदान किया करता हूँ ॥३८॥ मानवो के शुद्ध आचार व्रत और नियमो से मैं अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करता हूँ। इस जगत् की स्थिति का मैं ही बीज हूँ और हे शिव ! मैं ही इस जगत् की रचना करने वाला हूँ ॥३९॥ हे हर ! दुष्टजनों के निग्रह को करने वाला और धर्म की रक्षा करने वाला भी मैं हूँ। मत्स्य आदि अनेक अवतारो

के द्वारा मैं इस समस्त जगत् का पालन करता हूँ ॥४०॥ मैं ही स्वयं मन्त्र हूँ तथा मैं ही अर्थ भी हूँ और पूजा एवं ध्यान मे तत्पर रहने वाला मैं ही हूँ। स्वर्ग आदि का करने वाला और स्वर्गादि भी मैं ही हूँ ॥४१॥ ज्ञाता अर्थात् ज्ञान रखने वाला—श्रवण करने वाला—मन्ता—वक्ता और वक्तव्य भी यह सब कुछ सर्वात्मक अर्थात् सबके स्वरूप वाला देव—भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला परम मैं ही हूँ ॥४२॥ ध्यान—पूजा का उपहार अर्थात् वे सभी पदार्थ जो अर्चा मे समर्पित किये जाते हैं मैं हूँ। समस्तमण्डन मैं हूँ—इतिहास भी मैं ही हूँ। हे रुद्र! समस्त देवो का स्वरूप भी मेरा ही स्वरूप है—मैं ही शिव हूँ। ॥४३॥ हे शम्भो! मैं ब्रह्मा की आत्मा हूँ—मैं ही ब्रह्मा समस्त लोक और सर्व देवात्मक मैं ही हूँ ॥४४॥ साक्षात् सदाचार—धर्म और वैष्णव तथा वर्ण एवं सम्पूर्ण सदाचार उनके धर्म और पुरातन मैं ही हूँ अर्थात् यह सब भी मेरा ही स्वरूप है ॥४५॥ हे रुद्र! यम—नियम—विविध भाँति के व्रत सूर्य—चन्द्र तथा मङ्गल आदि अन्य ग्रह ये सब मेरा ही स्वरूप है ॥४६॥

पुरा मां गरुडः पक्षी तपसाऽऽराधयद् भुवि।
तुष्ट ऊचे वरं ब्रूहि मत्तो वव्रे वरं स च ॥४७
मम माता च विनता नागैर्दासीकृता हरे।
यथाहं दैवतान्जित्वा चामृतं ह्यानयामि तत् ॥४८
दास्याद्विमोक्षयिष्यामि यथाहं वाहनस्तव।
महाबलो महावीर्यः सर्वज्ञो नागदारणः ॥
पुराणसंहिताकर्त्ता यथाऽहं स्यां तथा कुरु ॥४९
यथा त्वयोक्तं गरुड तथा सर्वं भविष्यति।
नागदास्यान्मातरं त्वं विनतां मोक्षयिष्यसि। ५०
देवादीन्सकलान्जित्वा चामृतं ह्यानयिष्यति।
महाबलो वाहनस्त्वं भविष्यसि विषार्दनः ॥५१
पुराणं मत्प्रसादाच्च मम माहात्म्यवाचकम्।
यदुक्तं मत्स्वरूपञ्च तव चाविर्भविष्यति ॥५२

गारुड तव नाम्ना तल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।
यथाऽहं देवदेवाना श्री ख्याता विनतासुत ॥
तथा ख्याति पुराणेषु गारुड गरुडेष्यति ॥५३

पहिले गरुड पक्षी ने भूतल में तपश्चर्या के द्वारा मेरी समाराधना की थी। मैं उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर उससे बोला था कि तू अपना अभीष्ट वरदान माँगले। उसने मुझसे कहा था—हे हरे ! मेरी विनता को नागों ने दासी बना रखा है। ऐसा कृपया वर दीजिये कि मैं देवों को जीत कर अमृत का ले आऊँ, और माता को दासीत्व से छुटकारा दे सकूँ और मैं आपका वाहन बन जाऊँ—सर्वज्ञाता और नागों को विदीर्ण करने वाला तथा समस्त पुराण एवं संहिताओं की रचना का विधायक हो जाऊँ ॥४८॥४६॥ तब विष्णु ने कहा था—हे गरुड ! जो कुछ तुमने मुझसे याचना करके कहा है वह सभी कुछ हो जायगा। तू अपनी माता विनता को नागों के दास्य भाव से भी अवश्य विमुक्त कर देगा ॥५०॥ तुम सब देवताओं पर विजय करके अमृत ले आओगे और महान् बलशाली विष का मदन करने वाला मेरा वाहन भी बन जाओगे ॥५१॥ मेरी कृपा से मेरे माहात्म्य को बताने वाले पुराण की रचना के विषय में जो तुमने चाहा है वह मेरा स्वरूप भी तुमको आविर्भूत हो जायगा। ॥५२॥ हे विनता के पुत्र ! जिस प्रकार से देवदेवों की श्री मैं विख्यात हूँ उसी भाँति वह पुराण तुम्हारे नाम से गारुड यह लोक में ख्याति को प्राप्त होगा। पुराणों में वह गारुड की ख्याति गरुड की तीव्र गति के समान ही प्रसृत हो जायगी ॥५३॥

यथाहं कीर्त्तनीयोऽय तथा त्वं गरुडात्मना ।
मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुडम् ॥५४
इत्युक्तो गरुडो रुद्र कश्यपायाह पृच्छते ।
कश्यपो गारुडं श्रुत्वा वृक्षं दग्धमजीवयत् ॥५५
स्वयश्चान्यमना भूत्वा विद्ययाऽन्यान्यजीवयत् ।
यक्षि ॐ उ स्वाहा जापी विद्येय गारुडी परा ॥
गरुडोक्तं गारुडं हि शृणु रुद्र महात्मकम् ॥५६

जिस प्रकार से मैं कीर्त्तन करने के योग्य हूं वैसे ही तुम भी गरुड़ात्मा के द्वारा कीर्त्तन के योग्य हो। मेरा ध्यान करके पहिले मुख्य का यह गारुड़-पुराण कहो ॥५४॥ हे रुद्र ! इस रीति से कहे हुए गरूड़ ने पूछने वाले कश्यप से कहा था। कश्यप ने गारुड़ पुराण का श्रद्धा से श्रवण कर दग्ध हुए वृक्ष को सजीव कर दिया था ॥५५॥ और स्वयं अन्य मन्त्र वाला होकर विद्या से अन्यों को जीवित कर दिया था। "यक्षि ॐ ह्रू स्वाहा"—इसका जाप करने वाला हुआ। यह परा गारुड़ी विद्या है। हे रुद्र ! गरुड़ के द्वारा कहा गया गारुड़ माहात्म्य का आप श्रवण करो ॥५६॥

३–पुराण कीर्तन का उपक्रम

इति रुद्राब्जजो विष्णो शुश्राव ब्रह्मणो मुनिः।
व्यासो व्यासादहं वक्ष्येऽहं ते शौनक नैमिषे ॥१
मुनीनां शृण्वता मध्ये सर्गाद्यं देवपूजनम्।
तीर्थं भुवनकोपञ्च मन्वन्तरमिहोच्यते ।।२
वर्णाश्रमादिधर्माश्च दानराज्यादिधर्मकाः।
व्यवहारो व्रतं वशा वैद्यकं सनिदाकम् ॥३
अङ्गानि प्रलयो धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम्।
सप्रपञ्चं निष्प्रपंचं कृतं विष्णोर्निगद्यते ।।
पुराणे गारुडे सर्वं गरुड़ो भगवानथ ॥४
वासुदेवप्रसादेन सामर्थ्यातिशयैर्युतः।
भूत्वा हरेर्वाहनञ्च सर्गादीनांच कारणम् ॥
देवान् विजित्य गरुड़ो ह्यमृताहरणं तथा ॥५
चक्रे क्षुधाहतं यस्य ब्रह्माण्डमुदरे हरेः।
य दृष्ट्वा स्मृतमात्रेण नागदीनांच सक्षयम् ॥६
कश्यपो गारुड़ाद् वृक्षं दग्धं चाजीवयद्यतः।
गरुड़ः स हरिस्तेन प्रोक्तं श्रीकश्यपाय च ॥७

तत् श्रीमद्गारुडं पुण्य सर्वदं पठित तव ।
हरिरित्थं च रुद्राय शृणु शौनक तद्यथा ॥८

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! यह व्यास मुनि ने रुद्र और ब्रह्मा से परम ब्रह्म भगवान् विष्णु ने कहा था । फिर व्यास मुनि से मैंने सुना था । उसे तुमसे कहता हूं । नैमियारण्य मे समस्त श्रवण करने वाले मुनियों के मध्य मे यहाँ पर सर्ग का आद्य–देवपूजन–तीर्थ–भुवन कोष और मन्वन्तर कहा जाता है ॥१॥२॥ वर्णों का तथा आश्रमो आदि के धर्म, दान और राज्य प्रभृति के धर्म व्यवहार, व्रत, वध, निदान के सहित वैद्यक, मङ्ग, प्रलय तथा धर्म, काम और अर्थ का उत्तम ज्ञान विष्णु का किया हुआ है प्रपञ्च सहित एव निष्प्रपञ्च सब कहा जाता है । यह सभी कुछ भगवान् गरुड ने अपने गारुड पुराण मे कहा है ॥३॥४॥ भगवान् वासुदेव के प्रसाद से अतिशयित सामर्थ्य से युक्त होकर गरुड हरि भगवान् का वाहन हुआ और सर्गादि का कारण बना था । तथा समस्त देव आदि के ऊपर विजय प्राप्त कर गरुड ने अमृत का अपहरण किया था ॥५॥ जिस भगवान् हरि के उदर मे क्षुधा से आहत ब्रह्माण्ड किया था, जिसको देखकर स्मरण मात्र से ही नाग आदि का सक्षय किया था ॥६॥ कश्यप ने गारुड से हो वृक्ष को दग्ध कर दिया था । भगवान् हरि ने गरुड से कहा था और गरुड ने इस विद्या को कश्यप को बताया था ॥७॥ वह श्रीमद् गारुड पुराण पढने पर तुमको सब प्रदान करने वाला होगा । इस प्रकार से भगवान् हरि ने रुद्र देव से कहा था । हे शौनक ! अब आप लोग मुझसे यह सब उसी प्रकार से श्रवण करो ॥८॥

४—सृष्टिकथन, (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि की उत्पत्ति)

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
वशानुचरित चैव एतद् ब्रूहि जनार्दन ॥१
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि सर्गादीन् पापनाशनान् ।
सर्गास्थितिप्रलयान्ता विष्णो क्रीडा पुरातनीम् ॥२

नरनारायणो देवो वासुदेवो निरञ्जन ।
परमात्मा पर ब्रह्म जगज्जनिलयादिकृत् ॥३
तदेतत् सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥४
व्यक्त विष्णुस्तथाऽव्यक्त पुरुष. काल एव च ।
क्रीडतो वालकस्येव चेष्टास्तस्य निशामय ॥५
अनादिनिधनो धाता त्वनन्त पुरुषोत्तम ।
तस्माद्भवति चाव्यक्त तस्मादात्मापि जायते ॥६
तस्माद् बुद्धिर्मनस्तस्मात्तत ख पवनस्तत ।
तस्मात्तेजस्ततस्त्वापस्ततो भूमिस्ततोऽसृजत् ॥७

श्री रुद्रदेव ने कहा—हे जनार्दन ! अब आप कृपा करके सर्ग–प्रतिसर्ग–वंश–मन्वन्तर और वंशानुचरित वर्णन कीजिये । अब भगवान् श्री हरि ने कहा—हे रुद्र ! तुम श्रवण करो, अब मैं पापों के नाश करने वाले सर्ग आदि का वर्णन करता हूँ जो कि भगवान् विष्णु की सर्ग-स्थिति और प्रलय के अन्त तक बहुत पुरातन क्रीडा होती है ॥१॥२॥ देव-नारायण, वासुदेव, निरञ्जन, परमात्मा परब्रह्म और इस जगत् के जन्म और निलय आदि के करने वाले हैं । वही यह सब व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाला है तथा वह ही पुरुष के रूप से और काल के स्वरूप में अब स्थित रहता है ॥४॥ विष्णु व्यक्त स्वरूप वाले हैं और उसी का अव्यक्त स्वरूप पुरुष तथा काल होता । एक बालक की भाँति क्रीडा करने वाले उस परम पुरुष की समस्त चेष्टाओं का श्रवण करो ॥५॥ धाता पुरुषोत्तम भगवान् आदि और अन्त से रहित एव अनन्त स्वरूप वाले हैं । उनसे अव्यक्त और उससे आत्मा भी उत्पन्न होता है ॥६॥ उस से बुद्धि मन होता है । फिर उससे आकाश, उससे पवन, फिर उससे तेज, उससे जल और उससे भूमि का सृजन किया था ॥७॥

अण्डो हिरण्मयो रुद्र तस्यान्त स्वयमेव हि ।
शरीरग्रहण पूर्व सृष्ट्यर्थं कुरुते प्रभु. ॥८

ब्रह्मा चतुर्मुखो भूत्वा रजोमात्राधिकं सदा।
शरीरग्रहणं कृत्वाऽसृजदेतच्चराचरम् ॥६
अण्डस्यान्तर्जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुं पाल्यं च पाति च ॥
उपसंहरते चान्ते संहर्त्ता च स्वयं हरिः ॥१०
ब्रह्माभूत्वासृजद्विष्णुर्जगत् पाति हरिः स्वयम्।
रुद्ररूपी च कल्पान्ते जगत् संहरते प्रभुः ॥११
ब्रह्मातु सृष्टिकालेऽस्मिन् जलमध्यगतां महीम्।
दंष्ट्रयोद्धरति ज्ञात्वा वाराहीमास्थितस्तनुम् ॥१२
देवादिसर्गाद्वक्ष्येऽहं संक्षेपाच्छृणु शङ्कर।
प्रथमो महतः सर्गो विरूपो ब्रह्मणस्तु स ॥१३
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चेन्द्रियकः स्मृतः ॥१४
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥१५

हे रुद्र ! हिरण्मय अण्ड और उसके मध्य में स्वयं ही विराजमान रहते हैं। प्रभु पहिले सृष्टि के लिये शरीर का ग्रहण किया करते हैं ॥८॥ चार मुखों वाला ब्रह्मा सदा रजोगुण की अधिक मात्रा वाला होकर शरीर ग्रहण करते हैं और फिर उन्होने इस सम्पूर्ण चर एवं अचर जगत् का सृजन किया था ॥६॥ स्रष्टा अण्ड के समस्त अन्तर्जगत् को जिसमें देव—असुर मनुष्य सभी हैं रचते हैं और विष्णु आत्मा को तथा पालन करने के योग्य का पालन एवं रक्षण करते हैं। फिर अन्त में स्वयं ही हरि ही संहर्त्ता होकर इस जगत् का उप संहरण किया करते हैं ॥१०॥ प्रभु ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके सृजन करते हैं—हरि स्वयं ही विष्णु के रूप में फिर इस जगत् का पालन करते हैं और कल्प के अन्त में वही प्रभु रुद्र के रूप वाले होकर सम्पूर्ण जगत् का संहार किया करते हैं ॥११॥ ब्रह्मा सृष्टि के समय में इस मही को जल के मध्य में

गई हुई जान कर वाराह के शरीर को धारण कर अपनी दाढ से इसका उद्धार किया है ॥१२॥ हे शङ्कर ! अब हम देवादि के सर्ग से संक्षेप मे कहेगे । तुम इसको सुनो । सबसे प्रथम महत्तत्व का सर्ग है जो ब्रह्म का विरूप होता है । ॥१३॥ दूसरा पञ्चतन्मात्राओं का सर्ग होता है जोकि भूत सर्ग इस नाम से कहा गया है । तीसरा ऐन्द्रियक सर्ग होता है और वैकारिक सर्ग कहा जाता है । इस प्रकार से बुद्धि पूर्वक यह प्राकृत सर्ग सम्भूत हुआ है । फिर चतुर्थ मुख्य सर्ग होता है और मुख्य स्थावर कहे गये हैं ॥१४॥१५॥

तिर्यक्स्रोतस्तु य प्रोक्तस्तिर्यग्योन्य: स उच्यते ।
तदूर्ध्वस्रोतसा षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृत. ॥१६
ततोऽर्वाक्स्रोतसा सर्ग. सप्तमः स तु मानुषः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्ग. सात्त्विकस्तामसस्तु सः ॥१७
पचैते वैकृता. सर्गा प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चापि कौमारो नवम स्मृतः ॥१८
स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा रुद्र चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्वत सृष्टि जज्ञिरे मानसाः सुताः ॥१९
ततो देवासुरपितॄन् मानुषाश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भास्येतानि स्वमात्मानमपूजयत् ॥२०
मुक्तात्मनस्तु मात्रायामुद्रिक्ताभूऽन् प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥२१
उत्ससर्ज ततस्ता तु तमोमात्रात्मिका तनुम् ।
तमोमात्रा तनुस्त्यक्ता शङ्कराऽभूद्विभावरी ॥२२

तिर्यक् स्रोत जो बताया गया है वह तिर्यग् योन्य सर्ग कहा जाता है । उससे ऊर्ध्व स्रोतो मे छटवाँ सर्ग नाम से पुकारा जाता है ॥१६॥ उससे अर्वाक् स्रोतो मे सातवाँ मानुष सर्ग होता है । आठवाँ अनुग्रह सर्ग है । वह सात्त्विक और तामस होता है ॥१७॥ इस तरह ये पाँच वैकृत सर्ग होते हैं और तीन प्राकृत सर्ग कहे गये हैं । कौमार नवम सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत दोनो

प्रकार का होता है ॥१८॥ हे रुद्र ! सुरों से आदि लेकर स्थावरों पर्यन्त चार प्रकार की प्रजा होती है। सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१६॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितृगण और मानुष इन चारों के सृजन की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा ने इन जलों में अपनी आत्मा का अर्चन किया था ॥२०॥ मुक्तात्मा प्रजापति की मात्रा में उद्रिक्ता हुई थी। सृजनेच्छुक के जाँघ से पहिले असुर उत्पन्न हुए थे ॥२१॥ फिर उस तमोमात्रात्मक शरीर का त्याग कर दिया था और तमोमात्रा त्यक्त वह तनुशङ्कुरा विभावरी (अँधेरी रात्रि) हो गई थी ॥२२॥

सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः ।
सत्वोद्रिक्तास्तु मुखतः सभूता ब्रह्मणो हर ॥२३
सत्वप्राया तनुस्तेन सत्यक्ता साप्यभूद् दिनम् ।
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥२४
सत्वमात्रान्तरं गृह्य परतश्च ततोऽभवन् ।
सा चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥२५
रजोमात्रान्तरं गृह्य मनुष्यास्त्वभवंस्ततः ।
सा त्यक्ता चाभवज्ज्योत्स्ना प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ॥२६
ज्योत्स्ना राज्यहनी सन्ध्या शरीराणि तु तस्य वै ।
रजोमात्रान्तरं गृह्य क्षुदभूत् कोप एव च ॥२७
क्षुत्क्षामानसृजत् ब्रह्मा राक्षसान् रक्षणाच्च सः ।
यक्षाख्या यक्षणाज्ज्ञेयाः सर्पा वै केशसर्पणात् ॥२८

हे हर ! जब अन्य देह में स्थित होकर सृष्टि के सृजन की इच्छा करने वाले हुए तो बहुत प्रीति को प्राप्त हुए और ब्रह्मा के मुख से सत्व गुण के उद्रेक वाले सुर समुत्पन्न हुए थे ॥२३॥ वह सत्त्वोद्रिक्त शरीर भी उसने त्यक्त कर दिया था जो कि दिन हो गया था। तभी से असुर लोग रात्रि में बल सम्पन्न हुए थे और देवगण दिन में बली हुए थे ॥२४॥ सत्त्वमात्रा के और अन्य के अन्तर के उत्सर्ग से दिन तथा रात्रि के मध्य में स्थित रहने वाली

सन्ध्या समुत्पन्न हुई थी ॥२५॥ रजोमात्रान्तर का ग्रहण करके फिर उस शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए थे। वह शरीर भी परित्यक्त कर दिया तो ज्योत्स्ना हुई जो प्राक्सन्ध्या कही जाती है ॥२६॥ ये ज्योत्स्ना–रात्रि–दिन और सन्ध्या उसके शरीर ही हैं। रजो तन्मात्रा का ग्रहण करके क्षुधा और कोप हुए थे। ॥२७॥ उस ब्रह्मा ने क्षुधा से क्षाम और रक्षण से राक्षसों का सृजन किया था। यक्षण और केश सपण से सर्प जानना चाहिए ॥२८॥

जाता कोपेन भूताद्या गन्धर्वा जज्ञिरे ततः।
गायन्तो जज्ञिरे वाच गन्धर्वास्तेन तेऽनघ ॥२९

अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजा स सृष्टवान्।
सृष्टवानुदराद्गाश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापतिः ॥३०

पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान् गर्दभोष्ट्रादिकास्तथा।
ओषध्य फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥३१

गौरज पुरुषो मेष अश्वाश्वतरगर्दभा।
एतान् ग्राम्यान् पशून् प्राहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥३२

श्वापद द्विखुर हस्तिवानरा पक्षिपञ्चमा।
ओदकाः पशव पष्ठा. सप्तमाश्च सरीसृपा ॥३३

पूर्वादिभ्यो मुखेभ्यस्तु ऋग्वेदाद्या. प्रजज्ञिरे।
आस्याद्वै ब्राह्मणा जाता बाहुभ्या क्षत्रिया. स्मृता ॥
ऊरुभ्या तु विश सृष्टा शूद्र पद्भ्यामजायत ॥३४

ब्राह्मो लोको ब्राह्मणाना शाक क्षत्रियजन्मनाम्।
मारुतञ्च विशा स्थानं गान्धर्वं शूद्रजन्मनाम् ॥३५

ब्रह्मचारिव्रतस्थाना ब्रह्मलोक प्रजायते।
प्राजापत्य गृहस्थाना यथाविहितकारिणाम् ॥३६

स्थान सप्त ऋषीणा च तथैव वनवासिनाम्।
यतीनामक्षरं स्थानं यदन्द्रागामिना सदा ॥३७

क्रोप से भूतादि की समुत्पत्ति हुई थी। फिर गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। हे अनघ! वे गायन करते हुए ही उत्पन्न हुए थे इसीलिये उनको गन्धर्व इस नाम से कहा गया है ॥२६॥ उस प्रजापति ने अवियों (भेडों) को अपने वक्षःस्थल से और मुख से बकरियों को उत्पन्न किया था। प्रजापति ने अपने उदर और पार्श्व भागों से गायों का सृजन किया था ॥३०॥ ब्रह्मा ने अपने पैरों से अश्व, हाथी, गर्दभ, उष्ट्र आदि को उत्पन्न किया था उनके रोमों से सम्पूर्ण औषधियाँ, फल और मूल उत्पन्न हुए थे ॥३१॥ गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व अश्वतर और गर्दभ इन सबको ग्राम्य पशु कहा जाता है। अब जो अरण्य में होने वाले पशु होते हैं उनको भी मुझसे समझ लो। श्वापद, दो खुरों वाले, हाथी, वानर और पाँचवें पक्षी, छटवें जल में रहने वाले पशु होते हैं तथा सातवें सरीसृप अर्थात् रेंग कर चलने वाले होते हैं ॥३२॥३३॥ पूर्व आदि ब्रह्मा के मुखों से ऋग्वेद आदि की समुत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण और बाहुओं से क्षत्रिय समुत्पन्न हुए हैं। ऊरुओं से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए थे ॥३४॥ ब्राह्मणों का ब्रह्मलोक है, क्षत्रियों का शाक्रलोक, वैश्यों का स्थान मारुत लोक और शूद्रों का गान्धर्व स्थान है ॥३५॥ जो ब्रह्मचारियों के व्रत में स्थित हैं उनका ब्रह्मलोक होता है, गृहस्थों का प्राजापत्य है जोकि यथोक्त आश्रम के पालन करने वाले हैं ॥३६॥ सात ऋषियों का वनवासियों का, यतियों का और यदृच्छागामियों का स्थान सदा अक्षय होता है ॥३७॥

५—सृष्टिविवरण (१)

कृत्वेहामुत्र सस्थान प्रजासर्गं तु मानसम्।
अथासृजत् प्रजाकर्त्तॄन् मानसास्तनयान् प्रभुः ॥१
धर्मं रुद्रं मनुञ्चैव सनकं ससनातनम्।
भृगुं सनत्कुमारं च रुचिं शुद्धं तथैव च ॥२
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं नारदञ्चैव पितॄन् वर्हिषदस्तथा ॥३

अग्निष्वात्तांश्च कव्यादानाज्यपांश्च सुकालिनः ।
उपहूतांस्तथा दीप्यां स्त्रीश्च मूर्तिविवर्जितान् ॥४
चतुरो मूर्त्तियुक्ताश्च दक्षं चक्रेऽथ दक्षिणात् ।
वामांगुष्ठात्तस्य भार्य्यामसृजत् पद्मसम्भवः ॥५
तस्यां तु जनयामास दक्षो दुहितरः शुभाः ।
ददौ ताः ब्रह्मपुत्रेभ्यः सती रुद्राय दत्तवान् ॥
रुद्रपुत्रा बभूवुर्हि असंख्याता महाबलाः ॥६
भृगवे च ददौ ख्यातिं रूपेणाप्रतिमां शुभाम् ।
भृतोर्धाताविधातारौ जनयामास स शुभा ॥७
श्रियं च जनयामास पत्नी नारायणस्य या ।
तस्यां वै जनयामास बलोन्मादौ हरिः स्वयम् ॥८

हरि ने कहा—यहाँ पर सस्थान रच कर फिर मानस प्रजा सर्ग किया था ॥१॥ धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार रुचि, शुद्ध, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, बर्हिषद पितृगण अग्नि ष्वात्त, कव्याद, आज्यप, सुकाली, उपहूत, दीप्य, तीन मूर्तियो से रहित और चार मूर्त्ति युक्तो का सृजन किया था । इसके अनन्तर दक्षिण से दक्ष को बनाया और वामांगुष्ठ से उसकी भार्या का पद्म सम्भव व सृजन किया था ॥२।३।४।५। दक्ष ने अपनी उस पत्नी मे से परम शुभ दुहिताओं को जन्म दिया था । उन सब अपनी कन्याओ को दक्ष ने ब्राह्मण के पुत्रो को दे दिया था और सती को रुद्र के लिये दिया था । रुद्र के महान् बलशाली अगणित पुत्र हुए थे ॥६॥ दक्ष ने भृगु को ख्याति नामक कन्या दी थी जो रूप और लावण्य मे अद्वितीय और अ यन्त शुभ थी । उस शुभा ने भृगु से धाता और विधाता को समुत्पन्न किया था ॥७॥ और श्री को जन्म ग्रहण कराया था जो भगवान् नारायण की पत्नी हुई थी । उस श्री मे हरि ने स्वय बल और उन्माद को उत्पन्न किया था ॥८॥

आयातिर्नियतिश्चैव मनोः कन्ये महात्मन. ।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥९

उस दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्या स्वाहा को शरीरधारी अग्निदेव को प्रदान किया था। हे हर ! उस अग्निदेव से स्वाहा ने परम उदार ओज वाले तीन पुत्रों की प्राप्ति की थी जिनके नाम पावक, पवमान और शुचि थे जो जलाशी थे ॥१६॥ स्वधा नाम वाली दक्ष की कन्या ने पितृगण से मेना तथा वैतरणी को उत्पन्न किया था। ये दोनों ही ब्रह्म वादिनी थी। मेना तो हिमवान् की पत्नी हुई थी ॥१७॥ इसके अनन्तर हे हर ! प्रभु ब्रह्मा ने आत्मा से सम्भूत स्वयम्भुव को सबसे पूर्व प्रजा के पालन में आत्मा को ही मनु किया था। ॥१८॥ फिर स्वायम्भुव मनु देव ने तपश्चर्या से समस्त कल्मषों को ध्वस्त कर देने वाली शतरूपा नाम धारिणी नारी को अपनी पत्नी के स्वरूप में स्वीकार किया था ॥१९॥ शतरूपा देवी ने उस स्वायम्भुव महा पुरुष से प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम वाले दो पुत्र तथा प्रसूति एवं आकूति संज्ञावाली दो कन्याऐं प्राप्त की थीं ॥२०॥ तीसरी एक देवहूति नाम वाली कन्या भी उत्पन्न की थी उन तीनों पुत्रियों में मनु ने आकूति को तो रुचि के लिये प्रदान किया था— प्रसूति को प्रजापति दक्ष के लिये दिया था और देवहूति नाम धारिणी कन्या को कर्दम मुनि को प्रदान किया था ॥२१॥ रुचि से यज्ञ उत्पन्न हुआ। यज्ञ से दक्षिणा में बारह पुत्र समुत्पन्न हुए जिनमें यम नाम वाला महान् बलवान् था। ॥२२॥ दक्ष ने चौबीस कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था। जिनके शुभ नाम श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, ऋद्धि, कीर्ति इन तेरहों का दाक्षायण प्रभु धर्म ने अपनी पत्नियाँ बनाने के लिये ग्रहण किया था ॥२४॥

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥२५

भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः।
पुलस्त्य- पुलहश्चैव क्रतुश्चर्षिवरस्तथा ॥२६
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्।
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमा. ॥२७

श्रद्धा काम चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ।
सन्तोषं च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरसूयत ॥२८
मेधा श्रुतं क्रिया दण्ड लयं विनयमेव च ।
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनय वपुरात्मजम् ॥२९
व्यवसाय प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिसूयत ।
सुखमृद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः ॥
कामस्य च रतिर्भार्य्या तत्पुत्रो हर्ष उच्यते ॥३०
ईजे कदाचिद् यज्ञेन हयमेधेन दक्षकः ।
तस्य जामातर. सर्वे यज्ञं जग्मुर्निमन्त्रिताः ॥३१
भार्य्याभि. सहिता. सर्वे रुद्रं देवी सती विना ।
अनाहूता सती प्राप्ता दक्षेणैवावमानिता ॥३२
त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता मेनायान्तु हिमालयात् ।
शम्भोभार्य्याऽभवद् गौरी तस्या जज्ञे विनायक ॥३३
कुमारश्चैव भृङ्गीश क्रुद्धो रुद्रः प्रतापवान् ।
विध्वस्य यज्ञ दक्ष तु शशाप पिनाकधृक् ॥
ध्रुवस्यान्वयसम्भूतो मनुष्यस्त्व भविष्यसि ॥३४

ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा स्वाहा, स्वधा इनको क्रम से भृगु, भव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि और पितरो ने ग्रहण किया था। मुनियों में परम श्रेष्ठ मुनियों ने ख्याति आदि कन्याओ को पाणिग्रहण किया था ॥२५॥२६॥२७॥ श्रद्धा ने काम को, चला ने दर्प को, धृति ने नियम आत्मा को, तुष्टि ने सन्तोष और पुष्टि ने लोभ पुत्र को प्रसूत किया था ॥२८॥ मेधा ने श्रुत, क्रिया ने दण्ड लय और विनय, बुद्धि ने बोध तथा लज्जा ने विनय वपु आत्मज को उत्पन्न किया था। व्यवसाय को उत्पन्न किया तथा शान्ति ने क्षेम को जन्म दिया था। ऋद्धि ने सुख को, कीर्ति ने यश को प्रसूत किया, इस तरह से ये सब धर्म के पुत्र हुए थे ॥२३॥३०॥ काम की भार्या रति हुई थी और उसका पुत्र हर्ष

उत्पन्न हुआ था ।।३०।। प्रजापति दक्ष ने किसी समय हयमेध यज्ञ का यजन किया था । उस समय उसके जमाई सभी निमन्त्रित होकर उस शुभ उत्सव में गये थे ।।३१।। सभी के साथ उनकी पत्नियाँ भी वहाँ पहुँची थीं किन्तु केवल रुद्र देव और सती नहीं थी । बिना बुलाई हुई सती वहाँ बाद में अपने आप ही पहुँची तो उसके पिता दक्ष के द्वारा ही उसे अपमानित किया गया था ।।३२।। उसी समय में सती ने देह का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमालय से मेना में उत्पन्न हुई थी । वही सती पार्वती गौरी भगवान् शम्भु की भार्या हुई और उसके विनायक गणेश समुत्पन्न हुए थे । गौरी के स्वामी कार्तिकेय कुमार की भी उत्पत्ति हुई थी । भृङ्गीश क्रुद्ध हुए और प्रतापी रुद्र ने यज्ञ का विध्वंस करके पिनाक धारी ने दक्ष को शाप दे दिया था कि ध्रुव के अन्वय में उत्पन्न होने वाला तू मनुष्य होगा ।।३३।।

६—सृष्टिनिवारण (२)

उत्तानपादादभवत् सुरुच्यामुत्तमः सुतः ।
सुनीत्यां तु ध्रुवः पुत्रः लेभे स्थानमुत्तमम् ।।१
मुनिप्रासादादाराध्य देवदेवं जनार्दनम् ।
ध्रुवस्य तनयः श्लिष्टिर्महाबलपराक्रमः ।।२
तस्य प्राचीनबर्हिस्तु पुत्रस्तस्याप्युदारधीः ।
दिवञ्जयस्तस्य सुतस्तस्य पुत्रो रिपुः स्मृतः ।।३
रिपोः पुत्रस्ततः श्रीमाश्चाक्षुषः कीर्त्तितो मनुः ।
रुरुस्तस्य सुतः श्रीमानङ्गस्तस्य तथात्मजः ।।४
अङ्गस्य वेणः पुत्रस्तु नास्तिको धर्मवर्जितः ।
अधर्मकारी वेणश्च मुनिभिश्च कुलैर्हतः ।।५
ऊरुं ममन्थुः पुत्रार्थं ततोऽस्य तनयोऽभवत् ।
ह्रस्वोऽतिमात्रः कृष्णाङ्गो निषीदेति ततोऽभुवद् ।।
निषादस्तेन वै जातो विन्ध्यशैलनिवासकः ।।६

ततोऽस्य दक्षिणं पाणि ममन्थुः सहसा द्विजाः ।
तस्मात्तस्य सुतो जातो विष्णोर्मानसरूपधृक् ॥७

हरि ने कहा—राजा उत्तान पाद से सुरुचि नाम वाली भार्या में उत्तम नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था । दूसरी रानी सुनीति नाम वाली से ध्रुव पुत्र पैदा हुआ था जिसने उत्तम स्थान प्राप्त किया था ॥१॥ ध्रुव ने नारद मुनि के प्रसाद से देवों के देव भगवान् जनार्दन की आराधना करके उत्तम पद प्राप्त किया था । ध्रुव का पुत्र श्लिष्टि नाम वाला परम भक्त हुआ था । जो महान् बल और पराक्रम वाला था ॥२॥ उसका पुत्र प्राचीन बर्हि हुआ और उसका आत्मज अत्यन्त उदार बुद्धि वाला दिवञ्जय नाम वाला हुआ था इस दिवञ्जय का पुत्र रिपु हुआ और इसका सुत चाक्षुष मनु इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । इस चाक्षुस का आत्मज इसका तनय श्रीमान् अङ्ग हुआ ॥३॥४॥ अङ्ग का वेण हुआ जो बड़ा नास्तिक और धर्म से रहित था । इस अधर्म के आचरण करने वाले वेण का हनन मुनियों ने कुशाग्रों के द्वारा कर दिया था ॥५॥ फिर मुनियों ने इसके ऊरुओं का मन्थन किया था । उस मन्थन से इसका पुत्र हुआ था जो अत्यन्त छोटा कृष्ण अङ्ग वाला था । उसके 'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ और ऐसा बोले थे । इसलिये वह निषाद हो गया जो कि विन्ध्य पर्वत का निवास करने वाला था ॥६॥ इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने उस वेण का दक्षिण हाथ सहसा मन्थन किया था । उससे एक सुत उत्पन्न हुआ था जो भगवान् विष्णु के मानस स्वरूप का धारण करने वाला था ॥७॥

पृथुरित्येव नाम्ना स वेण पुत्राद्दिव ययौ ।
दुदोह पृथिवी राजा प्रजानां जीवनाय हि ॥८
अन्तर्धान पृथो. पुत्रो हविर्धानिस्तदात्मजः ।
प्राचीन बर्हिस्तत्पुत्रः पृथिव्यामेकराड् वभौ ।।६
उपयेमे समुद्रस्य लवणस्य स वै सुताम् ।
तस्मात् सुपाव सामुद्री दश प्राचीनर्बाहिषः ॥१०

सर्वे प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः :
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ॥११
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।
प्रजापतित्वं सम्प्राप्ता भार्य्या तेषां च मारिषा ॥१२
अभवद् भवशापेन तस्या दक्षोऽभवत्ततः ।
असृजन्मनसा दक्षः प्रजाः पूर्वंचतुर्विधाः ॥१३
नावर्द्धन्त च तास्तस्य अपध्याता हरेण तु ।
मैथुनेन ततः सृष्टिं कर्त्तुंमैच्छत् प्रजापतिः ॥१४
असिक्नीमावहद्भार्यां वीरणस्य प्रजापतेः ।
तस्य पुत्रसहस्रं तु वैरण्या समपद्यत ॥१५

इसका नाम पृथु था और इस पुत्र के प्रभाव से वह वेण स्वर्ग लोक को चला गया था। इस राजा पृथु ने प्रजाओं के जीवन के लिये पृथिवी का दोहन किया था ॥८॥ पृथु का पुत्र अन्तर्धान हुआ और इनका आत्मज हविर्धान हुआ था। इसका तनय प्राचीन वर्हि था जो इस भू मण्डल में एक ही राजा प्रदीप्त हुआ था ॥९॥ इस राजा ने लवण सागर की पुत्री के साथ विवाह किया था। उससे दस समुद्री प्राचीन वर्हिष समुत्पन्न हुए थे ॥१०॥ ये सब प्राचीतम नाम वाले थे और सभी धनुर्विद्या के बड़े पारगामी विद्वान् हुए थे। ये अपृथक् धर्म के आचरण करने वाले थे। इनने महान् तप को किया था ॥११॥ दस हजार वर्ष पर्यन्त ये समुद्र के ही जल में शयन करने वाले हुए थे। इन्होंने प्रजापति के पद को प्राप्त किया था। इनकी भार्या मारिषा हुई थी ॥१२॥ भव के शाप उसमें दक्ष समुत्पन्न हुआ था। उस दक्ष ने मन से ही पहिले चार प्रकार की प्रजा का सृजन किया था ॥१३॥ वे प्रजा उसकी वृद्धिशीलता को प्राप्त नहीं हुई और भगवान् हर के द्वारा अपध्यात हो गई थी। इसके अनन्तर उसने मैथुन के द्वारा सृष्टि करने की इच्छा की थी ॥१४॥ फिर उस प्रजापति ने प्रजापति वीरण की भार्या असिक्नी के साथ विवाह किया था और उस वैरिणी में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१५॥

नारदोक्ता भुवश्चान्त गता ज्ञातुञ्च नागता ।
दक्ष पुत्रसहस्रञ्च तेषु नष्टेषु सृष्टवान् ॥१६
शबलाश्वास्तेऽपि गता भ्रातृणा पदवी हर ।
दक्ष. क्रुद्ध शशापाथ नारद जन्म चाप्स्यसि ॥१७
नारदो ह्यभवत् पुत्र कश्यपस्य मुने पुन ।
यज्ञे ध्वस्तेऽथ दक्षोऽपि शशापोग्रं महेश्वरम् ॥१८
यष्ट्वा त्वामुपचारैश्च प्रपत्स्यन्ति हि द्विजा ।
जन्मान्तरेऽपि वैराणि न विनश्यन्ति शङ्कर ॥१९
असिक्न्या जनयामास दक्षो दुहितर ह्यथ ।
षष्टि कन्या रूपयुता द्वे चैवाङ्गिरसे ददौ ॥२०
द्वे प्रादात् स कृशाश्वाय दश धर्माय चाप्यथ ।
त्रयोदश कश्यपाय सप्तविंश तथेन्दवे ॥२१
प्रददौ बहुपुत्राय सुप्रभा भामिनी तथा ।
मनोरमा भानुमती विशाला बहुदामथ ॥२२
दक्ष प्रादान्महादेव चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
स कृशाश्वाय च प्रादात् सुप्रजाञ्च तथा जयाम् ॥२३

ये सब नारद के द्वारा कहे हुए भूमण्डल के अन्त तक गये थे कि इसका ज्ञान प्राप्त करे किन्तु फिर वापिस नही हुए थे । उन सबके नष्ट हो जाने पर प्रजापति दक्ष ने पुन एक सहस्र पुत्रो का सृजन किया था ॥१६॥ हे हर ! ये शवलाश्व भी अपने भाइयो की ही पदवी को प्राप्त हो गये थे । फिर दक्ष ने अत्यन्त क्रोधित होकर नारद को शाप दे दिया था कि तू जन्म ग्रहण करेगा । ॥१७॥ इसके अनन्तर नारद ने कश्यप मुनि के यहाँ पुत्र के रूप मे जन्म ग्रहण किया था । यज्ञ के ध्वस्त हो जाने पर दक्ष न महेश्वर को भी पहिले शाप दिया था ॥१८॥ हे महेश्वर ! ब्राह्मण लोग तुम्हारा यजन करके भी तुम्हारे पूजोपचारो को त्याग दिया करेगे और जन्मान्तर मे ये वैर नष्ट न होगे ॥१९॥ फिर इस दक्ष ने असिक्नी मे पुत्री समुत्पन्न की थी । ये अत्यन्त रूप लावण्य से समन्वित साठ कन्या थी । इनमे स दो तो अङ्गिरा को दी थी ॥२०॥ दो

गृदाश्व को दी—दश धर्म को दी थी और तेरह कश्यप मुनि को प्रदान की थीं तथा सत्ताईस चन्द्रमा को दी थी ॥२१॥ फिर सुप्रभा भामिनी बहु पुत्र को दी थी। मनोरमा, भानुमती, विशाखा और बहुदा इन चार कन्याओं को दक्ष ने हे महादेव ! अरिष्ट नेमि को दिया था। उसने सुप्रभा और जया को कृशाश्व के लिए प्रदान किया था ॥२२।२३।

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुद्वती।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च ता दश ॥२४
धर्मपत्न्यः समाख्याताः कश्यपस्य वदाम्यहम्।
अदितिर्दितिर्दनुः काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः।
कद्रूः प्राधा इरा क्रोधा विनता सुरभिः खगा ॥२५
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत।
मरुद्वत्यां मरुद्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥२६
भानोस्तु भानवो रुद्र मुहूर्त्ताच्च मुहूर्त्तजाः।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथिस्तु यामितः ॥२७
पृथिवीविषय सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत।
सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ॥२८
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥२९
आपस्य पुत्रो वैतुण्ड्यः श्रमः श्रान्तो ध्वनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकस्य कालन.।
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते ॥३०
धवस्य पुत्रो द्रहिणो हुतहव्यवहस्तथा।
मनोहराया शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥३१

अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुद्वती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या और विश्वा ये दश धर्म की पत्नियां कही गई थी। अब कश्यप की पत्नियों को बतलाते हैं—अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, कद्रू, प्राधा, इरा, क्रोधा, विनता, सुरभि और खगा ये तेरह कश्यप की पत्नियां हुई थी।२४।२५।

विश्वा के विश्वेदेवा समुत्पन्न हुए थे और साध्या के साध्यगण प्रसूत हुए। मरुद्वती में मरुद्वान् तथा वसु से वसुगण उत्पन्न हुए थे ॥२६॥ भानु नाम वाली से भानु गण–हे रुद्र! मुहूर्त्ता से मुहूर्त्तज पैदा हुए थे। लम्बा से घोष उत्पन्न हुआ था और यामि से नागवीथि की उत्पत्ति हुई ॥२७॥ सम्पूर्ण पृथिवी विषय अरुन्धती में उत्पन्न हुआ था। सङ्कल्पा से सर्वात्मा सङ्कल्प समुत्पन्न हुआ था। ॥२८॥ आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ नामों से वसुगण कहे गये हैं ॥२९॥ आपके पुत्र वैतुंड्य, श्रम, श्रान्त तथा ध्वनि हुए थे। ध्रुव का पुत्र भगवान् काल हुए जो समस्त लोक का कालन करने वाले हैं। सोम का पुत्र भगवान् वर्चा हुए जिससे वर्चस्वी उत्पन्न होता है ॥३०॥ धव का पुत्र द्रुहिण तथा हुत हव्यवह हुए थे। मनोहरा में शिशिर, प्राण तथा रमण हुए थे ॥३१॥

अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रः पुलोमजः।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥३२
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः।
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ॥३३
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना तु देवलम्।
विश्वकर्मा प्रभासस्य विख्यातो देववर्द्धकि ॥३४
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान्।
त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥३५
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा।
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च महामुने।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥३६
सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो नक्षत्रसंज्ञिताः।
अदित्या कश्यपाच्चैव सूर्या द्वादश जज्ञिरे।
विष्णुः शक्रोऽर्यमा धाता त्वष्टा पूषा तथैव च ॥३७

विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अशुमाश्च भगश्चैव आदित्या द्वादश स्मृता ॥३८
हिरण्यकशिपुर्दित्या हिरण्याक्षोऽभवत्तदा ।
सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तिपरिग्रहा ॥३६
हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वार पृथुलोजस ।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ।
सह्लादश्चाभवत्तपा प्रह्लादो विष्णुतत्पर, ॥४०
सह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्बाष्कल एव च ।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ।
बले पुत्रशत त्वासीद्बाणज्येष्ठ वृषध्वज ॥४१

अनिल की भार्या शिवा थी । उसका पुत्र पुलोमज और अविज्ञात गति थे । ये दो अनिल के पुत्र हुए थे ॥३२॥ अग्नि का पुत्र कुमार शरस्तम्ब में समुत्पन्न हुआ था । उसके पीछे से शाख, विशाख और नैगमेय हुए थे । कृत्तिका ओ की सन्तति कार्त्तिकेय इस नाम से कही गई है ॥३३॥ प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि के नाम से विख्यात हुए थे । प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो देववर्द्ध कि नाम से विख्यात हुआ था ॥३४॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और वीर्यवान् रुद्र उत्पन्न हुए । त्वष्टा का पुत्र महातपा विश्वरूप हुआ । हे महामुने ! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व, कपाली—ये एकादश रुद्र हुए थे जो इस सम्पूर्ण त्रिभुवन के स्वामी हैं । ॥३५।३६॥ सोम की सत्ताईस पत्नियाँ थीं जो नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध थी । उनके अश्विनी, भरणी आदि नाम थे । अदिति से कश्यप मुनि से द्वादश सूर्य समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम विष्णु, शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता मित्र, वरुण, अंशुमान्, भग ये बारह हैं ॥३७।३८। कश्यप की दिति नाम वाली पत्नी से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष पुत्र हुए थे । सिंहिका नाम वाली एक कन्या हुई थी जिसका परिग्रह विप्रचित्ति ने किया था । ३६॥ हिरण्यकशिपु के अधिक ओज वाले चार पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनके नाम ये हैं—अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और सह्लाद थे । इन चारों में प्रह्लाद विष्णु भगवान्

का परम भक्त हुआ था ॥४०॥ संह्लाद के पुत्र आयुष्मान्, शिबि, वाष्कल और विरोचन हुए थे। विरोचन से प्राह्लादि बलि उत्पन्न हुए थे। हे वृषध्वज ! बलि के सौ पुत्र हुए उनमें बाण सबसे ज्येष्ठ था ॥४१॥

हिरण्याक्षसुताश्चासन् सर्व एव महाबलाः ।
उत्करः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥
महानाभो महाबाहुः कालनाभस्तथापरः ॥४२
अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्धा शङ्करस्तथा ।
अयोमुखः शङ्कुशिराः कपिलः शम्बरस्तथा ॥४३
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमा च महासुरः ॥
एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥४४
स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ।
औपदानवी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यका ॥४५
वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा ।
उभे ते तु महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः ॥४६
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमाः ।
पौलोमाः कालकञ्जाश्च मारीचतनयाः स्मृताः ॥४७
सिंहिकायां समुत्पन्ना विप्रचित्तिसुतास्तथा ।
व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः ॥४८
वातापिनमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ।
अञ्जको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥
निवातकवचा दैत्याः प्रह्लादस्य कुलेऽभवन् ॥४९

हिरण्याक्ष के सभी पुत्र महान् बलवान् थे उनके नाम उत्कर, शकुनि, भूतसन्तापन महानाभ, महाबाहु और काल नाभ थे ॥४२॥ दनु के पुत्र द्विमूर्धा, शङ्कर, अयोमुख, शङ्कुशिरा, कपिल, शम्बर, एक चक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु वृषपर्वा, पुलोमा, महा सुर हुए थे। ये सब दनु के पुत्र कहाते थे

और विप्रचित्ति वीर्यवान् थे ॥४३।४४॥ स्वर्भानु की सुप्रभा कन्या, शर्मिष्ठा, वार्षपार्वणी, और दानवी, हयशिरा ये वर कन्यका प्रख्यात थी ॥४५॥ वैश्वानर के दो सुता थीं। उनके नाम पुलोमा तथा कालका थे। ये दोनो महान् भाग्य वाली थी और मारीचि के परिग्रह हुई थीं ॥४६॥ उन दोनो मे दानवो में पर श्रेष्ठ साठ हजार पुत्र हुए थे। ये पौलोम, कालकञ्ज और मारीचि तनय के नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥४७॥ सिंहिका मे विप्रचित्ति के पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम व्यस, शल्य, बलवान्, नभ, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृम भञ्जक, नरक और काल नाभ थे। प्रह्लाद के कुल मे निवात कवच दैत्य हुए थे ॥४८।४९॥

षट् सुताश्चमहासत्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिता. ।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका ॥५०
शुकी शुकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान् ।
श्येनी श्येनास्तथा भासी भासान्गृध्राश्च गृध्यपि ॥५१
शुच्यौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत ।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावशः प्रकीर्त्तितः ॥५२
विनतायास्तु पुत्रौ द्वौ विख्यातौ गरुडारुणौ ।
सुरसाया. सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥५३
काद्रवेयाश्च फणिनः सहस्रममितौजसः ।
तेपां प्रधानो भूतेश शेपवासुकितक्षकाः ॥५४
शङ्खः श्वेतो महापद्मः कम्बलाश्वतरौ तथा ।
एलापवस्तथा नाग. कर्कोटकधनञ्जयौ ॥
गण क्रोधवशं विद्धि ते.त्र सर्वे च दंष्ट्रिण· ॥५५
क्रोधा तु जनयामास पिशाचाश्च महाबलान् ।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिपास्तथा ॥५६

ताम्रा की छै सुता महान् सत्व वाली बतलाई गई हैं। उनके नाम शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका थे। शुकी ने शुकों (तोतों)

को जन्म दिया था। उलूकी ने उलूको पैदा किया था श्येनी ने श्येनो को प्रसूत किया, भासी ने भासो को गृध्री ने गिद्धो को समुत्पन्न किया था ।।५०।५१।। शुचि ने उदक में रहने वालों को तथा सुग्रीवी ने पक्षीगणों को उत्पन्न किया था। अश्वों को, उष्ट्रो को और गर्दभो (गधो) को समुत्पन्न किया था। यह ताम्र वंश कीर्तित हुआ था ।।५२।। विनता के दो पुत्र हुए जोकि बहुत विख्यात हैं। उनके नाम गरुड और अरुण थे। सुरसा के अमित ओज वाले एक सहस्र सर्प हुए थे। अमित ओज से समन्वित काद्रवेय (कद्रू के पुत्र) फणी अर्थात् सर्प एक सहस्र थे। हे भूतेश ! उन सबमें शेष वासुकि और तक्षक ये प्रधान हुए थे ।।५३।५४।। सर्पों के अनेक भेद हैं जैसे—शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल अश्वतर, एलापत्र, नाग, कर्कोटक धनञ्जय, । इनके गण को महाक्रोधी समझो और ये सभी दष्ट्री थे ।।५५।। क्रोधा ने महान् बल वाले पिशाचों को जन्म दिया था। सुरभि ने गौ तथा महिषो को उत्पन्न किया था ।।५६।।

इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्वश ।
खगा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सुरसस्तथा ।।
अरिष्टा तु महासत्वान् गन्धर्वान्समजीजनत् ।।५७
देवा एकोनपञ्चाशन्मरुतो ह्यभवन्निति ।
एकज्योतिर्द्विज्योतिश्च त्रिचतुर्ज्योतिरेव च ।।५८
एकशुक्रो द्विशुक्रश्च त्रिशुक्रश्च महाबल ।
ईदृक्चान्यादृक्सदृक्च तत प्रतिसदृक्तथा ।।५९
मितश्च समितश्चैव सुमितश्च महाबल ।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेण सेनजित्तथा ।।६०
अतिमित्रोऽप्यमित्रश्च दूरमित्रोऽजितस्तथा ।
ऋतश्च ऋतधर्मा च विहर्त्ता वरुणो ध्रुवः ।।६१
विधारणश्चतुर्थोऽस्य गृहमेवगण. स्मृत. ।
ईदृक्षश्च सदृक्षश्च एतादृक्षो मिताशनः ।।६२

एतन. प्रसदृक्षश्च सुरतश्च महातपाः ।
तादृगुग्रो ध्वनिर्भासो विमुक्तो विक्षिपः सह ॥६३
द्युतिर्वसुर्बलाधृष्यो लाभ. कामो जया विराट् ।
उद्वेपणो गणो नाम वायुस्कन्धे तु सप्तमे ॥६४
एतत्सर्वं हरे रूपं राजानो दानवा. सुरा ।
सूर्यादिपरिवारेण मन्वाद्या ईजिरे हरिम् ॥६५

इराने वृक्ष, लता, वल्ली और सभी प्रकार की तृण जातियों को उत्पन्न किया था । खगा ने यक्ष और राक्षसों को प्रसूत किया था तथा मुनि ने अप्सराओं को जन्म दिया था । अरिष्टा ने महान् सत्त्व वाले गन्धर्वों को उत्पन्न किया था ॥५७॥ उनचास मरुत देव हुए थे । उन के नाम—एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति चतुर्ज्योति, एक शुक्र, द्वि शुक्र, त्रिशुक्र, महाबल, ईदृक्, अवादृक्, सदृक्, प्रति सदृक्, मित, समित, सुमित, महाबलवान्, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अभिमित्र, अमित्र, दूरमित्र, अजित ऋत, ऋतधर्मा, विहर्त्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण यह चतुर्थ एक गण कथित है, ईदृक्ष, सदृक्ष, एतादृक्ष, मिताशन, एतन, प्रसदृक्ष सुरत, महातपा, तादृगुग्र, ध्वनि, भास, विमुक्त, विक्षिप, सह, द्युति, वसु, बलाधृष्य, लाभ, काम जयो, विराट्, उद्वेपण, गण नाम सप्तम वायुस्कन्ध ये है । ये सब दानव और सुर हरि का रूप राजा थे । सूर्यादि परिवार के द्वारा मनु आदि ने हरि का यजन किया था ॥५७ से ६५॥

७—सूर्यादिपूजा विधान

सूर्य्यादिपूजन ब्रूहि स्वायम्भुवादिभि कृतम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रद सार व्यास सक्षेपत शृणु ॥१
सूर्य्यादिपूजा वक्ष्यामि धर्म्मकामादिकारिकाम् ॥२
ॐ सूर्य्यासनाय नम. ॐ नमः सूर्य्यमूर्त्तये ।
ॐ ह्रा ह्री स. सूर्य्याय नम । ॐ सोमाय नमः ।
ॐ मङ्गलाय नम. । ॐ बुधाय नमः ।

ॐ बृहस्पतये नम । ॐ शुक्राय नम ।
ॐ शनैश्चराय नम । ॐ राहवे नम ।
ॐ केतवे नम । ॐ तेजश्चण्डाय नम ॥३
आसनावाहन पाद्यमर्घ्यमाचमन तथा ।
स्नान वस्त्रोपवीतञ्च गन्ध पुष्प च धूपकम् ॥४
दीपकञ्च नमस्कार प्रदक्षिणविसर्जने ।
सूर्य्यादीना सदा कुर्य्यादिति मन्त्रैर्वृषध्वज ॥५

रुद्र देव ने कहा—सूर्य आदि का पूजन बतलाइये जो कि स्वायम्भुव आदि मनु ने किया था। यह पूजन सम्पूर्ण सासारिक सुखो को भुक्ति एव अन्त समय मे परम पुरुषार्थ मुक्ति का प्रदान करने वाला है। हे व्यास ! अब तुम इसका सक्षिप्त रूप से श्रवण करो। श्री हरि भगवान् ने कहा—मैं सूर्य्य आदि की पूजा को बतलाता हूँ जो कि धर्म अर्थ और काम आदि के करने वाली होती है ॥१।२। हे वृष ध्वज ! लिखित मन्त्रो के द्वारा सर्वदा सूर्यादि देवा का पूजन करना चाहिए जिसमे उक्त देवो का आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, नमस्कार, प्रदक्षिणा और विसर्जन आदि सभी अर्चना के कृत्य सम्पादित करने चाहिए। इस प्रकार की पूजा के मन्त्र ये होते है—ॐ सूर्यासनाय नम—ॐ नम सूर्य मूर्तये—ॐ ह्रा ह्री स सूर्याय नम—ॐ सोमाय नम—ॐ मङ्गलाय नम.—ॐ बुधाय नम—बृहस्पतये नम—ॐ शुक्राय नम—ॐ शनैश्चराय नम—ॐ राहवे नम—ॐ केतवे नम—ॐ तेजश्चण्डाय नम ॥३।४॥ यह समस्त देवो का पूजन होता है अतएव सभी देवो के नामो के मन्त्र हैं जिनका अन्त सबके लिये नमस्कारात्मक होता है ॥५॥

ॐ ह्रा शिवासनाय नम । ॐ ह्रा शिवमूर्त्तये नम । ॐ ह्रा हृदयाय नम । ॐ ह्री शिरसे स्वाहा । ॐ हूं शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुं । ॐ नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्र अस्त्राय फट् । ॐ ह्रा सद्योजाताय नम । ॐ ह्री वामदेवाय नम । ॐ ह्रूं अघोराय नम । ॐ ह्रैं

तत्पुरुषाय नमः । ॐ हौं ईशानाय नमः । ॐ हां गौर्य्यै नमः । ॐ हां गुरुभ्यो नमः । ॐ हां इन्द्राय नमः । ॐ हां चण्डाय नमः । ॐ हां अघोराय नमः । ॐ वासुदेवासनाय नमः । ॐ वासुदेवमूर्त्तये नमः । ॐ अ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः । ॐ आ ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः । ॐ अ ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः । ॐ अः ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः । ॐ नारायणाय नमः । ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः । ॐ हूँ विष्णवे नमः । ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः । ॐ भू ॐ नमो भगवते वराहाय नमः । ॐ क ट प श वैनतेयाय नमः । ॐ ज ख व सुदर्शनाय नमः । ॐ ख ठ फ ष गदायै नमः । ॐ व ल म क्ष पाचजन्याय नमः । ॐ घ ढ भ ह श्रियैनमः । ॐ ग ड व स पुष्ट्यै नमः । ॐ घ प व स वनमालायै नमः । ॐ स द ल श्रीवत्साय नमः । ॐ ठ च भ य कौस्तुभाय नमः । ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ इन्द्रादिभ्यो नमः । ॐ विष्वक्सेनाय नमः ॥६

इसमें न्यास आदि भी होते हैं। इन अन्य मन्त्रों को भी बताया जाता है—ॐ हां हृदयाय नम, ॐ हीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वषट् ॐ हैं कवचाय हुम् ॐ हौं नेत्र त्रयाय वौषट ॐ ह अस्त्राय फट् ।

अन्य देवों के नाम नीचे दिये जाते हैं—ॐ हां सद्योजाताय नमः—ॐ हीं वाम देवाय नमः—ॐ हू अघोराय नमः—ॐ हैं तत्पुरुषाय नमः—ॐ हौं ईशानाय नमः—ॐ हां गौर्य्यै नमः ॐ गुरुभ्यो नमः—ॐ हां इन्द्राय नमः—ॐ हां चण्डाय नमः—ॐ हां अघोराय नमः—ॐ वासुदेवासनाय नमः—ॐ वासुदेव मूर्त्तये नमः—ॐ अ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः—ॐ आं ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः—ॐ अ ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः । ॐ अः ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः—ॐ नारायणाय नमः—ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः—ॐ हूं विष्णवे नमः—ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः—ॐ भू ॐ नमो भगवते वराहाय नमः—ॐ क ट प श वैनतेयाय नमः—ॐ ज ख व सुदर्शनाय नमः—ॐ ख ठ फ ष गदायै नमः—ॐ व ल म क्ष पाञ्चजन्याय नमः—ॐ घ ढ

भ हृ श्रियै नम — ॐ ग ङ व स पुष्ट्यै नम — ॐ घ य व स वनमालायै नम — ॐ स द ल श्रीवत्साय नम — ॐ ठ च भ य कौस्तुभाय नम — ॐ गुरुभ्यो नम — ॐ इन्द्र दिभ्यो नम — ॐ विष्वक्सेनाय नम ॥६॥

आसनादीन् हरेरेतैर्मन्त्रैर्दद्याद् वृषध्वज ।
विष्णुशक्त्याः सरस्वत्या पूजा शृणु शुभाप्रदाम् ॥७

ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नम । ॐ ह्रां हृदयाय नम । ॐ ह्रीं शिरसे नम । ॐ ह्रूं शिखायै न म । ॐ ह्रैं कवचाय नम । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयायनम ।ॐ ह्र अस्त्राय नम ॥८

श्रद्धा ऋद्धि कला मेधा तुष्टि पुष्टि प्रभा मति ।
श्रोंकराद्या नमोऽन्ताश्च सरस्वत्याश्च शक्तय ॥६

ॐ क्षेत्रपालाय नम । ॐ गुरुभ्यो नम । ॐ परमगुरुभ्यो नम ॥१०

पद्मस्थाया सरस्वत्या आसनाद्य प्रकल्पयेत् ।
सूर्यादीना स्वकैर्मन्त्रैं पवित्रारोहण तथा ॥११

हे वृषध्वज ! इन उपर्युक्त मन्त्रो के द्वारा भगवान् हरि के लिए आसन आदि उपचारो को समर्पित करना चाहिए । अब भगवान् विष्णु की शक्ति सरस्वती देवी की पूजा का श्रवण करो जो कि सम्पूर्ण शुभों के प्रदान करने वाली है ॥७॥ सरस्वती की समर्चना के निम्नलिखित मन्त्र हैं—ॐ ह्रां सरस्वत्यै नम — ॐ ह्रीं शिरसे नम — ॐ ह्रूं शिखायै नम — ॐ ह्रैं कवचाय नम — ॐ ह्रौं नेत्र त्रयाय नम — ॐ अस्त्राय नम ॥८॥ इन पूजन के मन्त्रो म ओङ्कार आदि म और अन्त में नम'—यह जोड़कर सरस्वती देवी की और श्रद्धा, ऋद्धि कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा मति इन शक्तियो का भी पूजन करना चाहिए । 'ॐ श्रद्धायै नम '—इत्यादि विधि स सभी शक्तियो के मन्त्रो की रचना कर पूजन करे । इसके पश्चात् ॐ क्षेत्रपाला नम —ॐ गुरुभ्यो नम —ॐ परम गुरुभ्यो नम —इन मन्त्रो से अर्चना करे ॥६।१०॥ पद्मासन पर संस्थित सरस्वती देवी के आसन आदि की कल्पना करनी चाहिए । तथा सूर्यादि देवो के लिए उनके अपने अपने नामों के मन्त्रो के द्वारा पवित्रारोहण करे ॥११॥

८---विष्णुपूजा विधि

भूमिष्ठे मण्डपे स्नात्वा मण्डले विष्णुमर्चयेत् ।
पञ्चरङ्गिकचूर्णेन वज्रनाभ तु मण्डलम् ॥१
षोडशै कोष्ठकैस्तत्र सम्मितं रुद्र कारयेत् ।
चतुर्थपञ्चकोणेषु सूत्रपातं तु कारयेत् ॥२
कोणसूत्राद्रुभयत कोणा ये तत्र संस्थिता ।
तेषु चैव प्रकुर्वीत सूत्रपातं विचक्षण ॥३
तदनन्तरकोणेषु एवमेव हि कारयेत् ।
प्रथमा नाभिरुद्दिष्टा मध्ये रेखाप्रसङ्गमे ॥४
अन्तरेषु च सर्वेषु अष्टौ चैव तु नाभय ।
पूर्वमध्यमनाभिभ्यामथ सूत्रं तु भ्रामयेत् ॥५
अन्तरेषु द्विजश्रेष्ठ पादोनं भ्रामयेद्धर ।
अनेन नाभिसूत्रस्य कर्णिका भ्रामयेच्छिव ॥६
कर्णिकाया द्विभागेन केशराणि विचक्षण ।
तदग्रेण सदा विद्वान्दलान्येव समालिखेत् ॥७

श्री हरि ने कहा---स्नान करके पवित्र होकर भूमि में स्थित मण्डप में विरचित मण्डल मे भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए। पाँच रङ्ग के चूर्णों के द्वारा पद्मनाभ मण्डल की रचना करे ॥१॥ हे रुद्र ! वह मण्डल सोलह कोष्ठकों से सम्मित होना चाहिए। चतुर्थ पञ्च कोनों मे सूत्रपात कराना चाहिए ॥२॥ कोण सूत्र से दोनों ओर जो कोण वहां संस्थित होते हैं उनमें ही विचक्षण पुरुष को सूत्रपात करना चाहिए ॥३॥ उसके अन्तर कोणों मे भी इसी भाँति करावे। मध्य रेखा प्रसङ्गम मे प्रथमा नाभि उद्दिष्ट होती है। अन्तर सभी में आठ नाभियाँ होती हैं। पूर्व और मध्यम नाभियों से सूत्र को घुमाना चाहिए ॥४ ५॥ हे हर ! अन्तर कोणों में श्रेष्ठ द्विज को एक पाद न्यून घुमाना चाहिए। हे शिव ! इसके द्वारा नाभि सूत्र की कर्णिका को भ्रामित करे ॥४।५।६॥ मण्डल की रचना की विधि में बताया जाता है कि विचक्षण

पुरुष को कर्णिका के दो भागो के द्वारा केसरो की रचना करनी चाहिए और विद्वान् उसके अग्रभाग से दलो का लेखन करे ॥७॥

सर्वपु नाभिक्षेत्रेषु मानेनानेन सुव्रत ।
पद्मानि तानि कुर्वीत देशिक परमार्थवित् ॥८
आदिसूत्रविभागेन द्वाराणि परिकल्पयेत् ।
द्वारशोभा तथा तत्र तदर्द्धेन तु कल्पयेत् ॥६
कर्णिका पीतवर्णेन सितरक्तादिकेशरान् ।
अन्तर नीलवर्णेन दलानि ह्यसितेन च ॥१०
कृष्णवर्णेन रजसा चतुरस्र प्रपूरयेत् ।
द्वाराणि शुक्लवर्णेन रेखा पञ्च च मण्डले ॥११
सिता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ।
कृत्वैव मण्डलञ्चादौ न्यास तत्रार्चयेद्धरिम् ॥१२
हृन्मध्ये तु न्यसेद्विष्णु मध्ये सङ्कर्षण तथा ।
प्रद्युम्न शिरसि न्यस्य शिखायामनिरुद्धकम् ॥१३
ब्रह्माण सवगात्रेषु करयो श्रीधर तथा ।
अह विष्णुरिति ध्यात्वा कर्णिकाया न्यसेद्धरिम् ॥१४
न्यस्येत्सङ्कर्षण पूर्वे प्रद्युम्नञ्चैव दक्षिणे ।
अनिरुद्ध पश्चिमे च ब्रह्माणञ्चोत्तरे न्यसेत् ॥१५
श्रीधर रुद्रकोणेपु इन्द्रादीन्दिक्षु विन्यसेत् ।
ततोऽभ्यर्च्य च गन्धाद्यै प्राप्नुयात्परम पदम् ॥१६

हे सुव्रत ! इसी मान से सब नाभि क्षेत्रों में परमार्थ के ज्ञाता आचार्य को उन पद्मों की रचना करनी चाहिए ॥८॥ आदि सूत्र के विभाग के द्वारा ही द्वारो की कल्पना करे और उसके अर्ध भाग से वहीं पर द्वार शोभा की परि-कल्पना करनी चाहिए ॥६॥ कर्णिका की रचना पीत वर्ण से करे और सित तथा रक्त आदि वर्णों में केसरों की रचना करनी चाहिए। अन्तर भाग को नील वर्ण से तथा दलों को असित वर्ण से करे ॥१०॥ कृष्ण वर्ण की रज से चारों

और प्रपूरित करना चाहिए और उसके जो द्वार हो उन्हें शुक्ल वर्ण के चूर्ण से पूरित करे तथा मण्डल में पांच रेखाऐं बनावे ।।११।। उन रेखाओं के रङ्ग क्रम से सित, रक्त, पीत तथा कृष्ण होने चाहिए। इस प्रकार से मण्डल की रचना करके आदि मे न्यास करके फिर वहाँ पर हरि की अर्चना करे ।।१२।। हृदय के मध्य मे विष्णु का न्यास करे—मध्य में सङ्कर्षण का करे, शिर में प्रद्युम्न का न्यास करके शिखा मे अनिरुद्ध का न्यास करे ।।१३।। सम्पूर्ण अङ्गों मे ब्रह्मा का—हाथो मे श्रीधर का न्यास करके मैं विष्णु हूं—ऐसा ध्यान करके कर्णिका मे हरि का न्यास करे ।।१४।। सङ्कर्षण को पूर्व मे, प्रद्युम्न को दक्षिण मे, अनिरुद्ध को पश्चिम मे और ब्रह्मा को उत्तर मे न्यस्त करे ।।१५।। श्रीधर को रुद्र कोणो मे और इन्द्रादि को दिशाओ मे विन्यस्त करना चाहिए। इसके अनन्तर सबका गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारो के द्वारा अभ्यर्चन करके परम पद की प्राप्ति करे ।।१६।।

६ वैष्णव पञ्जर

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णव पञ्जर शुभम् ।
नमो नमस्ते गोविन्द चक्र गृह्य सुदर्शनम् ।।
प्राच्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामह शरण गत ।।१
गदा कौमोदकी गृह्ण पद्मनाभ नमोस्तु ते ।
याम्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामह शरण गत ।।२
हलमादाय सौनन्द नमस्ते पुरुषोत्तम ।
प्रतीच्या रक्ष मा विष्णो त्वामह शरण गत ।।३
मुसल शातन गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम् ।
उत्तरस्या जगन्नाथ भवन्त शरण गत ।।४
खड्गमादाय चर्म्मा्थ अस्त्रशस्त्रादिक हरे ।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्या शरण गत ।।५
पाञ्चजन्य महाशखमनुद्बोधञ्च पङ्कजम् ।
प्रगृह्य रक्ष मा विष्णो आग्नेय्या रक्ष शूकर ।।६

चन्द्रसूर्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा ।
नैऋत्यां माञ्च रक्षस्व दिव्यमूर्त्ते नृकेशरिन् ॥७

हरि ने कहा—अब मैं यह परम शुभ वैष्णव पञ्जर बतलाता हूँ—हे गोविन्द ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। आप अपने सुदर्शन चक्र को ग्रहण करके हे विष्णो ! मेरी पूर्व दिशा में रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरणागति में आ गया हूँ ॥१॥ हे पद्मनाभ ! आप अपनी कौमोदकी नाम वाली गदा को ग्रहण करके दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें। मेरा आपको नमस्कार है और हे विष्णुदेव ! मैं आपके शरण में उपस्थित हो गया हूँ ॥२॥ हे विष्णो ! आप सौनन्द हल को लेकर हे पुरुषों में उत्तम ! प्रतीची (पश्चिम) में मेरी रक्षा करें। मैं आपके शरण में आया हूँ ॥३॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! शातन मुसल का ग्रहण करे और हे जगतों के स्वामिन् ! आप मेरी उत्तर दिशा में रक्षा करें। मैं आपके चरणों की शरण में आ गया हूँ ॥४॥ हे हरे ! आप खड्गचर्म तथा अन्य अस्त्र शस्त्रादि को ग्रहण करें। मेरी आपको नमस्कार है। हे राक्षसों के हनन करने वाले ! ऐशानी दिशा में आप मेरी रक्षा करिये। मैं आपकी शरण में हूँ ॥५॥ हे विष्णुदेव ! अब अपने महान् शङ्ख पाञ्चजन्य और अनुद्बोध पङ्कज का ग्रहण कर हे सूकरदेव ! मेरी आग्नेयी दिशा में रक्षा कीजिये ॥६॥ हे दिव्य मूर्ति वाले ! हे नृकेशरी ! आप चन्द्र और सूर्य को लेकर तथा चान्द्रमस खड्ग का ग्रहण कर मेरी नैऋत्य दिशा में रक्षा करें ॥७॥

वैजयन्ती सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् ।
वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥८
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्द्दन ।
माञ्च रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित ॥९
विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।
अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते ॥१०
करशीर्षाद्यङ्गुलेषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम् ।
कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥११

एवमुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पञ्जरं महत् ।
पुरा रक्षार्थमीशान्याः कात्यायन्या वृषध्वज ॥१२
नाशयामास सा येन चामरं महिषासुरम् ।
दानवं रक्तबीजञ्च अन्यांश्च सुरकण्टकान् ।
एतज्जपन्नरो भक्त्या शत्रून्विजयते सदा ॥१३

हे देव ! हे हयग्रीव ! आप अपनी वैजयन्ती माला कण्ठ के भूषण और श्री वत्स का ग्रहण करके मेरी वायव्य दिशा में रक्षा करें। मेरा आपको नमस्कार है ॥८॥ हे जनार्दन ! आप अपने वाहन वैनतेय (गरुड) पर समारूढ़ हो जाइये और आकाश में मेरी रक्षा कीजिये। आप सर्वदा अजित हैं। हे अपराजित देव ! मेरा आपको प्रणाम है ॥९॥ विशाल नेत्रों वाले पर समारोहण करके आप मेरी रसातल में रक्षा करिये। हे अकूपार ! हे महामीन ! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ हे सत्य स्वरूप ! आप मेरे कर-शीर्ष और अङ्गुलि आदि में अपना बाहु-पञ्जर करके हे विष्णो ! हे पुरुषों में उत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ॥११॥ हे वृषध्वज ! इस प्रकार से यह महान् वैष्णव पञ्जर शङ्कर के लिए कहा गया था। पहिले कात्यायनी ने ईशानी की रक्षा के लिए कहा था। जिसके द्वारा उसने अमर महिषासुर और दानव रक्तबीज तथा अन्य सुरों को कष्ट देने वालों का नाश किया था। इस वैष्णव पञ्जर का मनुष्य सर्वदा भक्ति-भाव के साथ जाप करता हुआ अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ॥१२।१३॥

१०—योग-वर्णन

अथ योगं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
ध्यायिभिः प्रोच्यते ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वरः ॥१
तच्छृणुष्व महेशान सर्वपापविनाशनः ।
विष्णुः सर्वेश्वरोऽनन्तः षड्भूमिपरिवर्जितः ॥२
वासुदेवो जगन्नाथो ब्रह्मात्माऽस्म्यहमेवहि ।
देहिदेहस्थितो नित्यः सर्वदेहविवर्जितः ॥३

देहधर्म्मविहीनश्च क्षराक्षरविवर्जितः ।
षड् विधेषु स्थितो द्रष्टा श्रोता घ्राता ह्यतीन्द्रियः ॥४
तद्धर्म्मरहितः स्रष्टा नामगोत्रविवर्जितः ।
मन्ता मनःस्थितो देवो मनसा परिवर्जितः ॥५
मनोधर्म्मविहीनश्च विज्ञानं ज्ञानमेव च ।
बोद्धा बुद्धिस्थितः साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जितः ॥६

श्री हरि ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं उस परम योग को तुमको बतलाता हूँ जो सांसारिक सुखों का भोग और अन्त में मोक्ष प्रदान करने वाला है। ध्यान करने वालों के द्वारा यह कहा जाता है कि ध्यान के साथ ईश्वर हरि का ध्यान करना चाहिए ॥१॥ हे महेशान ! उस योग का अब तुम श्रवण करो। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण प्रकार के पापों के विनाश करने वाले, सबके ईश्वर, अनन्त और षड् ूर्मि से रहित हैं ॥२॥ मैं ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्मात्मा हूँ जो कि देहधारियों के देहों मे स्थित रहता हुआ नित्य हूँ तथा सब प्रकार के देहों से विवर्जित हूँ। ३॥ वह मैं देह के सभी तरह के धर्मों से रहित एवं क्षर तथा अक्षर से विहीन हूँ। छः प्रकारों में स्थित रहने वाला द्रष्टा, श्रोता घ्राता, इन्द्रियों की पहुँच से पर हूँ ॥४॥ उनके धर्मों से रहित होकर सृजन करने वाला तथा नाम एवं गोत्र से रहित हूँ। मन मे स्थित रहने वाला मन्ता-देव हूँ किन्तु स्वय मन से परिवर्जित रहने वाला हूँ ॥५॥ मन के जो भी कुछ धर्म होते हैं उन सबसे रहित हूँ और मैं विज्ञान तथा ज्ञान का स्वरूप वाला हूँ वह सभी कुछ के बोध रखने वाला—बुद्धि में स्थित—सबका साक्षी अर्थात् देखने वाला होते हुए भी स्वय बुद्धि से रहित है ॥६॥

बुद्धिधर्म्मविहीनश्च सर्वः सर्वगतो मतः ।
सर्वप्राणिविनिर्मुक्तः प्राणधर्म्मविवर्जितः ॥७
प्राणिप्राणो महाशान्तो भयेन परिवर्जितः ।
अहङ्कारादिहीनश्च तद्धर्म्मपरिवर्जितः ॥८

तत्साक्षी तन्नियन्ता च परमानन्दरूपक ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिस्थस्तत्साक्षी तद्विवर्जित ॥९
तुरीय परमो धाता दृग्रूपो गुणवर्जित ।
मुक्तो बुद्धोऽजरो व्यापी सत्य आत्मास्म्यहं शिव ॥१०
एव ये मानवा विज्ञा ध्यायन्तीश परं पदम् ।
प्राप्नुयुस्ते च तद्रूप नात्र कार्य्या विचारणा ॥११
इति ध्यान समाख्यात तव शङ्कर सुव्रत ।
पठेद् य एतत् सतत विष्णुलोक स गच्छति ॥१२

बुद्धि विवर्जित होने का अर्थ है कि बुद्धि के जो भी धर्म हैं उन सब से रहित है । वह सर्व स्वरूप तथा सब मे रहने वाला है । समस्त प्राणियो स विनिर्मुक्त तथा प्राण के धर्मों से रहित होता है ॥७॥ प्राणियो का प्राण, महान् शान्त स्वरूप और भय से विवर्जित तथा अहङ्कार आदि से रहित और तद्धर्म से विहीन है ॥८॥ उसका साक्षी और उसका नियन्ता परम आनन्द रूप वाला है । जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति तीनो दशाओ में स्थित, उसका साक्षी और उससे विवर्जित होता है । ९॥ तुरीय (चतुर्थ), परम धाता, दृग् के रूप वाला, गुणो से रहित, मुक्त बुद्ध (बोधयुक्त), जरा से रहित, व्यापक, सत्य और शिव आत्मा मैं हूँ ॥१०॥ इस प्रकार से जो विज्ञ मानव ईश का ध्यान किया करते हैं वे परम पद को और उसके रूप को प्राप्त किया करते हैं । इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए ॥११॥ हे शङ्कर ! हे सुव्रत ! इस प्रकार का ध्यान हमने तुमको बता दिया है । जो इसको निरन्तर पढता है वह विष्णु लोक को प्राप्त होता है ॥१२॥

११—विष्णुध्यान और सूर्यार्चन

पुनर्ध्यानं समाचक्ष्व शङ्खचक्रगदाधर ।
विष्णोरीशस्य देवस्य शुद्धस्य परमात्मन ॥१
शृणु रुद्र हरेर्ध्यानं ससारतरुनाशनम् ।
अदृष्टरूपश्चान्तश्च सर्वव्याप्यजमव्ययम् ॥२

अक्षय सर्वग नित्य महद्ब्रह्मास्ति केवलम् ।
सर्वस्य जगतो मूल सर्वेश परमेश्वरम् ॥३
सर्वभूतहृदिस्थ वै सर्वभूतमहेश्वरम् ।
सर्वाधार निराधार सर्वकारणकारणम् ॥४
अलेपक तथा मुक्त मुक्तयोगिविचिन्तितम् ।
स्थूलदेहविहीनञ्च चक्षुषा परिवर्जितम् ॥५
प्राणेन्द्रियविहीनञ्च प्राणिधर्मविवर्जितम् ।
पायूपस्थविहीनञ्च सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥६
मनोविरहित तद्वन्मनोधर्म्मविवर्जितम् ।
बुद्धया विहीन देवेश चेतसा परिवर्जितम् ॥७
अहङ्कारविहीन वै बुद्धिधर्म्मविवर्जितम् ।
प्राणेन रहितञ्चैव ह्यपानेन विवर्जितम् ॥
प्राणाख्यवायुहीन वै प्राणधर्मविवर्जितम् ॥८

रुद्र देव ने कहा—हे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले ! शुद्ध, देव, ईश, परमात्मा भगवान् विष्णु के ध्यान को पुन करना चाहिए ॥१॥ हरि ने कहा—हे रुद्र ! सुनो, हरि का ध्यान इस ससार रूपी तरु के नाश करने वाला है । उसका रूप तथा अन्त दृष्ट नही है वह सर्वव्यापी अज और अव्यय है ॥२॥ वह अक्षय, सर्वत्र गमन करने वाला नित्य और केवल महान् ब्रह्म है । वह इस सम्पूर्ण जगत् का मूल, सभी का ईश और परमेश्वर है ॥३॥ समस्त भूतो के हृदय म स्थित रहने वाला तथा समस्त प्राणियो का महान् ईश्वर है । वह सभी का आधार भी है और स्वय बिना आधार वाला है । वह सबके जो कारण हैं उसका भी कारण है ॥४॥ वह लेप से रहित है अर्थात् किसी की भी लिप्तता का प्रभाव उस पर नही होता है । वह मुक्त तथा मुक्त हुए योगी जनों के द्वारा विशेष रूप म चिन्तन किया हुआ है । वह स्थूल देह से रहित है और समस्त इन्द्रियो से भी विहीन होता है । मन इन्द्रिय से रहित और मन के जो धर्म होते हैं उन सबमे भी शून्य होता है । बुद्धि तथा चित्त से विहीन

एवं महङ्कार से रहित तथा बुद्धि मादि के धर्मों से ही देवेश होता है। प्राण एवं अपान से रहित तथा प्राणास्य की आयु से शून्य वह परम देव होते हैं। ।।५ से ८।।

पुनः सूर्यार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं धनदाय हि।
अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं शुचौ देशे सकर्णिकम् ॥६
आवाहनी ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्धरिम्।
खखोल्कं स्थापयेन्मध्ये स्नापयेद् यन्त्ररूपिणम् ॥१०
आग्नेय्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेच्छिव।
एशान्यां तु शिरः स्थाप्यं नैर्ऋत्यां विन्यसेच्छिखाम् ॥११
पौरन्दर्यां न्यसेद्वर्ममेकाग्रस्थितमानसः।
वायव्याञ्चैव नेत्रन्तु वारुण्यामस्त्रमेव च ॥१२
ऐशान्यां स्थापयेत् सोमं पौरन्दर्यान्तु लोहितम्।
आग्नेय्यां सोमतनयं याम्याञ्चैव बृहस्पतिम् ॥१३
नैऋत्यां दानवगुरुं वारुण्यां शनैश्चरम्।
वायव्याञ्च तथा केतुं कौवेर्यां राहुमेव च ॥१४
द्वितीयायान्तु कक्षायां सूर्यान् द्वादश पूजयेत्।
भगः सूर्योऽर्यमा चैव मित्रो वै वरुणस्तथा ॥१५
सविता चैव धाता च विवश्वांश्च महाबलः।
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥१६
पूर्वादावर्चयेद्देवानिन्द्रादीन् श्रद्धया नरः।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥
शेषश्च वासुकिश्चैव नागानित्यादि पूजयेत् ॥१७

श्री हरि ने कहा--अब मैं पुनः सूर्यदेव के अर्चन के विषय में बतलाता हूं जो कि धनद के लिये कहा गया था। आठ दलों से युक्त एक पद्म का लेखन करे जो कि किसी अति पवित्र देश मे होना चाहिए। उस पद्म की कर्णिका को भी लिखना चाहिए ।।६।। इस लेखन करने के अनन्तर आवाहन करने की मुद्रा

प्रदर्शित कर वहाँ पर हरि का आवाहन करे। मध्य मे खखोल्क की स्थापना करे और यन्त्र के स्वरूप वाले देव का स्नपन करावे ।।१०। हे शिव ! आग्नेयी दिशा मे देव के हृदय को स्थापित करे। ऐशानी दिशा मे शिर की स्थापना करनी चाहिए तथा नैर्ऋत्य दिशा मे शिखा का विन्यास करे ।११। ऐन्द्री दिशा में एकाग्र मनकी स्थिति रखने वाले धर्म को न्यस्त करना चाहिए। वायव्य दिशा मे नेत्र तथा वारुणी दिशा मे अस्त्र का विन्यास करे ।१२। ऐशानी दिशा मे सोम की स्थापना करे—गौर-दरी म लोहित (मङ्गल)—आग्नेयी में सोम-तनय (बुध)—और यामी दिशा मे बृहस्पति को विन्यस्त करे ।१३। नैर्ऋत्य मे दानव गुरु (शुक्र)—वारुणी में शनैश्चर—वायव्य मे केतु तथा कौबेरी दिशा मे राहु का विन्यास करना चाहिए ।१४। द्वितीय कक्षा में बारह सूर्यों का पूजन करना चाहिए। उन बारह सूर्यों के नाम ये है—भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबलवाला विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवा विष्णु कहा जाता है ।१५।१६। मनुष्य को पूर्वादि दिशाओ में इन्द्र आदि का बडी ही श्रद्धा के साथ अर्चन करना चाहिए। जय विजय जयन्ती ओर अपराजित, शेष वासुकि तथा नागो का पूजन करे ।१७।

१२—मृत्युञ्जयार्चन

गरुडोक्त कश्यपाय वक्ष्ये मृत्युञ्जयार्चनम्।
उद्धारपूर्वक पुण्य सर्वदेवमय मतम् ॥१
ओङ्कार पूर्वमुद्धृत्य जुङ्कार तदनन्तरम्।
सविसर्ग तृतीय स्यान्मृत्युदारिद्रयमर्दनम् ॥२
अमृतेश महामन्त्र त्र्यक्षर पूजन समम्।
जपनात् मृत्युहीना स्यु सर्वपापविवर्जिता ॥३
शतजप्याद् वेदफल यज्ञतीर्थफलम् लभेत्।
अष्टोत्तरशत जप्य त्रिसन्ध्य मृत्युशत्रुजित् ॥४

ध्यायेच्च सितपद्मस्थं वरदश्चाभयं करे ।
द्वाभ्याञ्चामृतकुम्भं तु चिन्तयेदमृतेश्वरम् ॥५
तस्यैवाङ्कगता देवीममृतामृतभाषिणीम् ।
कलश दक्षिणे हस्ते वामहस्ते सरोरुहम् ॥६
जपेदष्टसहस्रं वै त्रिसन्ध्य मासमेकत ।
जरामृत्युमहाव्याधिशत्रुजिज्जीवशान्तिदः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—कश्यप मुनि के लिये गरुड के द्वारा कथित मृत्युञ्जय का अर्चन मैं बताता हूँ । यह उद्धार के साथ परम पुण्य तथा समस्त देवो से परिपूर्ण माना गया है ॥१॥ सबसे पूर्व मे ओङ्कार का अर्थात् "ॐ"—इसका उद्धार करे इसके अनन्तर 'जु" का और फिर विसर्ग से युक्त 'स."—यह तृतीय होना चाहिए । "ॐ जु स."—यह मन्त्र मृत्यु और दारिद्र्य का मर्दन करने वाला है । यह अमृतेश का महामन्त्र तीन अक्षर वाला है । इसका आराधन पूजन के ही समान होता है । इस तीन अक्षर वाले महामन्त्र के जप से मानव मृत्यु से रहित हो जाते हैं तथा सब प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥२ ३॥ इस महामन्त्र के एकभी बार जाप करने से वेद तथा यज्ञ और तीर्थ करने का फल प्राप्त होता है । इस महामन्त्र का अष्टोत्तर शत अर्थात् एक माला तीनो सन्ध्याओं मे करे तो मनुष्य मृत्यु और शत्रु को जीतने वाला होता है ॥४॥ और भगवान् अमृतेश्वर का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि श्वेत कमल पर वे विराजमान हैं तथा उनके हाथ मे वरदान एव अभय दोनो ही प्रदान करने के लिये विद्यमान हैं और दोनो हाथो मे अमृत के कुम्भ हैं ऐसा चिन्तन करना चाहिए ॥५॥ उन्ही अमृतेश्वर के अङ्क के साथ सङ्कुलन देवी भी हैं जो कि अमृत तथा ऋतभाषण करने वाली हैं इनके दाहिने हाथ में कलश है और बाँये हाथ मे कमल पुष्प है ॥६॥ ऐसा ध्यान करते हुए उक्त तीन अक्षर वाले महामन्त्र का आठ हजार जाप तीनो सन्ध्याओ में एक मास पर्यन्त नित्य करे तो मनुष्य की जरा (वृद्धता), मृत्यु, महाव्याधि और

प्रभु इन सब पर विजय हो जाती है तथा जीवात्मा को बहुत ही अधिक शांति का लाभ होता है ॥७॥

आस्थान स्थापनं रोध सन्निधान निवेशनम् ।
पाद्यमाचमन स्नानमर्घ्यं चानुलेपनम् ॥
दीपाम्बरं भूषणञ्च नैवेद्यं पानजीवनम् ॥८
मात्रा मुद्रा जप ध्यान दक्षिणाश्चाहुतिः स्तुतिः ।
वाद्य गीतञ्च नृत्यञ्च न्यास योग प्रदक्षिणम् ॥
प्रणति मन्त्र इज्या च वन्दनञ्च विसर्जनम् ॥९
षडङ्गादिप्रकारेण पूजनन्तु क्रमोदितम् ।
परमेशमुखोद्गीर्णं यो जानाति स पूजकः ॥१०
अर्घ्यपात्रार्चनञ्चादौ वस्त्रेणैव तु ताडनम् ।
शोधन कवचेनैव अमृतीकरण तत ॥११
पूजा चाधारशक्त्यादे प्राणायाम तथासने ।
पिण्डशुद्धि तत कुर्य्याच्छ्रीपणार्धं स्तत स्मरेत् ॥१२
आत्मान देवरूपञ्च कराङ्गन्यासकञ्चरेत् ।
आत्मान पूजयेत्पश्चाज्ज्योतीरूप हृदब्जत ॥१३

अमृतेश्वर भगवान् के आराधन का साङ्गोपाङ्ग क्रम करना चाहिए। सर्व प्रथम उनका आवाहन कर–फिर स्थापन कर–निरोधन करे एवं सन्निधान तथा सम्मुखीकरण निवेशन करना चाहिए। इसके अनन्तर पूजन का क्रम आरम्भ करे। अर्घ्य, पाद्य, आचमन और स्नान के लिये जल का समर्पण करना चाहिए। इसके पश्चात् अनुलेपन, दीप, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य, पुनराचमनीय, गन्धाक्षत पुष्प और मुखशुद्ध्यर्थ ताम्बूल, द्रव्यदक्षिणा, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करे। मात्रा, मुद्रा, जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति तथा स्तुति करे। (फिर वाद्य गीत, नृत्य, न्यास, योग, प्रदक्षिणा, प्रणति, मन्त्र, यजन, वन्दना आदि करके अन्त में देव का विसर्जन करना चाहिए ॥८।९॥) इस प्रकार से यह षडङ्ग पूजन का क्रम बताया गया है जो कि स्वयं परमेश के मुखारविन्द से उद्गीर्ण हुआ

है। इस समग्र क्रम को जो भली-भाँति से जानता है वही यथार्थ पूजा करने वाला होता है ॥१०॥ आदि में अर्घ्य, पाद्य, अर्चन और अस्त्र के द्वारा ही ताड़न करे। फिर कवच के द्वारा शोधन तथा इसके अनन्तर अमृतीकरण करे। ॥११॥ आधार शक्ति आदि की पूजा--प्राणायाम तथा आसन और इसके अनन्तर शोषणादि के द्वारा पिण्ड शुद्धि करे और इसके उपरान्त स्मरण करना चाहिए ॥१२॥ आत्मा को देवरूप करके कराङ्गन्यासादि करे। अपने आप में अन्तः स्थित हृदय कमल पर विराजमान ज्योति रूप का सृजन करे ॥१३॥

मूर्त्तौ वा स्थण्डिलेवापि क्षिपेत्पुष्प तु भास्वरम् ।
आत्मानं द्वारपूजार्थं पूजा चाधारशक्तिजा ॥१४
सान्निध्यकरणं देवे परिवारस्य पूजनम् ।
अङ्गषट्कस्यपूजार्थं कर्त्तव्या दिग्विभागतः ॥१५
धर्मादयश्च शक्राद्याः सायुधाः परिवारकाः ।
युगवेदमुहूर्त्तांश्च पूजेय भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१६
मातृकाया गणञ्चादौ नन्दिगङ्गे च पूजयेत् ।
महाकालश्च यमुनां देहल्यां पूजयेत् पुरा ॥१७
ॐ अमृतेश्वरभैरवाय नमः ।
एवं ॐ जुं सः सूर्याय नमः ।
एवं शिवाय कृष्णाय ब्रह्मणे च गणाय च ।
चण्डिकायै सरस्वत्यै महालक्ष्म्यादि पूजयेत् ॥१८

मूर्त्ति पर अथवा स्थण्डिल पर पुष्पों का क्षेपण करे। भास्वर आत्मा को पूजा तथा द्वार पूजा के लिये आधार शक्ति की पूजा करनी चाहिए। देव में सन्निधीकरण, परिवार का पूजन तथा दिशाओं के विधान से षडङ्ग पूजा करनी चाहिए ॥१४॥ अपने-अपने आयुधों से समन्वित धर्म आदि एवं शक्र प्रभृति परिवार वाले होते हैं। युगवेद और मुहूर्त होते हैं। इनकी यह पूजा भुक्ति अर्थात् समस्त प्रकार के सांसारिक सुखोपभोगों के रसास्वादन का आनन्द और मुक्ति अर्थात् बारम्बार विभिन्न योनि में जन्म-मरण के बन्धन वहीं से

छुटकारा दोनों ही को प्राप्त कराने वाली होती है ॥१५ से १७ तक॥ आदि में मातृका, गण नन्दी, गङ्गा का पूजन करना चाहिए । पहिले देहली में महाकाल और यमुना का अर्चन करे । 'ॐ म्रगुनेश्वर भैरवाय नम'—इस मन्त्र से एव 'ॐ जु स सूर्याय नम'- इस मन्त्र के द्वारा पूजन करना चाहिये । इसी प्रकार से शिवाय', 'कृष्णाय', 'ब्रह्मणे', 'गणाय', 'चाण्डिकायै', 'सरस्वत्यै', 'महालक्ष्म्यै' इत्यादि क्रम से इनके आगे प्रणव तथा अन्त मे 'नम' यह लगाकर सबका यजन करना चाहिए ॥१८॥

१३—शिवार्चन और पचतत्वदीक्षा

शिवार्चन प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकर परम् ।
शान्त सर्वगत शून्य मात्रा द्वादशके स्थितम् ॥
पञ्चवक्त्राणि ह्रस्वानि दीर्घाण्यङ्गानि बिन्दुना ॥१
सविसर्ग वदेदत्र शिव ऊर्ध्वं तथा पुन ।
षष्ठेनाधो महामन्त्रो हौमित्येवाखिलार्थद ॥२
हस्ताभ्या सस्पृशेत् पादावूर्ध्वं पादान्तमस्तकम् ।
महामुद्रा हि सर्वेषा कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥३
तानहस्तेन पृष्ठञ्च अस्त्रमन्त्रेण शोधयेत् ।
कनिष्ठामादित कृत्वा तर्जन्यङ्गानि विन्यसेत् । ४
पूजन सप्रवक्ष्यामि कर्णिकाया हृदम्बुजे ।
धर्मं ज्ञान च वैराग्यमैश्वर्यादि हृदाऽर्चयेत् ॥५
आवाहन स्थापनञ्च पाद्यमर्घ्यं हृदार्चयेत् ।
आचाम स्नपन पूजामेकाधारणतुल्यकाम् ॥६
अग्निकार्यविधि वक्ष्ये शस्त्रेणोल्लेखन चरेत् ।
वर्मणाभ्युक्षण कार्यं शक्तिन्यास हृदाचरेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं शिव के अर्चन को बतलाऊँगा जो कि परम भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला है । वह शान्त, सर्वगत अर्थात् सभी के

व्याप्त रहने वाला और शून्य है। वह द्वादश मात्रा में स्थित रहता है। पाँच वक्त्र ह्रस्व हैं और अन्य अङ्ग बिन्दु से दीर्घ हैं ॥१॥ विसर्ग के सहित मन्त्र को बोले 'शिव'-यह ऊर्ध्व में है तथा पुनः पष्ठ से महामन्त्र "हौम्" इतना ही समस्त प्रकार के अर्थों का प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ दोनों हाथों से दोनों पादों को पादान्त मस्तक ऊर्ध्व का स्पर्श करे। सबकी महामुद्रा है—कर न्यास तथा अङ्ग न्यास करना चाहिए। ३॥ और लाल हस्त से पुष्प को अस्त्र मन्त्र के द्वारा शोधन करे। कनिष्ठा को आदि में करके तर्जनी से अङ्गों का विन्यास करे ॥४॥ अब मैं हृदय कमल में कर्णिका में पूजन को बतलाता हूँ। हृदय से धर्म्म-ज्ञान-वैराग्य और ऐश्वर्य आदि की अर्चना करे ॥५॥ हृदय के द्वारा ही आवाहन और स्थापना, सम्मुखीकरण, सरोधन आदि पाद्य एवं अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। आचमन, स्नपन एक ही आधार के तुल्य पूजा करनी चाहिए ॥६॥ अब अग्नि कार्य की विधि को बतलाऊँगा। शास्त्र के द्वारा उल्लेखन करे-वर्म्म के द्वारा अभ्युक्षण और हृदय से शक्ति का न्यास करना चाहिए ॥७॥

हृदि वा शक्तिगर्भे च प्रक्षिपेज्जातवेदसम् ।
गर्भाधानादिकं कृत्वा निष्कृतिश्चास्य पश्चिमाम् ॥८
हृदा कृत्वा सर्वकर्म शिवं साङ्गं तु होमयेत् ।
पूजयेन्मण्डले शम्भुं पद्मगर्भे गवाङ्कितम् ॥९
चतु शष्ट्यन्तमष्टादि स्वाक्षिस्वाध्यादिमण्डलम् ।
खाक्षीन्द्रसूर्यगं सर्वं खादिवेदेन्दुवर्तनात् ॥१०
आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डमर्द्धचन्द्रनिभं शुभम् ।
अग्निशास्त्रपरा शस्त्रहृदयादिगणोच्यते ।।
अस्त्र दिशामुपान्तेषु कर्णिकायां सदाशिवम् ॥११
दीक्षा वक्ष्ये पञ्चतत्त्वे स्थिता भूम्यादिका परे ।
निवृत्तिर्भू - प्रतिष्ठा च विद्याग्नि शान्तिरश्मिनः ॥१२
शान्त्यतीतं भवेद्धोमे तत्परं शान्तमव्ययम् ।

एकैकस्य शतं होममित्येवं पञ्च होमयेत् ॥
पश्चात् पूर्णाहुतिं दत्वा प्रसादेन शिवं स्मरेत् ॥ १३
प्रायश्चित्तविशुद्धयर्थमेकैकमाहुतिं क्रमात् ।
होमयेदस्त्रबीजेन एवं दीक्षा समाप्यते ॥१४
यजनव्यतिरेकेण गोप्यं सस्कारमुत्तमम् ।
एवं संस्कार शुद्धस्य शिवत्व जायते ध्रुवम् ॥१५

हृदय मे अथवा शक्तिगर्त्त मे अग्नि का प्रक्षेपण करे। गर्भाधानादि करके इसकी पश्चिम निष्कृति करनी चाहिए। हृदय के द्वारा समस्त कर्म करके फिर साङ्ग शिव का होम करे। मण्डल मे पद्मगभ मे गवाङ्कित शम्भु का पूजन करना चाहिए ॥८॥६॥ अष्ट आदि चौसठ के अन्त तक प्रलियों मे स्वाध्यादि मण्डल को, अन्तरिक्ष के अलीन्द्र सूर्य मे गमन करने वाले को, सबको आकाश की भाँति इन्दुवर्त्तन से आग्नेय दिशा मे अर्धचन्द्र के सदृश परम शुभ कुण्ड की रचना करानी चाहिए। अग्नि शास्त्र मे परायण शास्त्र हृदयादि गणा कही जाती है। दिशाओं के उपान्तो मे अस्त्र को और कर्णिका मे सदाशिव का अर्चन करे ॥१०।११॥ अब पर पञ्चतत्व मे स्थित भूम्यादिकी दीक्षा को बतलाता हूँ। निवृत्ति, भू प्रतिष्ठा, विद्याग्नि और अदिम को शान्ति तथा शांति के पश्चात् होम में तत्पर अध्यय शान्त होता है। एक एक की सौ आहुतियो का होम होता है। इस प्रकार से पाँच होम करने चाहिए। इसके अनन्तर पूर्णाहुति देकर प्रसाद के द्वारा भगवान् शिव का स्मरण करना चाहिए ॥१२। १३॥ प्रायश्चित की विशुद्धि के लिये क्रम से एक-एक आहुति अस्त्र बीज से होम करनी चाहिए। इस प्रकार से दीक्षा की समाप्ति की जाती है ॥१४॥ यजन के व्यतिरेक से उत्तम सस्कार को गुप्त रखना चाहिए। इस प्रकार से सस्कारों से शुद्ध को शिवत्व निश्चित ही प्राप्त हो जाता है ॥१५॥

१४—श्रीकृष्ण पूजन वर्णन

गोपालपूजां वक्ष्यामि भुक्तिमुक्ति प्रदायिनीम् ।
द्वारे धाता विधाता च गङ्गा यमुनया सह ॥१

शङ्खपद्मनिधी चैव शारङ्गः शरभः श्रिया।
पूर्वे भद्र-सुभद्रो द्वौ दक्षो चण्डप्रचण्डकौ ॥२
पश्चिमे बलप्रबलौ जयश्च विजयो यजेत्।
उत्तरे श्रीश्चतुर्द्वारि गणो दुर्गा सरस्वती ॥३
क्षेत्रस्याग्न्यादिकोणेषु दिक्षु नारदपूर्वकम्।
सिद्धो गुरुर्नलकूबर कोणे भागवत यजेत् ॥४
पूर्वे विष्णुं विष्णुतपो विष्णुशक्ति समर्चयेत्।
ततो विष्णुपरावारं मध्ये शक्तिञ्च कूर्मकम् ॥५
अनन्तं पृथिवीधर्मं ज्ञानं वैराग्यमग्नितः।
ऐश्वर्यं वायुपूर्वञ्च प्रकाशात्मानमुत्तरे ॥६
सत्वाय प्रकृतात्मने रजसे मोहरूपिणे।
तमसे पद्माय यजेदहङ्कारकतत्वकम् ॥७
विद्यातत्व परं तत्व सूर्येन्दुवह्निमण्डलम्।
विमलाद्या आसनञ्च प्राच्यां श्री ह्री संपूजयेत् ॥
गोपीजवल्लभाय स्वाहान्तो मनुरुच्यते ॥८

सूतजी ने कहा—अब मैं आप लोगों को गोपाल की भोग तथा मोक्ष प्रदान कराने वाली पूजा के विषय बतलाता हूँ द्वार में धाता, विधाता और यमुना के साथ गङ्गा का यजन करना चाहिए ॥१॥ शङ्ख और पद्म निधियों को तथा शारङ्ग एव श्री के सहित शरभ का यजन करे। पूर्व दिशा मे भद्र, सुभद्र दो दक्ष चण्ड और प्रचण्डक, पश्चिम दिशा मे बल,प्रबल जय और विजय, उत्तर मे श्री, चतुर्द्वार मे गण दुर्गा और सरस्वती, क्षेत्र के अग्नि आदि कोणों में दिशाओं मे नारद के साथ सिद्ध, गुरु एव कोण मे परम भागवत नल कूबर का यजन करना चाहिए ॥२।३।४॥ पूर्व मे विष्णु, विष्णुतप और विष्णु शक्ति की समर्चना करनी चाहिए। इसके अनन्तर विष्णु के परिवार की अर्चना करे और मध्य मे शक्ति और कूर्म का पूजन करना चाहिए ॥५॥ आग्नेयी दिशा मे अनन्त पृथ्वी--धर्म–ज्ञान और वैराग्य का यजन करे तथा वायुपूर्व ऐश्वर्य का

एव उत्तर मे प्रकाशात्मा का पूजन करे ।।६।। प्रकृतात्मा सत्व के लिये–मोह रूपी रजोगुण के लिये और तमोगुण पद्म के लिये अहङ्कार तत्त्व का यजन करना चाहिए ।।७।। विद्या तत्त्व, पर तत्त्व, सूर्य, इन्दु, वह्नि मण्डल, विमला आदि और आसन को प्राची (पूर्व दिशा में) में श्री ह्रीं से पूजित करे। 'गोपीजन वल्लभाय स्वाहा'–यह जिसके अन्त में है, ऐसा उसका मन्त्र कहा जाता है ।।८।।

आचक्रञ्च सुचक्रञ्च विचक्रञ्च तथैव च ।
त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरारिसुदर्शनम् ।।९
हृदादिपूर्वकोणेषु अस्त्रं शक्तिञ्च पूर्वत ।
रुक्मिणी सत्यभामा च सुनन्दा नाग्नजित्यपि ।।१०
लक्ष्मणा मित्रवृन्दा च जाम्बवत्या सुशीलया ।
शङ्खचक्रगदापद्म मुसलं शार्ङ्गमर्चयेत् ।।११
खड्गं पाशाकुशं प्राच्या श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ।
मुकुटं वनमालाञ्च इन्द्राद्यान् ध्वजमुख्यकान् ।।१२
कुमुदाद्यान्विष्वक्सेनं कृष्णं श्रिया सहार्चयेत् ।
जप्याद्ध्यानात्पूजनाच्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।१३

अब अङ्गो को बतलाया जाता है–आचक्र सुचक्र, विचक्र तथा त्रैलोक्य की रक्षा करने वाला असुरो के अरि भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र का यजन करे ।।९।। हृदादि पूर्व कोणो मे शक्ति का पूजन करे। पूर्व मे रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नाग्नाजिती, लक्ष्मणा, मित्र वृन्दा और सुशीला जाम्बवती इन आठ महा महिषियो के सहित शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल और शार्ङ्ग धनु, इन भगवान् के आयुधो का समर्चन करना चाहिए ।।१०।।११।। प्राची दिशा मे खड्ग, पाश, अ कुश श्रीवत्स कौस्तुभ मुकुट, वनमाला और इन्द्रादि ध्वज मुख्यो का यजन करे। कुमुदादि, विष्वक्सेन तथा श्री के सहित कृष्ण का अर्चन करना चाहिए। इस प्रकार से जाप से, ध्यान से पूजन से मानव अपने समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ।।१२।।१३।।

१५— गायत्री-न्यास

न्यासादिकं प्रवक्ष्यामि गायत्र्याश्छन्द एव च ।
विश्वामित्र ऋषिश्चैव सविता चाथ देवता ॥१
ब्रह्मशीर्षा रुद्रशिखा विष्णोर्हृदयसश्रिता ।
विनियोगैकनयना कात्यायनसगोत्रजा ॥२
त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसस्थिता ।
एव ज्ञात्वा तु गायत्री जपेद् द्वादशलक्षकम् ॥३
त्रिपदाऽष्टाक्षरा ज्ञेया चतुष्पादा षडक्षरा ।
जपेच्च त्रिपदा प्रोक्ता अर्चने च चतुष्पदा ॥४
न्यासे जपे तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने ।
गायत्री विन्यसेन्नित्य सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥५

श्री हरि ने कहा—अब हम गायत्री के न्यास आदि को बतलाते हैं। पर गायत्री के छन्द भी बतलायेंगे। गायत्री के विश्वामित्र ऋषि हैं और इसके देवता सविता हैं। ब्रह्म के शीर्ष वाली यह रुद्र की शिखा वाली है। यह गायत्री विष्णु के हृदय मे सश्रित रहती है। इसका विनियोग एक नेत्र है तथा कात्यायन की सगोत्रजा है ॥१।२॥ गायत्री को त्रैलोक्य के चरण वाली और पृथिवी की कुक्षि मे सस्थित रहने वाली समझना चाहिए। गायत्री का इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके तथा स्वरूप को जानकर ही इसका बारह लक्ष जप करना चाहिए। ३॥ इसे तीन पदो वाली, आठ अक्षरो वाली चार पादो से युक्त तथा षडक्षरा जानना चाहिए। त्रिपदा का जप करना चाहिए और अर्चन मे चतुष्पदा यह बताई गई है ॥४॥ न्यास मे, जप मे, ध्यान में, अग्नि कार्य मे अर्थात् हवन मे तथा अर्चन में इस समस्त पापो के प्रकृष्ट रूप से नाश कर देने वाली गायत्री का नित्य ही विन्यास करना चाहिए ॥५॥

पादागुष्ठे गुल्फमध्ये जघयोर्विद्धि जानुनो ।
ऊर्वोर्गुह्ये च वृषणे नाड्या नाभौ तनूदरे ॥६

स्तनयोर्हृदि कण्ठौष्ठमुखे तालुनि वाशयो ।
नेत्रे भ्रुवोर्ललाटे च पूर्वस्या दक्षिणोत्तरे ॥
पश्चिमे मूर्ध्नि चाकार न्यसेद्वर्णान् वदाम्यहम् ॥७
इन्द्रनीलश्च वह्निश्च पीत श्यामञ्च कापिलम् ।
श्वेत विद्युत्प्रभ तार कृष्ण रक्त क्रमेण तत् ॥८
श्याम शुक्ल तथा पीत श्वेत वै पद्मरागवत् ।
शङ्खवर्णं पाण्डरञ्च रक्तश्चासवसन्निभम् ॥
अर्कवर्णं सम सौम्य शङ्खभ श्वेतमेव च ॥९
यद्यत्स्पृशति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
पूत भवति तत् सर्वं गायत्र्या न पर विदु ॥१०

इस गायत्री के न्यास करने के स्थानों को बताते हुए कहते हैं कि पैरों के अँगूठे गुल्फ के मध्य में, दोनों जघाओं में, जानुओं में, ऊरुओं में, गुह्य में वृषण में, नाडी में, नाभि में, शरीर के उदर में, स्तनों में, हृदय में, कण्ठ में ओष्ठ, मुख, तालु में, दोनों कर्णों में, नेत्र में, भौंहों में और ललाट में न्यास करे। पूर्व, दक्षिण उत्तर पश्चिम तथा मूर्धा में आकर का न्यास करना चाहिए अब न्यास के वर्णों को मैं बताता हूँ ॥६॥७॥ इसका वर्ण इन्द्र नील और वह्नि के समान है—पीत, श्याम, कपिल, श्वेत, विद्युत् की प्रभा के तुल्य तार, कृष्ण और क्रम से रक्त वर्ण है ॥८॥ श्याम, शुक्ल, पीत, श्वेत पद्मराग मणि के समान है । शङ्ख वर्ण और पाण्डर वर्ण हैं तथा रक्त वर्ण आसव के तुल्य है । अर्क (सूर्य) के वर्ण के सम वर्ण है और शङ्ख की आभा के तुल्य सौम्य एव श्वेत वर्ण होता है ॥९॥ जिस जिसका हाथ स्पर्श करता है और जो जो नेत्र से देखता वह सभी पूत हो जाता है । गायत्री से पर अन्य कुछ भी नहीं है । यह गायत्री सर्वोपरि शिरोमणि मन्त्र है ॥१०॥

१६—सन्ध्याविधि

सन्ध्याविधि प्रवक्ष्यामि शृणु रुद्राघनाशनम् ।
प्राणायामत्रय कृत्वा सन्ध्यास्नानमुपक्रमेत् ॥१

सप्रणवा सव्याहृति गायत्री शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राण प्राणायामः स उच्यते ॥२
मनोवाक्कायज दोष प्राणायामैर्दहेद् द्विज ।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत् ॥३
सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्येत्यप. पिवेत् ।
आप पुनन्तु मध्याह्ने उपस्पृश्य यथाविधि ॥४
आपोहिष्ठेत्यृचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकै ।
प्रणवेन तु सयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥५
रजस्तम स्वमोहोत्थान् जागृत्स्वप्नसुषुप्तिजान् ।
वाङ्मन कर्मजान् दोषान् नवैतान्नवभिर्दहेत् ॥६
समुद्धृत्योदक पाणौ जप्त्वा च द्रुपदा क्षिपेत् ।
त्रिपडष्टौ द्वादशधा वर्त्तयेदघमर्षणम् ॥७
उदुत्य चित्रमित्याभ्यामुपतिष्ठेद् दिवाकरम् ।
दिवारात्रौ च यत् पाप सर्व नश्यति तत्क्षणात् ॥८

श्री हरि ने कहा—हे रुद्र ! अब मैं तुमको सन्ध्या की विधि बतलाता हूँ जो कि अघो का नाश करने वाली होती है । तीन बार प्राणायाम करके फिर सन्ध्या के स्नान का उपक्रम करना चाहिए ॥१॥ आयत प्राण वायु वाला होते हुए तीन बार प्रणव व्याहृतियाँ और शिर के सहित गायत्री का जप करे, इसी को प्राणायाम कहा जाता है ॥२॥ ब्राह्मण को प्राणायामो के द्वारा मन-वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाले दोषो का दाह कर देना चाहिए । इस-लिये ब्राह्मण को सब कालों मे प्राणायाम परायण होना चाहिए ॥३॥ सन्ध्या के समय मे "अग्निश्च मे"—इस मन्त्र का उच्चारण करके, प्रात काल मे "सूर्यश्च"—इत्यादि मन्त्र को कह कर और मध्याह्न में 'आप पुनन्तु"—इत्यादि मन्त्र को बोल कर यथाविधि उपस्पर्शन करना चाहिए ॥४॥ इसके अनन्तर "आपोहिष्ठा मयोभुव" इत्यादि ऋचा से कुशोदक से मार्जन करना चाहिए । प्रणव से सयुक्त वारि को पद पद मे प्रक्षिप्त करे । ५॥ रजोगुण, तमोगुण से

होने वाले अपने मोह के कारण उठे हुए—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति काल मे उत्पन्न होने वाले तथा वाणी, मन और कर्म से समुत्पन्न हुए दोषो को जो नौ प्रकार के होते हैं उनको इन 'आपोहिष्ठा'—इत्यादि नौ मन्त्रो के द्वारा दग्ध कर देना चाहिए ॥६॥ फिर हाथ मे जल को लेकर "द्रुपदादिव"—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण एव जाप करके उस जल को प्रक्षिप्त करना चाहिए। तीन बार, छै बार, आठ बार और बारह बार अघमर्षण करना चाहिए ॥७॥ 'उदुत्य', 'चित्रम्'—इत्यादि मन्त्रो के द्वारा सूर्यदेव का उपस्थान करना चाहिए। इस प्रकार से दिन और रात्रि के समय मे जो भी कुछ पाप किया है वह सभी उसी क्षण मे नष्ट हो जाया करता है ॥८॥

पूर्वं सध्या जपस्तिष्ठेत् पश्चिमामुपविश्य च ।
महाव्याहृतिसयुक्ता गायत्री प्रणयान्विताम् ॥९
दशभिर्जन्मजनित शतेन तु पुराकृतम् ।
त्रियुग तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम् ॥१०
रक्ता भवति गायत्री सावित्री शुक्लवर्णिका ।
कृष्णा सरस्वती ज्ञेया सन्ध्यात्रयमुदाहृतम् ॥११
ॐ भूर्विन्यस्य हृदये ॐ भुव शिरसि न्यसेत् ।
ॐ स्वरिति शिखायाश्च गायत्र्या प्रथम पदम् ॥१२
विन्यसेत्कवचे विद्वान् द्वितीय नेत्रयोर्न्यसेत् ।
तृतीयेनाङ्गविन्यास चतुर्थं सर्वतो न्यसेत् ॥१३
सन्ध्याकाले तु विन्यस्य जपेद्वै वेदमातरम् ।
शिवस्तस्यास्तु सर्वाङ्गे प्राणायामपर न्यसेत् ॥१४

इस विधि से पूर्व अर्थात् प्रात काल की सन्ध्या को जप करते हुए खडा होकर पूर्ण करे और पश्चिम सन्ध्या को भी बैठकर करे। महा व्याहृतियो से युक्त तथा प्रणव से समन्वित गायत्री मन्त्र का एकसौ बार जाप से पहिला किया हुआ दस जन्मो का समुत्पन्न पाप नष्ट हो जाता है। एक सहस्र के जाप करने पर सावित्री त्रियुग के दुष्कृत का नाश कर दिया करती है ॥९।१०॥

गायत्री का रक्त वर्ण होता है—सावित्री का शुक्ल वर्ण होता है तथा सरस्वती का कृष्ण वर्ण माना जाता है। ये तीनों काल की सन्ध्याओं का विवरण बता दिया गया है। अब न्यास का प्रकार बताया जाता है—ॐ भू –इसका विन्यास हृदय में करे अर्थात् 'ॐ भूर्हृदयाय नमः'—यह उच्चारण करके हृदय का स्पर्श करना चाहिए। इसी विधि से 'ॐ भुवः'—इसका शिर में न्यास करे–'ॐ स्वः' इसका शिखा में विन्यास करना चाहिए। इस प्रकार से गायत्री के प्रथम पद का विन्यास करे। प्रथम हृदय के न्यास में—'नमः' का प्रयोग, द्वितीय में 'स्वाहा' का और तृतीय में 'वषट्'—का प्रयोग करे। इसके पश्चात् विद्वान् को कवच में न्यास करना चाहिए और द्वितीय विन्यास नेत्रों में करे तथा तृतीय से अङ्ग का विन्यास करे और चतुर्थ का सब ओर करे ॥११।१२।१३॥ सन्ध्या की वेला में इस तरह से विन्यास करके फिर वेदमाता का विशेष रूप से जप करना चाहिए। उसके समस्त अङ्ग में शिव होवे। प्राणायाम पर न्यास करे ॥१४॥

त्रिपदा या तु गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी।
विनियोगमृषिच्छन्दो ज्ञात्वा तु जपमारभेत् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥१५
परोरजसि सार त तुरीयपदमीरितम्।
त हन्ति सूर्यं सन्ध्याया नोपास्ति कुरुते तु य ॥१६
तुरीयस्य पदस्यापि ऋषिर्निर्मल एव च।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥१७

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के स्वरूप वाली जो त्रिपदा गायत्री है उसका विनियोग, ऋषि और छन्द का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही जप का आरम्भ करना चाहिए गायत्री का इस प्रकार से विधि पूर्वक जप करने वाला व्यक्ति सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१५॥ जो तुरीय पद कहा गया है उसको परारज में सार बताया गया है। सन्ध्या में सूर्य उसका हनन कर देता है जो कि सन्ध्या समय में उपासना नहीं

किया करता है। अतः सन्ध्योपासना करना नितान्त आवश्यक है। तुरीय पद का भी स्मृति निर्मल होता है। उसका छन्द गायत्री होता है और परमात्मा देवता है ॥१६॥१७॥

१६—गायत्री माहात्म्य

गायत्री परमा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदा च ताम्।
यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि ॥१
गायत्रीकल्पमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदश्च तत्।
अष्टोत्तरं सहस्रं वा अथवाऽष्टशतं जपेत् ॥
त्रिसन्ध्यं ब्रह्मलोकी स्याच्छतजप्तं जले पिबेत् ॥२
सन्ध्यायां सर्वपापघ्नी देवीमावाह्य पूजयेत्।
भूर्भुवः स्व स्वमन्त्रेण युता द्वादशनामभिः ॥३
गायत्र्यै नम सावित्र्यै सरस्वत्यै नमो नमः।
वेदमात्रे च साकृत्यै ब्रह्माणी कौशिकी क्रमात् ॥४
साध्व्यै सर्वार्थसाधिन्यै सहस्राक्ष्यै च भूर्भुवः।
स्वरेव जुहुयादग्नौ समिधाऽऽज्य हविष्यकम् ॥५
अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यथवाष्टशत घृतम्।
धर्मकामादिसिद्धयर्थं जुहुयात् सर्वकर्मसु ॥६
प्रतिमा चन्दनस्वर्णनिर्मिता प्रतिपूज्य च।
यथा लक्ष तु जप्तव्य पयोमूलफलाशनैः।
अयुतद्वयहोमेन सर्वान् कामनावाप्नुयात् ॥७
उत्तरे शिखरे जाता भूम्या पर्वतवासिनी।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥८

श्री हरि ने कहा—गायत्री परमा अर्थात् सर्वोच्च देवी है। यह सांसारिक समस्त भोग और अन्त में मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। जो मनुष्य उसका जप करता है उसके चाहे बड़े-से-बड़े पाप क्यों न हों सभी समूल विनष्ट हो जाया

करते हैं ॥१॥ अब मैं गायत्री के कल्प को बताऊँगा वह कल्प भुक्ति तथा मुक्ति दोनों को देने वाला होता है । गायत्री को एक सौ आठ सहस्र बार अथवा आठ सौ जपना चाहिए । तीन काल की सन्ध्या में गायत्री का जाप करने से ब्रह्मलोक के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है । सौ बार जप किया हुआ जल पीना चाहिए ॥२॥ सन्ध्या में समस्त पापों का नाश करने वाली देवी का आवाहन करके उसका पूजन करना चाहिए । "ॐ भूर्भुवः स्वः" इस स्वमन्त्र से उसके द्वादश नामों से गायत्री का यजन करना चाहिए । गायत्री के लिये नमस्कार है । सावित्री के लिये नमस्कार है--सरस्वती के लिये बारम्बार नमस्कार है । वेदों की माता के लिये नमस्कार है । साकृति के लिये नमस्कार है । ब्रह्माणी के लिये नमस्कार है । कौशिकी के लिये नमस्कार है । इस क्रम से साध्वी के लिये नमस्कार है । सर्व अर्थों के साधन करने वाली के लिये नमस्कार है और सहस्र नेत्रों वाली के लिये नमस्कार है । फिर भूर्भुवः स्वः- इससे ही अग्नि में समिध आज्य (घृत) और हवि का हवन करना चाहिए ॥३।४।५॥ अष्टोत्तर शत अथवा आठ सौ को आहुतियाँ समस्त कर्मों में धर्म आदि कामादि की सिद्धि के लिये अग्नि में देनी चाहिए ॥६॥ गायत्री की प्रतिमा चन्दन अथवा सुवर्ण की बनवा कर उसका पूजन करे । गायत्री का एक लाख जप करना चाहिए । फल-मूल और पय के द्वारा दो अयुत अर्थात् बीस हजार बार होम करने पर मानव सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है ॥७॥ उत्तर शिखर में समुत्पन्न हुई भूमि में हे पर्वत पर निवास करने वाली ! ब्राह्मणों के द्वारा समनुज्ञात होती हुई हे देवी ! अब आप सुखपूर्वक पधारिये--इस प्रकार से गायत्री का विसर्जन अन्त में करना चाहिए ॥८॥

१८—ब्रह्म-ध्यान

पूजयित्वा पवित्राद्यैर्ब्रह्म ध्यात्वा हरिर्भवेत् ।
ब्रह्मध्यानं प्रवक्ष्यामि मायायन्त्रप्रमर्दकम् ॥१
यच्छेद्वाङ्मनसा प्राज्ञस्तं यजेद् ज्ञानमात्मन. ।
ज्ञानं महति संयच्छेद्य इच्छेज्ज्ञानमात्मनि ॥२

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
वर्जितं भूततन्मात्रैर्गुणजन्मासनादिभिः ॥३
स्वप्रकाशं निराकारं सदानन्दमनादि यत् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमूढं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥४
तुरीयमक्षरं ब्रह्म ग्रहमस्मि परं पदम् ।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थान समाधिरपि गीयते ॥५
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचराः ॥६
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।
यस्तु विज्ञानवाह्येन युक्तेन मनसा सदा ।
स तु तत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते ॥७

श्री हरि ने कहा—पवित्रादि के द्वारा पूजन करके और ब्रह्म का ध्यान करके हरि हो जाता है । अब ब्रह्म के ध्यान को बतलाता हूँ जो कि इस माया के बन्ध का प्रमर्दन कर देने वाला है । प्राज्ञ पुरुष को वाणी और मन के द्वारा उसका यजन करना चाहिये । आत्मा में ज्ञान का उपयोग करे । जो आत्मा में ज्ञान की इच्छा रखता है उसे महान् में ज्ञान को लगा देना चाहिये ॥१।२॥ देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार से रहित, भूत, तन्मात्रा, गुण जन्म और आसन आदि से हीन, अपने आपसे प्रकाश वाला, आकार से शून्य, सदा आनन्द स्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध बुद्ध, ऋद्ध, सत्य, आनन्दमय, अद्वय, तुरीय और अक्षर ब्रह्म—परं पद मैं ही हूँ । मैं ब्रह्म हूँ—यह अवस्थान तथा समाधि यह भी गाया जाता है ॥३।४।५॥ इस आत्मा को रथ में स्थित रथी तथा इस शरीर को रथ समझना चाहिये । इस शरीर में जो इन्द्रियाँ हैं वे इस शरीर रूपी रथ को चलाने वाले अश्व हैं और समस्त इन्द्रियों के विषय गोचर पदार्थ होते हैं । ॥६॥ विद्वान् पुरुष मन, इन्द्रियों से युक्त आत्मा ही भोक्ता होता है—ऐसा कहते हैं । जो सदा विज्ञान—ब्रह्म मन से युक्त होता है वही उस पद को प्राप्त होता है और फिर वह जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥७॥

विज्ञानसारथिर्यस्य मन प्रग्रह्वान्नर ।
स्वहिन्या पारमाप्नोति तद्विष्णो परम पदम् ॥८
अहिंसादि यम. प्रोक्त शौचादि नियम स्मृत ।
पद्माद्युक्त आसनञ्च प्राणायामो मरुज्जय ॥६
प्रत्याहारो जय प्रोक्तो ध्यानमीश्वरचिन्तनम् ।
मनोधृतिर्धारणास्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थिति ॥१०
अमूर्त्तो चेट्टणी स्यात् ततो मूर्त्ति विचिन्तयेत् ।
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये शङ्खचक्रगदाधर. ॥११
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो वनमालाश्रिया युत ।
नित्य शुद्धो बुद्धियुक्त सत्यानन्दाह्वय पर ॥१२
आत्माऽहं परम ब्रह्म परमज्योतिरेव तु ।
चतुर्विशतिमूर्त्ति स शालग्रामशिलास्थित ॥१३
द्वारकादिशिलासस्थो ध्येय पूज्योऽपि वा हरि ।
मनसोऽभीप्सित प्राप्य देवो वैमानिको भवेत ॥
निष्कामी मुक्तिमाप्नोति मूर्त्ति ध्यायन्स्तुवन् जपन् ॥१४

जिसका सारथी अर्थात् इस शरीर रूपी रथ के इन्द्रिय स्वरूपी अश्वों का चलाने वाला ड्राइवर विज्ञ न होना है वह मनुष्य मन रूपी प्रग्रह (बागडोर) को हाथ रखने वाला होकर इस स्वहिनी के पार लग जाया करता है अर्थात् इस ससार से पार हो जाया करता है और वह ही विष्णु का परम पद होता है ॥८॥ अहिंसा आदि को यम कहा जाता है और शौच आदि नियम कहे जाया करते है। पद्म आदि को आसन कहते है तथा वायु पर विजय प्राप्त करने को ही प्राणायाम कहा जाता है। इस प्रक्रिया पर जय प्राप्त कर लेने की स्थिति को ही 'प्रत्याहार'—इस नाम से योग के एक अङ्ग को पुकारा जाता है। इस प्रकार से ईश्वर के चिन्तन करने को ध्यान कहते हैं। मन की धृति का अर्थात् मन को बन्दित कर लने का नाम ही धारणा कही जाती है। इस तरह से मन का एकाग्र करके जो ब्रह्म मे स्थिति कर ली जाती हैं वह ही समाधि कही जाया करती है ॥६।१०॥ यदि निराकार ब्रह्म का ध्यान नहो

ध्यन पावे तो साकार ब्रह्म का ही चिन्तन करना चाहिये। ध्यान करने वाले पुरुष को ऐसा ध्यान करना चाहिए कि उसके हृदय रूपी कमल में जो उसके मध्य भाग में कर्णिका है वहाँ पर शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म इन चारों आयुधों के धारण करने वाले प्रभु हैं जो श्रीवत्स एवं कौस्तुभ को धारण किये हुए हैं तथा वनमाला पहिने हुए हैं। उनका स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्धियुक्त, सत्य, पर एवं आनन्दमय है ॥११॥१२॥ मैं आत्मा ही परमब्रह्म एवं परम ज्योति हूँ। चौबीस मूर्तियों वाला मैं ही शालग्राम की शिला में भी स्थित रहता हूँ ॥१३॥ द्वारका आदि की शिला में स्थित रहने वाला भी हरि ध्यान करने के तथा पूजा के योग्य है जो भी मेरी मूर्ति ध्यान करने वाले को अभीष्ट हो उसी का ध्यान करके वह अभीप्सित की प्राप्ति कर लेता है और वैमानिक देव हो जाता है। तात्पर्य यह है कि स्वर्गादि का अधिकारी देव बन जाता है। जो कामनाओं से रहित होकर मेरी मूर्ति का ध्यान किया करता है वह परम पद मुक्ति को प्राप्त करता है चाहे मेरा ध्यान करे, स्तवन करे या मेरा जाप करे ॥१४॥

१६ शालग्राम लक्षण

प्रसङ्गात्कथयिष्यामि शालग्रामस्य लक्षणम्।
शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम् ॥१
शङ्खचक्रगदापद्मो केशवाख्यो गदाधर।
साब्जकौमोदकीचक्रशङ्खी नारायणो विभु ॥२
सचक्रशङ्खाब्जगदो माधव श्रीगदाधर।
गदाब्जशङ्खचक्री वा गोविन्दोऽव्याद् गदाधर ॥३
पद्मशङ्खारिगदिने विष्णुरूपाय ते नमः।
सशङ्खाब्जगदाचक्रमधुसूदनमूर्तये ॥४
नमो गदारिशङ्खाब्जमूर्त्तिस्त्रिविक्रमाय च।
सारिकौमोदकीपद्मशङ्खवामनमूर्त्तये ॥५
चक्राब्जशङ्खगदिने नमः श्रीधरमूर्त्तये।
हृषीकेशायाब्जगदाशङ्खिने चक्रिणे नमः ॥६

साब्जचक्रगदाशंखपद्मनाभस्वरूपिणे ।
दामोदरशंखचक्रगदापद्मिन्नमोनमः ॥७
सारिशङ्खगदाब्जाय वासुदेवाय वै नमः ।
शङ्खाब्जचक्रगदिने नमः सङ्कर्षणाय च ॥८

श्री हरि ने कहा—अब मैं प्रसङ्गवश शालग्राम के लक्षण बतलाता हूँ। शालग्राम की शिला का बहुत ही अधिक महत्व है। शालग्राम की शिला के स्पर्श करने से करोड़ों जन्मों के अघों का नाश हो जाता है ॥१॥ शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा के धारण करने वाले भगवान् का नाम केशव है। कमल, कौमोदकी, चक्र और शङ्ख धारी विभु का नाम नारायण है ॥२॥ चक्र, शङ्ख, पद्म और गदा वाले श्रीगदाधर का नाम माधव है। गदा, अब्ज, शङ्ख और चक्र के धारण करने वाले गदाधर गोविन्द अर्चना के योग्य है ॥३॥ पद्म, शङ्ख और शत्रु की नाशक गदा के धारण करने वाले विष्णु के स्वरूप आपके लिये नमस्कार है। शङ्ख, चक्र, अब्ज, गदा के सहित मधु दैत्य के सूदन करने वाली मूर्ति के लिये नमस्कार है ॥४॥ गदादि, शङ्ख, अब्ज की मूर्ति त्रैविक्रम के लिये प्रणाम है। सारि, कौमोदकी अर्थात् आरके सहित कौमोदकी गदा, पद्म और शङ्ख वाले वामन मूर्ति वाले आपको नमस्कार है। चक्र, अब्ज, शङ्ख और गदा वाले श्रीधर मूर्ति को नमस्कार है। हृषीकेश अर्थात् विषयेन्द्रियों के स्वामी, अब्ज, गदा और शङ्खधारी चक्री के लिए नमस्कार है ॥५।६॥ अब्ज, चक्र, गदा और शङ्ख के सहित पद्मनाभ के स्वरूप वाले—हे दामोदर! हे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारिन्! आपके लिए बारम्बार नमस्कार है ॥७॥ सारि, शङ्ख, गदा और अब्ज के सहित वासुदेव के लिए प्रणाम है। शङ्ख, अब्ज, चक्र और गदा के धारण करने वाले सङ्कर्षण के लिए प्रणाम है ॥८॥

सुशंखसुगदाब्जारिधृते प्रद्युम्नमूर्त्तये ।
नमोऽनिरुद्धाय गदाशङ्खाब्जारिविधारिणे ॥९
साब्जशंखगदाचक्रपुरुषोत्तममूर्त्तये ।
नमोऽधोऽक्षजरूपाय गदाशंखारिपद्मिने ॥१०

नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाशङ्खारिधारिणे ।
पद्मारिशङ्खगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ॥११
सशङ्खचक्राब्जगदं जनार्दनमिहानये ।
उपेन्द्रं सगदं सारिं पद्मशङ्खिन्नमो नमः ॥१२
सुचक्राब्जगदाशङ्खयुक्ताय हरिमूर्त्तये ।
सगदाब्जारिशङ्खाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये ॥१३
शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृक् ।
शुक्लाभो वासुदेवाख्यः सोऽव्याद्वः श्रीगदाधरः ॥१४
लग्नद्विचक्रो रक्ताभः पूर्वभागन्तु पद्मभृत् ।
सङ्कर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः ॥१५
सदीर्घः सशिरश्छिद्रो योऽनिरुद्धस्तु वर्तुलः ।
नीलो द्वारि त्रिरेखश्च अथ नारायणोऽसितः ॥१६

सुन्दर शङ्ख, सुन्दर गदा, अब्ज और अरि के धारण करने वाले प्रद्युम्न की मूर्ति आपके लिए नमस्कार है तथा गदा, शङ्ख, अब्ज और अरि के विधारी अनिरुद्ध के लिए नमस्कार है ॥९। अब्ज, शङ्ख, गदा, चक्र के सहित पुरुषोत्तम मूर्ति वाले के लिए प्रणाम है। गदा, अरि, शङ्ख और पद्म वाले अधोक्षज रूप वाले के लिए प्रणाम है ॥१०॥ पद्म, गदा, शङ्ख और अरि के धारण करने वाले नृसिंह मूर्ति के लिये नमस्कार है। पद्म, अरि, शङ्ख तथा गदा वाले अच्युत मूर्ति भगवान् को नमस्कार है ॥११॥ शङ्ख, चक्र, अब्ज, गदा से समन्वित भगवान् जनार्दन को यहाँ लाता हूँ। गदा और अरि के सहित उपेन्द्र को है पद्म और शङ्ख के धारी! बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सुन्दर चक्र अब्ज, गदा और शङ्ख से युक्त हरि की मूर्त्ति के लिये प्रणाम है। गदा, अब्ज, अरि और शङ्ख से संयुत भगवान् श्रीकृष्ण मूर्त्ति के लिए नमस्कार है ॥१३॥ शालग्राम शिला के द्वार पर गत एवं लग्न दो चक्र के धारण करने वाले, शुक्ल आभा से युक्त वासुदेव नाम वाले श्री गदाधर हैं वह भगवान् हमारी रक्षा करें। ॥१४॥ सलग्न दो चक्र वाले, रक्त आभा से युक्त, पूर्व भाग में पद्मभृत् सङ्कर्षण तथा सूक्ष्म चक्र वाले, पीत वर्ण से युक्त प्रद्युम्न, सदीर्घ तथा शिरश्छिद्र से सम-

न्वित जो वर्त्तुल अनिरुद्ध, द्वार पर नील, तीन रेखा वाले असित वर्ण से युक्त नारायण रक्षा करे ॥१५।१६॥

मध्ये गदाकृती रेखा नाभिचक्रो महोन्नत. ।
पृथुवक्षो नृसिंहो व कपिलोऽव्यात्त्रिविन्दुक ॥१७
अथवा पञ्चविन्दुस्तत्पूजन ब्रह्मचारिण. ।
वराहशक्तिलिङ्गोऽव्याद्विषमद्वयचक्रक. ॥१८
नीलस्त्रिरेख स्थूलोऽथकूर्ममूर्त्ति स विन्दुमान् ।
कृष्ण. स वर्त्तुलावर्त्त पातु वो नतपृष्ठक ॥१९
श्रीधर पञ्चरेखोऽव्याद्वनमाली गदाङ्कित ।
वामनो वर्त्तुलो ह्रस्वो वामचक्र सुरेश्वर ॥२०
नानावर्णोऽनेकमूर्तिर्नागभोगी त्वनन्तक ।
स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्र सुनीलक ॥२१
सङ्कीर्णद्वारको पात्वादथ ब्रह्मा सुलोहित ।
सदीघरेख शुषिर एकचक्राम्बुज पृथु ॥२२
पृथुच्छिद्र स्थूलचक्र कृष्णो विन्दुश्च विन्दुमत् ।
हयग्रीवोऽङ्कुशाकार पञ्चरेख सकौस्तुभ ॥२३
वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजाऽसित ।
मत्स्यो दीर्घोऽम्बुजाकारो द्वाररेखश्च पातु व ॥२४
रामचक्रो दक्षरेख श्यामो वोऽव्यात्त्रिविक्रम ।
शालग्रामे द्वारकाया स्थिताय गदिने नम ॥२५
एकद्वारे चतुश्चक्र वनमालाविभूषितम् ।
स्वर्णरेखासमायुक्त गोष्पदेन विराजितम् ।
कदम्बकुसुमाकार लक्ष्मीनारायणोऽवतु ॥२६

मध्य में गदा की आकृति वाली रेखा, नाभिचक्र, महान् उन्नत, पृथु वक्ष वाले नृसिंह, त्रिविन्दुक कपिल हमारी रक्षा करें ॥१७॥ अथवा पञ्च विन्दु ब्रह्मचारी का वह पूजन, वराह शक्ति लिङ्ग, विषमद्वय चक्रक रक्षा करें ॥१८॥ नील–तीन रेखा से युक्त, स्थूल, कूर्म मूर्ति, विन्दुमान्, वर्त्तुलावर्तक नत पृष्ठ

एक से लक्षित जो गदाधारी सुदर्शन भगवान् है वह आपकी रक्षा करे। दो से लक्ष्मीनारायण, तीन मूर्तियों से युक्त त्रिविक्रम भगवान् रक्षा करे। चार से चतुर्व्यूह, पाँच से भगवान् वासुदेव, छः से प्रद्युम्न और इधर-उधर भगवान् मझूपण रक्षा करे। आठ से भगवान् पुरुषोत्तम आपकी रक्षा करें। इस प्रकार से नवाङ्कित नव व्यूह होते हैं। दश से दशावतार वाले भगवान् अनिरुद्ध रक्षा करे। द्वादश आत्मा वाले जो बारह से युक्त हैं रक्षा करें। अन्त तक भगवान् ऊपर से रक्षा करे। इन भगवान् के मूर्त्ति स्वरूप इस स्तोत्र का जो पाठ किया करता है वह दिव लोक को प्राप्त होता है ॥२७ से ३०॥ ब्रह्मा चार मुख वाले दण्डी और दो कमण्डलुओं से युक्त हैं। महेश्वर पाँच मुख वाले हैं और वृषध्वज दश बाहुओं से युक्त हैं ॥३१॥ जिस प्रकार से यह आयुधों से युक्त हैं वैसे ही गौरी, चण्डिका और सरस्वती देवी तथा महालक्ष्मी माताएं हैं। दिवाकर पद्म हाथ में धारण करने वाले हैं। गज के समान मुख वाले गण अर्थात् गणेश हैं मुखों से युक्त स्कन्द हैं। ये इस तरह अनेक प्रकार के गुण हैं ये सब स्थापित एवं समर्चित होते हैं और प्रासाद-से वास्तु का पूजन किये जाने पर पुरुष के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि सब प्राप्त किये जाया करते हैं ॥३२।३३।

२०—वास्तुयाग-विधि

वास्तुं सक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्।
ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे यजेत् ॥१
ईशाने च शिरः पादौ नैर्ऋते ऽग्न्यनिले करौ।
आवासवासवेश्मादौ पुरे ग्रामे वणिक्पथे ॥२
प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च।
द्वात्रिंशत् सुरान्वाह्ये तदन्तश्च त्रयोदश ॥३
ईशश्चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्य्यः सत्यो भृगुश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥४
पूषा च वितथश्चैव ग्रहक्षेत्रयमावुभौ।
गन्धर्वो भृगुराजस्तु मृगः पितृगणास्तथा ॥५

द्वौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो गणाधिपः ।
असुरः शेषपादो च रोगोऽहिमुख्य एव च ॥६
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा ।
बहिर्द्वात्रिंशद्देवे तु तदन्तश्चतुरः शृणु ॥७
ईशानादि चतुष्कोण संस्थितान्पूजयेद् बुधः ।
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ॥८
मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टो च समीपगान् ।
देवानेकोत्तरानेतान्पूर्वादौ नामतः शृणु ॥९

श्री हरि भगवान् ने कहा—अब मैं संक्षेप से वास्तु के विषय में बतलाता हूं जो कि गृह आदि में विघ्नों का नाश करने वाला है । ईशान कोण से आरम्भ करके इक्यासी पद तक यजन करना चाहिए ॥१॥ ईशान उपदिशा में सिर का यजन करना चाहिए—नैर्ऋत दिशा में पादों का अर्चन करे तथा अग्नि एवं वायव्य में दोनों करों का यजन करना चाहिए । आवास, वास, वेश्म आदि में पुर, ग्राम, वाणिक्पथ में, प्रासाद, आराम दुर्ग में और देवालय तथा मठों में बत्तीस देवों का आवाहन करना चाहिए । उनके अन्दर तेरह का आवाहन करे ॥२।३॥ ईश, पर्जन्य, जयन्त, कुलिश के आयुध वाला अर्थात् इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, दोनों ग्रहक्षेत्र यम गन्धर्व, भृंगराज, मृग तथा पितृगण । द्वारपाल सुग्रीव पुष्पदन्त, गणाधिप, असुर, शेषपाद, रोग, अहिमुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, दिति ये बाहर बत्तीस देवगण हैं । इसके अन्दर चार हैं । उनका श्रवण करो ॥४।५।६।७॥ बुध पुरुष को ईशान आदि चार कोणों में संस्थित देवों का पूजन करना चाहिए । आप सावित्री, जय, रुद्र, मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके समीप में रहने वाले आठ पूर्वादि में एकोत्तर देवों का यजन करे । उनके नाम श्रवण करो ॥८।९॥

अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिप ।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ॥
अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्रह्मणः स्मृता ॥१०

ईशानकोणादारभ्य दुर्गे च वंश उच्यते ।
आग्नेयकोणादारभ्य वंशो भवति दुर्द्धरः ॥११
अदिति हिमवन्तञ्च जयन्तञ्च इदं त्रयम् ।
नायिका कलिका नाम शक्राद् गन्धर्वगाः पुनः ॥
वास्तुदेवान्पूजयित्वा गृहप्रासादकृद्भवेत् ॥१२
सुरेज्यः पुरतः कार्यो दिश्याग्नेय्यां महानसम् ।
कपिनिर्गमने येन पूर्वतः सत्रमण्डपम् ॥१३
गन्धपुष्पगृहं कार्यमैशान्यां पट्टसयुतम् ।
भाण्डागारञ्च कौवेर्यां गोष्ठागारञ्च वायवे ॥१४

प्रयमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर और आठवां आप वत्स हैं जो ब्रह्म के चारों ओर कहे गये हैं ॥१०॥ और दुर्ग में ईशान कोण से प्रारम्भ करके वंश कहा जाता है। आग्नेय कोण से प्रारम्भ करके वंश दुर्धर होता है ॥११॥ अदिति, हिमवन्त और जयन्त ये तीनों, कलिका नाम वाली नायिका शक्र (इन्द्र) से गन्धर्व को जाने वाली इन समस्त वास्तु देवों का पूजन करके गृह प्रासाद का कर्त्ता होना चाहिए। ॥१२॥ आगे सुरेज्य करना चाहिए, आग्नेयी दिशा में महानस (रसोईघर) रखना चाहिए। पूर्व में कपि निर्गमन में सत्र मण्डप रक्खे। ऐशानी दिशा में पट्ट से संयुक्त गन्ध एवं पुष्पों का गृह रखना चाहिए। कौबेरी दिशा में भाण्डों (बर्तनों) का आगार रखे। वायव्य दिशा गोष्ठागार रखना चाहिए।१३।१४।

उदगाश्रय वारुण्या वातायनसमन्वितम् ।
समित्कुशेन्धनस्थानमायुधाना च नैऋते ॥१५
अभ्यागतालय रम्यं सशय्यासनपादुकम् ।
तोयाग्निदीपसद्भृत्यैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत् ॥१६
गृहान्तराणि सर्वाणि सजलैः कदलीगृहैः ।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत् ॥१७

प्राकारं तद्बहिर्दद्यात् पंचहस्तप्रमाणतः ।
एवं विष्णवाश्रमं कुर्याद्वनैश्चोपवनैर्युतम् ॥१८

जल के आश्रय का स्थान वारुणी दिशा में नियत करे जो कि वायु के आने जाने वाले वातायनों से संयुत हो । समिधा, कुशा, ईंधन और आयुधों के रखने का स्थान नैऋत्य दिशा में होना चाहिए । अभ्यागत पुरुषों के रहने का स्थान परम सुन्दर होना चाहिए जो शय्या, आसन और पादुका आदि से समन्वित होवे और वहाँ पर जल, अग्नि, दीपक तथा समुचित भृत्य भी रहने चाहिए । यह स्थान दक्षिण दिशा में होना चाहिए ॥१५।१६॥ समस्त गृहों के अन्तर्भाग सजल कदलीगृह और पाँच वर्ण वाले कुसुमों से सुशोभित कल्पित करने चाहिए ॥१७॥ उसके बाहिर पाँच हाथ के परिमाण वाला प्राकार रखना चाहिए । इस प्रकार से वन तथा उपवनों से समन्वित भगवान् विष्णु का आश्रम बनाना चाहिए ॥१८॥

चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादादौ प्रपूजितः ।
मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा द्विपदास्त्वर्यमादयः ॥१६
कर्णे चैवाथ शिख्याद्यास्तथा देवाः प्रकीर्त्तिताः ।
तेभ्यो ह्युभयतः सार्द्धाश्चान्येऽपि द्विपदाः सुराः ॥
चतुःषष्टिपदा देवा इत्येवं परिकीर्त्तिताः ॥२०
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।
ईशानाद्यास्ततो बाह्ये देवाद्या हेतुकादयः ।२१
हेतुकस्त्रिपुरान्तश्च अग्निवेतालको यमः ।
अग्निजिह्वः कालकश्च करालो ह्येकपादकः ॥२२
ऐशान्यां भीमरूपस्तु पाताले प्रेतनायकः ।
आकाशे गन्धमाली स्यात्क्षेत्रपालास्ततो यजेत् ॥२३
विस्ताराभिहतं दैर्घ्यं राशिं वास्तोस्तु कारयेत् ।
हृत्वा च वसुभिर्भागं शेषं चैवायमादिशेत् ॥२४

पुनर्गुणितमष्टाभिऋर्क्षभागं तु भाजयेत् ।
यच्छेषं तद्भवेद्दक्षं भागैर्हृत्वा व्ययं भवेत् ॥२५
ऋक्षं चतुर्गुणं कृत्वा नवभिर्भागहारितम् ।
शेषमंशं विजानीयाद्वलस्य मत यथः ॥२६
अष्टाभिर्गुणितं पिण्डं षष्टिभिर्भागहारितम् ।
यच्छेषं तद्भवेज्जीवं मरणं भूतहारितम् ॥
वास्तुक्रोडे गृहं कुर्यान्न पृष्ठे मानवः सदा ।
वामपार्श्वेन स्वपिति नात्रकार्या विचारणा ॥२८

चौंसठ पदो वाला वास्तु प्रासाद के आदि मे प्रपूजित होवे । मध्य मे चतुष्पद ब्रह्मा और द्विपद अर्यमा आदिक पूजित होवें । कर्ण मे शिखी आदि देव कहे गये हैं । उनके दोनो ओर अन्य भी द्विपद सुर होते हैं । ये सभी चतुः षष्टि पदो वाले देव परिकीर्तित किये गये हैं ॥१९।२०॥ चरकी, विदारी, पूतना पाप राक्षसी ईशानाद्य हैं । इसके अनन्तर बाह्य मे हेतुकादि देवाद्य है । हेतुक त्रिपुरान्त, अग्नि, वेतालक, यम, अग्निजिह्व, कालका, कराल, एक पावक ॥ ऐशानी दिशा मे भीमरूप, पाताल मे प्रेतनायक, आकाश मे गन्धमाली इसके अनन्तर क्षेत्रपालो का यजन करे । दैर्घ्यराशि को विस्तार से अभिहृत करे । इस तरह से वास्तु का करावे और आठ से भाग करके शेष को आदिष्ट करना चाहिए ॥२१ से २४ तक। फिर आठ मे गुणित कर ऋक्षभाग को भाजित करे । जो शेष हो वह ऋण होता है । भागो से हरण करके व्यय होता है । ॥२५॥ ऋक्ष को चतुर्गुण करके नौ से भाग हरित करे । जो शेष रहता है वह जीव होता है और भूत हारित मरण है ॥२६।२७॥ वास्तु के क्रोड (गोद) मे मानव को गृह करना चाहिए सदा पृष्ठ में न करे । वाम पार्श्व से सोना है-- इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥२८॥

सिंहकन्यातुलायाञ्च द्वारं शुद्धे दक्षोत्तरम् ।
एवं च वृश्चिकादौ स्यात्पूर्वदक्षिणपश्चिमम् ।२९
द्वारं दीर्घार्द्धविस्तारं द्वाराण्यष्टौ स्मृतानि च ॥३०

स्वतल्पे प्लवनीचत्वं सर्पेण मूत्रभाजनम् ।
पुत्रहीनन्तु रोद्रेण वीर्यघ्नं दक्षिणे तथा ॥३१
वह्नौ बन्धश्च वायौ च पुत्रलाभः सुतृप्तिदः ।
धनदे नृपपीडाद बन्धन रोगदं जले ॥३२
नृपभीतिमृ तापत्य ह्यनपत्यञ्च वैरिदम् ।
अर्थ दे चार्थहानिश्च दोषदं पुत्रमृत्युदम् ।
द्वाराण्युत्तरसज्ञानि पूर्वद्वाराणि वक्ष्यहम् ॥३३
अग्निभीतिर्बहुकन्या धनसम्मानकं पदम् ।
राजघ्न रोगद पूर्वे फलतो द्वारमीरितम् ॥३४
ईशानादौ भवेत्पूर्वमाग्नेयादौ तु दक्षिणम् ।
नैऋ त्यादौ पश्चिम स्याद्वायव्यादौ तु चोत्तरम् ॥
अष्टभागे कृते भागे द्वाराणा च फलाफलम् ।३५
अश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधा पूर्वादौ स्यादुदुम्बरः ।
गृहस्य शोभनः प्रोक्त ईशाने चैव शाल्मलि ॥
पूजितो विघ्नहारी स्यात्प्रासादस्य गृहस्य च ॥३६

सिंह, कन्या और तुला में द्वार शुद्ध करे । इसके अनन्तर उत्तर में इसी प्रकार से वृश्चिकादि मे पूर्व-दक्षिण और पश्चिम होवे । दीर्घ के आधे विस्तार वाला द्वार होना चाहिए । आठ द्वार कहे गये हैं ॥२९।३०॥ स्वतल्प मे प्लव नीचत्व है—सर्प से मूत्र भाजन है—रोद्र मे पुत्रहीनता होती है—दक्षिण मे वीर्य का हनन करने वाला है ॥३१॥ वह्नि दिशा मे बाध होना है—वायु दिशा मे पुत्र का लाभ एवं सुतृप्तिप्रद है । धनद दिशा मे नृप को पीड़ा देने वाला—जल मे मन्थन और रोगप्रद होता है ॥३२॥ नृप से भय—मृतापत्यता (सन्तान का मृत हो जाना—सन्तति का अभाव तथा वैरियों को देने वाला होता है । अर्थद मे अर्थ की हानि—दोषप्रद और पुत्र की मृत्यु देने वाला है । अब मैं पूर्वद्वार उत्तर संज्ञा वाले द्वारों को बतलाता हूँ ॥३३॥ अग्नि का भय बहुत कन्याओं का होना—धन तथा सम्मान प्रदान करने वाले पद का पाना—राजा का

हनन—रोगप्रद पूर्व में फल से द्वार अभीष्ट होता है ॥३४॥ ईशान आदि में पूर्व होता है—आग्नेय आदि में दक्षिण—नैर्ऋत्य आदि में पश्चिम और वायव्य आदि में उत्तर होता है। भाग के अष्टभाग करने पर द्वारों का फलाफल होता है ॥३५॥ पूर्वादि में अश्वत्थ (पीपल)—प्लक्ष (पाखर)—न्यग्रोध (बड़) और उदुम्बर (गूलर) गृह का शोभन कहा गया है। ईशान में शाल्मलि प्रासाद तथा गृह का पूजित होता हुआ विघ्नों का हरण करने वाला होता है। ॥३६॥

२१—प्रासादलक्षण

प्रासादानां लक्षणञ्च वक्ष्ये शौनक तच्छृणु।
चतुःषष्टिपदं कृत्वा दिग्विदिक्षूपलक्षितम् ॥१
चतुष्कोणं चतुर्भिश्च द्वाराणि सूर्यसंख्यया।
चत्वारिंशाष्टभिश्चैव भित्तीनां कल्पना भवेत् ॥२
ऊर्ध्वक्षेत्रसमा जङ्घा तदूर्ध्वे द्विगुणा भवेत्।
गर्भविस्तारविस्तीर्णा शुकाङ्घ्रिश्च विधीयते ॥३
तत्त्रिभागेन कर्तव्यं पञ्चभागेन वा पुनः।
निर्गमस्तु शुकाङ्घ्रेश्च उच्छ्रायः शिखरार्द्धगः ॥४
चतुर्द्धा शिखरं कृत्वा त्रिभागे वेदिबन्धनम्।
चतुर्थे पुनरस्यैव कण्ठमामूलसाधनम् ॥५
अथवापि समं वास्तु कृत्वा षोडशभागिकम्।
तस्य मध्ये चतुर्भागमादौ गर्भन्तु कारयेत् ॥६
भागद्वादशिका भित्तिं ततश्च परिकल्पयेत्।
चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः ॥७
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायाच्च मानतः।
शिखरार्द्धस्य चार्द्धेन विधेयास्तु प्रदक्षिणा ॥८

चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमस्तु तथा बुधैः ।
पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः ॥९
भागमेकं गृहीत्वा तु निर्गमं कल्पयेत् पुनः ।
गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः ॥
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्य हि लक्षणम् ॥१०

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब प्रासादों का लक्षण बताऊँगा, उसे तुम सुनो । दिशा और विदिशाओं में उपलक्षित उपर्युक्त चौंसठ पदों वाला करके चारों ओर भोकोर और सूर्य संख्या से अर्थात् बारह द्वार करे और अड़तालीस भित्तियों की कल्पना होनी चाहिए । ऊर्ध्व क्षेत्र के समान जघा उसके ऊर्ध्व में द्विगुण होवे । गर्भ के विस्तार से विस्तीर्ण शुकाङ्घ्रि की जाती है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ यह त्रिभाग से अथवा पञ्च भाग से करे । निर्गम और शुकाङ्घ्रिका शिखर का अर्धगामी उच्छ्राय (ऊँचाई) होवे ॥४॥ चार प्रकार से शिखर करके त्रिभाग में वेदी बन्धन करे फिर इसके ही चतुर्थ में आमूल साधन कण्ठ करे ॥५॥ अथवा वास्तु को षोडश भाग वाला समान करके उसके उसके मध्य में आदि में चार भाग को गर्भ करावे ॥६॥ इस के अनन्तर द्वादश भाग को भित्ति की कल्पना करनी चाहिए । प्रमाण से चतुर्भाग से भित्तियों की ऊँचाई के मान से होवे । भित्ति की ऊचाई से शिखर की ऊचाई दूनी होनी चाहिए । शिखरार्ध के अर्धभाग से प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करनी चाहिए ॥७॥८॥९॥ बुध पुरुषों के द्वारा चारों दिशाओं में निर्गम (निकास मार्ग) जानना चाहिए । विचक्षण पुरुष को पाँचवाँ भाग गर्भ का मान संभाजित करके उसमें से फिर एक भाग ग्रहण करके निगम की कल्पना करनी चाहिए । गर्भ सूत्र के समान भाग से आगे मुख मण्डप करे । यह साधारण प्रासाद का लक्षण उद्दिष्ट किया गया गया है ॥१०॥

लिङ्गमानमथो वक्ष्ये पीठो लिङ्गसमो भवेत् ।
द्विगुणेन भवेद् गर्भः समन्ताच्छौनक ध्रुवम् ।
तद्विधा च भवेद् भित्तिर्जङ्घा तद्विस्तरार्धगा ॥११
द्विगुणं शिखरं प्रोक्तं जङ्घायाश्चैव शौनक ।
पीठगर्भान्तरं गर्भं तन्मानेन शुकाङ्घ्रिकाम् ॥१२

निर्गमस्तु समाख्यात शेष पूर्ववदेव तु ।
लिङ्गमान स्मृतो ह्येष द्वारमानथोच्यते ॥१३
कराग्र वेदवत्कृत्वा द्वार भागाष्टम भवेत् ।
विस्तरेण समाख्यात द्विगुण स्वेच्छया भवेत् ॥१४
द्वारवत्पीठमध्ये तु शेष सुषिरक भवेत् ।
पादिक शेषिक भित्तिद्वारार्द्धेन परिग्रहात् ॥१५
तद्विस्तारसमा जङ्घा शिखर द्विगुण भवेत् ॥
उक्त मण्डपमानन्तु स्वरूप चापर वद ॥१६
गंवेद कारयेत् क्षेत्र यत्र तिष्ठन्ति देवता ।
इत्थ कृतेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतम् ॥१७
नेमि पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्तत ।
गर्भन्तु द्विगुण कुर्य्यान्नेम्या मान भवेदिह ॥
स एव भित्तेरुत्सेधो शिखरो द्विगुणो मत ॥१८

इसके अनन्तर लिङ्ग मान कहता हूँ । पीठ लिङ्ग के समान होना चाहिए । हे शौनक ! चारो ओर निश्चय ही द्विगुण भाग से गर्भ होना चाहिए। इस प्रकार की भित्ति हो और जघा उसके विस्तार स अर्ध भाग वाली होनी चाहिए ॥११॥ हे शौनक ! दुगुना शिखर कहा गया है जो कि जघा से होना चाहिए । पीठ गर्भ से अवर कर्म उसके मान शुक अध्रिका होवे ।१२। निर्गम तो कह दिया गया है । शेष सब पूर्व की भाँति ही होवे । यह लिङ्ग का मान कहा गया है । अब यह द्वार का मान कहा जाता है ॥१३॥ वेद की भाँति कराग्र करके अाठवाँ भाग द्वार होना चाहिए । विस्तार से यह बताया गया है स्वेच्छा से दुगुना हो जाता है ॥१४॥ द्वार की भाँति पीठ के मध्य मे शेष सुषिरक होता है । द्वारार्ध के भाग से परिग्रह से शेषिक पादिक भित्ति होती है ॥१५॥ उसके विस्तार के समान जघा और दुगुना शिखर होता है । शुकाङ्घ्रि पूर्व की भाँति ही जान लेना चाहिए, और निगम की ऊँचाई होती है । यह मण्डप का मान कहा गया है अब दूसरा स्वरूप बतलाओ ।१६। गंवेद क्षेत्र करना चाहिए जहाँ

पर देवता स्थित रहा करते हैं। इस प्रकार मान के करने से इसका बाह्य भाग विनिर्गत हो जाता है ॥१७॥ प्रासाद के चारों ओर पाद से विस्तीर्ण नेमि होती है और गर्भ द्विगुण नेमि के मान से करना चाहिए जो कि यहां होता है। वहां ही भित्ति का उत्सेध दुगुना शिखर माना गया है ॥१८॥

प्रासादानाञ्च वक्ष्यामि मान योनिश्च मानत ।
वैराज. पुष्पकाख्यश्च कैलासो मालिकाह्वय ॥
त्रिपिष्टपञ्च पञ्चैते प्रासादा सर्वयोनय ॥१६
प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु सदायत ।
वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टास्रश्चेह च पञ्चम ॥२०
एतेभ्य एव सम्भूता प्रासादा सुमनोहरा ।
सवप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिंशाच्च एव च ॥२१
मेरुश्च मन्दरश्चैव विमानश्च तथापर ।
भद्रक सर्वतोभद्रो रुचको नन्दनस्तथा ॥२२
नन्दिवर्द्धनसञ्ज्ञश्च श्रीवत्सश्च नवेत्यमी ।
चतुरस्रा. समुद्भूता वैराजादिति गम्यताम् ॥२३
वलभी गृहराजश्च शालागृहञ्च मन्दिरम् ।
विमानञ्च तथा ब्रह्म मन्दिर भवन तथा ॥
उत्तम्भ शिविकावेश्म नवैते पुष्पकोद्भवा ॥२४
वलयो दुन्दुभि पद्मो महापद्मस्तथापर ।
मुकुली चास्य उष्णीषी शङ्खश्च कलशस्तथा ॥
गुवावृक्षस्तथान्यश्च वृत्ता कैलाससम्भवा ॥२५
गजोऽथ वृषभो हंसो गरुड सिंहनामक. ।
भूमुखो भूधरश्चैव श्रीजय पृथिवीधरः ॥
वृत्तायता समुद्भूता नवैते मालकाह्वयात् ॥२६
वज्र चक्र तथान्यच्च मुष्टिर बभ्रुशनिम् ।

वक्रः स्वस्तिक भङ्गो च गदा श्रीवृक्ष एव च ॥
विजयो नामतः श्वेतस्त्रिपिष्टिपसमुद्भवाः ॥२७

अब प्रासादों का मान और मान से योनि बतलाऊँगा। वैराज, पुष्पकाख्य, कैलास, मालिकाह्वय और त्रिपिष्टप ये पाँच प्रासाद सर्व योनि वाले होते हैं ॥१६॥ प्रथम प्रासाद जो वैराज नाम वाला होता है वह चतुरस्र होता है। द्वितीय उसके आयत वाला है। तीसरा वृत्त होता है तथा चतुर्थ वृत्तायत होता और पाँचवाँ अष्टास्र होता है ॥२०॥ सर्व प्रकृतिभूत इन्हीं से सुमनोहर प्रासाद सम्भूत होते हैं जो कि चालीस होते हैं ॥२१॥ मेरु, मन्दर, विमान तथा अपर भद्रक, सर्वतो भद्र, रुचक, नन्दन, नन्दि वर्धन, श्री वत्स—ये नौ हैं जो वैराज से चतुरस्र सम्भूत होते हैं ऐसा जान लो ॥२२।२३॥ बलभी, गृह राज, शाला-गृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्म मन्दिर, भवन, उत्तम्भ, शिविका वेश्म, ये नौ पुष्पक से उद्भव होने वाले हैं। वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, मुकुली, उष्णीपी, शङ्ख कलश, गुवावृक्ष ये वृत्त प्रासाद कैलास सञ्ज्ञक से सम्भूत होने वाले हैं।२४।२५। गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, भुमुख, भूधर, श्रीजय, पृथिवीधर ये वृत्तायत नौ मालक सञ्ज्ञा वाले से उद्भव प्राप्त करने वाले होते हैं। वज्र, चक्र, मुष्टिक, बभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, भङ्ग, गदा, श्री वृक्ष, विजय और श्वेत ये त्रिपिष्टिका से समुद्भव प्राप्त करने वाले हैं ॥२६।२७॥

त्रिकोणं पद्ममर्द्धेन्दुश्चतुष्कोणं द्विरष्टकम् ।
यत्र यत्र विधातव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु ॥२८
राज्यश्च विभवश्चैव ह्यायुर्वर्द्धनमेव च ।
पुत्रलाभः स्त्रियः पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद् भवेत् ॥२९
कुर्याद् ध्वजादिकं स्याता द्वारि गर्भगृहं तथा ।
मण्डप. समसस्याभिगुणितः सूत्रतस्तथा ॥३०
मण्डपस्य चतुर्थांशाद् भद्रः कार्यो विजानता ।
सार्द्धगवाक्षकोपेतो निर्गवाक्षोऽथवा भवेत् ॥३१

साद्धं भित्तिप्रमाणेन भित्तिमानेन वा पुनः ।
भित्तेर्द्वगुणयतो वापि कर्त्तव्या मण्डपाः क्वचित् ॥३२
प्रासादे मञ्जरी कार्या चित्रा विषमभूमिका ।
परिमाणविरोधेन रेखा वैषम्यभूषिता ॥३३
आधारस्तु चतुर्द्वारश्चतुर्मण्डपशोभित ।
शतशृङ्गसमायुक्तो मेरु प्रासाद उत्तम ॥३४
मण्डपास्तस्य कर्त्तव्या भद्रं स्त्रिभिरलकृता ।
गठनाकारमानाना भिन्नाद्भिन्ना भवन्ति ते ॥३५
कियन्तो येषु चाधारा निराधाराश्च केचन ।
प्रतिच्छन्दकभेदेन प्रासादा सम्भवन्ति ते ॥३६

त्रिकोण–पद्म–अर्घ इु–चतुष्कोण और द्विरष्टक जहाँ-जहाँ मण्डप का सस्थान हो करना चाहिए ॥२८॥ राज्य—वैभव—आयु की वृद्धि—पुत्रलाभ–स्त्री की पुष्टि ये फल त्रिकोणादि के क्रम से होते हैं ॥२६। ध्वजादिक करे जो कि द्वार पर व्याप्त हैं तथा गर्भगृह करे। सब संख्याओ से गुणित मण्डप करे। तथा ज्ञाता पुरुष को सूत्र से मण्डप के चतुर्थ अंश से भद्र करना चाहिए। वह सार्ध गवाक्ष से युक्त अथवा बिना गवाक्ष वाला होवे ॥३०।३१॥ सार्ध भित्ति के प्रमाण से अथवा फिर भित्ति के मान से या भित्ति की द्विगुणता से कही पर मण्डप बनाने चाहिए। प्रासाद मे विषम भूमिका वाली चित्र मञ्जरी करनी चाहिए। परिमाण के विरोध से भूषित रेखा करे। चार द्वार वाला और चार मण्डपों से शोभित आधार जो शतशृङ्गो (शिखरो) से समायुक्त हो वह मेरु प्रासाद उत्तम होता है ॥३२।३३।३४॥ उसके मण्डप तीन भद्रो से अलकृत करने चाहिए। गठनाकार मान वालो के वे भिन्न से भिन्न होते हैं ॥३५॥ जिनमे कुछ आधार होते हैं और कुछ निराधार ही होते हैं। वे प्रासाद प्रति छन्दक भेद से सम्भूत हुआ करते है ॥३६॥

अन्यान्य सस्कारात्तेषा गठनानामभेदतः ।
देवताना विशेषाय प्रासादा बहवः स्मृताः ॥३७

प्रासादे नियमो नास्ति देवतानां स्वयम्भुवाम् ।
तानेव देवतानाञ्च पूर्वमानेन कारयेत् ॥३८
चतुरस्रायतास्तत्र चतुष्कोणसमन्विताः ।
चन्द्रशालान्विताः कार्या भेरी शिखर संयुताः ॥३९
पुरतो वाहनानाञ्च कर्त्तव्या लघुमण्डपाः ।
नाट्यशाला च कर्त्तव्या द्वारदेशसमाश्रया ॥४०
प्रासादे देवतानाञ्च कार्या दिक्षु विदिक्ष्वपि ।
द्वारपालाश्च कर्त्तव्या मुख्या गत्वा पृथक्-पृथक् ॥४१
किञ्चिद् दूरतः कार्या मठास्तत्रोपजीविनाम् ।
प्रावृता जगती कार्या फलपुष्पजलान्विता ॥४२
प्रासादेषु सुरान् स्थाप्यान् पूजाभिः पूजयेन्नरः ।
वासुदेवः सर्वदेवः सर्वभाक् सद्गृहादिकृत् ॥४३

अन्य-अन्य संस्कार से गठन वाले उनके अभेद से देवताओं के विशेष के लिये बहुत-से प्रासाद कहे गये हैं ॥३७॥ स्वयम्भू देवताओं का प्रासाद में नियम नहीं होता है । उनको देवताओं के पूर्वमान से कराना चाहिए ॥३८॥ वहाँ चतुरस्रायता, चतुष्कोण समन्वित, चन्द्रशालान्वित और भेरीशिखर संयुत करने चाहिए । आगे के भाग में वाहनों के छोटे मण्डप बनाने चाहिए । द्वारदेश में समाश्रय रखने वाली नाट्यशाला भी करनी चाहिए ॥३८।३९।४०॥ प्रासाद में देवताओं के दिशा-विदिशाओं में भी पृथक् पृथक् मुख्य द्वारपाल करने चाहिए । ॥४१॥ कुछ दूर चलकर वहाँ पर मठोपजीवियों के भी मठ बनाने चाहिए । फल, पुष्प और जल से युक्त प्रावृता जगती करनी चाहिए । मानव प्रासादों में स्थाप्य सुरों का पूजनोपचारों से यजन करना चाहिए । उन गृहादि का करने वाला सर्व सेवनकारी सबके देव भगवान् वासुदेव हो हैं ॥४२।४३॥

२२—सर्वदेव प्रतिष्ठा वर्णन

प्रतिष्ठां सर्वदेवानां सक्षेपेण वदाम्यहम् ।
सुतिथ्यादौ सुरम्यश्च प्रतिष्ठां कारयेद् गुरुः ॥१

ऋत्विग्भिः सह चाचार्य वरयेन्मध्यदेशगम् ।
स्वशाखोक्तविधानेन अथवा प्रणवेन तु ॥२
पञ्चभिर्बहुभिर्वाथ कुर्यात् पाद्यार्घमेव च ।
मुद्रिकाभिस्तथा वस्त्रै गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥
मन्त्रन्यासं गुरुः कृत्वा ततः कर्म समारभेत् ॥३
प्रासादस्याग्रतः कुर्यान्मण्डप दशहस्तकम् ।
कुर्याद् द्वादशहस्तं वा स्तम्भैः षोडशभिर्युतम् ॥
ध्वजाष्टकैश्चतुर्हस्तां मध्ये वेदीञ्च कारयेत् ॥४
नदीसङ्गमतीरोत्थां वालुका तत्र दापयेत् ।
चतुरस्त्र कार्मुकाभ वर्त्तुलं कमलाकृति ॥५
पूर्वादितः समारभ्य कर्त्तव्यं कुण्डपञ्चकम् ।
अथवा चतुरस्त्राणि सर्वाण्येतानि कारयेत् ॥६
शान्तिकर्मविधानेन सर्वकामार्थसिद्धये ।
शिरःस्थाने तु देवस्य आचार्यो होममाचरेत् ॥
ऐशान्या केचिदिच्छन्ति उपलिप्यावनिं शुभाम् ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—अब मैं समस्त देवों की प्रतिष्ठा को संक्षेप से बतलाता हूँ। गुरु को सुशोभन किसी तिथि में सुरम्य प्रतिष्ठा करानी चाहिए। ऋत्विजों के साथ आचार्य का जो कि मध्यदेशज हो वरण करना चाहिए। अपनी शाखा में उक्त विधान के द्वारा अथवा प्रणव से करे ॥१।२॥ पाँच अथवा बहुत मुद्रिकाओं से पाद्य-अर्घ्य आदि करे तथा मन्त्र न्यास वस्त्र एवं गन्ध-माल्य और अनुलेपनों द्वारा करके फिर गुरु को कर्म का आरम्भ करना चाहिए ॥३॥ प्रासाद के आगे के भाग में दश हाथ प्रमाण वाले एक मण्डप की रचना करनी चाहिए। अथवा बारह हाथ के प्रमाण वाले मण्डप करे जिसमें सोलह स्तम्भ निर्मित किये गये हों। आठ ध्वजाओं से युक्त चार हाथ प्रमाण वाली मध्य में एक वेदी का निर्माण कराना चाहिए ॥४॥ नदी के सङ्गम के तट पर रहने वाली बालुका को वहाँ डलवाना चाहिए। चतुरस्र (चौकोर) कार्मुक (धनुष) की प्रभा के तुल्य वर्त्तुल (गोलाकार) अथवा कमल के पुष्प की आकृति वाले

पूर्व आदि दिशाओं में आरम्भ करके पाँच कुण्डों की रचना करे। अथवा ये कुण्ड सभी चतुरस्र ही निर्मित करा लेवे ॥५।६॥ समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए शान्ति कर्म के विधान से आचार्य को शिरस्थान में देवता का होम करना चाहिए। कुछ मनीषी गण इसे शुभ भूमि का लेपन कराकर ऐशानी दिशा में करने का मत रखते हैं ॥७॥

द्वाराणि चैव चत्वारि कृत्वा वै तोरणान्तिके।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थवैल्वपालाशखादिरा ॥८
तोरणा पञ्चहस्ताश्च वस्त्रपुष्पाद्यलङ्कृता।
निखनेद्धस्तमेकैकं चत्वारश्चतुरो दिश ॥९
पूर्वद्वारे मृगेन्द्रन्तु हयराजन्तु दक्षिणे।
पश्चिमे गोपतिर्नाम सुरशार्दूलमुत्तरे ॥१०
अग्निमीलेति मन्त्रेण प्रथमं पूर्वतो न्यसेत्।
ईषेत्वेति च मन्त्रेण दक्षिणस्या द्वितीयकम् ॥११
अग्नआयाहि मन्त्रेण पश्चिमस्या तृतीयकम्।
शन्नोदेवीति मन्त्रेण उत्तरस्या चतुर्थकम् ॥१२
पूर्वे अम्बुदवत् कार्या आग्नेय्या धूमरूपिणी।
याम्या वै कृष्णरूपा तु नैर्ऋत्या श्यामला भवेत् ॥१३
वारुण्या पाण्डरा ज्ञेया वायव्या पीतवर्णिका।
उत्तरे रक्तवर्णा तु शुक्लैशी च पताकिका ॥
बहुरूपा तथा मध्ये इन्द्रविद्येति पूर्विका ॥१४
अग्नि ससुप्तिमन्त्रेण यमोनागेति दक्षिणे।
पूज्या रक्षोहनावेति पश्चिमे उत्तरेऽपि च ॥१५
वात इत्यभिषिच्याथ आप्यायस्वेति चोत्तरे।
तमीशानमतश्चैव विष्णुर्लोकेति मध्यमे ॥१६

तोरण के समीप में चार द्वार करके न्यग्रोध (वट), उदुम्बर (गूलर) अश्वत्थ (पीपल), पलाश और खदिर के पाँच हाथ प्रमाण वाले तोरण करे, जो कि वस्त्र तथा पुष्पों से सुविभूषित हों। चारों दिशाओं में चार गर्त एक-

एक हाथ के खोदे ॥८।६॥ पूर्व दिशा के द्वार में मृगेन्द्र, दक्षिण में हयराज, पश्चिम में गोपति और उत्तर दिशा के द्वार पर सुर शार्दूल रक्खे। "अग्नि-मीले"—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पहिले पूर्व दिशा में न्यास करना चाहिए। "ईषेत्वेति"—इस मन्त्र से दक्षिण में दूसरा न्यास करे ॥१०।११॥ "अग्न आयाहि"—इस मन्त्र के द्वारा पश्चिम में तृतीय रक्खे। "शन्नो देवी"—इस मन्त्र से उत्तर दिशा में चतुर्थ को न्यस्त करे ॥१२॥ पूर्व दिशा में पताका मेघ के समान वर्ण वाली लगावे। आग्नेयी दिशा में धूम्र वर्ण वाली—याम्य दिशा में कृष्ण वर्ण वाली—नैऋत्य में श्यामल वर्ण से युक्त—वारुणी दिशा में पाण्डर—वायव्य में पीत वर्ण की, उत्तर में रक्त वर्ण वाली और ईशान दिशा में शुक्ल वर्ण वाली पताका होनी चाहिए। एवं मध्य भाग में बहुत से रूप और वर्णों वाली पताकाएँ होनी चाहिए। पूर्व में इन्द्र विद्या—अग्नि समुहि मन्त्र के द्वारा 'यमो नागा'—इससे दक्षिण में, पश्चिम और उत्तर में 'रक्षो हणावा' इससे पूजा करे, वात—इससे अभिषेक करके 'आप्यायस्व'—इससे उत्तर में। तमीशान—विष्णुलोक—इससे मध्य में यजन करे ॥१३ से १६॥

कलशौ तु ततो द्वौ द्वौ निवेश्यौ तोरणान्तिके।
वस्त्रयुग्मसमायुक्ताश्चन्दनाद्यैः स्वलंकृताः ॥१७
पुष्पैर्वितानैर्बहुलैरादिवर्णाभिमन्त्रिताः ।
दिक्पालाश्च ततः पूज्या. शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१८
त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अग्निमूर्द्धेति चापरे।
अस्मिन् वृक्ष इतश्चैव प्रचारीति परा स्मृता ॥१९
किञ्चेदघातु आचात्वा भिन्नादेवीति सप्तमी।
इमारुद्रेति दिक्पालान्पूजयित्वा विचक्षणः।
होमद्रव्याणि वायव्ये कुर्य्यात्सोपस्कराणि च ॥२०
शङ्खाञ्शास्त्रोदितान्भं तान्नैऋत्यां विन्यसेद् गुरुः।
आलोकनेन द्रव्याणि शुद्धिं यान्ति न संशय. ॥२१
हृदयादीनि चाङ्गानि व्याहृतिप्रणवेन च।
अस्त्रञ्चैव समस्तानां न्यासोऽयं सार्वकामिकः ॥२२

कोण म जाप करे। बुध याजक को "वास्तोष्पति'—इस मन्त्र के द्वारा वास्तु दोषो के उपशमनार्थ वास्तु पतिका जाप करना चाहिए ॥३०॥ कुम्भ के पूर्व भाग में भूत गणदेव के निय बलि का आहरण करे। "पठेत्"—इससे विद्याओ मा बुध को ग्रालम्भन करना चाहिए ॥३१॥ "योगे योग —इस म त्र के द्वारा ज्वलन कुशो से सस्तरण करते हुए फिर ऋत्विजो के साथ ग्राचार्य को स्नान पीठ पर हरण करना चाहिए ॥३२॥

विविधैर्ब्रह्मघोषैश्च पुण्याहजयमङ्गलैः ।
कृत्वा ब्रह्मरथे देव प्रतिष्ठन्ति ततो द्विजा ॥३३
ऐशान्यामानयेत्पीठ मण्डपे विन्यसेद् गुरु ।
भद्र कर्णेस्यथ स्नात्वा सूत्रबन्धनजेन तु ॥
सस्नाप्य लक्षरणे द्वार कुर्याद् दूराभिवादनं. ॥३४
मधुसर्पि ममायुक्त कांस्ये वा ताम्रभाजने ।
अक्षिणी चाञ्जयेच्चास्य सुवर्णस्य शलाकया ॥३५
अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेण नेत्रोद्घाटन्तु कारयेत् ।
लक्षणे क्रियमाणे तु नाम्नैक स्थापका वदेत् ॥३६
इमम्मे गाङ्गमन्त्रेण नेत्रयो शीतलक्रिया ।
अग्निमूर्द्धेति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम् ॥३७
बिल्वोदुम्बरमश्वत्थ वट पालाशमेव च ।
यज्ञायज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायकम् ॥३८
पञ्चगव्यैः स्नापयेच्च सहदेव्यादिभिस्तत ।
सहदेवी बला चैव शतमूली शतावरी ॥३९
कुमारी च गुडूची च सिंही व्याघ्री तथैव च ।
याम्रोपधीति मन्त्रेण स्नानमाषधिमज्जलैः ॥
या फलिनीति मन्त्रेण फलस्नान विधीयते ॥४०

अनेक भांति के ब्रह्म घोषो के द्वारा तथा पुण्याह और जय मङ्गल ध्वनियों के द्वारा देवता को ब्रह्मरथ म स्थित करके फिर द्विजगण प्रतिष्ठा करते

हैं ॥३३॥ उस पीठ को गुरु को चाहिए कि ऐशानी दिशा में ले आवे और फिर मण्डप में उसका न्यास करे। "भद्र कर्णं"—इससे स्नान करावे इसके अनन्तर सूत्रधन्धनज से संस्नपन कराकर दूराभि वाहनों से लक्षण में द्वार कर ॥३४॥ कांस्य पात्र में अथवा ताम्र पात्र में मधु, घृत से युक्त करके सुवर्ण शलाका से देवता के नेत्रों को अञ्जित करे ॥३५॥ "अग्नि ज्योति"—इस मन्त्र का उच्चारण करके देव के नेत्रों को उद्घाटित करना चाहिए। लक्षण के किये जाने पर स्थापक एक को नाम द्वारा बोले ॥३६॥ "इमम्मे गाङ्ग"—इत्यादि मन्त्र से नेत्रों की शीतल क्रिया करे। फिर "अग्निमूर्धा"-इस मन्त्र से वाँबी की मृत्तिका को अर्पित करे ॥३७॥ "यज्ञायज्ञ"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा बिल्व–उदुम्बर—अश्वत्थ–वट और पलाश इनके पञ्च कषाय को समर्पित करे ॥३८॥ पहिले पञ्च गव्य से स्नान करावे। पञ्चगव्य में गौ की पाँच वस्तुऐं होती हैं जिन में दूध–दधि,घृत,गोमूत्र और गोमय ये हैं। इनके अनन्तर सहदेवी आदि से स्नान करावे जिनमें सहदेवी—बला–शतमूली–शतावरी–कुमारी—गिलोय–सिंही–व्याघ्री ये सब हैं। इन समस्त ओषधियों वाले जल से 'या ओषधीति'—इत्यादि मन्त्र से स्नान कराना चाहिए। 'या फलानि"–इत्यादि मन्त्र के द्वारा, फलों द्वारा स्नान का विधान होता है ॥३९।४०॥

द्रुपदादिवेति मन्त्रेण कार्य्यमुद्वर्तनं बुधैः ।
कलशेषु च विन्यस्य उत्तरादिष्वनुक्रमात् ॥
रत्नानि चैव धान्यानि ओषधिं शतपुष्पिकाम् ॥४१
समुद्रांश्चैव विन्यस्य चतुरश्चतुरो दिश ।
क्षीरं दधि क्षीरोदस्य घृतोदस्येति वा पुनः ॥४२
आप्यायस्व दधिक्राव्णो या ओषधीरितीति च।
तेजोऽसीति च मन्त्रश्च कुम्भश्चैवाभिमन्त्रयेत् ॥
समुद्राख्यैश्चतुर्भिश्च स्नापयेत् कलशैः पुन ॥४३
स्नातश्चैव सुवेशश्च धूपो देयश्च गुग्गुलु ।
अभिषेकाय कुम्भेषु तत्तत्तीर्थानि विन्यसेत् ॥४४

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।
या ओषधीति मन्त्रेण कुम्भांश्चैवाभिमन्त्रयेत् ॥
तेन तोयेन यः स्नायात् स मुच्येत् सर्वपातकैः ॥४५
अभिषिच्य समुद्रैश्च चार्घ्यं दद्यात्ततः पुनः ।
गन्धद्वारेति गन्धश्च न्यासं वै वेदमन्त्रकैः ॥४६
स्वशास्त्रविहितैः प्राशं रिम मन्त्रेति वस्त्रकम् ।
कविह्वाविति मन्त्रेण आनयेन्मण्डपं शुभम् ॥४७

बुध पुरुषों के द्वारा 'द्रुपदा दिव"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा उद्वर्तन करना चाहिए । कलशों में विन्यास करके उत्तरादि में अनुक्रम से करे । रत्न, धान्य, औषधि, शतपुष्पिका, चार समुद्र, चार दिशाऐं, क्षीर, दधि जो कि क्षीरोद और घृतोद का है । इन सबका विन्यास कर "आप्यायस्व दधिक्रान्णो" "या औषधीरिति"—'तेजोऽसीति'—इन मन्त्रों से कुम्भ को अभिमन्त्रित करे । फिर चार समुद्र संज्ञक कलशों से स्नपन कराना चाहिए ॥४१।४२।४३॥ स्नान कराए हुए और सुन्दर पोशाक धारण कराये जाने पर गूगल की धूप देनी चाहिए । कुम्भों में अभिषेक कराने के लिये उन उन तीर्थों का विन्यस्त करना चाहिए ॥४४॥ पृथ्वी मण्डल में जितने जो-जो भी तीर्थ, नदियाँ तथा सागर हैं और जो-जो भी औषधियाँ हैं उनको "या ओषधि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा कुम्भ में अभिमन्त्रित करे । उस अभिमन्त्रित किये हुए जल से जो स्नान करे वह समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ॥४५॥ समुद्रों से अभिषेक करके फिर अर्घ्य देना चाहिए । गन्ध द्वारा दुराधर्षां—इत्यादि मन्त्र के द्वारा गन्ध का न्यास करे और वेदोक्त मन्त्रों के द्वारा तथा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा "इम मन्त्र,"—इससे वस्त्र देवे तथा 'कविह्वो'—इस मन्त्र से फिर शुभ मण्डप में ले आवे ॥४६।४७॥

शम्भवायेति मन्त्रेण शय्यायां विनिवेशयेत् ।
विश्वतश्चक्षुमन्त्रेण कुर्यात् सकलनिष्कलम् ॥४८

स्थित्वा चैव परे तत्त्वे मन्त्रन्यासन्तु कारयेत् ।
स्वशास्त्रविहितो मन्त्री न्यासस्तस्मिस्तथोदितः ॥४९

वस्त्रेणाच्छादयित्वा तु पूजनीयः स्वभावतः ।
यथाशास्त्रं निवेद्यानि पादमूले तु दापयेत् ॥५०

अथ प्रणवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।
कलशं सहिरण्यञ्च शिरःस्थाने निवेदयेत् ॥५१

स्थित्वा कुण्डसमीपेऽथ अग्नेः स्थापनमाचरेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रं वेदोक्तं र्वाथवा गुरुः ॥५२

श्रीसूक्तं पावमानञ्च वासं दास्यं सहाजिनम् ।
वृषाकपिश्च मित्रश्च बह्वृचः पूर्वतो जपेत् ॥५३

रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायञ्च सुक्रियः ।
ब्रह्माण पितृमंत्रञ्च अध्वर्युं र्दक्षिणे जपेत् ॥५४

फिर "शम्भवाय"—इत्यादि मन्त्र से शय्या मे निवेशित करावे । 'विश्वतश्चक्षु"—इत्यादि मन्त्र से सकल निष्कल करे ॥४८॥ परतत्व मे स्थिर होकर मन्त्र का न्यास करावे,अपने शास्त्र से विहित मन्त्री का न्यास उस प्रकार से कहा गया है ॥४९॥ वस्त्र से आच्छादित करके स्वभाव से पूजन करना चाहिए । शास्त्र के अनुसार जो निवेदन करने के योग्य नैवेद्य हैं उन्हें पाद के मूल मे समर्पित करे ॥५०॥ इसके अनन्तर प्रणव से सयुक्त वस्त्रो के युग्म से वेष्टित किये हुए और हिरण्य से संयुत कलश को शिर के स्थान मे निवेदन करे ॥५१॥ फिर कुण्ड के समीप मे स्थित होकर अग्नि की स्थापना करे। अग्नि को स्थापना वेद मे कथित मन्त्रो के द्वारा गुरु को करना चाहिए ॥५२॥ श्री सूक्त–पवमान–वासं दास्य सहाजिन–वृषाकपि और मित्र इन बहुत ऋचाओ को पूर्व की ओर जपे अर्थात् जाप करे या पढ़े ॥५३॥ रुद्र पुरुष सूक्त और श्लोकाध्याय, ब्राह्मण और पितृ मंत्र को सुन्दर क्रिया करने वाला अध्वर्यु दक्षिण दिशा मे जप करे ॥५४॥

वेदव्रतं वामदेव्यं ज्येष्टसामरथन्तरम् ।
भेरुण्डानि च सामानि छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ॥५५
अथर्वशिरसश्चैव कुम्भसूक्तमथर्वणः ।
नीलरुद्रांश्च मैत्रञ्च अथर्वश्चोत्तरे जपेत् ॥५६
कुण्डं चास्त्रेण संप्रोक्ष्य आचार्य्यस्य विशेषतः ।
ताम्रपात्रे शरावे वा यथाविभवतोऽपि वा ॥
जाततेद समानीय अग्रतस्तन्निवेशयेत् ॥५७
अस्त्रेण ज्वालयेद्वह्निं कवचेन तु वेष्टयेत् ।
अमृतीकृत्य त पश्चान्मन्त्रैः सर्वैश्च देशिक. ॥५८
पात्र गृह्य कराभ्याञ्च कुण्डं भ्राम्य ततः पुनः ।
वैष्णवेन तु योगेन परं तेजस्तु निक्षिपेत् ॥५९
दक्षिणे स्थापयेद् ब्रह्म प्रणीताञ्चोत्तरेण तु ।
साधारणेन मन्त्रेण स्वशास्त्रविहितेन वा ॥
दिक्षु दिक्षु ततो दद्यात्परिधि विष्टरै. सह ॥६०
ब्रह्मविष्णुहरेशानाः पूज्याः साधारणेन तु ।
दर्भेषु स्थापयेद्वह्निं दर्भैश्च परिवेष्टितम् ॥
दर्भतोयेन संस्पृष्टो मन्त्रहीनोऽपि शुद्धयति ॥६१

वेदव्रत, वामदेव्य, ज्येष्ठ साम रथन्तर, भेरुण्ड, सामो को छन्दोग पश्चिम दिशा में जप करे ॥५५॥ अथर्व शिर, कुम्भ सूक्त जो कि अथर्वोक्त है—नील रुद्रो को और मैत्र को अथर्व ज्ञाता उत्तर दिशा में जपे ॥५६॥ अस्त्र मंत्र के द्वारा कुण्ड भली-भाँति प्रोक्षण करके तथा विशेष रूप से आचार्य का सम्प्रोक्षण करके ताम्र के पात्र मे अथवा शराव (सकोरा) में अथवा विभव के अनुसार जो भी हो अग्नि को लाकर आगे की ओर सन्निवेशित करे ॥५७॥ अस्त्र मन्त्र से अग्नि को जलावे और कवच से वेष्टन करे। इसके पश्चात् आचार्य समस्त मन्त्रो के द्वारा अमृतीकरण करे ॥५८॥ दोनों हाथों से पात्र को ग्रहण कर फिर कुण्ड के सब ओर भ्रमण करावे और वैष्णव योग के द्वारा परतेज

का निक्षेप करना चाहिए ॥५९॥ साधारण मन्त्र के द्वारा या अपने शास्त्र में विहित के द्वारा दक्षिण मे ब्रह्मा को और उत्तर मे प्रणीता को स्थापित करे। इसके अनन्तर दिशाओं मे विष्टरों सहित परिधि देनी चाहिए ॥६०॥ साधारण तया ब्रह्मा, विष्णु हर और ईशान का पूजन करना चाहिए। फिर दर्भों के द्वारा परिवेष्टित वह्नि को दर्भों में स्थापित करना चाहिए। दर्भ के जल से सस्पर्श किया हुआ व है मन्त्र से हीन भी हो तो वह विशुद्ध हो जाता है। ॥६१॥

प्रागग्रैरुदगग्रैश्च प्रत्यगग्रैरखण्डितैः ।
विततैर्वेष्टितो वह्निः स्वयं सान्निध्यतां व्रजेत् ॥६२
अग्नेस्तु रक्षणार्थाय यदुक्तं कर्म मन्त्रवित् ।
आचार्य्याः केचिदिच्छन्ति जातकर्मादनन्तरम् ॥६३
पवित्रन्तु ततः कृत्वा कुर्य्यादाज्यस्य संस्कृतिम् ।
आचार्योऽस्य निरीक्ष्यापि नीराजमभिमन्त्रितम् ॥६४
आज्यभागाभिघारान्तमवेक्षेताज्यसिद्धये ।
पञ्च पञ्चाहुतीर्हुत्वा आज्येन तदनन्तरम् ॥६५
गर्भाधानादितस्तावद्यावद् गोदानिकं भवेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैः प्रणवेनाथ होमयेत् ॥६६
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा पूर्णात्पूर्णमनोरथः ।
एवमुत्पादितो वह्निः सर्वकर्मसु सिद्धिद ॥६७
पूजयित्वा ततो वह्नि कुण्डेषु विहरेत्तथा ।
इन्द्रादीनां स्वमन्त्रैश्च तथाहुतिशतं शतम् ॥६८

प्रत्यगग्र, प्रागग्र, उदगग्र, अखण्डित और विततदर्भों से वेष्टित वह्नि स्वय ही सान्निध्य को प्राप्त जाता है ॥६२॥ मन्त्र के ज्ञाता ने अग्नि की रक्षा के लिये जो भी कर्म कहा है उसे कुछ आचार्य जातकर्म के अनन्तर चाहा करते हैं ॥६३॥ इसके पश्चात् पवित्र करके घृत का सस्कार करना चाहिए। इसके अनन्तर आचार्य देख कर भी नीराज को अभिमन्त्रित करे। आज्य (घृत)

की सिद्धि के लिये आज्य के आदि भाग से अग्निधारा के अन्त पर्यन्त अवेक्षण करे और फिर उस आज्य से पाँच पाँच आहुतियों द्वारा हवन करे ॥६४।६५॥ गर्भाधान से आदि लेकर जब तक गोदानिक होवे अपने शास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा या प्रणव से होम करना चाहिए ॥६६॥ इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर पूर्णापूर्ण मनोरथ होवे। इस प्रकार से संस्कारित वह्नि सम्पूर्ण कर्मों में सिद्धि का प्रदान करने वाला होता है ॥६७॥ इसके पश्चात् अग्नि का पूजन करके कुण्डों में विह्वन करे। इन्द्र आदि देवों को अपने अपने मन्त्रों के द्वारा सौ सौ आहुतियाँ देवे ॥६८॥

पूर्णाहुति शतस्यान्ते सर्वेषाञ्चैव होमयेत् ।
स्वामाहुतिमथाज्येषु होता तत्कलशे न्यसेत् ॥६९

देवताश्चैव मन्त्राश्च तथैव जातवेदसम् ।
आत्मानमेकतः कृत्वा तत पूर्णा प्रदापयेत् ॥७०

निष्क्रम्य वहिराचार्यो दिक्पालानां बलि हरेत् ।
भूतानाञ्चैव देवानां नागानाञ्च प्रयोगतः ॥७१

तिलाश्च समिधश्चैव होमद्रव्य द्वय स्मृतम् ।
आज्य तयोः सहकारि तत्प्रदान यदङ्गयोः ॥७२

पुरुषसूक्तं पूर्वेणैव रुद्रञ्चैव तु दक्षिणे ।
ज्येष्ठसाम च भीरुण्डं तन्नयामीति पश्चिमे ॥७३

नीलरुद्रो महामन्त्र कुम्भसूक्तमथर्वगः ।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देव शिरसि कल्पयेत् ॥७४

एव मध्ये तथा पादे पूर्णाहुत्या तथा पुनः ।
शिर स्थानेषु जुहुयादाविरोच्च अनुक्रमात् ॥७५

देवानामादिमन्त्रैर्वा मन्त्रैर्वा अथवा पुन. ।
स्वशास्त्रविहितैर्वापि गायत्र्या वाथ ते द्विजाः ॥
गायत्र्या वाथवाऽऽचार्यो व्याहृतिप्रणवेन तु ॥७६

एवं होमविधिं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रांस्तु देशिकः ।
चरणावग्निमीले तु ईषेत्वो गुल्फयोः स्थिताः ॥७७

सौ आहुतियों के अन्त में सबके लिये पूर्णाहुति का होम करना चाहिये। इसके अनन्तर अपनी आहुति को होता आज्यों में इस कलश में न्यास करे। ॥६९॥ देवता, मन्त्र और जातवेद तथा आत्मा को एकतः करके फिर पूर्णाहुति देनी चाहिए ॥७०॥ आचार्य को बाहिर निकल कर दिक्पालों के निमित्त बलि का हरण करना चाहिए। भूतों को—देवों तथा नागों को सबको बलि देवे ॥७१॥ तिल और समिधा ये दो होम के द्रव्य हैं। इन दोनों द्रव्यों का घृत सहकारी पदार्थ होता है। जिनके अङ्गों में उसका प्रदान होता है ।७२। पूर्व में पुरुष सूक्त और दक्षिण में रुद्र सूक्त, ज्येष्ठसाम और भीरण्ड तथापि, यह पश्चिम में नील रुद्र महामन्त्र, कुम्भसूक्त और अथर्वण इन सब एक-एक को सहस्र बार हवन कर शिर में देव को कल्पित करे ।७३।७४। इस प्रकार से मध्य में तथा पाद में फिर उसी प्रकार से पूर्णाहुति द्वारा शिर स्थानों में हवन करना चाहिए और अनुक्रम से आविष्ट करे ।७५। देवों का आदि मन्त्रों के द्वारा अथवा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा या गायत्री के द्वारा अथवा द्विज एवं आचार्य प्रणव एवं व्याहृति के द्वारा इस प्रकार से होम की विधि को सुसम्पन्न करके फिर आचार्य मन्त्रों का न्यास करे। चरणों में "अग्नि मीले"—इस मन्त्र का न्यास करे गुल्फों में "ईषेत्वो"—इसका न्यास करे ।७६।७७।

अग्नआयाहि जंघे द्वे शन्नोदेवीति जानुनी ।
बृहद्रथन्तरे ऊरू उदरेध्वातिलो न्यसेत् ॥७८
दीर्घायुष्ट्वाय हृदये श्रीश्च ते गलके न्यसेत् ।
त्रातारामिन्द्रं वक्षे च नेत्राभ्यान्तु त्रियुम्बकम् ॥
मूर्द्धा भव तथा मूर्ध्नि ह्यालग्नाद्धोममाचरेत् ॥७९
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मण- पते ।
वेदपुण्याहशब्देन प्रासादानां प्रदक्षिणम् ॥८०
पिण्डिकालभनं कृत्वा देवस्यत्वेति मन्त्रवित् ।
रत्नानालभ्यह रत्नैश्च धातूनौषधमस्तथा ॥

लोहबीजानि सिद्धानि पश्चाद्देवन्तु विन्यसेत् ॥८१
न गर्भे स्थापयेद्देवं न गर्भन्तु परित्यजेत् ।
ईषन्मध्यं परित्यज्य ततो दोपापन तु तत् ॥८२
तिलस्य तु समात्रन्तु उत्तरं किञ्चिदानयेत् ।
ॐ स्थिरो भव शिवो भव प्रजाभ्यश्च नमो नमः ॥८३
देवस्य त्वा सवितुर्वः पड्भ्यो वं विन्यसेद् गुरुः ।
तत्त्ववर्णकलामात्रं प्रजानि भुवनात्मजे ॥८४
पड्भ्यो विन्यस्य सिद्धार्थं घ्रुवार्थैरभिमन्त्रयेत् ।
सम्पातकलशेनैव स्नापयेत्सुप्रष्ठितम् ॥८५

दोनों जांघों मे "अग्न आयाहि"—इसका जानुओं में "शन्नो देवी"—इस मन्त्र का और उदरो मे 'मातिल'—इसका न्यास करे।७८। हृदय मे 'दीर्घा युष्_वाय'—इस मन्त्र का और गले मे 'श्रीश्चते'—इसका न्यास करे। वक्ष स्थल मे 'आतारमिन्द्रम्'—इसका एव दोनों नेत्रो मे 'त्रियुम्मकार'—इसका न्यास करना चाहिए। 'मूर्द्धाभव'—इससे मूर्दा मे न्यास करे और आलम्भ होम करे ॥७६॥ इसके अनन्तर देव का उत्थापन करे तथा 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणः पते' —इस मन्त्र से करना चाहिए। वेद पुण्याह शब्द के द्वारा प्रासादो की प्रदक्षिणा करे।८०। मन्त्रों के वेत्ता को 'देवस्यत्व'—इससे पिण्डिकालभन करके रत्नो के सहित दिक्पालो को—धातुओ को—ओषधियों को और सिद्ध लोह बीजो को विन्यस्त करके पीछे देव का विन्यास करना चाहिए।८१। गर्भ में देव को स्थापित न करे और गर्भ का परित्याग भी नहीं करना चाहिए। थोडा सा मध्य का परित्याग करके इसके अनन्तर दोपापन करे।८२। तिल का कुछ समात्र उत्तर लावे। गुरु को 'ॐ स्थिरोभव शिवोभव प्रजाभ्यश्च नमो नम.। देवस्य त्वा सवितुर्व. पड्भ्यो वं'—इससे विन्यास करना चाहिए। भुवनात्मज में तत्त्व वर्ण कलामात्र प्रजनो का पड्भ्यो—इससे विन्यास करके घ्रुवार्थों से सिद्धार्थ को अभिमन्त्रित करे। सुप्रतिष्ठित को सम्पात कलश के द्वारा ही स्नपन करावे ॥८३।८४।८५॥

दीपधूपसुगन्धैश्च नैवेद्यैश्च प्रपूजयेत्
अर्घ्यं दत्त्वा नमस्कृत्य ततो देव क्षमापयेत् ॥८६
पात्र वस्त्रयुग छत्र तथा दिव्यागुरीयकम् ।
ऋत्विग्भ्यश्च प्रदातव्या दक्षिणा चैव शक्तित ॥८७
चतुर्थी जुहुयात्पश्चाद्यजमान समाहित ।
आहुतीना शत हुत्वा तत पूर्णां प्रदापयेत् ॥८८
निष्क्रम्य बहिराचार्य्यो दिक्पालाना बलि हरेत् ।
आचार्य्य पुष्पहस्तस्तु क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥८९
यागान्ते कपिला दद्यादाचार्य्याय च चामरम् ।
मुकुट कुण्डल छत्र केयूर कटिसूत्रकम् ।
व्यञ्जन ग्रामवस्त्रादीन्सोपस्कार समण्डलम् ॥९०
योजनञ्च महती कुर्य्यात् कृतकृत्यश्च जायते ।
यजमानो विमुक्तः स्यात्स्थापकस्य प्रसादत ॥९१

फिर दीपो—धूपो और सुगन्धियो के द्वारा और नैवेद्यो के द्वारा पूजन करना चाहिए अर्घ्य देकर—नमस्कार करके इसके अनन्तर देवता से क्षमापन करने की क्रिया करे ।८६। पात्र—वस्त्र युग्म तथा दिव्य अगु ीयक और शक्ति पूर्वक दक्षिणा देनी चाहिए ।८७। इसके पीछे यजमान को पूर्ण सावधान होकर चतुर्थी का हवन करना चाहिए । इस प्रकार से एक सौ आहुतियाँ देकर फिर पूर्णाहुति देवे ।८८। आचार्य बाहिर निकल कर दिक्पालो के लिये बलि का हरण करे । आचार्य पुष्प हाथो में लेकर 'क्षमस्व'—इससे विसर्जन करे । याग की समाप्ति हो जाने पर आचार्य को एक कपिला गौ का दान करे तथा चामर मुकुट—कुण्डल—छत्र—केयूर—कटिसूत्र—व्यञ्जन एव सोपस्कर तथा समडल ग्राम वस्त्रादि देवे । इससे यजमान कृतकृत्य होता है और स्थापक के प्रसाद से विमुक्त हो जाता है ।८९।९०।९१।

२३—अष्टाङ्गयोग कथन

सर्गादिवृद्धरिश्चैव पूज्य स्वायम्भुवादिभि ।
विप्राद्यै. स्वेन धर्मेण तद्धर्म व्यास वै शृणु ॥१

यजन याजन दान ब्राह्मणस्य प्रतिग्रह ।
अध्यापनञ्चाध्ययन षट्कर्माणि द्विजोत्तमे ॥२
दानमध्ययन यज्ञो धर्म क्षत्रियवैश्ययो ।
दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते । ३
शुश्रूषैव द्विजातीना शूद्राणा धर्मसाधनम् ।
कारुकर्म तथा जीवोऽपाकयज्ञोऽपि धर्मत ॥४
भिक्षाचर्य्याथ शुश्रूषा गुरो स्वाध्याय एव च ।
सन्यासकर्माग्निकार्यश्च धर्मोऽय ब्रह्मचारिण ॥५
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम् ।
ब्रह्मचार्य्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्पर ॥६
योधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत् ।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिक ॥७
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दान सुरार्चनम् ।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽय द्विजसत्तम ॥८

ब्रह्माजी ने कहा—मर्यादि के करने वाले हरि स्वायम्भुव मादि के द्वारा तथा विप्रादि के द्वारा अपने धर्म से पूजने के योग्य हैं। हे व्यास ! अब उस धर्म का श्रवण करो ॥१॥ यजन करना—यज्ञ कराना—दान लेना—ब्राह्मणों को दान देना—वेद-शास्त्रों का अध्ययन करना तथा अध्यापन कराना ये द्विज के श्रेष्ठ छः धर्म होते हैं ॥२॥ दान देना—अध्ययन करना और यज्ञ कर्म करना—ये क्षत्रिय और वैश्य के कर्म हैं। क्षत्रिय का कर्म दण्ड देना तथा वैश्य का धर्म कृषि करना प्रशस्त कहा जाता है ॥३॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों की सेवा करना ही शूद्रों का धर्म साधन कर्म होता है। तथा शूद्रों का कारुकर्म और धर्म से अपाक यज्ञ भी जीविका का साधन होता है ॥४॥ भिक्षाचरण करना—गुरु की सेवा करना और स्वाध्याय करना—सन्यास कर्म और अग्नि कार्य हवनादि ये ब्रह्मचारी के धर्म कृत्य होते हैं ॥५॥ समस्त आश्रमों के दो प्रकार होते हैं। इस प्रकार से चार भेद होते हैं। ब्रह्म-

चारी—उप कुर्वाण—नैष्ठिक और ब्रह्मतत्पर होते हैं ॥६॥ जो विधिपूर्वक गुरु के पास ब्रह्मचर्य विधि से रह कर वेदो का अध्ययन करे और फिर समावर्त्तन कर के गार्हस्थ्य प्राश्रम को ग्रहण करता है उसे उपकुर्वाण जानना चाहिए। जो गृहस्थाश्रम मे प्रवेश न करके मरण पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह नैष्ठिक होता है ॥७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अग्नि कर्म—अतिथियो की सत्कारपूर्वक सेवा—यज्ञ करना—दान देना और देव पूजन करना यह गृहस्थ का सक्षेप मे धर्म कहा गया है ॥८॥

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।
कुटुम्बभरणे युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥६
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्य्याधनादिकम्।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीन स मौक्षिक ॥१०
भूमौ मूलफलाशित्व स्वाध्यायस्तप एव च।
संविभागो यथान्याय धर्मोऽयं वनवासिन. ॥११
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवाञ्जुहोति च।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसोत्तमः ॥१२
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
सन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ॥१३
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः।
ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षु प्रोच्यते पारमेष्ठिक ॥१४
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनि.।
सम्यक् चन्दनसम्पन्न स योगी भिक्षुरुच्यते ॥१५
भैक्ष्यं श्रुतञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः।
सम्यक्च ज्ञानवैराग्य धर्मोऽयं भिक्षुके मत. ॥१६

उदासीन और साधक भेद से गृहस्थ भी दो प्रकार का हुआ करता है। जो अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण में युक्त रहा करता है वह साधक गृही होता है ॥६॥ देव ऋषि और पितर इन तीनो के ऋणो को दूर कर अर्थात् चुका कर

फिर अपनी भार्या और धन-वैभव का त्याग करके एकाकी जो विचरण किया करता है वह मौक्षिक उदासीन गृही होता है ॥१०॥ वन में निवास करने वाले का यह धर्म होता है कि भूमि में शयन करे—वन के मूल और फलों का भोजन करे—स्वाध्याय करे—तपश्चर्या करे और यथान्याय भविभाग करे ॥११॥ जो वन में तपश्चर्या करता है—देवों का यजन किया करता है—हवन करता है और सदा स्वाध्याय में निरत रहा करता है वह वनवासियों में परमश्रेष्ठ तापस होता है ॥१२॥ तपस्या से जो अत्यन्त कर्षित होता हुआ निरन्तर ध्यान में ही परायण रहता है उसे वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाला सन्यासी ही समझना चाहिए ॥१३॥ नित्य ही योग के अभ्यास में रति रखने वाला और उत्तरद पर आरोहण करने की इच्छा वाला—इन्द्रियों को जीत कर वश में रखने वाला ज्ञान के लिये ही वर्त्तन करता है वह पारमेष्ठिक भिक्षु कहा जाता है ॥१४॥ जो आत्मा में ही रति रखने वाला—नित्य तृप्त सम्यक् तथा चन्दन सदृश महामुनि होता है वह योगी भिक्षु कहा जाया करता है ॥१५॥ भिक्षा करना—शास्त्र तथा वेद का ज्ञान—मौन व्रत धारण करना—तपश्चर्या-विशेष रूप से ध्यान लगाना और भली भाँति ज्ञान एवं वैराग्य का रखना ये ही भिक्षु का धर्म कहा गया है ॥१६॥

ज्ञानसन्यासिन. केचिद् वेदसन्यासिनोऽपरे ।
कर्मसन्यासिन केचित्त्रिविध पारमेष्ठिक ॥१७

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिक· क्षत्र एव च ।
तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्तिसमाश्रितः ॥१८

प्रथमा भावना पूर्वे मोक्षे दुष्करभावना ।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ॥१९

धर्मात्सजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते ।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविध कर्म वैदिकम् ।
ज्ञानपूर्वं निवृत्त स्यात्प्रवृत्तस्त्वाग्निदेवकृत् ॥२०

क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्यास एव च ।
आर्जवञ्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ॥२१
सत्य सन्तोष आस्तिक्यं यथा चेन्द्रियनिग्रह ।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥२२
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता ।
एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यत. ॥२३
प्राजापत्यं ब्राह्मणाना स्मृतं स्थान क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥२४
वैश्याना मारुत स्थान स्वधर्ममनुवर्त्तताम् ।
गन्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारे च वर्त्तताम् ॥२५
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृत तेषान्तु यत् स्थान तदेव गुरुवासिनाम् ॥२६

यह पारमेष्ठिक तीन प्रकार के होते हैं—कुछ तो ज्ञान सन्यासी होते हैं अर्थात् ज्ञान के बल से हृदय मे सबका पूर्ण त्याग भाव रखने वाले होते हैं—दूसरे वेद संन्यासी हुआ करते हैं और तीसरे प्रकार के कर्म सन्यासी होते हैं ॥१७॥ योगी भी तीन प्रकार के होते है—भौतिक योगी—क्षत्र योगी और तृतीय योगमूर्त्ति समाश्रित अन्त्याश्रमी होता है ॥१८॥ प्रथम मे प्रथमा भावना होती है—मोक्ष मे दुष्कर भावना होती है और तीसरे में अन्तिम पारमेश्वरी भावना हुआ करती है ॥१९॥ धर्म से मोक्ष हुआ करता है और अर्थ से काम की उत्पत्ति होती है । इस तरह से यह वैदिक कर्म प्रवृत्ति परक और निवृत्ति-परक दो प्रकार का होता है । जो ज्ञानपूर्वक कर्म होता है वह निवृत्ति परक होता है और जो अग्नि एव देव परक कर्म होता है वही प्रवृत्त कर्म कहा जाता है ॥२०॥ क्षमा–दम–दया–दान–लोभ का अभ्यास–सरलता–अनसूया अर्थात् दूसरों के दोषो का प्रकट करने का अभाव—तीर्थों का अटन–सत्य–सन्तोष–आस्तिकता की भावना—इन्द्रियो पर निग्रह रखना—देवताओ का समर्चन—विशेष रूप से ब्राह्मणो की पूजा–अहिंसा–प्रिय बोलना–पिशुनता का न होना–

रूखापन का अभाव ये सब आश्रमो वालो के धर्म होते हैं। अतएव मैं अब धातुर्वर्ण्य को बतलाता हूं ।।२१।।२२।।२३।। क्रिया वाले ब्राह्मणो का प्राजापत्य स्थान कहा गया है। संग्रामों में पलायन न करने वाले क्षत्रियो का ऐन्द्र स्थान कहा गया है। अपने धर्म का अनुवर्त्तन करने वाले वैश्यो का मारुत स्थान होता है। परिचर्या मे सर्वदा संलग्न रहने वाले शूद्रों का गान्धर्व स्थान बताया गया है ।।२४।।२५।। ऊर्ध्व रेतस अट्ठासी सहस्र ऋषियो का जो स्थान कहा गया है वही गुरुवासियो का होता है ।।२६।।

सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्थान तद्वै वनौकसाम् ।
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ।
आनन्द ब्रह्म तत् स्थानं यस्मान्नवर्त्तते मुनिः ।।२७
योगिनाममृतस्थान व्योमाख्यं परमाक्षरम् ।
आनन्दमैश्वरं यस्मान्मुक्तो नावर्त्तते नरः ।।२८
मुक्तिरष्टाङ्गविज्ञानात् सक्षेपात्तद्वदे श्रृणु ।
यमाः पञ्चत्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम् ।।२९
सत्यं भूतहित वाक्यमस्तेय स्वग्रहं परम् ।
अमैथुन ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रहः ।।३०
नियमाः पञ्च सत्याद्या बाह्यामाभ्यन्तरं द्विधा ।
शौचं सत्यञ्च सन्तोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहः ।।३१
स्वाध्यायः स्यान्मन्त्रजपः प्रणिधानं हरेर्यजिः ।
आसन पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः ।।३२
मंत्रध्यानयुतो गर्भो विपरीतो ह्यगर्भकः ।
एव द्विधा त्रिधाप्युक्तं पूरणात् पूरकः स च ।
कुम्भको निश्चलत्वाच्च रेचनाद्रेचकस्त्रिधा ।।३३

सप्तऋषियो का जो स्थान होता है वह स्थान वन मे रहने वाले यतियों का होता है जो यतचित्त होते हैं और न्यास करने वाले तथा ऊर्ध्व रेता होते हैं। वह आनन्द ब्रह्म स्थान है जहाँ से फिर मुनि पुनरावर्तित नहीं हुआ करता

है ।।२७।। योगियों का व्योमसञ्ज्ञक परमाक्षर अमृत स्थान होता है। वह आनन्दमय तथा ऐश्वर स्थान है जहाँ से फिर मानव का पुनरावर्त्तन इस संसार में नहीं होता है ।।२८।। आठ अङ्गों के विशेष ज्ञान से मुक्ति हुआ करती है। उसे मैं अब संक्षेप में बताता हूँ। उसका श्रवण करो। अहिंसा आदि पाँच यम होते हैं। प्राणियों की कायिक वाचिक एवं मानसिक हिंसा का न करना ही अहिंसा कही जाती है ।।२९।। भूतों का हित करने वाला वाक्य सत्य होता है। पराई वस्तु का न ग्रहण करना अस्तेय है। मैथुन का न करना ब्रह्मचर्य होता है। समस्त वस्तुओं का परिग्रह न करना ही त्याग है ।।३०।। सत्य आदि पाँच नियम होते हैं। वे बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार के होते हैं। शौच—सत्य एवं सन्तोष है—तपश्चर्या—इन्द्रियों का निग्रह है—स्वाध्याय—मन्त्रों का जप है—प्रणिधान—हरि का यजन है—पद्मक आदि आसन हैं—वायु पर जय प्राप्त कर लेना ही प्राणायाम होता है ।।३१।।३२।। मन्त्र के ध्यान से जो युक्त होता है वह सगर्भक कहा जाता है। इस प्रकार से यह दो एवं तीन प्रकार का है। पूरण करने से वह पूरक होता है। निश्चल होने से कुम्भक और रेचन से रेचक कहा जाता है ।।३३।।

लघुर्द्वादशमात्रः स्याच्चतुर्विंशतिकः परः ।
षट्त्रिंशन्मात्रिकः श्रेष्ठः प्रत्याहारश्च रोधनम् ।।३४

ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्याद्धारणा मनसो धृतिः ।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः ।।३५

अहमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।
ब्रह्मविज्ञानमानन्दः स तत्त्वमसि केवलम् ।।३६

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्म अशरीरमनिन्द्रियम् ।
अहं मनोबुद्धिमहदहङ्कारादिवर्जितम् ।।३७

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियुक्तज्योतिस्तदीयकम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धियुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् ।।३८

योऽसावादित्यपुरुष. सोऽसावहमखण्डितम् ।
इति ध्यायन् विमुच्येत ब्राह्मणो भवबन्धनात् ॥३६

बारह मात्राओं वाला लघु प्राणायाम होता है और चौबीस मात्राओं वाला पर होता है तथा छत्तीस मात्राओं से युक्त परम श्रेष्ठ होता है। रोधन करने को ही प्रत्याहार कहते हैं ॥३४॥ ब्रह्मात्म का चिन्तन करने को ही ध्यान कहते हैं। मन की धृति को धारणा कहा जाता है। मैं ही ब्रह्म हूँ—इस प्रकार की जो अवस्थिति होने पर ब्रह्म की स्थिति का प्राप्त हो जाना है उसे ही समाधि कहा जाता है ॥३५॥ मैं आत्मा हूँ ब्रह्म पर है और वह सत्य एवं ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त है। ब्रह्म का विज्ञान ही आनन्दमय है और वह केवल तत्त्वमसि है ॥३६॥ मैं ब्रह्म हूँ—मैं बिना शरीर वाला और इन्द्रियों से रहित हूँ—मैं मन, बुद्धि महङ्कार आदि से वर्जित हूँ और जाग्रत्, सुषुप्ति आदि से युक्त उसी की ज्योति स्वरूप हूँ। मैं नित्य-शुद्ध बुद्धियुक्त सत्य एवं आनन्दस्वरूप अद्वितीय हूँ। जो यह आदित्य पुरुष है वह मैं अखण्डित हूँ—इस प्रकार से अपने आपको ध्यान करने वाला ब्राह्मण इस संसार के महा बन्धन से विमुक्त हो जाता है ॥३७। ३८॥३९॥

२४—नित्य क्रिया शौच वर्णन

अहन्यहनि य.कुर्यात् क्रियां स ज्ञानमाप्नुयात्।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय धर्ममर्थंच चिन्तयेत् ॥१
चिन्तयेद्धृदि पद्मस्थमानन्दमजरं हरिम् ।
ऊष.काले तु सम्प्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः ॥
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौच कृत्वा यथाविधि ॥२
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रात स्नान समाचरेत् ॥३
प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ।
सुखात् सुप्तस्य सततं लालाद्या· संस्रवन्ति हि ॥
अतो नैवाचरेत् कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः ॥४

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ।
प्रातःस्नानेन पापानि धूयन्ते नात्र संशयः ॥५
न च स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्म संस्मृतम् ।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥६
अशक्तावशिरस्कं तु स्नानमस्य विधीयते ।
आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं कायिकं स्मृतम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो प्रति दिन इस क्रिया को करता है वह ज्ञान को प्राप्त किया करता है। ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर अर्थात् शय्या का त्याग करके सर्व प्रथम धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। ऊषा काल के सम्प्राप्त होने पर बुध पुरुष को आवश्यक कृत्य करके हृदय में पद्मासन पर शाश्वत आनन्दस्वरूप अजर श्रीहरि का चिन्तन करे। यथा विधि शौच-कार्य करके फिर शुद्ध नदियों में स्नान क्रिया सम्पन्न करे ॥१।२॥ पापों के करने वाले भी मनुष्य प्रातःकाल में स्नान करने से पवित्र हो जाया करते हैं। इसलिये पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा प्रातःकाल के समय में अवश्य ही स्नान करना चाहिए। प्रातः-काल में किये जाने वाले स्नान की प्रशंसा की जाती है क्योंकि वह दृष्ट और अदृष्ट के करने वाला होता है। सुख से सोते हुए मनुष्य की सर्वदा लाला (लार) आदि का स्रवण हुआ करता है। इसलिये आदि में स्नान न करके कभी भी अन्य कर्मों का आरम्भ न करे ॥३॥४॥ प्रातःकाल में नित्य किये हुए स्नान से अलक्ष्मी, कालकर्णी, दुःस्वप्न, दुर्विचिन्तित (बुरी भावना) एवं सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५॥ स्नान के बिना पुरुषों के प्रशस्त कर्म नहीं बताये गये हैं। होम और मन्त्र जाप के करने में तो विशेष रूप से स्नान करना ही चाहिए ॥६॥ यदि सर्वाङ्ग स्नान करने की स्थिति में न हो और ऐसी शक्ति शरीर में न हो तो बिना शरीर को भिगोये हुए ही स्नान अवश्य ही करना चाहिए। इतना भी न किया जा सके तो गीला वस्त्र करके उससे ही शरीर का मार्जन अवश्य करे—ऐसा कहा गया है ॥७॥

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च।
वारुणं यौगिकं तद्वत्षडङ्गं स्नानमाचरेत् ॥८
ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद् देहधूननम् ॥९
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम्।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ॥१०
वारुणंञ्चावगाह्श्च मानसं स्वात्मवेदनम्।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन परिचिन्तनम्।
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥११
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्।
अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरञ्च धारणम् ॥१२
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कुर्य्यात्तु दन्तधावनम्।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः ॥१३
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणास्तथा।
आचम्य विधिवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ॥१४
समार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ॥१५

ब्राह्म स्नान को आग्नेय स्नान कहा गया है—वायव्य स्नान को दिव्य स्नान बताया गया है—वारुण स्नान को यौगिक कहा गया है। इसी भाँति षडङ्ग स्नान करे ॥८॥ जल की बूँदों के सहित कुशों के द्वारा मन्त्रों से जो स्नान क्रिया को सम्पन्न करके मार्जन किया जाता है उसे ब्राह्म स्नान कहते हैं। भस्म से मस्तक से लेकर पाद पर्यन्त जो देह-धूनन किया जाता है उसे आग्नेय स्नान कहा जाता है ॥९॥ गौओं के खुरों से उठी हुई रज से जो स्नान किया जाता है उस उत्तम स्नान को वायव्य स्नान कहते हैं। जो आतप रहते हुए वर्षा की बूँदों से स्नान होता है उसे दिव्य स्नान कहा जाता है ॥१०॥ मानस स्नान को वारुण स्नान कहते हैं और आत्मवेदन यौगिक स्नान होता है जिसमें योग के द्वारा परिचिन्तन किया जाता है। ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित आत्मतीर्थ

कहा गया है ॥११॥ दूध जिन वृक्षों से निकला करता है उन वृक्षों की बनाई हुई—मालती लता की टहनी से बनाई गई परम शुभ—अपामार्ग (ओंधा) की बिल्व की और करवीर की दाँतुन को उत्तर की ओर मुख करके अथवा पूर्व की ओर मुख वाला होकर करना चाहिए। चबा कर और धोकर शुचि देश मे समाहित होकर उसका उपयोग करके फिर त्याग देवे ॥१२॥१३॥ फिर स्नान करके देवो का—ऋषियो का पितृगण का तर्पण करना चाहिए। विधि के सहित आचमन करके नित्य ही पुनः आचमन करके मौन होकर उदक बिन्दुओ के सहित कुशाओ से मन्त्रो के द्वारा अपना समार्जन करे और वह "आपोहिष्ठा मयोभुव:" इत्यादि व्याहृतियो से—सावित्री से और शुभ वारुणो से करना चाहिए ॥१४॥१५॥

ॐकारव्याहृतियुता गायत्री वेदमातरम्।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भास्करं प्रति तन्मना. ॥१६
प्रातःकाले तत.स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः।
प्राणायाम तत कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुतिः ॥१७
या सन्ध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥१८
ध्यात्वा रक्ता सिता कृष्णा गायत्री वै जपेद्बुधः।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥१९
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२०
अनन्यचेतस. सन्तो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ता. पूर्वंपरां गतिम् ॥२१
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ॥२२

फिर ओङ्कार व्याहृतियों से युक्त वेदमाता गायत्री का जप करके तन्मनस्क होकर भगवान् भास्कर देव के प्रति जलाञ्जलि समर्पित करे ॥१६। इसके अनन्तर प्रातःकाल मे कुशासन पर स्थित होकर सुसमाहित होते हुए

प्रणाम करके सन्ध्या की उपासना करे—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥१७॥ जो यह सन्ध्या है वह जगत् की जननी है—माया से अतीत और निष्कला है। यह केवल ऐश्वरी शक्ति तीनो तत्वो से समुत्पन्न होने वाली है ॥१८॥ बुध पुरुष को चाहिए कि गायत्री के स्वरूप का रक्त-सित और कृष्ण वर्ण का ध्यान करके फिर इसका जप करे। विप्र को सर्वदा पूर्व की ओर मुख करके सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए ॥१९॥ जो विप्र सन्ध्या नही करता है वह परमहीन ही होता है और समस्त कर्मों के करने के अयोग्य होता है। और भी वह जो कुछ करता है उसके फल को भोगने वाला नही होता है ॥२०॥ अनन्य चित्त वाले होते हुए वेद के पारगामी ब्राह्मण विधि-विधान के साथ सन्ध्या की उपासना करके पूर्वपरा गति को प्राप्त हुए हैं ॥२१॥ जो द्विज श्रेष्ठ अन्य कर्मों मे जो कि धर्मयुक्त होते हैं यत्न किया करता है और सध्या की प्रणति की प्रणति का त्याग कर देता है वह दश सहस्र वर्ष पर्यन्त नरक का गामी होता है ॥२२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनु परः ॥२३
सहस्रपरमा नित्या शतमध्या दशापराम् ।
गायत्री वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः ॥२४
अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयस्य समाहितः ।
मन्त्रैस्तु विविधैः सारैः ऋग्यजुः सामसञ्ज्ञितैः ॥२५
उपस्थाय महायोग देव देव दिवाकरम् ।
कुर्वीत प्रणति भूमौ मूर्द्धानमभिमन्त्रितः ॥२६
ॐ खखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मन नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥२७
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम् ।
भूर्भुवःस्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः ॥२८
एतद्वै सूर्य्यं हृदये जप्त्वा स्तवनमुत्तमम् ।
प्रातःकाले च मध्याह्ने नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ॥२९

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि ।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥३०

अतएव सम्पूर्ण प्रयत्नों से ब्राह्मण को सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिए। उस सन्ध्या में उपासित देव परमभोग तनु हो जाता है ॥२३॥ विद्वान् ब्राह्मण को नित्य प्रति एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए—यह सर्वोत्तम है। यदि इतना न बन सके तो एकसौ आठ बार एक ही माला गायत्री के जप को करे—यह मध्यम है और इतना भी व्यस्ततावश न कर सके तो कम से कम दस बार तो अवश्य ही गायत्री का जप प्रति दिन करना चाहिए—यह सबसे निम्न श्रेणी की जप संख्या है। विद्वान् को पूर्व की ओर मुख करके और परम प्रयत होकर ही परम शुचिता के साथ गायत्री का जप करना चाहिए ॥२४॥ इसके अनन्तर बहुत सावधान होते हुए उदयस्थ भगवान् आदित्यदेव का उपस्थान करे। यह उपस्थान परम सारस्वरूप विविध ऋक्-यजु और सामवेद की संज्ञा वाले मन्त्रों के द्वारा करे ॥२५॥ महायोग देवों के भी देव भगवान् दिवाकर (सूर्य) का उपस्थान करके अभिमन्त्रित होते हुए भूमि में मस्तक टेक कर सूर्यदेव को प्रणाम करे। प्रणाम करने का मन्त्र यह है—"ओम् ख खोल्काय शान्ताय-इत्यादि"—अर्थात् ख अर्थात् आकाश के उल्का-स्वरूप—परम शान्त—तीनों कारणों के हेतु—ज्ञानस्वरूप वाले आप के लिये मेरा नमस्कार है। मैं अपने आपको आपके लिये निवेदित करता हूँ ॥२६॥२७॥ आपही परम ब्रह्म हैं। आपो ज्योति रस एवं अमृत हैं। आप भूर्भुवः स्वः हैं- आप ओङ्कार-सर्व-रुद्र एवं सनातन हैं ॥२८॥ इस उत्तम स्तवन का हृदय में सूर्य जाप करके प्रातःकाल में और मध्याह्न के समय में भगवान् दिवाकर को नमस्कार करे ॥२९॥ इसके अनन्तर विप्र अपने घर में आकर विधिपूर्वक आचमन करके अग्नि को प्रज्वलित करे और विधि के साथ उसे अग्नि में हवन करना चाहिए ॥३०॥

ऋत्विक्पुत्रोऽथपत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः ।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि ॥

विना मन्त्रेण यत्कर्म नामुत्रेह फलप्रदम् ॥३१
दैवतानि नमस्कुर्य्यादुपहारान्निवेदयेत् ।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत् ॥३२
वेदाभ्यास ततः कुर्य्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विज ।
जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत् ॥३३
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तम ।
वैदिकाश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वश ॥३४
उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमप्रसिद्धये ।
साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थे ततो द्विज ॥३५
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
पुष्पाक्षतान्तिलकुशान् गोमय शुद्धमेव च ॥३६
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सर सु च ।
स्नान समाचरेन्नैव परकीये कदाचन ॥
पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य स्नान दुष्यन्ति नित्यश. ॥३७

ऋत्विक्–पुत्र–पत्नी–शिष्य अथवा सहोदर भाई को आज्ञा प्राप्त करके विशेष रूप से यथा विधि हवन करना चाहिए । मन्त्र के बिना जो कोई भी कर्म होता है वह इस लोक मे तथा परलोक मे फल प्रदान करने वाला नही होता है ॥३१॥ समस्त देवो को नमस्कार करे और उन्हे उपहारो को समर्पित करे । फिर गुरुदेव और इनके जो भी हित हो उनकी उपासना करनी चाहिए ॥३२॥ इस कृत्य के सम्पन्न करने के अनन्तर द्विज को अपनी शक्ति से प्रयत्न पूर्वक वेदो का अभ्यास करना चाहिए । जप करे–शिष्यों को अध्यापन करे–धारण करे और विचारण करे ॥३३। हे द्विज श्रेष्ठ ! फिर शास्त्रो का अवेक्षण करे तथा धर्म आदि का निरीक्षण करे । वैदिक निगमो को तथा सभी वेद के अङ्ग व्याकरण–निरुक्त आदि शास्त्रो का परिशीलन करे ॥३४॥ अपने योगक्षेम की प्रसिद्धि के लिए ईश्वर का उपगमन करे और इसके पश्चात् द्विज को कुटुम्ब के लिए अनेक प्रकार से अर्थों का साधन करना चाहिए ॥३५॥

इसके अनन्तर मध्याह्न के समय स्नान के लिए मृत्तिका लावे। पुष्प-अक्षत-तिल-कुशा और शुद्ध गोमय लाना चाहिए ॥३६॥ नदी-देवखात-तडाग अथवा सरोवर में स्नान करना चाहिए। किन्तु दूसरों के स्थान में कभी भी स्नान नहीं करे। नित्य ही पाँच पिण्डों का उद्धार न करके लोग स्नान को दूषित कर दिया करते हैं ॥३७॥

मृदैकया शिर क्षाल्य द्वाभ्या नाभेस्तथोपरि।
अधश्च तिसृभि क्षाल्य पादौ षड्भिस्तथैव च ॥३८
मृत्तिका च समुद्दिष्टा वृद्धामलकमात्रिका।
गोमयस्य प्रमाणन्तु तेनाङ्ग लेपयेत्तत ॥
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्तत स्नायात्समाहित ॥३९
लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रत ।
अभिमन्त्र्य जल मन्त्रैरालिङ्गैर्वारुणै शुभैः॥
स्नानकाले स्मरेद्विष्णुमापो नारायणो यत ॥४०
प्रेक्ष्य ओंकारमादित्य त्रिनिमज्जेज्जलाशये।
आचान्त पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥४१
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहाया विश्वतोमुखम्।
त्व यज्ञस्त्व वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम् ॥४२
द्रुपदा वा त्रिरभ्यस्येद् व्याहृतिप्रणवान्विताम्।
सावित्री वा जपेद्विद्वास्तथा चैवाघमर्षणम् ॥४३

एक मृत्तिका से शिर को धोना चाहिए—दो से नाभि के ऊपर के भाग का प्रक्षालन करे—तीन मृत्तिकाओं से अधोभाग को और छै से पैरों का प्रक्षालन करना चाहिए। बँधे हुए आँवले के फल के बराबर एक मृत्तिका समझनी चाहिए। फिर गोमय (गोबर) का प्रमाण लेकर उससे अङ्ग का लेपन करे और प्रक्षालन करके फिर आचमन करे तथा फिर विधि पूर्वक समाहित होकर स्नान करना चाहिए ॥३८।३९॥ तीर में स्थित होते हुए लेप करके उसके लिंगो से ही मन्त्र से जल को आलिंग शुभ वारुणों द्वारा अभिमन्त्रित करके स्नान के

समय में भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए क्योंकि अप नारायण का स्वरूप है ॥४०॥ ओङ्कार आदित्य का प्रेक्षण करके जलाशय में तीन वार निमज्जन करे। मन्त्र वेत्ता को निम्न मन्त्र से आचान्त होकर पुनः आचमन करना चाहिए ॥४१॥ मन्त्र—"अन्तश्चरसि—अमृतम्"—यह है अर्थात् विभु तो मुख आप प्राणियों के अन्तस्तल में गुहा में चरण करते हैं। आप यज्ञ स्वरूप हैं—वषट्कार—आप—ज्योति—रस और अमृत हैं ॥४२॥ "द्रुपदा—इस मन्त्र को तीन बार बोले अथवा व्याहृतियों तथा प्रणव से युक्त सावित्री का जाप विद्वान् को करना चाहिए। एवं अघमर्षण मन्त्र का उच्चारण करे ॥४३॥

ततः संमार्जनं कुर्य्यादापोहिष्ठामयो भुवः।
इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च॥
ततोऽभिमन्त्रितं तोयमापोहिष्ठादिमन्त्रकं ॥४४
अन्तर्जलमवागम्नो जपेत्त्रिरघमर्षणम्।
द्रुपदां वाथ सावित्री तद्विष्णोः परम पदम्॥
आवर्त्तयेद्वा प्रणव देवदेव स्मरेद्धरिम् ॥४५
आपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं मुच्यते सर्वपातकैः ॥४६
सन्ध्यामुपास्य चाचम्य संस्मरेन्नित्यमीश्वरीम्।
अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वपुष्पान्विताञ्जलिः ॥४७
प्रक्षिप्यालोकयेद्देवमुदयस्थं न शक्यते।
उदुत्यं चित्रमित्येव चक्षुरिति मन्त्रतः ॥४८
हंसः शुचिः सदेतेन सावित्र्या च विशेषतः।
अन्यैः सौरैर्वैदिकैश्च गायत्रीञ्च ततो जपेत् ॥४९
मन्त्रांश्च त्रिविधान् पश्चात् प्राक्कूले च कुशासने।
तिष्ठंश्च वीक्ष्यमाणोऽर्कं जपं कुर्यात्समाहितः ॥५०

इसके उपरान्त "आपो हिष्ठामयो भुवः"—इत्यादि मन्त्रों से संमार्जन करे "इदमापः प्रवहत"—इससे तथा व्याहृतियों से एवं 'आपो हिष्ठा'—इत्यादि मन्त्रों

से जल को अभिमन्त्रित करे ॥४४॥ जल के मध्य मे चुपचाप अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप कर। अथवा 'द्रुपदा'–इसका या सावित्री का किम्वा 'तद्विष्णो परम पदम्'––इसका अथवा प्रणव का आवर्त्तन करे और देवो के भी देव श्री हरि का स्मरण करना चाहिए ॥४५॥ हाथ मे जल लेकर अघमर्षण मन्त्र का जाप करके मार्जन करने पर विन्यास करके उस जल को समस्त पातको के सहित छोड़ देना चाहिए ॥४६॥ सन्ध्या की उपासना करके आचमन करे और ईश्वरी का नित्य ही स्मरण करना चाहिए। इसके अनन्तर ऊपर की ओर पुष्पाञ्जलि लेकर भगवान् आदित्य देव का उपस्थान करना चाहिए ॥ ४७ ॥ उस पुष्पो की अञ्जलि को प्रक्षिप्त करके देव का आलोकन करे। उदय चल म स्थित का नही किया जा सकता है। "उदुत्य चित्रम्" और 'तच्चक्षु'–इत्यादि मन्त्रो से 'हस शुचि सदेत' इससे तथा विशेषतया सावित्री से एव अन्य सौर तथा वैदिक मन्त्रो द्वारा उपस्थान करे। इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र का जाप करे ॥४८।४९॥ तट पर पूर्व की ओर मुख करके स्थित होकर सूर्य का दर्शन करते हुए अति समाहित होकर कुशासन पर बैठ कर विविध मन्त्रो का जाप करे ॥५०॥

स्फटिकाब्जाक्षरुद्राक्षै. पुत्रञ्जीवसमुद्भवै ।
कर्त्तव्या त्वक्षमाला स्यादन्तरा तत्र सा स्मृता ॥५१
यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतश्चरत् ।
अन्यथा च शुचौ भूम्या दर्भेषु च समाहित ॥५२
प्रदक्षिण समावृत्य नमस्कुर्य्यात्तत क्षितौ ।
आचम्य च यथाशास्त्र शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥५३
तत सन्तर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणास्तथा ।
आदावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि च ॥५४
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकै ।
पितृन् देवान् मुनीन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानत ॥
देवर्षीस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभि पितृन् ॥५५

यज्ञोपवीती देवाना निवीती ऋषितर्पणे ।
प्राचीनावीती पित्र्ये तु तेन तीर्थेन भारत ॥५६
निष्पीड्य स्नानवस्त्र वै समाचम्य च वाग्यतः ।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैस्तथाम्बुभि. ॥५७

अब जाप करने की माला के विषय मे बतलाते हैं कि माला स्फटिक—कमलगट्टा—रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीव की निर्मित होनी चाहिए। वह अन्तरा अक्षमाला कही गई है ॥५१॥ यदि गीले वस्त्रो वाला हो तो जल के मध्य मे स्थित होकर ही जप करे अन्यथा शुचि भूमि मे दर्भासन पर स्थित होकर समाहित होते हुए जप करे ॥५२॥ फिर प्रदक्षिणा करके भूमि में नमस्कार करे और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आचमन करके अपनी शक्ति के अनुरूप स्वाध्याय करे ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त देवगण—ऋषिवर्ग और पितरो का सन्तर्पण करना चाहिए। आदि मे ओङ्कार का उच्चारण करके अन्त मे "नमः तर्पयामि"—इसे बोलकर तर्पण करना चाहिए। देवो को और ब्रह्म ऋषियों को तर्पण अक्षत मिश्रित जल से करे। अपने सूत्रोक्त विधान से भक्ति के साथ पितर—देव और मुनियों का तर्पण करना चाहिए। उदकाञ्जलियो के द्वारा धीमान् पुरुष को देवर्षियो का तथा पितृगण का तर्पण करना चाहिए ॥५४॥ ॥५५॥ हे भारत ! देवो का तर्पण करने के समय में यज्ञोपवीती रहे—ऋषियो के तर्पण के समय मे निवीती रहे और पितृगण के तर्पण मे प्राचीनावीती रहते हुए उस तीर्थ से तर्पण करे ॥५६॥ स्नान के वस्त्र का निष्पीडन कर आचमन करे और वाग्यत अर्थात् मौन होकर अपने मन्त्रो के द्वारा पुष्पो से—पत्रो से तथा जलो से देवों का अर्चन करना चाहिए ॥५७॥

ब्रह्माणं शङ्कर सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनो हर ॥५८
प्रदद्यादथ पुष्पादि सूक्तेन पुरुषेण तु ।
आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिता ॥५९

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै देवं परिसमाहितः ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक् ॥६०
नतें ह्याराधनां पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्मात्तादिमध्यान्ते चेतसा धारयेद्धरिम् ॥६१
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु ।
निवेदयेच्च आत्मानं विष्णवेऽमलतेजसे ॥६२
तदध्यातमनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रितः ।
देवयज्ञं भूतयज्ञं पितृयज्ञं तथैव च ॥
मानुष ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान् समाचरेत् ॥६३
यदि स्यात्तर्पणादर्वाग् ब्रह्मयज्ञं कुतो भवेत् ।
कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाध्यायमाचरेत् ॥६४

ब्रह्मा-शङ्कर-सूर्य्य तथा मधुसूदन एवं अन्य जो अपने अभिमत (माने हुए) देवगण हो उनका क्रोध रहित होकर भक्ति भाव से समर्चन करे ।५८। पुरुष सूक्त के मन्त्रो के द्वारा पुष्पाक्षत गन्धादि सम्पूर्ण उपचारो को समर्पित करे । अथवा जल के द्वारा ही समस्त देव समर्चित करने चाहिए ॥५९॥ परिसमाहित होकर प्रणव पूर्वक देव का ध्यान करे और नमस्कार के द्वारा पृथक्-पृथक् पुष्पों का विन्यास करना चाहिए ॥६०॥ इनकी आराधना करना पुण्य नही किन्तु यह एक वैदिक कर्म है । इसलिये आदि—मध्य और अन्त मे चित्त से भगवान् हरि को धारण करना चाहिए ॥६१॥ अमल तेज से युक्त भगवान् विष्णु के लिये "तद्विष्णोः परमं पदम्"—इत्यादि मन्त्र से और पुरुष सूक्त से अपनी आत्मा को निवेदित करे ॥६२॥ उसका ध्यान मन मे रखने वाला परम शान्त रहते हुए "तद्विष्णो"—इत्यादि मन्त्र से मन्त्रित होकर देवयज्ञ-भूतयज्ञ-पितृयज्ञ-मानुष यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—इन पाँच यज्ञो को करना चाहिए ॥६३॥ यदि तर्पण करे तो इसके पीछे ब्रह्मयज्ञ कैसे होगा । मानुष यज्ञ करके इसके अनन्तर स्वाध्याय करना चाहिए ॥६४॥

वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो देवयज्ञः स तु स्मृतः ।
भूतयज्ञः स विज्ञेयो भूतेभ्यो यस्त्वयं बलिः ॥६५

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बहिस्त्वन्नं पक्षिभ्यश्च द्विजोत्तमः ॥६६
एकं तु भोजयेद्विप्र पितृनुद्दिश्य सत्तमः ।
नित्यश्राद्धं तदुद्दिश्य पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥६७
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥६८
पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्चयेद् द्विजम् ।
मनोवाक्कर्मभिः शान्तं स्वागतैः स्वगृहं ततः ॥६९
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तस्य चतुर्गुणम् ।
पुष्कलं हस्तमात्रन्तु तच्चतुर्गुणमुच्यते ॥७०
गोदोहमात्रकालो वै प्रतीक्षेदतिथिः स्वयम् ।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं तथा ॥७१
भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद् ब्रह्मचारिणे ।
दद्यादन्नं यथाशक्ति अर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥
भुञ्जीत बन्धुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥७२

वैश्वदेव करना चाहिए । यह दैवयज्ञ कहा गया है । भूतयज्ञ उसे ही समझना चाहिए । जिसमें भूतों के लिये बलि का आहरण किया जाता है ॥६५॥ द्विज श्रेष्ठ को श्वानों के लिये—श्वपचों के लिये और पतित आदि को बाहिर भूमि में अन्न देना चाहिए । पक्षियों के लिये भी अन्न देना चाहिए ॥६६॥ श्रेष्ठतम पुरुष को पितरों का उद्देश्य करके एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए । इसे नित्य श्राद्ध कहते हैं जोकि पितृगण के उद्देश्य से किया जाता है । यह पितृयज्ञ गति के प्रदान करने वाला होता है ॥ ६७ ॥ अथवा सावधान होते हुए अपनी शक्ति के अनुसार कुछ अन्न उद्धृत करके वेदों के तत्त्वों के विद्वान् द्विज के लिये उपपादित करना चाहिए ॥६८॥ अतिथि का नित्य ही पूजन करे । अपने घर पर समागत शान्त द्विज को मन-वाणी और कर्म से किये हुए स्वागत-सत्कारों के द्वारा नमस्कार करे और अर्चना करे । ॥६९॥ ग्रास मात्र अन्न को भिक्षा कहते हैं । उसका चतुर्गुण पुष्कल कहलाता

है और इसका चतुर्गुण हस्त मात्र कहा जाता है ।।७०।। अतिथि को जितने समय म एक गाय का दोहन होता है उतने काल तक स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिए । अभ्यागतो को तथा अतिथियों को अपनी शक्ति भर पूजन करना चाहिए ।।७१।। ब्रह्मचारी भिक्षु के लिये विधि पूर्वक भिक्षा देनी चाहिए । लोभ से रहित होकर याचको (याचको) के लिए यथाशक्ति अन्न का दान करना चाहिए । अन्न की बुराई न करते हुए मौन होकर अपने बन्धुओ के साथ भोजन करे ।।७२।।

अकृत्वा तु द्विज पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तम ।
भुञ्जते चेत् स मूढात्मा तिर्यग्योनिञ्च गच्छति ।।७३
वेदाभ्यासोऽन्वह शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा ।।७४
यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरादेव जायते ।।७५
अशौच सम्प्रवक्ष्यामि अशुचि पातकी सदा ।
अशौच चैव ससर्गाच्छुचि ससर्गवजनात् ।।७६
दशाह प्राहुराशौच मर्व विप्रा विपश्चित ।
मृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणाना द्विजोत्तम । ७७
आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम् ।
त्रिरात्रमोपनयनाद्दशरात्रमत परम् ।।७८
क्षत्रियो द्वादशाहेन दशभि पञ्चभिर्विश ।
शुद्ध्येन्मासेन वै शूद्रो यतीना नास्ति पातकम् ।।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावेषु शौचकम् ।।७९

द्विजों में श्रेष्ठ द्विज पाँच महायज्ञों को न करके यदि स्वयं भोजन कर लेता है तो वह मूढ़ आत्मा वाला है और दूसरे जन्म में वह तिर्यग् योनि म जन्म ग्रहण किया करता है ।।७३।। नित्य प्रति वेदों का अभ्यास और शक्ति से महायज्ञों की क्रिया म समर्थ तथा देवों का अर्चन ये पापों को शीघ्र ही नष्ट

कर देते हैं ।।७४।। जो भी मोह से अथवा आलस्य से देवताओं की अर्चना न करके भोजन कर लेता है वह नरक को प्राप्त होता है और शूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ।।७५।। अब मैं अशौच को बताऊँगा। पातक करने वाला पुरुष सर्वदा अशुचि रहा करता है। संसर्ग से भी अशुचि हो जाता है यदि शुचि का उसे कभी संसर्ग ही न होता हो ।। ७६ ।। विद्वान् पुरुष हे द्विज श्रेष्ठ! मृत होने पर और जन्म होने पर ब्राह्मण को दश दिन पर्यन्त आशौच कहते हैं ।।७७।। जब तक बालक के दांत नहीं निकलते हैं और उसकी मृत्यु हो जावे तो उसका आशौच तुरन्त ही दूर हो जाता है। जब तक चूड़ा कर्म न हो तब तक एक रात्रि का आशौच होता है। उपनयन संस्कार हो जाने पर तीन रात्रि का आशौच मृतक का होता है और इसके आगे तो दश रात्रि तक आशौच मृतक का होता है ।।७८।। यह ब्राह्मण के आशौच के विषय में बताया गया है किन्तु क्षत्रिय वर्ण वाले पुरुष का आशौच बारह दिन तक रहता है तथा वैश्य का आशौच पन्द्रह दिन तक होता है और शूद्र का आशौच एक मास पर्यन्त रहा करता है। यतियों को पातक नहीं होता है। गर्भ के स्राव हो जाने पर जितने भी मास का गर्भ हो उतनी ही रात्रियों तक उसका आशौच रहा करता है और इसके पश्चात् ही वह शुद्ध होता है ।।७९।

२५—दान धर्म वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् ।
अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।।१
दानन्तु कथितं तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत् ।।२
अध्यापनं याजनञ्च वृत्तमाहुः प्रतिग्रहम् ।
कुसीदं कृषिवाणिज्यं क्षत्रवृत्तोऽथवार्जयेत् ।।३
यद्दीयते तु पात्रेभ्यस्तद्दानं सात्त्विकं विदुः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं दानमीरितम् ।।४

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे ।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यशः ॥५
यत्तु पापोपशान्त्यै च दीयते विदुषां करे ।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥६
अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते ।
दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७

ब्रह्माजी बोले—इसके अनन्तर अब मैं सर्व श्रेष्ठ दान के धर्म के विषय में बतलाऊँगा किसी समुचित दान देने के पात्र पुरुष को श्रद्धा पूर्वक किया हुआ दान का प्रतिपादन विज्ञ पुरुषों के द्वारा भुक्ति एवं मुक्ति का प्रदान करने वाला दान बताया गया है। न्याय से उपार्जन करे यही वित्त दान के फल का भोग कहा गया है ॥१।२॥ ब्राह्मण के लिये अध्यापन करना—याजन करना और प्रतिग्रह ग्रहण करना ये ही वृत्ति बताई गई है। कुसीद (ब्याज)—कृषि और वाणिज्य कर्म यह क्षत्रियों की वृत्ति है। इसके द्वारा अर्जन करे ॥३॥ जो दान किसी भी योग्य पुरुष को दिया जाता है वही दान सात्विक कहा गया है। दान कितने ही प्रकार का होता है—नित्य—नैमित्तिक—काम्य और विमल दान होता है ॥४॥ जो नित्य प्रति हर एक दिन कुछ भी किसी अनुपकारी को अर्थात् जिससे किसी भी अपने उपकार की आशा न हो, दान दिया जाता है वह नित्य दान होता है। किसी फल का उद्देश्य न रखकर ब्राह्मण को नित्य दान दिया जाता है ॥ ५ ॥ जो किसी पाप की उपशान्ति के लिये विद्वान् पुरुषों के हाथ में दान दिया जाता है सत्पुरुषों ने उस दान को नैमित्तिक दान बतलाया है ॥ ६ ॥ सन्तति—विजय—ऐश्वर्य और स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से जो दान दिया जाता है यह काम्य दान कहा गया है और धर्म का चिन्तन करने वाले ऋषियों ने इस कामना की पूर्ति के लिये किया गया काम्य दान कहा है ॥७॥

ईश्वरप्रीणनार्थाय ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
चेतसा सत्त्वयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८

इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते ॥
भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥६
विद्या दत्त्वा ब्राह्मणाय ब्रह्मलोके महीयते ।
दद्यादहरहस्तान्तु श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ॥
सर्वपाप विनिर्मुक्तो ब्रह्म स्थान मवाप्नुयात् ॥१०
वैशाख्या पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च च ।
उपोष्याभ्यर्चयेद्विद्वान्मधुना तिलपिष्टकैः ॥
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत् ॥११
प्रीयतां धर्मराजाभिस्तथा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१२
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यमधुसर्पिषा ।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥१३
घृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्याञ्च विशेषतः ।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥१४

केवल भगवत्प्रीति प्राप्त करने के लिये ब्रह्म के वेत्ता पुरुषों में जो दान दिया जाता है और सत्व सम्पन्न चित्त से जिसको दिया जाता है वह परम शिव विमल दान कहा गया है ॥८॥ ईख की सदा उपज से सम्पन्न भूमि–यव–गोधूम (गेहूं) के उपज वाली भूमि का जो किसी वेद के विद्वान् को दान देता है वह परम पद को प्राप्त हो जाता है और फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है। भूमि का दान सबसे परम एवं श्रेष्ठ दान होता है। ऐसा उत्तम अन्य कोई भी दान न अब तक हुआ है और न भविष्य में भी होगा ॥ ६ ॥ जो विद्या का दान है जिसको कि ब्राह्मण के लिये दिया जाता है उसका बड़ा आदर ब्रह्मलोक में होता है। उस विद्या का दान नित्य प्रति बड़ी श्रद्धा से ब्रह्मचारी को देना चाहिए। ब्रह्मचारी को विद्या का दान करने वाला पुरुष समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर ब्रह्मस्थान को प्राप्त किया करता है ॥१०॥ वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन बारह ब्राह्मणों को उपवास कराकर

विद्वान् को मधु और तिल पिष्ठि से उनका अभ्यर्चन करना चाहिए। गन्धाक्षत पुष्पादि से भली भाँति अर्चना करके उनसे बचव.वे या स्वय बोले ।। ११ ।। धर्म वाणियो से प्रसन्न होवो उस प्रकार से मन मे वर्त्तमान होता है। पूरे जीवन मे जो भी पाप किये हैं वे सब उसी क्षण मे नष्ट हो जाते हैं ।।१२।। कृष्णाजिन में तिलो को रखकर हिरण्य—मधु और घृत के सहित जो ब्राह्मण के लिये दान देता है वह सब दुष्कृतों से तर जाता है ।।१३।। वैशाखी पूर्णिमासी के दिन घृत—अन्न और जल विशेष रूप से धर्मराज का निर्देश करके ब्राह्मणों को दान देता है वह भय से मुक्त हो जाता है ।।१४।।

द्वादश्यामर्चयेद्विष्णुमुपोष्याघप्रणाशनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो भवति निश्चितम् ।।१५
यो हि या देवतामिच्छेत्समाराधयितु नर ।
ब्राह्मणान्पूजयेद्यत्नाद्भोजयेत्सोपित सुरान् ।।१६
सन्तानकाम सतत पूजयेद् वै पुरन्दरम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्राह्मणान् ब्रह्मनिश्चयात् ।।१७
आरोग्यकामोऽथ रवि धनकामो हुताशनम् ।
कर्मणा सिद्धि कामस्तु पूजयेद् वै विनायकम् ।।१८
भोगकामो हि शशिन बलकामः समीरणम् ।
मुमुक्षुः सर्वससारात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम् ।।
अकाम. सर्वकामो वा पूजयेत्तु गदाधरम् ।।१९
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नद. ।
तिलप्रद. प्रजामिष्टा दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ।।२०
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यद. ।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।।२१

द्वादशी के दिन में पापों के प्रनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु की उपोषित होकर जो अर्चना करता है वह मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विनिर्मुक्त निश्चय ही हो जाया करता है ।।१५।। जो मनुष्य जिस देवता की आराधना करने की

इच्छा रखता है वह ब्राह्मणों का पूजन करे और उन्हें भोजन करावे तथा स्त्रियों को भी भोजन करावे एवं सुरों का यजन करे ॥१६॥ जो सन्तति प्राप्त करने की कामना रखता है उसे इन्द्र देव का पूजन करना चाहिए। जो ब्रह्मवर्चस प्राप्त करने का इच्छुक है उसे ब्रह्मा के निश्चय से ब्राह्मणों का यजन करना चाहिए ॥१७॥ आरोग्य की कामना वाले को सूर्यदेव की और धन की प्राप्ति करने की इच्छा वाले को हुताशन की पूजा करनी चाहिए। जो अपने किये हुए कर्मों की सिद्धि की कामना करता है वह विनायक देव का पूजन करे ॥१८॥ विविध भोगों के पाने की कामना रखने वाले को चन्द्रदेव का यजन करना चाहिए। बल के प्राप्त करने की इच्छा वाला समीरण अर्थात् वायुदेव का यजन करे। समस्त संसार के बन्धनों से छुटकारा पाने की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुष को प्रयत्न पूर्वक श्री हरि भगवान् का यजन करना चाहिए। किसी भी कामना के न रखने वाला या सभी कामनाओं वाला पुरुष भगवान् गदाधर का पूजन करे ॥१६॥ जल के दान करने वाला तृप्ति की प्राप्ति करता है। अन्न का दान करने वाला कभी क्षय न होने वाला सुख पाता है। तिलों का दान देने वाला अभीष्ट प्रजा का लाभ करता है। दीप दान करने वाला उत्तम चक्षुओं को पाता है ॥ २० ॥ भूमि का दान करने वाला समस्त पदार्थों की प्राप्ति किया करता है। सुवर्ण का दान करने वाला पुरुष दीर्घ आयु को प्राप्त करता है। गृह का दान देने वाला उत्तम विश्वों को पाता है और रूप्य (चाँदी) का दाता उत्तम रूप का लाभ करता है ॥२१॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वद ।
अनडुह श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य पिष्टपम् ॥२२
यानशय्याप्रदो भार्य्यामैश्वर्य्यमभयप्रद ।
धान्यद शाश्वत सौख्य ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ॥२३
वेदवित्सु ददज्ज्ञान स्वर्गलोके महीयते ।
गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ॥२४

औषध स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये ।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥२५
असिपत्रवन मार्गं क्षुरधारसमन्वितम् ।
तीक्ष्णातपश्च तरति छत्रोपानत्प्रदानतः ॥२६
यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे ।
तत्तद् गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥२७

वसु (धन) का दान करने वाला चन्द्र देव के सालोक्य की प्राप्ति करता है और अश्व का दाता अश्वि के लोक की प्राप्ति करता है। वृषभ का दाता पुष्ट श्री का लाभ करता है। गौ का दाता ब्रध्न के विष्टप को पाता है ॥२२॥ यान तथा शय्या के दान करने वाला पुरुष भार्या को पाता है। अभय के दान देने वाला ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है। धान्य का दाता शाश्वत सुख प्राप्त किया करता है। ब्रह्म का दान करने वाला शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति करता है ॥२३॥ वेदों के ज्ञाताओं में दिया हुआ ज्ञान स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है। गौओं को घास देने से मनुष्य समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है। ईंधनों के दान से मानव दीप्त अग्नि वाला होता है ॥२४॥ औषध—स्नेह और आहार रोग वाले के रोग को शान्त करने के लिये जो दान करने वाला है वह सदा रोगों से रहित–परम सुखी तथा लम्बी उम्र वाला होता है ॥२५॥ छाता और उपानत् अर्थात् जूतों के प्रदान करने पर असिपत्र वन नाम वाले नरक के मार्ग को जो कि छुरा की धारा से युक्त होता है उसे और अत्यन्त तीव्र आतप के कष्ट को तैर जाया करता है ॥२६॥ जो-जो भी वस्तु संसार में अपने आपको घर में अभीष्टतम और प्रिय हो वह–वही वस्तु किसी गुण वाले विप्र को दान में प्रदान करनी चाहिए। इससे अक्षय सुख की प्राप्ति हुआ करती है ॥२७॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
मकरान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥२८
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायाश्च विशेषतः ।
दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ॥२६

स्वर्गादच्युतिकामेन दानं पापोपशान्तये ।
दीयमानन्तु यो मोहाद्विप्राग्निष्वध्वरेषु च ॥
निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनिं व्रजेन्नर. ॥३०
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति ।
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्रह्महा स तु गर्हितः ॥३१

अयन मे—विषुव अर्थात् सक्रान्ति के समय मे तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के अवसर पर एव अन्य सक्रान्ति आदि के समयो पर जो दान किया जाता है वह कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला होता है ।। २८ ।। प्रयाग आदि महान् तीर्थों मे और विशेष रूप से गया नामक तीर्थ मे दान करने के धर्म से बडा धर्म प्राणियो का अन्य कोई भी धर्म इस ससार में नही होता है ।।२९।। स्वर्ग प्राप्त करके फिर वहाँ से कभी भी च्युति न हो अर्थात् स्वर्गलोक का त्याग न करना पडे एव किये हुए समस्त पापो के उपशमन करने के लिये दिये हुए दान को मोह वश होकर जो विप्र–अग्नि और यध्वरो मे निवारण कर देता है वह पापात्मा पुरुष तिर्यग् योनि को प्राप्त हुआ करता है ॥ ३० ॥ जो दुर्भिक्ष (अकाल) के समय मे अन्न आदि का दान नही दिया करता है अर्थात् जो अन्न प्राप्त न होने के कारण विप्रगण भूख से मर रहे हों उन्हें अन्न नही देता है वह ब्रह्म हत्यारा ही होता है और बहुत ही निन्दित होता है ॥३१॥

२६–सप्तद्वीप उत्पत्ति और वंश वर्णन

अग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमास्तथा ।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः शबल पुत्र एव च ॥
ज्योतिष्मान्दशमो जात पुत्रा ह्येते प्रियव्रतात् ॥१
मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधु ॥
विभज्य सप्त द्वीपानि सप्तानां प्रददौ नृपः ॥२

योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिराप्लुता ।
जलोपरि मही याता नौरिवास्ते सरिज्जले ॥३
जम्बुप्लक्षह्वयो द्वीपौ शाल्मलश्चापरो हर ।
कुश क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥४
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ॥५
द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीप. समुद्रश्च वृषध्वज ।
जम्बुद्वीपे स्थितो मेरुर्लक्षयोजनविस्तृत. ॥६
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैरस्य चोच्छ्रय· ।
प्रविष्ट· षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः ॥७
अध. षोडशसाहस्रः कर्णिकाकारसंस्थित. ।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ॥
नील श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥८

श्रीहरि भगवान् ने कहा—राजा प्रिय व्रत के दश पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम-अग्निध्र अग्निबाहु-वपुष्मान्—द्युतिमान्—मेधातिथि—भव्य—शवल-पुत्र और ज्योतिष्मान् ये थे ॥ १ ॥ मेधा-अग्निबाहु और पुत्र ये तीनो योगाभ्यास मे परायण और महान् भ ग वाले जातिस्मर हुए थे जिन्होंने कभी भी अपना मन राज्य के सुखो का उपभोग करने मे नही लगाया था। केवल प्रियव्रत नृप के सात ही पुत्र ऐसे थे जिनके लिये राजा न सातों को भूमि का सात द्वीपो मे विभाजन करके दे दिया था ॥२॥ पचास करोड़ योजनो के प्रमाण से युक्त यह पृथ्वी नदी के जल मे एक नौका की भाँति आप्लुत थी ।३। सात द्वीपो के नाम—जम्बु द्वीप—प्लक्ष—शाल्मल द्वीप—हे हर ! कुश—क्रौञ्च—शाक द्वीप और सातवां पुष्कर द्वीप है ॥ ४ ॥ ये सातो द्वीप सात समुद्रों से आवृत थे। हे वृषध्वज ! उन सात समुद्रो के नाम ये हैं—लवण—समुद्र-इक्षु-सुरा-सर्पि (घृत)—दधि—दुग्ध सागर और जल सागर हैं ॥५॥ एक द्वीप से दूसरा द्वीप तथा इसी भाँति एक सागर से दूसरा समुद्र दुगुना विस्तार वाला होता है जम्बूद्वीप मे स्थित मेरु गिरि एक लाख योजन के विस्तार वाला है ॥ ६ ॥

चौरासी सहस्र योजन वाली इस मेरु पर्वत की ऊँचाई होती है। षोडश योजन नीचे के भाग में प्रविष्ट है और बत्तीस योजन मूर्द्धा में विस्तृत है ॥७॥ सोलह सहस्र नीचे कर्णिका के आकार में संस्थित है। हिमवान् और हेमकूट तथा इनके दक्षिण में निषध है। उत्तर दिशा में नील—श्वेत और शृङ्गी पर्वत संस्थित हैं ॥८॥

प्लक्षादिषु नरा रुद्र ये वसन्ति सनातनाः।
शङ्कर हि न तेष्वस्ति युगावस्था कथञ्चन ॥९
जम्बुद्वीपेश्वरात्पुत्रा ह्यग्निध्रादभवन्नव।
नाभिः किंपुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ॥१०
रम्यो हिरण्वान्षष्ठश्च कुरुर्भद्राश्व एव च।
केतुमालो नृपस्तेभ्यस्तत्संज्ञान्खण्डकान्ददौ ॥११
नाभेस्तु मेरुदेव्यान्तु पुत्रोऽभूदृषभो हर।
तत्पुत्रो भरतो नाम शालग्रामे स्थितो व्रती ॥१२
सुमतिर्भरतस्याभूत्तत्पुत्रस्तेजसोऽभवत्।
इन्द्रद्युम्नश्च तत्पुत्रः परमेष्ठी ततः स्मृतः ॥१३
प्रतीहारश्च तत्पुत्रः प्रतिहर्ता तदात्मजः।
सुनस्तस्मादथो जातः प्रस्तारस्तत्सुतो विभुः ॥१४
पृथुश्च तत्सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः।
नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रो बुद्धिराट् ततः ॥१५
ततो धीमान्महातेजा भौवनस्तस्य चात्मजः।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजस्तस्याप्यभूत्सुतः॥
शतजिद्रजसस्तस्य विष्वग्ज्योतिः सुतः स्मृतः ॥१६

हे रुद्र ! प्लक्ष आदि द्वीपों में जो सनातन मनुष्य निवास किया करते हैं हे शङ्कर ! उनमें युगावस्था किसी भी प्रकार से नहीं होती है ॥९॥ जम्बू-द्वीप के अधिपति नृप से जिनका नाम अग्निध्र था उससे नौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम नाभि—किंपुरुष—हरि वर्ष—इलावृत—रम्य—हिरण्वान् षष्ठ है।

कुरु-भद्राश्व और केतुमाल थे। राजा ने उनके लिए उन्हीं की संज्ञा वाले खण्डों को दे दिया ॥१०।११॥ हे हर! नाभि से मेरु देवी में ऋषभ नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था। उसका पुत्र भरत नाम वाला था जो शालग्राम की उपासना में स्थित और व्रतधारी था ॥ १२ ॥ भरत का सुमति पुत्र हुआ और उसका पुत्र तैजस हुआ। तैजस का तनय इन्द्रद्युम्न हुआ और फिर इससे परमेष्ठी नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥१३॥ परमेष्ठी का आत्मज प्रतीहार हुआ था तथा इसका पुत्र प्रतिहर्त्ता हुआ। फिर इसका पुत्र प्रस्तार समुत्पन्न हुआ और प्रस्तार का पुत्र विभु हुआ था ॥१४॥ विभु का आत्मज नक्त हुआ और नक्त का गय तथा गय का पुत्र नर और इसका पुत्र बुद्धि राट् उत्पन्न हुआ था ॥१५॥ इससे महान् तेजस्वी धीमान् भौवन पुत्र हुआ और इसका आत्मज त्वष्टा हुआ। त्वष्टा का पुत्र विरजा और विरजा का पुत्र रज हुआ था। रज का पुत्र सत्‌जित् हुआ और इसका पुत्र विष्वग्ज्योति हुआ था ॥१६॥

२७—वर्ष और कुल पर्वत वर्णन

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतो भवेत्।
पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरण्वानृषभध्वज ॥१
ततः किम्पुरुषो वर्षो मेरोर्दक्षिणतः स्मृतः।
भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ॥
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे ॥२
उत्तरे च कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः।
सिद्धिः स्वाभाविकी रुद्र वर्जयित्वा तु भारतम् ॥३
इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा ॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥४
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः।
अन्ध्रा दक्षिणतो रुद्र तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः ॥५

महेन्द्रो मलयः सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत. ।
विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥६
वेदस्मृतिर्नर्मदा च वरदा सुरसा शिवा ।
तापी पयोष्णी सरयू कावेरी गोमती तथा ॥७
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी ।
केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती ॥८
ऋषिकुल्या च कावेरी मृतगङ्गा पयस्विनी ।
विदर्भा च शतद्रुश्च नद्य. पापहराः शुभा ॥
श्राभा पिबन्ति सलिलं मध्यदेशादयो जना ॥९

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषभ ध्वज ! इलावर्त वर्ष मध्य मे स्थित है । इसके पूर्व दिशा मे भद्राश्व वर्ष है । पूर्व और दक्षिण मे हिरण्वान् वर्ष है । इसके अनन्तर किम्पुरुष वर्ष मेरु के दक्षिण मे स्थित कहा गया है । दक्षिण मे भारत वर्ष बन या गया है तथा दक्षिण और पश्चिम मे हरि वर्ष स्थित है । पश्चिम मे केतुमाल है और पश्चिम उत्तर मे रम्यक वर्ष है ॥१-२॥ उत्तर दिशा मे कुरु का वर्ष है जो कि कल्प वृक्ष से समावृत है । हे रुद्र ! भारत को वर्जित करके सर्वत्र स्वाभाविकी सिद्धि होती है ॥३॥ इन्द्रद्वीप क-शेरुमान् ताम्र वर्ण-गभस्तिमान्-नागद्वीप और कटाह-सिंहल तथा वारुण यह उनमें नवम द्वीप है जोकि सागर से समृत होता है ॥४॥ इसके पूर्व मे किरात लोग निवास किया करते है और पश्चिम में यवन जाति वाले मानव रहते है । दक्षिण दिशा मे आन्ध्र लोग तथा हे रुद्र ! उत्तर दिशा में तुरुष्क निवास करते हैं । ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र अन्तर मे वास करने वाले हैं ॥५॥ यहाँ पर सात कुल पर्वत हैं जिनके नाम—महेन्द्र—मलय—सह्य—शुक्तिमान्—ऋक्ष पर्वत—विन्ध्य और पारिभद्र हैं ॥६॥ वेदस्मृति—नर्मदा—वरद—सुरसा—शिवा—तापी—पयोष्णी—सरयू—कावेरी—गोमती—गोदावरी—भीमरथी—कृष्णवर्णा—महानदी—केतुमाला—ताम्र पर्णी—चन्द्र भागा—सरस्वती—ऋषि कुल्या—कावेरी—मृत गङ्गा—पयस्विनी—विदर्भा और शतद्रु हैं । ये सभी नदियाँ परम

शुभ एवं पापों के हरण करने वाली हैं। इन समस्त नदियों का जल मध्य देशादि के मानव पान किया करते हैं ॥९॥

पाञ्चाला कुरवो मत्स्या यौधेया सपटच्चरा ।
कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेशजना स्मृता. ॥१०
वृषध्वज जना पाद्या सूतमागधचेदयः ।
काषायाश्च विदेहाश्च पूर्वस्या कोशलास्तथा ॥११
कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा ।
विन्ध्यान्तर्निलया देशा पूर्वदक्षिणत स्मृता ॥१२
पुलिन्दाश्मकजीमूतनयराष्ट्रनिवासिन ।
कार्णाटा काम्बोजा घाटा दक्षिणापथवासिन ॥१३
अम्बष्ठद्रविडा लाटा कम्बोजा स्त्रीमुखा शका ।
आनर्तवासिनश्चैव ज्ञेया दक्षिणपश्चिमे ॥१४
स्त्रीराज्या सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा ।
पश्चिमेन च विज्ञेया माथुरा नैषधं सह ॥१५
माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलिकाश्चमसा खशा ।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे ॥१६
लम्बकास्तननागाश्च माद्रगान्धारवाह्लिका ।
हिमाचलालया म्लेच्छा उदीची दिशमाश्रिता ॥१७
त्रिगर्त्तनीलकोलाभब्रह्मपुत्रा सटङ्कणा ।
अभीषाहा सकाश्मीरा उदक्पूर्वेण कीर्त्तिता ॥१८

पाञ्चाल—कुरु—मत्स्य—यौधेय—सपटच्चर—कुन्ति और शूरसेन ये मध्य देश के मनुष्य कहे जाते हैं ॥१०॥ हे वृषध्वज ! पाद्य—सूत—मागध—चेदि—काषाय—विदेह तथा कोशल ये देश पूर्व में स्थित हैं ॥ ११ ॥ कलिंग—वङ्ग—पुण्ड्र—अङ्ग—वैदर्भ—मूलक ये देश विन्ध्य के अन्तर्निलय रहते हैं और पूर्व तथा दक्षिण में स्थित हैं ॥१२॥ पुलिन्द अश्मक—जीमूत—नय राष्ट्र निवासी—कार्णाट कम्बोज और घाट ये दक्षिणापथ के निवासी होते हैं ॥१३॥ अम्बष्ठ—द्रविड—

लाट–काम्बोज–स्त्री मुख—शक और आनर्त्त वासी लोग दक्षिण तथा पश्चिम मे जानने के योग्य हैं ।।१५।। स्त्री राज्य–सैन्धव–म्लेच्छ–नास्तिक तथा यवन पश्चिम दिशा मे समझने चाहिए । नैषधो के साथ माथुर–माण्डव्य—तुषार–मूलिक–चमस—खशर–महाकेश–महानाद ये देश उत्तर–पश्चिम मे स्थित होते हैं ।।१६।। लम्बक–स्तन नाग–म द्र–गा–धार–बाह्लिक–हिमाचल मे आलय रखने वाले तथा म्लेच्छ ये देश उत्तर दिशा का आश्रय लेने वाले हैं ।।१७।। त्रिगर्त्त–नील—कोलाभ–ब्रह्म पुत्र—सटङ्कण—अभीषाह–सकाश्मीर ये देश उत्तर–पूव मे स्थित बताये गये हैं ।।१८।।

२८–प्लक्ष द्वीपादि नर्णन

सप्त मेधातिथे पुत्रा प्लक्षद्वीपेश्वरस्य च ।
ज्येष्ठ शान्तभवो नाम शिशिरस्तदनन्तर ।।१
सुखोदयस्तथा नन्द शिव क्षेमक एव च ।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषा प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ।।२
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।
सोमक सुमना शैलो वैभ्राजश्चात्र सप्तम ।।३
अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्रमु ।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगा ।।४
वपुष्माञ्छाल्मलस्येशस्तत्सुता वर्षनामका ।
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्चापि सप्तमः ।।५
कुमुदश्चोन्नतो द्रोणो महिषोऽथ बलाहक ।
क्रौञ्च ककुद्मान्ह्यते वै गिरय सरितस्त्विमा ।।६
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी ।
विधृति सप्तमी तासा स्मृता पापप्रशान्तिदा ।।७

श्री हरि भगवान् ने कहा—प्लक्ष द्वीप के अधिपति मेधातिथि के सात पुत्र हुए थे । सबसे बड़ा जो उसका पुत्र था उसका नाम शान्त भव था । इसके

पीछे दूसरे का नाम शिशिर था ॥१॥ सुखोदय–नन्द–शिव–क्षेमक–ध्रुव सातवाँ पुत्र था। ये सब प्लक्ष द्वीप के स्वामी हुए थे ॥२॥ गोमेद–चन्द्र–नारद–दुन्दुभि सोमक—सुमना—शैल यह सातवाँ वैभ्राज हुआ था ॥ ३ ॥ इसी प्रकार से निम्नग भी सात हुए थे। उनके नाम अनुतप्ता–शिखी–विपाशा–त्रिदिव–क्रमु–अमृत और सुकृत ये हैं ॥४॥ वपुष्मान् शाल्मल द्वीप का स्वामी था। उसके पुत्र वर्ष नामधारी हैं। श्वेत—हरित—जीमूत—रोहित–वैद्युत—मानस और सातवाँ सप्रभ था ॥ ५ ॥ कुमुद—उन्नत—द्रोण–महिष–बलाहक—क्रौञ्च—ककुद्मान् ये सब गिरि हैं और नदियाँ ये हैं—योनिस्तोया–वितृष्णा—चन्द्रा–शुक्ला—विमोचनी—विधृति सातवीं है। ये सब पापों की शान्ति प्रदान करने वाली कही गई हैं ॥६।७॥

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व तान्।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लम्बनो धृतिः॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्षपद्धतिः ॥८
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ॥९
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा।
विद्युदम्भा मही काशा सर्वपापहरास्त्विमाः ॥१०
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः।
कुशलो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता द्विज ॥११
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः।
देवावृच्च महाशैलो दुन्दुभिः पुण्डरीकवान् ॥१२
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ॥१३
शाकद्वीपेश्वराद्भव्यात्सप्त पुत्राः प्रजज्ञिरे।

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मशीवक ॥
कुसुमोद समोदाकि सप्तमश्च महाद्रुम ॥१४

कुशद्वीप मे ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए वे उनका श्रवण करो। उद्भिद—वेणुमान्—द्वैरथ—लम्बन—धृति—प्रभाकर—कपिल ये उनके सात नाम हैं। इनके नामो से ही वर्षों की पद्धति की रचना हुई थी ॥८॥ विद्रुम—हेमशैल द्युतिमान्—पुष्पवान्—कुशेशय—हरि और सातवां मन्दराचल ये सात पर्वत हैं ॥९॥ धूतपापा—शिवा—पवित्रा—सम्मति—विद्युदम्भा—मही और काशा ये सात नदियाँ हैं जो समस्त प्रकार के पापो के हरण करने वाली हैं॥ १० ॥ क्रौंच द्वीप में महान् आत्मा वाले द्युतिमान् के सात पुत्र हुए थे। उनके नाम कुशल—मन्दग—उष्ण—पीवर—अन्धकारक—मुनि और दुन्दुभि है हर ये सात उनके पुत्रो के शुभ नाम हैं॥ ११ ॥ क्रौञ्च—वामन—गौतरा अन्धकारक—देवावृत्—महाशैल—दुन्दुभि और पुण्डरीकवान् ये सात पर्वत हैं ॥ १२ ॥ गौरी—कुमुद्वती—सन्ध्या—रात्रि—मनजवा—ख्याति और पुण्डरीका ये सात उस क्रौंच द्वीप मे बहने वाली नदियाँ हैं ॥१३॥ शाक द्वीप के स्वामी भव्य से सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम जलद—कुमार—सुकुमार—मशीवक—कुसुमोद—समोदाकि और सातवें पुत्र का नाम महाद्रुम था ॥१४॥

सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या।
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ॥१५
शबलात्पुष्करेशाश्च महावीरश्च धातकि ।
अभूद्वर्षद्वयश्चैव मानसोत्तरपर्वत. ॥१६
योजनाना सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रित ।
तावच्चैव च विस्तीर्ण सर्वत परिमण्डल ॥१७
स्यादूदकेनोदधिना पुष्कर परिवेष्टितः।
स्वादूदकस्य पुरतो दृश्यते लोकसंस्थिति ॥१८
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ॥१९
लोकालोकस्तत. शैलो योजनायुतविस्तृतः।
तमसा पर्वतो व्याप्तस्तमोऽप्यण्डकटाहत. ॥२०

उप द्वीप मे सात नदियाँ हैं उनके नाम सुकुमारी–कुमारी–नलिनी—धेनुका–इक्षु—वेणुका–गभस्ती ये हैं ॥ १५ ॥ धावन और पुष्करेश से महावीर और धातकि ये मानस के उत्तर–पूर्व मे दो वर्ष हुए थे ॥१६॥ पचास सहस्र योजन ऊपर को ऊँचे और उतना ही सब ओर से परिमण्डल विस्तार वाला था ॥१७॥ पुष्कर समुद्र के जल से परिवेष्ठित है। उदक के आगे लोक नस्थिति दिखलाई देती है ॥१८॥ दुगुनी स्वर्णमयी भूमि है जोकि सब प्रकार के जन्तुओं से रहित है ॥१९॥ वहाँ पर लोकालोक पर्वत है जोकि दश हजार योजन के विस्तार वाला है। वह पर्वत अन्धकार से व्याप्त है और अन्धकार अण्डकटाह से व्याप्त है ॥२०॥

२९–पाताल नरकादि वर्णन

सप्ततिस्तु सहस्राणि भूम्युच्छ्रायोऽपि कथ्यते ।
दशसाहस्रमेकैकं पाताल वृषभध्वज ॥१
अतल वितलञ्चैव नितलञ्च गभस्तिमत् ।
महाख्य सुतलञ्चाग्रय पातालञ्चापि सप्तमम् ॥२
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चना ।
भूमयस्तत्र दैतेया वसन्ति च भुजङ्गमाः ॥३
रौद्रे तु पुष्करद्वीपे नरका सन्ति तान् शृणु ।
रौरव. शूकरो वोधस्तालो विशसनस्तथा ॥४
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विमोहितः ।
रुधिरोऽथ वैतरणी कृमिशः कृमिभोजनः ॥५
असिपत्रवनः कृष्णो नानाभक्षश्च दारुणः ।
तथा पूयवह पापो वह्निज्वालोद्भवोऽधिव । ६
सदंश. कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ।
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोष्णवीचिर्नरकाः स्मृताः ॥
पापिनस्तेसु पच्यन्ते विषशस्त्राग्निदायिन. ॥७
उपर्युपरि वै लोका रुद्र भूतादयः स्थिताः ॥८

वारिवह्न्यनिलाकाशे वृत भूतादिना च तत् ।
तदण्ड महता रुद्र प्रधानेन च वेष्टितम् ॥
अण्ड दशगुणं व्याप्त व्याप्य नारायणः स्थितः ॥६

श्री हरि भगवान् ने कहा—हे वृषभ ध्वज ! इस भूमि की ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन कही जाती है और एक-एकका दश सहस्र वाला पाताल है पाताल भी सात हैं—उनके नाम अतल-वितल-नितल-गभस्तिमत्-मह तल-सुतल और अग्र्य पाताल सातवाँ है ॥१।२॥ कृष्णा-शुक्ला—अरुणा-पीता-शर्करा और शैलकाञ्चना ये वहाँ पर भूमियाँ हैं। दैतेय और भुजङ्गम वहाँ निवास किया करते है ॥३॥ रौद्र पुष्कर द्वीप में नरक हैं अब उनके नामो का श्रवण करो। रौरव—शूकर—रोधस्ताल—विशसन—महाज्वाल—तप्त कुम्भ-लवण—विमोहित-रुधिर-वैतरणी-कृमिश-कृमिभोजन-असिपत्र वन-कृष्ण—नानाभक्ष—पूय वह-पाप—वह्निज्वालोद्भव-अशिव—सदंश-कृष्ण सूत्र-तम-अवीचि-श्वभोजन-अप्रतिष्ठ-उष्णवीचि-ये नरक कहे गये हैं। पापी लोग इन उक्त नरको मे अपने किये हुए पापो के फलो की पीडा भोगा करते हैं जोकि विष—शस्त्र तथा अग्नि के देने वाले होते हैं। हे रुद्र ! इनके ऊपर—उत्तर मे लोक हैं जहाँ पर भूतादि स्थित रहा करते हैं। जल-अग्नि-वायु और आकाश मे वह भूतादि से वृत है। हे रुद्र ! वह अण्ड महान् प्रधान के द्वारा वेष्टित है यह अण्ड दश गुना व्याप्त है और वहाँ नारायण व्याप्त होकर स्थित हैं।४ से ६॥

३०—ज्योतिषशास्त्र वर्णन

षडादित्ये दशा ज्ञेया सोमे पञ्चदश स्मृताः ।
अष्टावङ्गारके चैव बुधे सप्तदश स्मृताः ॥१
शनैश्चरे दश ज्ञेया गुरोरेकोनविंशतिः ।
राहोर्द्वादशवर्षाणि एकविंशति भार्गवे ॥२
रवेर्दशा दुःखदा स्यादुद्वेगनृपमाराकृत् ।
विभूतिदा सोमदशा सुखमिष्टान्नदा तथा ॥३

दु खप्रदाकुजदशा राज्यादे. स्याद्विनाशिनी ।
दिव्यस्त्रीदा बुधदशा राज्यदा कोपवृद्धिदा ॥४
शनेर्दशा राज्यनाशबन्धुदु खकरी भवेत् ।
गुरोर्दशा राज्यदा स्यात् सुखधर्मादिदायिनी ॥
राहोर्दशा राज्यनाशव्याधिदा दुःखदा भवेत् ॥५
हस्त्यश्वदा शुक्रदशा राज्यस्त्रीलाभदा भवेत् ॥६
मेषमङ्गारकक्षेत्र वृष शुक्रस्य कीर्त्तितम् ।
मिथुनस्य बुधो ज्ञेयः सोमः कर्कटस्य च ।७

श्री हरि भगवान् बोले—छैं आदित्य में दशा जाननी चाहिए । चन्द्रमा मे पन्द्रह दशा बत ई गई हैं । मङ्गल मे आठ—बुध मे सत्रह कही गई हैं ॥१॥ शनीचर मे दश और गुरु की उन्नीस तथा राहु की बारह वर्ष की और शुक्र की इक्कीस वर्ष की दशा होती है ॥ २ ॥ रवि की दशा दुःख दायिनी होती है । यह उद्वेग और नृप का नाश करने वाली होती है । चन्द्रमा की दशा विभूति के प्रदान करने वाली होनी है और यह सुख तथा मिष्टान्न के देने वाली है ।३। मङ्गल की दशा दु ख देने वाली और राज्य आदि के विनाश करने वाली होती है । बुध की दशा दिव्य स्त्री का प्रदान करने वाली राज्य देने वाली तथा कोप की वृद्धि करने वाली है ॥ ४ ॥ शनि की दशा राज्य के नाश करने वाली और बन्धुओं को दु ख करने वाली होती है । गुरु की दशा राज्य प्रदान करने वाली तथा सुख एव धर्म आदि के देने वाली होती है । राहु की दशा राज्य का नाश करने वाली व्याधि देने वाली और दु ख दायिनी होती है ॥ ५ ॥ शुक्रदेव की दशा हाथी—घोडे देने वाली और राज्य—स्त्री एव लाभ कराने वाली हुआ करती है ॥ ६ ॥ मङ्गल का क्षेत्र मेष है और शुक्र का क्षेत्र वृष होता है । मिथुन का बुध जानना चाहिए तथा कर्क का सोम होना है ॥७।

सूर्य्यक्षेत्रं भवेत् सिंह. कन्याक्षेत्रं बुधस्य च ।
भार्गवस्य तुलाक्षेत्र वृश्चिकोऽङ्गारकस्य च ॥८

धनु सुरगुरोश्चैव शनेर्मकरकुम्भकौ ।
मीन सुरगुरोश्चैव ग्रहक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ॥६
पौर्णमास्या द्वयं यत्र पूर्वाषाढ़ाद्वय भवेत् ।
द्विरापाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे ॥१०
अश्विनो रेवती चित्रा धनिष्ठा स्यादलङ्कृतौ ॥११
मृगाहिकपिमार्जारश्वानः शूकरपक्षिणः ।
नकुलो मूषिकश्चैव यात्राया दक्षिणे शुभः ॥१२
विप्रकन्या शवो रुद्र शङ्खभेरीवसुन्धरा. ।
वेणुस्त्रीपूर्णकुम्भाना यात्राया दर्शनं शुभम् ॥
जम्बूकोष्ट्रखराद्याश्च यात्राया वामके शुभा ॥१३
कार्पासौषधितैलञ्च पक्वाङ्गारभुजङ्गमा ।
मुक्तकेशी रक्तमाल्य नग्नाद्यशुभमीक्षितम् ॥१४

सिंह का स्वामी सूर्य होता है और कन्या का अधिपति बुध होता है । अङ्गारका अर्थात् मङ्गल का क्षेत्र वृश्चिक होता है । तात्पर्य यह है कि मेष और वृश्चिक दोनो का स्वामी भौम है तथा तुला और वृष दोनो का स्वामी शुक्र होता है । वृहस्पति धन का स्वामी है तथा मकर और कुम्भ इन दोनो का स्वामी शनि होता है । मीन का भी धन के साथ स्वामी गुरु होता है । इस तरह ये ग्रहो के क्षेत्र बता दिये गये हैं ॥ ८ ॥ ६ ॥ पौर्णमासी से जहाँ पर दो पूर्वाषाढा हों वह दो आषाढ़ वाला जानना चाहिए विष्णु कर्कट मे शयन किया करते हैं ॥ १० ॥ अलङ्कृति मे अश्विनी—रेवती—चित्रा और धनिष्ठा ये नक्षत्र लिये जाते हैं ॥ ११ ॥ मृग—अहि—कपि—मार्जार—श्वान—शूकर पक्षी—नकुल और मूषिक ये यात्रा मे दक्षिण रहने वाले शुभ होते हैं ॥ १२ ॥ विप्रकी कन्या—शव (मृत देह)—शङ्ख–भेरी–वसुन्धरा–वेणु–पूर्ण कुम्भ ये हे रुद्र ! यात्रा के समय मे दर्शन देने वाले शुभ माने जाते है । जम्बूक–उष्ट्र (ऊँट) और खर आदि यात्रा में बाईं ओर हो तो शुभ कहे गये हैं ॥ १३ ॥ कार्पास–औषधि–तैल—पक्व अङ्गार–भुजङ्गम–मुक्त केशो वाली–रक्त वर्ण

की माला और नग्न (नगाशगीर) आदि ये सब अगर दिखलाई देते हैं तो अशुभ होते हैं ।। १४ ।।

हिक्काया लक्षरण वक्ष्ये लभेत्पूर्व महाफलम् ।
आग्नेये शोकसन्तापौ दक्षिणे हानिमाप्नुयात् ।।१५
नैर्ऋत्ये शोकसन्तापौ मिष्टान्नञ्चैव पश्चिमे ।
अर्थं प्राप्नोति वायव्ये उत्तरे कलहो भवेत् ।।
ईशाने मरण प्रोक्त हिक्कायाश्च फलाफलम् ।।१६
विलिख्य रविचक्रन्तु भास्करो नरसन्निभ. ।
यस्मिनृक्षे वसेद्भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके ।।१७
त्रय वक्ने प्रदातव्यमेकैक स्कन्धयोर्न्यसेत् ।
एकैक बाहुयुग्मे तु एकैक हस्तयोर्द्वयो ।।१८
हृदये पञ्च ऋक्षाणि एक नाभौ प्रदापयेत् ।
ऋक्षमेक न्यसेद् गुह्ये एकैक जानुके न्यसेत् ।।१९
नक्षत्राणि च शेषाणि रविपादे नियोजयेत् ।
चरणस्थेन ऋक्षेण अल्पायुर्जायते नर. ।।२०
विदेशगमन जानौ गुह्यस्थे परदारवान् ।
नाभिस्थेनाल्पसन्तुष्टो हृत्स्थेन स्यान्महेश्वरः ।।२१
पाणिस्थेन भवेच्चोरः स्थानभ्रष्टो भवेद् भुजे ।
स्कन्धस्थिते धनपतिर्मुखे मिष्टान्नमाप्नुयात् ।।
मस्तके पट्टवस्त्रन्तु नक्षत्रं स्याद्यदि स्थितम् ।।२२

अब हिचकी के लक्षण बताये जाते हैं। यदि हिचकी पूर्व दिशा मे होवे तो इसका महान् फल होता है। अग्नि कोण मे यह शोक एव सन्ताप की देने वाली होती है। दक्षिण दिशा मे होने वाली हिक्का हानिप्रद होती है ।। १५ ।। नैर्ऋत्य कोण की हिक्का शोक एव सन्ताप की देने वाली है। पश्चिम मे होने वाली मिष्टान्न प्रदान करने वाली है। वायव्य दिशा की हिचकी अर्थ प्रद है और उत्तर मे होने से कलह होता है। ईशान दिशा में होने से

मरण होता है । इस प्रकार से हिक्का के ये फलाफल होते हैं ॥ १६ ॥ रवि का चक्र लिखे । भास्कर एक नर के सदृश होता है । जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से आदि लेकर तीन नक्षत्र मस्तक पर विन्यस्त करे । तीन मुख मे न्यस्त करे और एक-एक दोनो कन्धो पर विन्यस्त करे । एक-एक दोनों बाहुओ मे और एक-एक दोनो हाथो मे न्यस्त करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस नराकृति रविचक्र के हृदय मे पांच नक्षत्र उसी क्रम से लिखे और एक नाभि मे विन्यस्त करना चाहिए । एक नक्षत्र गुह्य मे रक्खे और एक-एक दोनो घुटनों मे विन्यस्त करे ॥ १९ ॥ शेष नक्षत्रो को रवि के चरणो मे विन्यस्त कर देना चाहिए । चरण मे स्थित नक्षत्र से मनुष्य अल्प आयु वाला होता है ॥ २० ॥ जानु मे स्थित नक्षत्र से विदेश में गमन होता है और जो गुह्य में स्थित नक्षत्र है उससे पराई स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला होता है । नाभि मे स्थित नक्षत्र से अल्प सन्तोष वाला होता है तथा हृदय मे स्थित नक्षत्र से महेश्वर हुआ करता है ॥ २१ ॥ हाथ मे स्थित नक्षत्र से चोर होता है और भुजा में स्थित नक्षत्र से स्थान भ्रष्ट होता है । स्कन्ध में स्थित नक्षत्र का यह फल है कि वह धन का स्वामी होता है तथा मुख मे स्थित नक्षत्र से मिष्टान्न की प्राप्ति वाला है । मस्तक मे स्थित नक्षत्र से पट्ट वस्त्र वाला होता है ॥२२॥

३१-चन्द्रशुद्धि कथन ।

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्र शोभनः ।
शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा ॥
सपूज्यमानो लोकैस्तु गुरुवद् दृश्यते शशी ॥१
चन्द्रस्य द्वादशावस्था भवन्ति शृणुत अपि ।
त्रिपु त्रिपु च ऋक्षेपु अश्विन्यादि वदाम्यहम् ॥२
प्रवासस्थं पुनर्नष्टं मृतावस्थ जयावहम् ।
हास्यावस्थं क्रीडावस्थ प्रमोदावस्थमेव च ॥३
विपादावस्थभोगस्थे ज्वरावस्थ व्यवस्थितम् ।
कम्पावस्थ स्वस्थावस्थं द्वादशावस्थग भवेत् ॥४

प्रवासो हानिमृ त्युश्च जयो हासो रतिः सुखम् ।
शोको भोगो ज्वरः कम्पः सुस्थावस्था क्रमात् फलम् ॥५
जन्मस्थः कुरुते तुष्टि द्वितीये नास्ति निर्वृ ति. ।
तृतीये राजसम्मान चतुर्थे कलहागम ॥६
पञ्चमेन मृगाङ्केण स्त्रीलाभो वै तथा भवेत् ।
धनधान्यागम षष्ठे रति पूजा च सप्तमे ॥
अष्टमे प्राणसन्देहो नवमे कोपसञ्चयः ॥७
दशमे कार्य्यनिष्पत्तिध्रु वमेकादशे जय ।
द्वादशेन शशाङ्केन मृत्युरेव न सशयः ॥८

श्री हरि ने कहा—सप्तम उपचयादि मे स्थित चन्द्रमा सब जगह शोभन होता है । शुक्लपक्ष में द्वितीय—पञ्चम और नवम लोकों के द्वारा सपूज्यमान तथा गुरु के समान चन्द्र दिखलाई देता है ॥ १ ॥ चन्द्र की बारह अवस्थाऐ होती हैं उनका भी अब श्रवण करो । अश्विनी आदि तीन—तीन नक्षत्रो मे वह होती है जिसको मैं अब बतलाता हू ॥ २ ॥ वे बारह अवस्थाएँ ये हैं—प्रवासावस्था—पुन नष्टावस्था—मृतावस्था—जयावहावस्था—हास्यावस्था—विषादावस्था भोगावस्था—ज्वरावस्था—कम्पावस्था—स्वस्थावस्था ये बारह अवस्थाएँ हैं । इस प्रकार से द्वादश अवस्थाओ मे चन्द्र गमन करने वाला होता है ॥३ ॥ ४॥ इन अवस्थाओ का क्रम से फल भी कहा जाता है प्रवास का होना-हानि मृत्यु-जय प्राप्त करना—हास—रति—सुख—शोक—भोग—ज्वर—कम्प और सुख ये हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ जन्म मे रहने वाला चन्द्र तुष्टि किया करता है । द्वितीय चन्द्र निर्वृ ति (आनन्द) नहीं करने वाला होता है । तीसरे घर मे रहने वाला चन्द्र राज सम्मान का प्रदान कराने वाला होता है । चतुर्थ चन्द्र कलह कराने वाला है ॥ ६ ॥ पाँचवाँ चन्द्र स्त्री का लाभ देने वाला है और छटवें चन्द्र मे धन धान्यादि का आगम होता है । सातवें चन्द्र मे रति और पूजा होती है । आठवें घर में स्थित चन्द्रमा मारक होता है और इससे प्राणो का भी सन्देह रहा करता है । नवम चन्द्र में कोप का सञ्चय होता है ॥ ७ ॥ दशम चन्द्र में कार्यों

की सिद्धि होती है तथा ग्यारहवें चन्द्र मे जय होता है। बारहवा चन्द्र अत्यन्त अशुभ है। इसमें निश्चय ही मृत्यु होती है और कुछ भी संशय नही होता है ॥ ८ ॥

कृत्तिकादौ च पूर्वेण सप्तर्क्षाणि च वै व्रजेत् ।
मघादौ दक्षिणे गच्छेदनुराधादि पश्चिमे ॥९
प्रशस्ता चोत्तरे यात्रा धनिष्ठादि च सप्तमु ॥१०
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा समलङ्कृतौ ।
मृगाश्विचित्रापुष्याश्च मूला हस्ता शुभा सदा ॥
कन्याप्रदाने यात्राया प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥११
शुक्रचन्द्रौ जन्मस्थौ शुभदौ च द्वितीयके ।
शशिज्ञशुक्रजीवाश्च राशौ चाथ तृतीयके ॥१२
भौममन्दशशाङ्कार्का बुध श्रेष्ठश्चतुर्थके ।
शुक्रजीवौ पञ्चमौ च चन्द्रकेतुसमाहितौ ॥१३
मन्दार्कौ च कुजः षष्ठे गुरुचन्द्रौ च सप्तमे ।
ज्ञशुक्रावष्टमे श्रेष्ठौ नवमस्थौ गुरुः शुभः ॥१४

अब यात्रा के लिये प्रशस्त नक्षत्रो के विषय में विभिन्न दिशाएँ बतलाई जाती हैं—कृत्तिकादि सात नक्षत्रो मे पूर्व दिशा मे यात्रा करे—मघादि सात मे दक्षिण दिशा में यात्रा करे—अनुराधा आदि सात नक्षत्रो में पश्चिम में यात्रा शुभ होती है तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्रो में उत्तर दिशा मे यात्रा प्रशस्त होती है ॥ ९ ॥ १० ॥ अश्विनी—रेवती—चित्रा और धनिष्ठा ये नक्षत्र समलङ्करण क्रिया में शुभ होते हैं। मृगशिरा—अश्विनी—चित्रा—पुष्य—मूल—हस्त ये नक्षत्र कन्या के दान करने मे—यात्रा मे और प्रतिष्ठा आदि कर्मों के करने में सदा शुभ माने जाते हैं ॥ ११ ॥ जन्म गृह मे स्थित शुक्र और चन्द्र तथा दूसरे गृह मे स्थित होने पर शुभ फल देने वाले होते हैं। चन्द्र—बुध—शुक्र और गुरु तीसरे घर में स्थित होने पर शुभ फल प्रदान करने वाले हैं ॥ १२ ॥ मङ्गल—शनि—चन्द्र—सूर्य और बुध चौथे घर मे हो तो श्रेष्ठ हैं। शुक्र और बृहस्पति

पांचवें घर मे हो तथा चन्द्र एव केतु से समाहित होवें तो श्रेष्ठ होते हैं ॥१३॥ शनि और सूर्य तथा मङ्गल छटे हो और गुरु चन्द्र सप्तम हो बुध और शुक्र अष्टम हो तो श्रेष्ठ कहे गये हैं। नवम घर मे स्थित बृहस्पति सदा शुभ होता है ॥ १४ ॥

अथ किंचन्द्रा दशम एकादशेऽखिला ग्रहा ।
बुधोऽथ द्वादशे चैव भार्गवः सुखदो भवेत् ॥१५
सिंहेन मकरः श्रेष्ठ कन्यया मेष उत्तम ।
तुलया स मीनस्तु कुम्भेन सह कर्कट ॥१६
धनुषा वृषभ श्रेष्ठो मिथुनेन च वृश्चिक ।
एतत्षडष्टक प्रीत्यै भवत्येव न सशयः ॥१७

सूर्य और सूर्य का पुत्र शनी तथा चन्द्रमा दशम घर में एव ग्यारहवें घर में स्थित समस्त ग्रह शुभ होते हैं। बारहवें घर मे बुध तथा शुक्र सुख देने वाले होते हैं ॥१५॥ अब उच्च स्थानीय ग्रहो के विषय में बतलाते हैं—सिंह से युक्त मकर श्रेष्ठ होता है। कन्या से युक्त मेष उत्तम होता है। तुला से मीन और कुम्भ से कर्क उत्तम है ॥ १६ ॥ धन से वृषभ और मिथुन से वृश्चिक यह षडष्टक प्रीति के लिये होता है और कुछ भी सशय की बात नहीं है ॥१७॥

३२—द्वादश राशि वर्णन

उदयात् समारभ्य राशी भानु स्थितो हर।
स्वराद्यार्थं व्रजेदह्निस्षड्भि षड्भिस्तया निशाम् ॥१
मीने मेषे च पञ्च स्युश्चतस्रो वृषकुम्भयो ।
मकरे मिथुने तिस्र पञ्च चापे च कर्कटे ॥२
सिंहे च वृश्चिके षट् च नाम कन्यातुले तथा।
एता लग्नप्रमाणेन घटिका परिकीर्तिताः ॥३
रगपूर्वारमानपु रमाद्विपरिमागरा ।
राह्वोदया हि तद्वत् लग्ना मषादयोऽन्यथा ॥४

मेषलग्ने भवेद् वन्ध्या वृषे भवति कामिनी ।
मिथुने सुभगा कन्या वेश्या भवति कर्कटे ॥५
सिंहे चैवाल्पपुत्रा च कन्यायां रूपसयुता ।
तुलाया रूपमैश्वर्यं वृश्चिके कर्कशा भवेत् ॥६
सौभाग्य धनुषि स्याच्च मकरे नीचगामिनी ।
कुम्भे चैवाल्पपुत्रा स्यान्मीने वैराग्यसयुता ॥७

श्री हरि भगवान् बोले—हे हर ! उदय काल मे जिस राशि पर सूर्य स्थित होता है उस अपनी राशि से छै राशियाँ दिन मे और छै राशियाँ रात्रि मे वह गमन किया करता है ॥ १ ॥ इस प्रकार से छै–छै राशियो मे गति किया करता है । इस रीति से अब भिन्न–भिन्न राशियो की लग्न घडियाँ बताई जाती हैं। मीन और मेष की पाँच घडी होती हैं—वृष और कुम्भ की चार घड़ी होती हैं—मकर और मिथुन की तीन–तीन घडियाँ होती हैं तथा धन एव कर्क की पाँच घडी हुआ करती हैं ॥ २ ॥ सिंह और वृश्चिक की छै घडी हैं तथा कन्या और तुला की सात घडी होती हैं । इस प्रकार से अहोरात्र में लग्न के प्रमाण से सम्पूर्ण राशियो की घटिकाऐं बताई गई हैं ॥ ३ ॥ आदि और अन्त मे रस सख्यक अर्थात् छै–छै घडियो की तथा पाँच चार और तीन घडियो की मेष आदि राशियो की लग्न होती हैं ॥ ४ ॥ मेष लग्न मे जो कन्या हो वह वन्ध्या होती है—वृष लग्न में कामिनी—मिथुन मे परम सुभग और कर्क लग्न में जन्म ग्रहण करने वाली वेश्या वृत्ति वाली अल्प पुत्रो वाली होती है—कन्या लग्न में उत्पन्न कन्या रूप लावण्य मे समन्वित होती है । तुला लग्न में जन्मने वाली के रूप और ऐश्वर्य दोनो ही होते हैं । वृश्चिक लग्न में समुत्पन्न कन्या बहुत ही कर्कशा होती है ॥ ६ ॥ धन लग्न में उत्पत्ति वाली कन्या सौभाग्य शालिनी होती है मकर लग्न में पैदा होने वाली कन्या नीच का गमन करने वाली होती है । कुम्भ में उत्पन्न अल्प पुत्र वाली तथा मीन लग्न में समुत्पन्न कन्या वैराग्य से सयुत होती है ॥ ७ ॥

तुलाककर्कटको मेषो मकरश्चैव राशयः ।
चरकार्य्याणि कुर्य्याच्च स्थिरकार्य्याणि चैव हि ॥८
पञ्चाननो वृषः कुम्भो वृश्चिकः स्युः स्थिराणि हि ।
कन्या धनुश्च मीनश्च मिथुनं द्विस्वभावनः ॥९
द्विस्वभावानि कर्माणि कुर्य्यादिषु विचक्षणः ।
यात्रा चरेण कर्त्तव्या प्रवेशश्च स्थिरेण तु ॥
देवस्थापनवैवाह्यं द्विस्वभावेन कारयेत् ॥१०
प्रतिपच्चाथ षष्ठी च नन्दा चैकादशी स्मृता ।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी वृषभध्वज ॥११
जयाष्टमी तृतीया च स्मृता रुद्र त्रयोदशी ।
चतुर्थी नवमी रिक्ता सा चतुर्थीश्च चतुर्दशी ।
पञ्चमी दशमी पूर्णा पूर्णिमा च शुभा स्मृताः ॥१२
चर. सौम्यो गुरु क्षिप्रा मृदु शुक्रो रविध्रुव ।
शनिश्च दारुणा ज्ञेया भौम उग्र शशी सम ॥१३

ये वर्जित मानी जाती हैं अर्थात् कोई भी शुभ कार्य रिक्ता तिथियों में नहीं किया जाता है। पञ्चमी—दशमी और पूर्णिमा ये तिथियाँ पूर्ण संज्ञा वाली होती हैं तथा परम शुभ कही गई है ॥ ११ ॥ १२ ॥ अब ग्रहों के स्वभाव और स्वरूप बताये जाते हैं—गुरु चर एवं सौम्य है। शुक्र क्षिप्र तथा मृदु होता है। रवि ध्रुव है। शनि परम दारुण जानना चाहिए। भौम उग्र होता है। चन्द्र सम है ॥ १३ ॥

चरक्षिप्रैः प्रयातव्यं प्रवेष्टव्यं मृदुध्रुवैः।
दारुणोग्रैश्च योद्धव्यं क्षत्रियैर्जयकाङ्क्षिभिः॥
नृपाभिषेकोऽग्निकार्य्यञ्च सोमवारे प्रशस्यते ॥१४
सौमे तुले प्रमाणञ्च कुर्य्याच्चैव गृहादिकम्।
सैनापत्यं शौर्य्ययुद्धं शस्त्राभ्यासः कुजे स्मृतः ॥१५
सिद्धिकार्य्यञ्च मन्त्रश्च यात्रा चैव बुधे स्मृता।
पठनं देवपूजा च वस्त्राद्याभरणं गुरौ ॥१६
कन्यादानं गजारोहः शुक्रे स्यात्समयः स्त्रियाः।
स्थाप्य गृहप्रवेशश्च गजबन्धः शनौ शुभ. ॥१७

चर और क्षिप्र ग्रहों के दिन प्रयाण करे और मृदु तथा ध्रुव में प्रवेश करना चाहिए। दारुण तथा उग्र में जय की आकाङ्क्षा रखने वाले क्षत्रियों को युद्ध करना चाहिए। नृप का अभिषेक का कार्य तथा अग्नि कार्य चन्द्रवार मे ही परम प्रशस्त होता है ॥ १४ ॥ सौम तुल मे प्रमाण और गृहादिक का कार्य करना चाहिए। सैनापत्य सेना से सम्बन्धित कार्य, शूरतापूर्ण युद्ध और शस्त्रादि के अभ्यास का काम मङ्गल में बताया गया है। सिद्धि कार्य—मन्त्र सम्बन्धी कार्य—यात्रा बुध मे करे। पठन—देवों की पूजा तथा वस्त्रादि एवं आभरण धारणादि का कार्य गुरुवार में करे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कन्या का दान-गजपर आरोहण अर्थात् हाथी की सवारी करना—ये कार्य शुक्रवार मे करे। स्त्री के समय—स्थापना के योग्य कार्य तथा गृह प्रवेश और गजबन्ध शनिवार मे शुभ होते हैं। १७ ॥

३३—पुरुष और स्त्री लक्षण ।

नरस्त्रीलक्षणं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ ॥१
श्लिष्टांगुली ताम्रनखौ सुगुल्फौ शिरयोज्झितौ ।
कूर्मोन्नतौ च चरणौ स्यातां नृपवरस्य हि ॥२
विरूक्षापाण्डरनखौ वक्रश्चैव शिरोन्नतम् ।
शूर्पाकारौ च चरणौ संशुष्कौ चरणांगुली ॥
दुःखदारिद्र्यदौ स्यातां नात्र कार्य्या विचारणा ॥३
अल्परोमयुता श्रेष्ठा जङ्घा हस्तिकरोपमा ।
रोमैकैकं कूपके स्याद् भूपानान्तु महात्मनाम् ॥४
द्वे द्वे रोमे पण्डितानां श्रोत्रियाणां तथैव च ।
रोमत्रयं दरिद्राणां रोगी निर्मांसजानुकः ॥५
अल्पलिङ्गे च धनवान् स्यान्न पुत्रादिवर्जितः ।
स्थूललिङ्गो दरिद्रः स्याद् दुःखैकवृषणो भवेत् ।६
विषमे स्त्रीचञ्चलो वै नृपः स्याद्वृषणे समे ।
प्रलम्बवृषणोऽल्पायुर्निर्द्रव्यः कुमणिर्भवेत् ॥
पाण्डरैर्मलिनैश्चैव मणिभिश्च सुखी नरः ॥७

श्री हरि भगवान् बोले—हे शङ्कर ! अब हम नर स्त्रियों के लक्षण संक्षेप से बताते हैं उनका श्रवण आप करें । जो परम श्रेष्ठ नृप होते हैं अर्थात् नृप के समकक्ष पुरुष होते हैं उनके चरण मृदु तले वाले होते हैं और उनके दानों में कभी भी पसीना नहीं होता है । इनके चरण कमल पुष्प के मध्य भाग के सदृश हुआ करते हैं । इन चरणों की अंगुलियाँ एक दूसरे से श्लिष्ट अर्थात् सटी हुई हुआ करती है । इन चरणों के नाखून ताम्र के समान होते हैं शिर से उज्झित एवं सुन्दर गुल्फ वाले होते हैं । ये चरण कूर्म के सदृश उन्नत हुआ करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ विशेष रूप से रूक्ष पाण्डर वर्ण के नखों वाले—शिरोन्नत वक्र—सूप के समान फैले हुए आकार वाले चरण—संशुष्क अंगुलियों वाले

चरण जिनके होते हैं ये लक्षण दुःख और दरिद्रता के देने वाले हैं—इसमें तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ ३ ॥ हाथी के सूँड के समान उतार–चढाव वाली और बहुत ही कम रोमो वाली जांघ श्रेष्ठ होती हैं। महान् आत्मा वाले नृपो के कूपको मे एक–एक ही रोम हुआ करता है ॥ ४ ॥ सद् एव असद् बुद्धि वाले पण्डितो के तथा श्रोत्रियो के रोमो के छिद्रो मे दो–दो रोम हुआ करते हैं। जो दरिद्र होते हैं उनके कूपको मे तीन–तीन रोम होते हैं। बिना माम वाले जिनके जानु होते हैं वे रोगी हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ स्वल्प लिङ्ग वाला पुरुष धनवान् होता है किन्तु पुत्रादि से रहित हुआ करता है। जो स्थूल लिङ्ग धारी पुरुष होता है वह दरिद्र हुआ करता है। एक ही वृषण जिसके होता है वह दुःखी होता है।६॥ वह विषम होने पर स्त्री के समान चञ्चल होता है तथा सम वृषण होने पर वह पुरुष नृप होता है। जिसके वृषण लम्बे होते हैं वह मनुष्य अल्प आयु वाला होता है, द्रव्यहीन और कुमणि होता है। पाण्डर और मलिन मणियो से मनुष्य सुखी होता है ॥७॥

निःस्वस्य शब्दमूत्राः स्युर्नृपा निःशब्दधारयः।
भोगाढ्याः समजठरा निःस्वाः स्युर्घटसन्निभाः ॥८
सर्पोदरा दरिद्राः स्यू रेखाभिश्चायुरुच्यते।
ललाटे यस्य दृश्यन्ते तिस्रो रेखाः समाहिताः ॥
सुखी पुत्रसमायुक्तः स षष्टिं जीवते नरः ॥६
चत्वारिंशाच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनान्नरः।
विंशत्यब्दमेकरेखा आकर्णान्ता शतायुषः ॥
आकर्णान्तरिता रेखास्तिस्रश्च स्युः शतायुषः ॥१०
सप्तत्यायुर्द्विरेखा तु षष्ट्यायुस्तिसृभिर्भवेत्।
व्यक्ताव्यक्ताभी रेखाभिर्विंशत्यायुर्भवेन्नरः ॥११
चत्वारिंशाच्च वर्षाणि हीनरेखस्तु जीवति।
भिन्नाभिश्च रेखाभिरपमृत्युर्नरस्य हि ॥१२

त्रिशूल पट्टिश वापि ललाटे यस्य दृश्यते ।
धनपुत्रसमायुक्त स जीवेच्छरद. शतम् ।।१३

नि श्वास लेकर शब्दयुक्त मूत्र वाले नृप नि शब्द धारी होते हैं । भोगो मे युक्त–समान जठर वाले–नि स्व घट के सदृश होते हैं । सर्प के समान उदर वाले मनुष्य दरिद्र होते हैं । अब रेखाओ के द्वारा आयु बतलाई जाती है । जिसके ललाट में समाहित तीन रेखाऐ दिखलाई दिया करती हैं वह मनुष्य परम सुखी–पुत्रो से युक्त और साठ वर्ष पर्यन्त जीवित रहा करता है ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ जिसके ललाट पर दो रेखाऐ दिखलाई हैं वह चालीस वर्ष तक जीवित रहता है और केवल एक ही रेखा जिसके दिखलाई देती है वह बीस वर्ष तक ही जीवित रहा करता है । कर्ण पर्यन्त जो रेखाऐ होती है वह गतायु होता है । जिसके तीन रेखाऐ आकर्णान्तरित होती हैं वह शतायु अर्थात् सौ वर्ष की उम्र वाला पुरुष होता है ॥ १० ॥ इसी प्रकार की यदि दो रेखाऐ हो तो सत्तर वर्ष की उम्र होती है और तीन रखाओ से युक्त यदि ललाट होता है तो साठ वर्ष तक जीवित रहता है । जो रेखाऐ कुछ व्यक्त और कुछ अव्यक्त हो तो बीस वर्ष की आयु वाला मनुष्य होता है ॥ ११ ॥ हीन रेखा वाला मानव चालीस वर्ष तक जीवित रहता है । जिस के ललाट में भिन्न रेखाऐ होती हैं उनसे मनुष्य की अपमृत्यु होती है ॥ १२ ॥ जिस मनुष्य के ललाट मे त्रिशूल और पट्टिश का चिह्न दिखलाई देते हैं वह धन तथा पुत्रो से युक्त सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ॥१३॥

तर्जन्या मध्यमागुल्या आयुरेखा तु मध्यत ।
सप्राप्ता या भवेद्र द्र स जीवेच्छरद. शतम् ॥१४
प्रथमा ज्ञानरेखा तु ह्य गुष्ठादनुवर्त्तते ।
मध्यमा मूलगा रेखा आयूरेखा अत परम् ॥१५
कनिष्ठाया समाश्रित्य आयुरेखा समाविशेत् ।
अच्छिन्ना वा विभक्ता वा स जीवेच्छरद शतम् ॥१६

यस्य पाणितले रेखा आयुस्तस्य प्रकाशयेत् ।
शतवर्षाणि जीवेच्च भोगी रुद्र न संशयः ॥१७

कनिष्ठिका समाश्रित्य मध्यमायामुपागता ।
षष्टिवर्षायुष कुर्य्यादायूरेखा तु मानव- ॥१८

हे रुद्र ! तर्जनी और मध्यमा अंगुलि के मध्य से आयु की रेखा जो सम्प्राप्त हो तो वह मनुष्य सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहा करता है ॥ १४ ॥ प्रथम ज्ञान की रेखा होती है जो अँगूठे से अनुवर्तित होती है । मध्यमा मूल में गमन करने वाली रेखा है । इसमें आगे फिर आयु की रेखा होती है ॥१५॥ कनिष्ठिका अंगुलि में समाश्रित होकर आयु की रेखा समाविष्ट होती है । वह अच्छिन्न हो या विभक्त हो किन्तु वह मानव सौ वर्ष के जीवन की आयु वाला होता है ॥ १६ ॥ हे रुद्र ! जिस मनुष्य के हाथ के तल में रेखा होती है वह भी आयु को प्रकाशित किया करती है वह परम भोग करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १७ ॥ कनिष्ठिका अँगुलि का समाश्रय लेकर जो मध्यमा अँगुलि में आ जाती है वह आयु को प्रकट करने वाली रेखा बतलाती है कि मनुष्य साठ वर्ष की आयु वाला होता है ॥ १८ ॥

३४—स्त्रीलक्षण

यस्यास्तु कुञ्चिता केशा मुखञ्च परिमण्डलम् ।
नाभिश्च दक्षिणावर्त्ता सा कन्या कुलवर्द्धिनी ॥१

या च काञ्चनवर्णाभा रक्तहस्तसरोरुहा ।
सहस्राणान्तु नारीणां भवेत्सापि पतिव्रता ॥२

वक्रकेशा च या कन्या मण्डलाक्षी च या भवेत् ।
भर्त्ता च म्रियते तस्या नियत दु समागिनी ॥३

पूर्णचन्द्रमुखी कन्या बालसूर्य्यसमप्रभा ।
विशालनेत्रा बिम्बोष्ठी सा कन्या लभते सुखम् ॥४

रेखाभिर्बहुभिः क्लेशं स्वल्पाभिर्धनहीनता ।
रक्ताभिः सुखमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यता व्रजेत् ॥५
कार्य्येषि मन्त्री पत्नी स्यात्सखी स्यात्करणेषु च ।
स्नेहेषु भार्य्या माता स्याद् वेश्या च शयने शुभा ॥६
अंकुश मण्डल चक्र यस्याः पाणितले भवेत् ।
पुत्रं प्रसूयते नारी नरेन्द्रं लभते पतिम् ॥७

श्री हरि ने कहा—जिस कन्या के केश तो कुञ्चित (घुंघराले) हों और मुख परिमण्डल अर्थात् वर्त्तुलाकार हो तथा नाभि दक्षिण की ओर आवर्त्त वाली हो वह कन्या कुल के बढाने वाली हैं ।। १ ।। जिस कन्या का वर्ण सुवर्ण के समान हो और हस्त रक्त कमल के सदृश हो वह सहस्रों नारियों में एक ही परम पतिव्रत धर्म वाली हुआ करती है ।। २ ।। जिस कन्या के टेडे-तिरछे तो केश हों और मण्डलवत् गोल नेत्र हों उसका स्वामी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और वह निश्चय ही दुःखों के भोगने वाली हुआ करती है ।। ३ ।। जो कन्या पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली और प्रातः कालीन सूर्य के समान प्रभा वाली हो—जिसके विशाल (बडे) नेत्र हों तथा बिम्ब के फल के सदृश रक्त वर्ण के ओष्ठ हों वह कन्या परम सुखों का उपभोग किया करती है ।। ४ ।। बहुत-सी रेखाओं के होने से क्लेश प्राप्त होता है और अत्यन्त स्वल्प रेखाओं के होने पर धन की कमी हुआ करती है । रक्त रेखाओं से सुख प्राप्त होता है और कृष्ण वर्ण वाली रेखाओं से प्रेष्यता को प्राप्त होती है ।। ५ ।। कार्य के करने में वह पत्नी मन्त्री के समान होती है और साधनों में वह एक सखी अर्थात् मित्र के तुल्य होती है । स्नेह में भार्या माता और शयन में शुभ वेश्या के तुल्य होती है ।। ६ ।। जिसके पाणि (हाथ) तल में अंकुश—मण्डल चक्र के चिह्न होते हैं ऐसी स्त्री पुत्र का प्रसव किया करती है और वह नृपति को अपना स्वामी प्राप्त करती है ।।७।।

यस्यास्तु रोमशौ पार्श्वौ रोमशौ च पयोधरौ ।
उन्नतौ चाधरौष्ठौ च क्षिप्रं मारयते पतिम् ॥८

केशाश्चैव गुंञ्चिताश्च प्रवासे म्रियते नरः ।
निर्मांसजानु सौभाग्यमल्पैर्निम्नैरतः स्त्रिया ॥
विकटैश्च दरिद्रा स्यु समासैः राज्यमेव च ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—अब इस समुद्र के द्वारा कथित नर और स्त्री के लक्षण बताते हैं जिनके ज्ञान मात्र से अतीत और आगे आने वाले आश्रमों की पूर्ण जानकारी हो जाती है ॥१॥ अस्वेदी अर्थात् प्रस्वेद न आने वाले—कोमल तलो वाले—कमल के पुष्प के मध्य भाग के समान—मिली हुई, अंगुलियो वाले—ताम्र के वर्ण के तुल्य नखो से युक्त—उच्च—शिरोजिभन—कूर्म के समान उन्नत—गूढ गुल्फो (टखनो) वाले और सुन्दर पार्ष्णि भागों वाले चरण नृपति के बताये गये हैं अर्थात् इस प्रकार के पैर शुभ होते हैं ॥२॥ सूप के आकार के समान आकृति वाले—विशेष रूप से रूखे वक्र (तिरछे) शिरालक—सशुष्क—पाण्डर वर्ण के नखो से युक्त—दूर—दूर अंगुलियो वाले—मार्ग के लिय उत्कटक अर्थात् उचक कर उठने वाले—कषाय के सदृश पैर वश के विच्छेद करने वाले होते हैं और शकु के समान पैर ब्रह्मघ्न होते हैं। ये अशुभ पैरो के लक्षण बताये गये हैं ॥३।४॥ युग के आयतन के समान हो और विरल रोमों वाली हों—जो रोम हो वे भी अत्यन्त मृदु होने चाहिए और हाथी की सूंड के समान उतार चढ़ाव की सुडौल हो—दोनो ही समान जाँघें होती हैं यह नृपति का होना सूचित करती हैं। ऊरु और घुटने भी तुल्य हो तो नृप के लिये ही ऐसे लक्षण बताये गये हैं ॥५॥ निःस्व होकर शृगाल के समान जो जघा होती हैं जिनके रोम कूपो मे एक—एक ही रोम होता है—ऐसी जघा नृपो की तथा श्रोत्रियो की हुआ करती हैं। जो धीमान् लोग होते हैं उनके रोम—कूपकों मे दो—दो रोम होते हैं। यह भी चिह्न श्री के लिये शुभ है। तीन और इनसे अधिक जिनके रोम होते हैं वे मानव धन हीन—दुःखो के भोगने वाले और समाज मे निन्दित ही हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ जिसके कुञ्चित केश होते हैं वह मनुष्य प्रवास मे मरता है। बिना मांस के जानुओं वाला सौभाग्यशाली होता है। निम्न और अल्पो से भी सौभाग्य होता है। स्त्री के विकट हो तो दरिद्र होती है तथा समास होने पर राज्य प्राप्ति का लक्षण होता है ॥७॥

महद्भिरायुराख्यात ह्यल्पलिङ्गो धनी नर ।
अपत्यरहितश्चैव स्थूललिङ्गा धनोज्झित ॥८
मेढ्रे वामनते चैव सुतार्थरहितो भवेत् ।
वक्रेऽन्यथा पुत्रवान्स्याद्दारिद्र्यं विनते त्वध ॥९
अल्पे तु तनयो लिङ्गे शिरालेऽथ सुखी नर ।
स्थूलग्रन्थियुते लिङ्गे भवेत्पुत्रादिसयुत. ॥१०
कोपगूढे नृपो दीर्घभुग्नेऽथ धनवर्जित ।
बलवान्युद्धशीलश्च लघुशेफ स एव च ॥११
दुर्बलस्त्वेकवृषणो विषमाभ्यां चलस्त्रिय ।
समाभ्यां क्षितिप प्रोक्त. प्रलम्बेन शताब्दवान् ॥१२
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां बह्वायू रूक्षैर्मणिभिरीश्वर ।
पाण्डरैर्मणिभिर्नि स्वा मलिनैं सुखभागिन ॥१३
सशब्दनि शब्दमूत्रा स्युर्दरिद्राश्च मानवा ।
एकद्वित्रिचतु पञ्चषड्भिर्धाराभिरेव च ॥१४
दक्षिणावर्त्तचलितमूत्राभिश्च नृपा स्मृता ।
विकीर्णमूत्रा नि स्वाश्च प्रधानसुखदायिका ॥१५

महान् होने से आयु बतलाई गई है। छोटी उपस्थ वाला पुरुष धनी होता है किन्तु वह सन्तति से हीन रहा करता है। जो स्थूल लिंगधारी पुरुष होता है वह धन से रहित होता है ॥ ८ ॥ बाईं ओर नत मेढ़ के होने पर अर्थात् जननेन्द्रिय वामभाग में झुकी हुई रहने पर सुत और अर्थ से हीन रहता है। अन्यथा अर्थात् दाहिनी ओर वक्र रहने पर मनुष्य पुत्र वाला होता है किन्तु यदि उपस्थ नीचे की ओर झुका हुआ हो तो वह दरिद्री रहा करता है ॥९॥ अल्प लिंग के होने पर तनय होता है और शिराल होने पर वह सुखी होता है। स्थूल और ग्रन्थि युक्त उपस्थ के होने पर मानव पुत्रादि से सयुत हुआ करता है ॥१०॥ कोषों के गूढ़ होने पर नृप होता है तथा दीर्घ और भुग्न होने से वह धन से रहित होता है। लघु शेफ वाला पुरुष बलवान् और युद्ध-

शील हुआ करता है ॥११॥ एक वृषण वाला पुरुष दुर्बल होता है। जिसके विषम वृषण होते हैं वह चल स्त्री वाला हुआ करता है। सम वृषणों वाला पुरुष राजा अर्थात् भूमिका स्वामी होता है। प्रलम्ब वृषण से शतायु हुआ करता है ॥१२॥ दो से ऊर्ध्व—बहुतों में आयु और रूक्ष मणियों से ईश्वर तथा पाण्डर मणियों से नि.स्व (धन-शक्ति हीन) और मलिनों से सुख भागी होते हैं ॥१३॥ शब्द के सहित और बिना शब्द के मूत्र वाले पुरुष दरिद्र होते हैं। एक-दो-तीन-चार-पाँच और छँ धाराओं से तथा दक्षिण की ओर आवृत्त से चलने वाली मूत्र धाराओं से भी नृप कहे गये हैं विकीर्ण मूत्र वाले निर्धन होते हैं। प्रधान धारा सुखदायी होती है ॥१४॥१५॥

एकधाराश्च वनिता. स्निग्धैर्मणिभिरुन्नतैः।
समैः स्त्रीरत्नधनिनो मध्ये निम्नैश्च कन्यकाः ॥१६
शुक्रैर्नि स्वा विशुष्कैश्च दुर्भगाश्च प्रकीर्त्तिता.।
पुष्पगन्धे नृपा शुक्रे मधुगन्धे धन बहु ॥१७
पुत्राः शुक्रे मत्स्यगन्धे तन्र शुक्रे च कन्यकाः।
महाभोगी मांसगन्धे यज्वा स्यान्मदगन्धिनि ॥१८
दरिद्रः क्षारगन्धे च दीर्घायु शीघ्रमैथुनी।
अशीघ्रमैथुन्यल्पायुः स्थूलस्फिक्स्याद्धनोज्झित ॥१९
मांसलस्फिक्सुखी स्याच्च सिंहस्फिग्भूपति स्मृतः।
भवेत्सिंहकटी राजा निःस्व. कपिकटिर्नर. ॥२०
सर्पोदरा दरिद्राः स्यु पिठरैश्च घटै. समा।
धनिनो विपुले. पार्श्वैर्नि स्वा रक्तैश्च निम्नगै. ॥२१

एकधारा वाली वनिता—उन्नत एवं स्निग्ध तथा सम मणियों से स्त्री रूप रत्न के धनी और मध्य में निम्नों से कन्यका होती है ॥१६॥ शुक्रों से से निःस्व—विशेष रूप से शुष्कों से दुर्भगा कही गई हैं। पुष्प के समान गन्ध वाले शुक्र (वीर्य) में नृप—मधु के तुल्य गन्ध वाले शुक्र में बहुत अधिक धन होता है ॥१७॥ मत्स्य के समान गन्ध वाले वीर्य में बहुत पुत्र और शुक्र में

ऐसा न हो तो वन्ध्याऐं होती हैं। माँस के सदृश गन्ध होने पर वह पुरुष महान् भोगी होता है तथा मद के तुल्य गन्ध होने पर यज्वा होता है ॥१८॥ क्षार के समान यदि शुक्र म गन्ध हाता है तो दीर्घ आयु और शीघ्र मैथुन वाला होता है। स्थूल स्फिक् वाला और अशीघ्र मैथुन करने वाला—अल्प आयु वाला और धन हीन होता है ॥१९॥ मांसल स्फिक् वाला सुखी होता है तथा सिंह के तुल्य स्फिक् अर्थात् कूलों वाला भूपति होता है। सिंह के तुल्य कटिवाला पुरुष राजा होता है और कपि (बन्दर) के सदृश कटि वाला मानव धन हीन हुआ करता है ॥२०॥ सर्प के समान उदर वाले दरिद्र हुआ करते हैं। घटों के तुल्य पिठरों से धन युक्त होते हैं। विपुल पार्श्वों से निःस्व होते हैं और निम्नगामी रक्त पार्श्वों से भी निर्धन होते हैं ॥२१॥

समकक्षाश्च भोगाढ्या निम्नकक्षा धनोज्झिता ।
नृपाश्चोन्नतकक्षा स्युर्जिह्मा विषमकक्षका ॥२२
मत्स्योदरा बहुधना नाभिभि सुखिन स्मृता ।
विस्तीर्णाभिर्बहुलाभिर्निम्नाभि क्लेशभागिन ॥२३
वलिमध्यगता नाभि शूलबाधा करोति हि ।
वामावर्त्तश्च साध्य वै मेधा दक्षिणतस्तथा ॥२४
पार्श्वायता चिरायु स्याद् भूपरिष्ठाद्धनेश्वर ।
अधो गवाढ्य कुर्य्याच्च नृपत्व पद्मकर्णिका ॥२५
एकवलि शतायु स्यात्स्त्रीभोगी द्विवलि स्मृत ।
त्रिवलि क्ष्माप आचार्य्य ऋजुभिर्वलिभि सुखी ॥
अगम्यागामी जिह्मवलि भूपा पार्श्वैश्च मांसलै ॥२६
मृदुभि सुसमैश्चैव दक्षिणावर्त्त रोमभि ।
विपरीतै परप्रेष्या निद्रव्या सुखवर्जिता ॥२७
अनुद्धतैश्चूचुकैश्च भवन्ति सुभगा नरा ।
निधना विषमैर्दीर्घै पीनापचितकैर्नरै ॥२८

जिन मनुष्यों के कक्ष समान होते हैं वे भोगों से युक्त हुआ करते हैं

और जिनके कक्ष निम्न होते हैं वे धन से उज्झित अर्थात् हीन होते हैं। उन्नत कक्षों वाले नृप एवं विषम कक्षों वाले पुरुष कुटिल प्रकृति से युक्त होते हैं।२२ मत्स्य (मछली) के समान उदर वाले पुरुष बहुत अधिक धनी होते हैं। मत्स्य के तुल्य नाभियों से युक्त पुरुष सुखी बताये गये हैं। विस्तीर्ण—बहुत और निम्न नाभियों से युक्त क्लेशों के भोगने वाले होते हैं ॥२३॥ जिस नाभि के मध्य में बलि होती है वह शूल की बाधा करने वाली होती है। वाम भाग की ओर जिसका आवर्त होता है वह शाठ्य होता है तथा दक्षिणावर्त नाभि मेधा को प्रकट करती है। २४॥ पार्श्व में आयत चिरायु देने वाली होती है। भूपरिष्ठ होने से धनों का स्वामी होता है। नीचे की ओर होने वाली गौओं से सम्पन्नता प्रकट करती है तथा पद्म की कर्णिका के तुल्य नाभि नृपत्व की सूचक है ॥२५॥ एक बलि जिसमें हो वह शतायु प्रदान करने वाली है। दो बलि जिसमें हों वह पुरुष स्त्री का भोग करने वाला होता है। तीन बलि भूमिका पति एवं आचार्य होना सूचित करती हैं और ऋजु अर्थात् सरल बलियों से पुरुष सुखी कहा गया है। जिसकी बलि जिह्म (कुटिल) हो वह अगम्या स्त्री के गमन करने वाला होता है और मांसल पार्श्वों से युक्त भूप होते हैं ॥२६॥ मृदु और सुसमान तथा दक्षिण की ओर आवर्त वाले रोमों से युक्त भी भूप होते हैं। इनके विपरीत जिनके हैं वे परप्रेष्य—द्रव्य हीन और सुख से रहित हुआ करते हैं ॥२७॥ अनुद्धत चूचुकों से मनुष्य सुभग अर्थात् अच्छे भाग वाले होते हैं। विषम-दीर्घ और पीतोन्मचितवों से मनुष्य निर्धन हुआ करते हैं ॥२८॥

समोन्नतञ्च हृदयमकम्पं मांसलं पृथु ।
नृपाणामधमानाञ्च खररोमशिरालकम् ॥२९
अर्थवान्समवक्षाः स्यात्पीनैर्वक्षोभिरूर्जितः ।
वक्षोभिर्विषमैर्निस्वाः शस्त्रेण निधनास्तथा ॥३०
विषमैर्जत्रुभिर्निस्वा अस्थिनद्धैश्च मानवा ।
उन्नतैर्भोगिनो निम्नैर्निस्वाः पीनैर्धनान्विताः ॥३१
निःस्वश्चिपिटकण्ठः स्याच्छिराशुष्कगलः सुखी ।
शूरः स्यान्महिषग्रीवः शस्त्रान्तो मृगकण्ठकः ॥३२

कम्बुग्रीवश्च नृपतिर्लम्बकण्ठोऽतिभक्षकः ।
अरोमशाभुग्नपृष्ठं शुभश्चाशुभमन्यथा ॥३३
कक्षाऽश्वत्थदला श्रेष्ठा सुगन्धिर्मृगरोमिका ।
अन्यथा त्वर्थहीनानां दारिद्रयस्य च कारणम् ॥३४
समांसौ चैव भुग्नाल्पौ श्लिष्टौ च विपुलौ शुभौ ।
आजानुलम्बितौ बाहू वृत्तौ पीनौ नृपेश्वरे ॥
निःस्वानां रोमशौ ह्रस्वौ श्रेष्ठौ करिकरप्रभौ ॥३५

नृपों का हृदय कम्प से रहित—सम एवं उन्नत होता है एवं मांसल और पृथु भी हुआ करता है। जो प्रथम श्रेणी के मनुष्य होते हैं उनका हृदय खर–रोमों वाला तथा शिरालक होता है ॥२६॥ समान वक्ष स्थल वाला पुरुष अर्थवान् हुआ करता है। जिसका वृक्ष स्थल पीन होता है वह ऊर्जित होता है विषम अर्थात् नतोन्नत वक्ष वाले पुरुष निःस्व अर्थात् निर्धन होते हैं तथा वे शास्त्र से भी निर्धन हुआ करते हैं ॥३०॥ जिनके जत्रु (हँसली) विषम होते है वे भी निःस्व होते हैं। अस्थिनद्ध उन्नत होने पर मनुष्य भोगी हुआ करते हैं। निम्न होने पर निर्धन एवं पीन होने से धन युक्त हुआ करते हैं ॥३१॥ चिपिट कण्ठ वाला पुरुष भी निःस्व होता है शिरा शुष्क गले वाला पुरुष सुखी होता है। महिष के समान ग्रीवा (गरदन) वाला मानव शूर वीर होता है और मृग के तुल्य जिसका कण्ठ होता है वह शास्त्रों को साद्यन्त जानने वाला हुआ करता है ॥३२॥ कम्बु के सदृश जिसकी ग्रीवा होती है वह नृपति का लक्षण होता है। जिसका कण्ठ लम्बा होता है वह अत्यन्त भक्षण करने वाला होता है। बिना रोमों वाला और अभुग्न पृष्ठ वाला शुभ एवं अशुभ दोनों ही हुआ करते है। पीपल के पत्र के तुल्य सुन्दर गन्ध वाली एवं मृग के सदृश रोमों वाली कक्षा शुभ एवं श्रेष्ठ होती है अन्यथा अर्थ से हीनों के दारिद्र्य का कारण हुआ करती है ॥३३।३४॥ समान अंस (कन्धे) थोड़े से भुग्न एवं श्लिष्ट तथा विपुल शुभ हुआ करते हैं। घुटनों तक लम्बे—वृत्त एवं पीन भुजाएं नृपेश्वर की हुआ करती हैं। जो निःस्व होते हैं उनकी बाहुऐं रोमों वाली–ह्रस्व (छोटी) होती है। हाथी की सूंड की प्रभा रखने वाली भुजाऐं श्रेष्ठ हुआ करती हैं ॥३५॥

हस्ताङ्गुलय एव स्युर्वायुद्वारनिभा. शुभा. ।
मेधाविनाञ्च सूक्ष्मा. स्युर्भृत्याना चिपिटा. स्मृताः ॥
स्थूलाङ्गुलीभिर्नि.स्वा. स्युर्नता· स्युः सुकृशैस्तदा ॥३६
कपितुल्यकरा नि.स्वा व्याघ्रतुल्यकरैर्बलम् ।
पितृवित्तविनाशश्च निम्नात्करतलान्नराः ॥३७
मणिबन्धैर्निगूढैश्च सुश्लिष्टैः शुभगन्धिभि. ।
नृपा हीना. करच्छेदे. सशब्दैर्धनवर्जिताः ॥३८
सवृत्तैश्चैव निम्नैश्च धनिनः परिकीर्त्तिता. ।
प्रोत्तानकरदातारो विषमैर्विषमा नरा. ॥३६
करै करतलैश्चैव लाक्षाभैरीश्वरस्तनै. ।
परदाररताः पीतै रूक्षैर्नि स्वा नरा मताः ॥४०
तुषतुल्यनखाः क्लीबाः कुटिलै. स्फुटितैर्नराः ।
नि स्वाश्च कुनखैस्तद्वद्विवर्णै. परतर्कका: ॥४१
ताम्रैर्भूपा धनाढ्याश्च अङ्गुष्ठैः सयवैस्तथा ।
अङ्गुष्ठमूलजैः पुत्री स्याद्दीर्घाङ्गुलिपर्वक. ॥४२
दीर्घायु. सुभगश्चैव निर्धनो विरलाङ्गुलिः ।
घनाङ्गुलिश्च सधनस्तिस्रो रेखाश्च यस्य वै ॥
नृपते. करतलगा मणिबन्धात्समुत्थिता ॥४३

हाथों की अंगुलियाँ जो वायु द्वार के सदृश होती है वे शुभ हुआ करत हैं। जो मेधावी पुरुष होते है उनकी हाथो की अंगुलियाँ सूक्ष्म हुआ करती और जो भृत्य श्रेणी के मानव हुआ करते हैं उनकी अंगुलियाँ चिपिटी क गई हैं। जिनकी अंगुलियाँ स्थूल होती है वे नि स्व हुआ करते हैं और सुकृ अंगुलियो वाले नत होते हैं ॥ ३६ ॥ बन्दर के समान करो वाले मानव नि होते हैं। व्याघ्र के तुल्य हाथो वाले पुरुष बली होते हैं। निम्न (नीचे) करत वाले मनुष्यो के पितृवित्त का विनाश हो जाया करता है ॥३६-३७॥ सुश्लिष्ट– निगूढ और शुभ गन्ध वाले मणि बन्ध (कनिष्ठा प्रभृति पन्त कर भाग क

नाम) के होने से नृप होता है। मशब्द कर छेदों से हीन एवं धन से वर्जित होता है ॥३८॥ सवृत और निम्न करो वाले धनी बतलाये गये हैं। प्रोत्तान करो वाले पुरुष दाता होते हैं। जिनके कर विषम होते है वे मनुष्य भी विषम प्रकृति वाले होते हैं ॥३६॥ लाक्षा (लाख) के समान आभा वाले जिनके कर एव करतल होने हैं वे ईश्वर अर्थात् स्वामी हुआ करते हैं। पीत वर्ण वाले पराई स्त्रियो से रति करने वाले और रूक्षता युक्त जिनके करतल होते हैं वे मनुष्य निःस्व अर्थात् निर्धन हुआ करते हैं ॥४०॥ जिन पुरुषो के तुष के तुल्य नख होते हैं वे क्लीव अर्थात् पुंस्त्व हीन हुआ करते हैं। जिनके नाखून कुटिल एव स्फुटित होते हैं वे निःस्व होते हैं। कुनखो वाले और विवर्ण युक्त नखो वाले मनुष्य पराया तर्क करने वाले हुआ करते हैं ॥४१॥ ताम्र वर्ण के नखों वाले भूप तथा धनाढ्य होते हैं। जिनके अँगूठो मे यव की रेखा होती है वे भी धन सम्पन्न होते हैं। अँगुष्ठ के मूल मे यव हो तो पुत्री दीर्घाङ्गुलि पर्वो वाला पुरुष दीर्घ आयु वाला सुभग होता है। विरल अँगुलियो वाला निर्धन होता है। जिसकी अँगुलियाँ घनी होती हैं वह भी पुरुष धन-समन्वित हुआ करता है और जिसके तीन रेखाएँ होती हैं वह धनी होता है ॥ ४२ ॥ नृपति की अँगुलियाँ करतल में गमन करती हुई मणि बन्ध तक समुत्थित हुआ करती हैं ॥४३॥

युगमीनाङ्कितनरो भवेत्सत्रप्रदो नरः।
वज्राकाराश्च धनिना मत्स्यपुच्छनिभा बुधे ॥४४
शङ्खातपत्रशिविकागजपद्मोपमा नृपे।
कुम्भाङ्कुशपताकाभा मृणालाभा निधीश्वरे ॥४५
दामाभाश्च गवाढ्याना स्वस्तिकाभा नृपेश्वरे।
चक्रासितोमरधनुर्दन्ताभा नृपतेः करे ॥४६
उलूखलाभा यज्ञाढ्या वेदीभाश्चाग्निहोत्रिणि।
वापीदेवकुल्याभाश्च त्रिकोणाभाश्च धार्मिके ॥४७
अङ्गुष्ठमूलगा रेखाः पुत्राश्च सुखदायकाः।
प्रदेशिनीगता रेखा कनिष्ठामूलगामिनी ॥
शतायुषश्च कुरुते छिन्नया तरते भयम् ॥४८

दो मीन की रेखाओं से युक्त मनुष्य सत्रप्रद हुआ करता है। वज्र के आकार के समान आकार की रेखाएँ धनियों के हुआ करती हैं। बुध पुरुष के मत्स्य की पूँछ के समान रेखा हुआ करती है।।४४।। शङ्ख—आतपत्र (छत्र)—शिविका (पालकी)—गज और पद्म के तुल्य रेखाएँ नृप होना सूचित किया करती हैं। कुम्भ—अङ्कुश—पताका और मृणाल के सदृश आभा वाली रेखाएँ निधीश्वर के करतल में हुआ करती हैं।।४५।। दाम (रज्जु) की आभा वाली रेखा गवाढ्यों के होती है। स्वस्तिक (साथिया) की आभा से युक्त रेखा नृपेश्वर के करतल में हुआ करती है। चक्र—असि (खड्ग)—तोमर—धनुष और दन्त की आभा वाली रेखाएँ राजा के करतल में होती हैं।।४६।। उलूखल के समान रेखा वाले पुरुष मखाढ्य होते हैं और वेदी के तुल्य रेखा अग्निहोत्री के कर में हुआ करती है। वापदी —देव कुल्या के सदृश रेखाएँ तथा त्रिकोण की रेखा धार्म्मिक पुरुष के करतल में हुआ करती हैं।।४७।। जिसके अंगुष्ठ के मूल में गमन करने वाली रेखा होती है उसके पुत्र परम सुख देने वाले हुआ करते हैं। कनिष्ठिका अँगुलि के मूल में गमन करने वाली प्रदेशिनी अँगुलि गत रेखा जिस पुरुष के होती है वह उसे सौ वर्ष की आयु वाला किया करती है और यदि यह रेखा छिन्न हो तो भी भयों से पार करने वाली होती है।।४८।।

> निःस्वाश्च बहुरेखा स्युर्निर्द्रव्याश्चिबुके कृशैः ।
> मांसलैश्च घनोपेता आरक्तैरधरैर्नृपाः ।।४६
> बिम्बोपमैश्च स्फुटितैरोष्ठैरूक्षैश्च खण्डितैः ।
> विषमैर्धनहीनाश्च दन्ताः स्निग्धा घना शुभाः ।।५०
> तीक्ष्णा दन्ताः समाः श्रेष्ठा जिह्वा रक्ता समा शुभा ।
> श्लक्ष्णा दीर्घा च विज्ञेया तालु श्वेतो धनक्षये ।।५१
> कृष्णा च परुषा वक्त्रं सम सौम्यञ्च संवृतम् ।
> भूपानाममलं श्लक्ष्णं विपरीतञ्च दुःखिनाम् ।।५२

बहुत-सी रेखाएँ जो किसी के करमें हो तो वे उसे निर्धन किया करती हैं। कृश चिबुक (ठोडी) वाले पुरुष भी द्रव्य हीन होते हैं। जिनकी चिबुक

मांसल होती हैं वे मानव धन-सम्पन्न हुआ करते हैं। जिनके अधर थोडे थोडे रक्तिमा लिये होते हैं वे नृप होते हैं ॥४६॥ बिम्ब के फल के समान रक्त वर्ण वाले अधर जिनके हुआ करते हैं वे भी नृप होते हैं स्फुटित—खण्डित और रूक्ष एवं विषम ओष्ठा वाले मनुष्य धन हीन हुआ करते हैं। दांत स्निग्ध और घने परम शुभ होते है ॥५०॥ तीक्ष्ण और समान दांत भी श्रेष्ठ होते हैं और जिह्वा रक्त वर्ण वाली एवं सम शुभ होती है। श्वेत तालु और श्लक्ष्ण एवं दीर्घ जिह्वा धन क्षय सूचित करने वाली होती है ॥५१॥ धन के क्षय सूचित करने वाली परुष (कठोर) और कृष्ण वर्ण वाली जिह्वा भी हुआ करती है। मुख सम-सवृत सौम्य होता है। भूपों का मुख अमल एवं श्लक्ष्ण होता है और जो दुखिया होते हैं उनका मुख इसके विपरीत अवस्था वाला हुआ करता है।५२।

महादुःख दुर्भगाणां स्त्रीमुखं पुत्रमाप्नुयात् ।
आढ्यानां वर्त्तुलं वक्त्रं निर्द्रव्याणाञ्च दीर्घकम् ॥५३
भीरुवक्त्रं पापकर्मा धूर्त्तानाश्चतुरस्रकम् ।
निम्नं वक्रमपुत्राणां कृपणानाञ्च ह्रस्वकम् ॥५४
सम्पूर्णं भोगिनां कान्तं श्मश्रु स्निग्धं शुभं मृदु ।
सहतश्चास्फुटिताग्रं रक्तश्मश्रुश्च चौरकः ॥
रक्तात्पपरुषश्मश्रु कर्णाः स्युः पापमृत्यवः ॥५५
निर्मांसैश्चिपिटैर्भोगा कृपणा ह्रस्वकर्णकाः ।
शङ्कुकर्णाश्च राजानो रोमकर्णा गतायुषः ॥५६
बृहत्कर्णाश्च धनिनः राजानः परिकीर्त्तिताः ।
कर्णौ स्निग्धैरनद्धैश्च आलम्बमांसलनृपाः ॥५७
भोगी वै निम्नगण्डः स्यान्मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः ।
शुकनासः सुखी स्याच्च शुष्कनासोऽतिजीवनः ॥५८
छिन्नाग्रकूपनासः स्यादगम्यागमने रतः ।
दीर्घनासे च सौभाग्य चौरश्चाकुञ्चितेन्द्रियः ॥५९ -
मृत्युश्चिपिटनासः स्याद्धीनभाग्यवता भवेत् ।
स्वल्पच्छिद्रा सुपटा च अवक्रा च नृपेश्वरे ॥६०

जो दुर्भाग्य वाले मानव होते हैं उनका मुख महा दु:ख पूर्ण होता है और स्त्री—सुत पुत्र की प्राप्ति किया करता है। जो आढ्य मनुष्य होते हैं उनका मुख वर्तुलाकार (गोल) होता है और जो द्रव्य हीन मनुष्य हुआ करते हैं उनका मुख दीर्घता वाला होता है अर्थात् लम्बा होता है ॥५३॥ पाप कर्मों के करने वालों के मुख भीरुता से परिपूर्ण रहा करते हैं। धूर्त्तों का मुख चारों ओर की चेष्टाओं से सम्पन्न होते हैं। पुत्र रहित मानवों का मुख निम्न होता है तथा कृपणों का मुख छोटा होता है॥ ५४ ॥ सम्पूर्ण और कान्त मुख भोगी पुरुषों का होता है। श्मश्रु (दाढी-मूंछ) स्निग्ध और मृदु शुभ होती हैं। जिनकी श्मश्रु महन और अस्फुटित अग्र भाग वाली हो तथा रक्त-श्मश्रु हो वह चोर होता है। जिनके रक्त-मलर—परुष श्मश्रु तथा कर्ण होते हैं वे पाप मृत्यु वाले पुरुष हुआ करते है ॥५५॥ निर्मांस अर्थात् बिना माँस वाले–चिपिट कानों वाले पुरुष भोगी होते हैं। ह्रस्व (छोटे) कानों वाले मनुष्य कंजूस होते हैं। शकु (कील) के सदृश जिनके कान होते हैं वे राजा होते हैं। जिनके कानों पर रोम होते हैं वे गतायु हुआ करते हैं। बड़े-बड़े कानों वाले मनुष्य धनी हुआ करते हैं तथा स्निग्ध–प्रनद्ध और ध्यालम्ब कानों वाले एवं मांसल पुरुष नृप होते हैं ॥५६।५७॥ जिनके गण्ड (कपोल) निम्न होते हैं वे भोगी होते हैं और जिनके गण्ड स्थल सम्पूर्ण होते हैं वे मन्त्री पद के प्राप्त करने वाले होते हैं। शुक (तोता) के समान जिनकी नासिका होती है वे सुखी हुआ करते हैं। शुष्क नाक वाले अत्यधिक जीवन वाले हुआ करते हैं ॥५८॥ जिनकी नासिका के अग्र कूप छिन्न होते हैं वे पुरुष अगम्या (गमन न करने के योग्य) स्त्री के साथ गमन करने में रति रखने वाले हुआ करते हैं। दीर्घ नाक वाला पुरुष सौभाग्यशाली होता है और अकुञ्चित इन्द्रिय (नाक) वाला मानव चोर होता है ॥५९॥ चिपिट नासिका वाला मनुष्य मृत्यु युक्त होता है तथा हीन भाग्य वाला भी होता है। स्वल्प छिद्र वाली नासिका वाले तथा सुन्दर पुर वाले एवं अवक्र नाक वाले नृपेश्वर हुआ करते हैं ॥६०॥

क्रूरे दक्षिणवक्रा स्याद्वतिनाश्च क्षुत सकृत्।
स्वाद्विनिष्पिण्डित ह्लादो सानुनादश्च जीवहृत् ॥६१

वक्रान्तैः पद्मपत्राभैर्लोचनैः सुखभागिनः ।
मार्जारलोचनैः पाप्मा दुरात्मा मधुपिङ्गलैः ॥६२
क्रूराः केकरनेत्राश्च हरिताक्षाः सकल्मषाः ।
जिह्मैश्च लोचनैः शूराः सेनान्यो गजलोचनाः ॥६३
गम्भीराक्षा ईश्वराः स्युर्मन्त्रिणः स्थूलचक्षुषः ।
नीलोत्पलाक्षा विद्वांसः सौभाग्य श्यामचक्षुषाम् ॥६४
स्यात्कृष्णतारकाक्षाणामक्ष्णामुत्पाटनं किल ।
मण्डलाक्षाश्च पापाः स्युर्निःस्वा स्युर्दीनलोचनाः ॥६५
त्वक् स्निग्धा विपुला भोगा अल्पायुर्नाभिरुन्नता ॥६६
विशालोन्नता सुखिनो दरिद्रा विषमभ्रुवः ।
धनी दीर्घासक्तभ्रूर्बालेन्दून्नतसुभ्रुवः ॥६७

दक्षिण की ओर वक्र रहने वाली नासिका क्रूर पुरुष का लक्षण होता है। बनियों को एक बार ही छींक होती है जो कि विनिर्दिष्ट होती है। अनुवाद के सहित और ह्रस्व दन्त वाली जीव कृत् हुआ करती है॥ ६१ ॥ वक्र जिनका अन्त भाग हो और पद्म पत्र के समान आभा वाले जो नेत्र होते हैं वे पुरुष सुख भागी हुआ करते हैं। मार्जार (बिल्ली) की आँखों जैसी जिन मनुष्यों की आँखें होती हैं वे पापी हुआ करते हैं। मधु के सदृश पिङ्गल वर्ण वाले नेत्र जिनके होते हैं वे दुष्ट आत्मा वाले मानव होते हैं ॥६२॥ केकर (भैंडे-फिरती हुई आँख वाले) नेत्र वाले पुरुष क्रूर स्वभाव के होते हैं। हरित नेत्र वाले मनुष्य कल्मष युक्त हुआ करते हैं। जिह्म नेत्रों वाले शूरवीर होते हैं। हाथी के समान आँखों वाले पुरुष सेनानी (सेनाधिप) हुआ करते हैं॥६३॥ गम्भीर नेत्रों वाले ईश्वर (स्वामी) होते हैं और स्थूल चक्षुओं वाले पुरुष मन्त्री हुआ करते हैं। नील कमल के समान नेत्रों वाले मानव बड़े विद्वान् हुआ करते हैं। श्याम वर्ण की चक्षुओं वाले पुरुषों का बहुत अच्छा भाग होता है। जिनके नेत्रों के तारका कृष्ण वर्ण के हों तथा आँखों का उत्पाटन हो अर्थात् उभार हो और मण्डल के तुल्य नेत्र हों ऐसे पुरुष पापी-निःस्व और दीन लोचनों वाले हुआ करते हैं। जिनकी त्वचा स्निग्ध होती है वे बहुत भोगों के भोगने वाले

होते हैं। जिनकी नाभि उन्नत होती है वे अल्पायु होते हैं ।।६४।६५।६६।। विशाल और उन्नत भौंहें जिन मनुष्यों की होती हैं वे संसार में सुखी होते हैं और विषम भ्रुकुटियों वाले दरिद्र होते हैं। दीर्घ संसक्त भ्रू वाला और बाल-चन्द्र के समान भ्रू वाला पुरुष धनी हुआ करता है ।।६७।।

आढ्यो निःस्वश्च खण्डभ्रूर्मध्ये च विनतभ्रुवः ।
स्त्रीष्वगम्यास्वासक्ता स्युः सुतार्थे परिवर्जिताः ।।६८
उन्नतैर्विपुलैः शङ्खैर्ललाटैर्विषमैस्तथा ।
निर्धना धनवन्तश्च अर्द्धेन्दुसदृशैर्नराः ।।६९
आचार्याः शुक्तिविशालैः शिरालैः पापकारिणः ।
उन्नताभिः शिराभिश्च स्वस्तिकाभिर्धनेश्वराः ।।७०
निम्नैर्ललाटैर्वधार्हाः क्रूरकर्मरतास्तथा ।
संवृतैश्च ललाटैश्च कृपणा उन्नतैर्नृपाः ।।७१
अनश्रु स्निग्धरुदितमदीनमशुभं नृणाम् ।
प्रहृष्टस्येक्षितं रूक्षं दरिद्रस्य सुखावहम् ।।७२
धनस्य हसितं श्रेष्ठं निमीलितमपापकृत् ।
अनाहृदमिति दुष्टं सोन्मादस्य श्लेष्मणा ।।७३
ललाटोपसृतास्तिस्रो रेखाः स्युः शतवर्षिणाम् ।

वाले हुआ करते हैं। सवृत ललाटो वाले मनुष्य कजूस स्वभाव के होते हैं तथा उन्नत ललाट वाले नृप होते हैं ॥७१॥ बिना अश्रुओ वाला स्निग्ध रुदित अदीन तथा अशुभ होना है। जिस रुदन मे अधिक प्रस्वेद होना है और रूक्ष होता है वह रुदित सुखा वह हुआ करता है ॥७२॥ बिना कम्प वाला हसित श्रेष्ठ माना गया है। जो निमीलित हसित होना है वह अघ के देने वाला होता है। बार-बार हँसना दोष युक्त होता है। उन्माद युक्त का हसित अनेक बार हुआ करता है ॥७३॥ ललाट पर उपसृत तीन रेखाऐं यह सूचित करती हैं कि ऐसे पुरुष सौ वर्ष पर्यन्त जीने वाले होते हैं। चार रेखाएं भूपति होना प्रकट किया करती हैं और पाच रेखाऐं नब्बे वर्ष की आयु बतलाया करती हैं ॥७४॥

अरेखेनायुर्नवतिर्विच्छिन्नाभिश्च पुश्चला।
केशान्तोपगताभिश्च अशीत्यायुर्नरो भवेत् ॥७५
पञ्चभि सप्तभि षड्भि पञ्चाशद्बहुभिस्तथा।
चत्वारिंशच्च रक्ताभिस्त्रिंशदभ्र लग्न गामिभि ॥
विंशतिर्वामवक्राभिरायु क्षुद्राभिरल्पकम् ॥७६
छत्राकारै शिरोभिस्तु नृप शिवमयो धनी।
चिपिटैश्च पितुर्मृत्युर्धनाढ्य परिमण्डलै ॥
घटमूर्द्धा पापरुचिर्धनाढ्य परिवर्जित ॥७७
घृष्णाराकुञ्चितै केशै स्निग्धैरेकैकसम्भवै।
अभिन्नाग्रैश्च मृदुभिर्न चातिबहुभिर्नृपा ॥७८
बहुमूलैश्च विषमै स्थूलाग्रै कपिलैस्तथा।
निम्नैश्चैवातिकुटिलैर्घनैरसितमूर्द्धजै ॥७९
यद्यद्गात्र महारूक्ष शिराल मासवर्जितम्।
तत्तत्स्यादशुभ सर्व शुभ सर्व ततोऽन्यथा ॥८०
विपुलस्त्रिषु गम्भीरो दीर्घ सूक्ष्मश्च पञ्चसु।
षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वो रक्त सप्त समो नृप ॥८१
नाभि स्वरश्च बुद्धिश्च त्रय गम्भीरमीरितम्।
पुस स्याद्विस्तीर्णं ललाट वदनमुर ॥८२

चक्षुःकक्षदन्तनासा पट्स्युमुं खक्रुकाटिका ।
उन्नतानि च ह्रस्वानि जङ्घा ग्रीवा च लिङ्गकम् ॥८३
पृष्ठञ्चत्वारि रक्तानि करताल्वधरा नखाः ।
नेत्रान्तपादजिह्वोष्ठाः पञ्च सूक्ष्माणि सन्ति वै ॥८४

अरेख ललाट से भी नब्बे वर्ष की आयु प्रकट होती है । विच्छिन्न रेखाओं से मनुष्य पुंश्चल होते हैं । केशान्त में उपगत रेखाओं से अस्सी वर्ष की आयु व्यक्त होती है ॥७५॥ पाँच—छैं साल से पचास वर्ष की आयु, बहुत-सी रेखाओं से चालीस साल की—रक्त रेखाओं से जो भ्रू लग्न गामी हों तीस साल की आयु प्रकट होती है । बाईं ओर वक्र रहने वाली रेखाओं से बीस वर्ष की उम्र तथा क्षुद्र रेखाओं से अल्प आयु प्रकट हुआ करती है ॥ ७६ ॥ छत्र के समान आकार वाले शिरों से मनुष्य शिवमय धनी एव नृप होते हैं । चिपिट शिरो वालों के पिता की मृत्यु होती है और परिमडल शिर से मानव धनी होता है । घट के समान मूर्धा वाला पुरुष पाप में रुचि वाला होता है और धनादि से रहित होता है अर्थात् सुख प्रदायक वस्तुओं का उसे अभाव रहता है ॥७७॥ कृष्ण वर्ण वाले—थोडे कुञ्चित–स्निग्ध–एक–एक उत्पन्न जिनके अग्र भाग अभिन्न हों तथा मुलायम और अत्यन्त घने न हों ऐसे केशों वाले पुरुष नृप होते हैं ॥७८॥ बहुमूल—विषम स्थूल अग्र भाग वाले–कपिल वर्ण से युक्त—निम्न–अत्यन्त कुटिल घने तथा केशों वाले पुरुष अशुभ होते हैं । अङ्ग जो–जो भी हों वह महान् रूखा—शिराल अर्थात् जिसमें शिरायें चमक रही हों तथा मांस से रहित हों वे सभी अशुभ होते हैं । इनके विपरीत सब शुभ कहे गये हैं ॥७९॥ ॥८०॥ तीन में विपुल–दीर्घ और गम्भीर–पाँच में सूक्ष्म–छैं उन्नत–चार ह्रस्व और सात रक्त हों तो वह मनुष्य नृप होता है ॥८१॥ नाभि–स्वर और बुद्धि ये तीन गम्भीर बताये गये हैं । पुरुष का ललाट—वदन और उर स्थल विस्तीर्ण होना चाहिए ॥८२॥ नेत्र–कक्ष–दाँत—नासिका–मुख और कृकाटिका (घाँटी) ये छैं उन्नत होने चाहिए । जाँघ—ग्रीवा (गरदन) और लिङ्ग तथा पृष्ठ ये ह्रस्व होने चाहिए ॥८३॥ कर—तालु—अधर और नख ये चार रक्त वर्ण

वाले परम शुभ होते हैं। नेत्रान्त—पाद—जिह्वा—ओष्ठ ये पाच सूक्ष्म शुभ एव प्रशस्त होते हैं ॥८४॥

दशनाङ्गुलिपर्वाणि नखकेशत्वचः शुभाः ।
दीर्घा. स्तनान्तर बाहुदन्तलोचननासिका. ॥८५
नराणां लक्षण प्रोक्तं वदामि स्त्रीषु लक्षणम् ।
राज्याः स्निग्धौ समौ पादौ तलौ ताम्रौ नखौ तथा ॥
श्लिष्टाङ्गुली चोन्नताग्रौ ता प्राप्य नृपतिर्भवेत् ॥८६
निगूढगु-फोपचितौ पद्मकान्तितलौ शुभौ ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ मत्स्याङ्कुशध्वजाङ्कितौ ॥
वज्राब्जहलचिह्नौ च राज्ञ्या पादौ ततोऽन्यथा ॥८७
जङ्घे च रोमरहिते सुवृत्ते विशिरे शुभे ।
अनुल्बण सन्धिदेश सम जानुद्वय शुभम् ॥८८
ऊरू करिकराकारावरोमौ च समौ शुभौ ।
अश्वत्थपत्रसदृश विपुल गुह्यमुत्तमम् ॥८९
श्रोणीललाटक स्त्रीणा उर कूर्मोन्नत शुभम् ।
गूढो मणिश्च शुभदो नितम्बश्च गुरु शुभ ९०

दशन–अंगुलि पर्व–नख—केश–त्वचा ये दीर्घ शुभ होते हैं। स्तनों का मध्यान्तर भाग–बाहु–दन्त—लोचन और नासिका ये भी दीर्घ प्रशस्त होते हैं ॥८५॥ अब तक पुरुषों के लक्षण बताये गये हैं। इससे आगे अब स्त्रियों के लक्षण बताते हैं। रानी के पाद स्निग्ध–सम होते हैं तथा उसके पद तल और नख ताम्र वर्ण के हुआ करते हैं। अंगुलियाँ एक दूसरे से सटी हुई श्लिष्ट होती हैं तथा अग्र भाग उन्नत होता है। ऐसे लक्षणों वाली नारी को प्राप्त कर पुरुष नृपति हो जाता है ॥८६॥ रानी के चरण निगूढ़ गुल्फ वाले–उपचित–पद्म के समान कान्ति से युक्त तलों वाले—बिना स्वेद (पसीना) वाले–अत्यन्त मृदु–तल वाले–मत्स्य, अंकुश, ध्वज, वज्र, अब्ज और हल के चिह्नों से युक्त परम शुभ हुआ करते हैं। इसके विपरीत अशुभ हैं ॥८७॥ नारी की जाँघें रोमों से रहित

सुवृत्त—बिना शिराओं वाली अर्थात् जिनमें शिराऐं न चमकती हों ऐसी परम शुभ होती है। नारी का मन्धि भाग उल्वण नहीं होना चाहिए। दोनों जानु (घुटने) समान हों—ये लक्षण शुभ बताये गये हैं ॥८८॥ नारी के ऊरु हाथी के सूंड के समान उतार—चढ़ाव वाले—बिना रोमों वाले और समान शुभ हैं। अश्वत्थ (पीपल) के पत्र के समान विपुल गुह्य भाग उत्तम बताया गया है ॥८९॥ नारियों की श्रोणी—ललाट—उर स्थल कूर्म के समान उन्नत शुभ होता है। मणि नारियों का गूढ शुभ प्रदान करने वाला होना है तथा नारियों के नितम्ब गुरु होना ही शुभ माने गये हैं ॥९०॥

विस्तीर्णा मांसोपचिता गम्भीरा विपुला शुभा।
नाभि प्रदक्षिणावर्त्ता मध्य त्रिवलिशोभितम् ॥९१
अरोमशौ स्तनौ पीनौ घनावविषमौ शुभौ।
कठिना रोमशा शस्ता मृदुग्रीवा च कम्बुभा ॥९२
आरक्तावधरौ श्रेष्ठौ मांसल वर्त्तुल मुखम्।
कुन्दपुष्पसमा दन्ता भाषित कोकिलासमम् ॥९३
दाक्षिण्ययुक्तमशठ हंसशब्दसुखावहम्।
नासा समा समपुटा स्त्रीणान्तु रुचिरा शुभा ॥९४
नीलोत्पलनिभ चक्षुर्नासलग्न शुभावहम्।
न पृथू बालेन्दुनिभे भ्रुवौ चाय ललाटकम् ॥
शुभमर्द्धेन्दुसस्थानमतुङ्ग स्यादलोमकम् ॥९५
असांसल कर्णयुग्म सम मृदु समाहितम्।
स्निग्धनीलाश्च मृदवो मूर्द्धजा कुञ्चिता शुभा ॥९६
स्त्रीणा सम शिर श्रेष्ठ पादे पाणितलेऽथवा।
वाजिकुञ्जरश्रीवृक्षयूपेपुयवतोमरै ॥९७
ध्वजचामरमालाभि शैलकुण्डलवेदिभि ।
शङ्खातपत्रपद्मैश्च मत्स्यस्वस्तिकमद्रथै ॥
लक्षणैरङ्कुशाद्यैश्च स्त्रियः स्यू राजवल्लभा ॥९८

विस्तीर्ण–मास से उपचित–विपुल और गम्भीर नाभि स्त्रियों की शुभ होती है जोकि दाहिनी ओर आवर्त वाली हो और मध्य भाग त्रिवली से सुशोभित होना चाहिए ॥ ६१ ॥ नारी के स्तन रोमों से रहित—पीन—घने और अविषम शुभ होते हैं। नारी की ग्रीवा कठिन—रोमों से युक्त–कम्बु के सदृश आकार वाली मृदु प्रशस्त होती है ॥ ६२ ॥ थोड़ी-सी रक्तिमा से युक्त अधर नारी के श्रेष्ठ होते हैं। स्त्री का मुख वर्त्तुल और मासल शुभ होता है। कुन्द की कली के समान श्वेत एवं सुन्दर नारी के दाँत प्रशस्त माने गये हैं तथा नारी का भाषिन कोकिला की कण्ठ ध्वनि के समान मधुर एवं श्रुति प्रिय होना ही परम शुभ बताया गया है ॥ ६३ ॥ नारी के भाषण की प्रशस्तता तभी मानी जाती है जब उसका भाषण दाक्षिण्य से युक्त–शाठ्य से रहित और हंस की ध्वनि के समान सुख देने वाला हो। स्त्री की नासिका सम एवं समान पुटों वाली रुचिर और शुभ होती है ॥ ६४ ॥ नील उत्पल के सदृश नारी के नत्र सुभावह होते हैं जो असलग्न न हों। बहुत बड़ी नहीं बल्कि बाल चन्द्र के समान भौंहें शुभ होती हैं। नारी का ललाट अर्धचन्द्र के समान सस्थान वाला जो अधिक तुङ्ग न हो और लोमों से रहित शुभ होता है ॥६५॥ नारी के दोनों कान मासल न होकर समान–मृदु एवं समाहित होने चाहिए— ऐसे ही कान शुभ बताये गये हैं। स्त्री के केश स्निग्ध–नील–मृदुल और घुंघराले शुभ होते हैं ॥ ६६ ॥ स्त्रियों का मस्तक समर्थ्य होता है। स्त्रियों के चरण और कर में अश्व–गज–श्रीवृक्ष–यूप–यव–तोमर—ध्वजा–चामर–माला–शैल—कुण्डल—वेदी–शङ्ख–छत्र—पद्म–मत्स्य–स्वास्तिक सदृश और अंकुश आदि शुभ चिन्हों में से अधिकाधिक लक्षण प्राप्त हो तो ऐसी नारी राज वल्लभ होती है ॥६७॥६८॥

निगूढमणिबन्धौ च पद्मगर्भोपमौ करौ।
न निम्न नोन्नत स्त्रीणा भवेत्करतल शुभम् ॥
रेखान्विता त्वविधवा कुर्य्यात्सभोगिनी स्त्रियम् ॥६६
रेखा या मणिबन्धोत्था गता मध्यागुलीकरे।
गता पाणितले या च योर्ध्वपादतले स्थिता ॥

स्त्रीणां पुंसां तथा वा स्याद्राज्याय च सुखाय च ॥१००
कनिष्ठिकामूलभवा रेखा कुर्याच्छतायुषम् ।
प्रदेशिनीमध्यमान्यामन्तरालगता सती ॥१०१
ऊना ऊनायुषं कुर्यादङ्गुष्ठमूलगा ।
बहवः पुत्रास्ता क्षीणाः प्रमदाः परिकीर्तिताः ॥१०२
स्वल्पायुषो बहुच्छिन्ना दीर्घाच्छिन्ना महायुषः ।
शुभन्तु लक्षणं स्त्रीणां प्रोक्तमन्यदशुभमन्यथा ॥१०३
कनिष्ठिकानामिका वा यस्या न स्पृशते महीम् ।
अंगुष्ठं वा गतानीत्य तर्जनी कुलटा च सा ॥१०४
ऊर्ध्वे द्वाभ्यां पिण्डिकाभ्यां जङ्घे चातिशिरालके ।
रोमशे चातिमांसे च कुम्भाकारं तथोदरम् ॥
वामावर्त निम्नमल्पं दुःखितानाञ्च गुह्यकम् ॥१०५
ग्रीवया ह्रस्वया निःस्वा दीर्घया च कुलक्षयः ।
पृथुलया प्रचण्डाश्च स्त्रियः स्युर्नात्र संशयः ॥१०६

नारियों के मणिबन्ध निगूढ शुभ हैं। स्त्रियों के कर पद्म के मध्य भाग के समान प्रशस्त होते हैं। स्त्रियों का करतल न अधिक निम्न और न अधिक उन्नत हो शुभ होता है। ये लक्षण नारी अ' रेखान्वित और अविधवा अर्थात् सौभाग्य वाली एवं सम्भोग शालिनी किया करते हैं ॥ ९९ ॥ जो रेखा नारी के मणिबन्ध से उठकर कर की मध्यमांगुलि तक जाने वाली है और ऊर्ध्व पाद तल में रेखा स्थित होती है। ऐसी रेखा स्त्रियों के कर या पाद में हो या पुरुषों के हो वह राज्य और सुख के देने वाली हुआ करती है ॥ १०० ॥ कनिष्ठिका अंगुलि के मूल भाग में उठी हुई रेखा शतायु बनाती है प्रदेशिनी और मध्यमा अंगुलियों के अन्तराल में जाने वाली रेखा शत वर्ष की आयु बताती है और सतीत्व की सूचिका होती है ॥ १०१ ॥ कुछ कम हुई तो कुछ कम आयु बढाने वाली होती है। अंगुष्ठ के मूल में गमन करने वाली रेखा यह बतलाती है कि उसके बहुत पुत्र होते हैं किन्तु वे प्रमदाऐं क्षीण बताई गई हैं ॥ १०२ ॥ बहुत सी छिन्न होने वाली रेखाऐं स्वल्प आयु प्रकट किया करती हैं तथा

दीर्घाच्छिद्रा रेखाऐं महायुष प्रकट करती हैं। यहां तक स्त्रियों के समस्त शुभ लक्षण बताये गये हैं। इन उपर्युक्त लक्षणो के जो विपरीत लक्षण नारियो के होते हैं वे अशुभ हुआ करते है ॥ १०३ ॥ जिस नारी की कनिष्ठिका या अना-मिका पैर की अंगुलि भूमि का स्पर्श नही किया करती है अथवा गुप्त स्पर्शन करता हो वह अतील होकर जाने वाली होती है। जिसकी तर्जनी भूमि का स्पर्श न करे वह कुलटा नारी होती है ॥ १०४ ॥ दोनो पिण्डिलको (पिंड-लियो) से ऊपर जिसकी जांघे रोमो वाली एव अत्यन्त शिरालक हो एवं अत्यन्त मांसल हो और कुम्भ के आकार के सदृश उदर हो—गुह्यभाग श्यामा-वर्त्त—निम्न और अल्प हो वह दुखिया होती है ॥ १०५ ॥ ह्रस्व ग्रीवावाली नि.स्वा होती है और दीर्घ ग्रीवा वाली के कुल का क्षय हो जाता है। यदि ग्रीवा पृथुल हो तो वह प्रचण्ड स्वभाव की स्त्री होती है इस मे तनिक भी संशय नही है ॥ १०६ ॥

केकरे पिङ्गले नेत्रे श्यामे लोलेक्षणाऽसती ।
स्मिते कूप गण्डयोश्च सा ध्रुव व्यभिचारिणी ॥१०७
प्रलम्बिनो ललाटे तु देवर हन्ति चाङ्गना ।
उदरे श्वशुर हन्ति पति हन्ति स्फिचोर्द्धयो ॥१०८
या तु रोमोत्तरोष्ठी स्यान्न शुभा भर्त्तु रेव हि ।
स्तनौ सरोमावशुभौ कर्णौ च विषमौ तथा ॥१०९
कराला विषमा दन्ता. क्लेशाय च भवन्ति ते ।
चौर्याय कृष्णमासाश्च दीर्घा भर्तुश्च मृत्यवे ॥११०
क्रव्यादरूपैर्हस्तैश्च वृककाकादिसन्निभै. ।
शिरालैर्विषमै. शुष्कै वित्तहीना भवन्ति हि ॥
समुन्नतोत्तरोष्ठी या कलहे रूक्षभाषिणी ॥१११
स्त्रीषु दोषा विरूपासु यत्राकारो गुणास्तत ।
नरस्त्रीलक्षण प्रोक्त वक्ष्ये तु ज्ञानदायकम् ॥११२

जिस नारी के नेत्र केकरे (भेंडे) हो—पिङ्गल तथा श्याम वर्ण वाले हो और चञ्चल नेत्रो वाली हो वह नारी असती होती है। जब कोई नारी

हँसती या मुस्कराती है उस समय में जिसके कपोलों में गड्ढे पड़ जाते हो यह निश्चय ही समझ लेना चाहिए कि वह व्यभिचारिणी होती है ॥ १०७ ललाट में जो प्रलम्बिनी होती है अर्थात् जिसका ललाट लम्बा होना है अङ्गना देवर का हनन करने वाली होती है। जिस नारी का उदर ल होता है वह श्वशुर को मारने वाली होती है। ऊर्ध्व स्फिक वाली नारी का हनन किया करती है॥ १०८ ॥ जिसके होटों पर रोम होते हैं वह अपने स्वामी के लिये शुभ नहीं हुआ करती है। रोमों से युक्त स्तन भी स्त्री अशुभ होते हैं और विषम कान अशुभ हुआ करते हैं। कराल एवं विषम द नारी के क्लेश के लिये ही हुआ करते हैं कृष्ण मास जिन दांतों का होता वे चोरी के बनाने वाले होते हैं। दीर्घ दांतों वाली भर्त्ता की मृत्यु के लि होती है॥ १०९ ॥ ११० ॥ राक्षस के से हाथ हों–वृक काक आदि के तुल्य शिराल—विषम और शुष्क जिनके हाथ होते हैं वे वित्तहीन होती हैं। उत्त ओष्ठ जिसके समुन्नत होते हैं वह कलह का रागी और रूक्ष भाषण करने वाल होती है॥ १११ ॥ ये विरूपा स्त्रियों में दोष हुआ करते हैं। जहाँ आकार सुन्दर होता है वहाँ गुण भी हुआ करते हैं। इस प्रकार से यहाँ तक नर और नारियों के लक्षण बताये गये हैं। अब ज्ञात वायक विषय बतलाया जायगा ११

३६–पवन विजय स्वरोदय

हरे श्रुत्वा हरो गौरी देहस्थ ज्ञानमब्रवीत् ॥१
कुजो वह्नी रवि पृथ्वी शौरिराप प्रकीर्तित।
वायुसस्थ स्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रावभासक ॥२
गुरु शुक्रस्तथा सौम्यश्चन्द्रश्चैव चतुर्थक।
वामनाड्यान्तु मध्यस्थान् कारयेदात्मनस्तथा ॥३
यदा चार इडायुक्तस्तथा कर्म समाचरेत्।
स्थानसवा तथा ध्यान वाणिज्य राजदर्शनम्।
अन्यानि शुभकर्माणि कारयेत् प्रयत्नत ॥४
दक्षनाडीप्रवाहे तु शनिर्भौमश्च सैंहिक।
इनश्चैव तथाप्येत्र पापानामुदयो भवेत् ॥५

सौम्यादिशुभकार्य्येषु लाभादिजयजीविते ।
गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ॥१६
युद्धादौ भोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु सगमे ।
प्रशस्ता दक्षिणा नाडी प्रवेशे क्षुद्रकर्मणि ॥१७
शुभाशुभानि कार्य्याणि लाभालाभौ जयाजयौ ।
जीवो जीवनायपृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा ।
वामाचारेऽथवा दक्षे प्रत्यये यत्र नायक ॥१८
तनुस्थ पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न सशय ।
स्वच्छन्दा वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि ।
तत्र भागे स्थित पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ॥१६
वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सक्रमते शिवा ।
घोरे घोराणि कार्य्याणि सौम्य वै मध्यमानि च ॥
प्रस्थिते भागतो हसे द्वाभ्या वै सर्ववाहिनी ॥२०
तदा मृत्यु विजानायाद्योगी यागविशारद ।
यत्र यत्र स्थित पृच्छेद्वामदक्षिणसमुख ॥२१
तत्र तत्र सम दिश्याद्वातस्योदयन सदा ।
अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।
वामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ॥२२

सौम्य आदि शुभ कार्यों म तथा लाभ आदि जय एव जीवित में, गमन और आगमन मे सब जगह वामा ही पूजित होती है ॥१६॥ युद्ध आदि मे, भोजन म, घात मे तथा स्त्रियो के सङ्गम करने के कार्य में, प्रवेश करने मे एव अन्य क्षुद्र कम मे दक्षिणा नाडी को प्रशस्त बताया गया है ॥१७॥ शुभ और अशुभ कार्य, लाभ–लाभ तथा अलाभ, जय और अजय एव जीव जीवन के लिये कभी कुछ भी न पूछे। वहाँ मध्यमा नाडी सिद्ध हुआ करती है। वामाचार मे अथवा दक्षिणाचार मे जिसमे नायक को विश्वास हो ॥१८॥ तनु मे स्थित होता हुआ जो पूछता है वहाँ पर सिद्धि अवश्य ही होती है—इसमे कुछ भी सशय नही है। जब आत्मा मे स्वच्छन्द वामदेव वहन किया करता है उस

इडाचारे तथा सौम्यं चन्द्रसूर्य्यगतस्तथा ।
कारयेत्क्रूरकर्माणि प्राणे पिङ्गलसंस्थिते ॥११
यात्रायां सर्वकार्य्येषु विषापहरणे इडा ।
भोजने मैथुने युद्धे पिङ्गला सिद्धिदायिका ॥१२
उच्चाटमारणाद्येषु कर्मस्वेतेषु पिङ्गला ।
मैथुने चैव संग्रामे भोजने सिद्धिदायिका ॥१३
शोभनेषु च कार्य्येषु यात्राया विषकर्मणि ।
शान्तिमुक्त्यर्थसिद्धयै च इडा योज्या नराधिपं ॥१४
द्वाभ्याञ्चैव प्रवाहे च क्रूरसौम्यविवर्जने ।
विषुवं तं तु जानीयात् सस्मरेत्तु विचक्षण ॥१५

वाम भाग में स्थित सोम (चन्द्र) स्वरूपा कही गई है और दक्षिण भाग में स्थित नाडी रवि के तुल्य होती है तथा महात्मा काल रूपिणी अग्नि है जो फल देने वाली है। वामा अमृत रूप वाली होती है जो जगत् के आप्यायन करने में अर्थात् सतृप्त करने के कार्य के लिए स्थित होती है ॥६॥ दक्षिणा जो होती है वह रौद्र भाग से सदा इस जगत् का शोषण किया करती है। दोनों के पार होने से मृत्यु होती है जो कि समस्त कार्यों के विनाश करने वाली होती है। निर्गम करने से वामा होती है और प्रवेश करने से दक्षिणा बताई गई है। ॥१०॥ इडाचार में जब सौम्य करे तथा चन्द्र सूर्यगत हो तब प्राणों के पिङ्गल संस्थित होने पर क्रूर कर्मों को करना चाहिए ॥११॥ यात्रा में, समस्त कार्यों में और विषों के अपहरण करने में इडा होती है तथा भोजन में, मैथुन में और युद्ध में पिङ्गला नाडी सिद्धि के प्रदान करने वाली होती है ॥१२॥ उच्चाटन और मारण आदि कार्यों में पिङ्गला मैथुन, संग्राम और भोजन में सिद्धि प्रदायिनी होती है ॥१३॥ राजाओं के शोभन कार्यों में, यात्रा में, विष कर्म में, शान्ति और उक्त अर्थों की सिद्धि के लिये इडा का योजन करना चाहिए। ॥१४॥ दोनों के प्रवाह में और क्रूर तथा सौम्य कार्य के विवर्जन में उसको विषुव जानना चाहिए तथा विचक्षण पुरुष को भली-भाँति स्मरण रखना चाहिए ॥१५॥

सौम्यादिशुभकार्य्येषु लाभादिजयजीविते ।
गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ॥१६
युद्धादौ भोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु सगमे ।
प्रशस्ता दक्षिणा नाडी प्रवेशे क्षुद्रकर्मणि ॥१७
शुभाशुभानि कार्य्याणि लाभालाभौ जयाजयौ ।
जीवो जीवनायपृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा ।
वामाचारेऽथवा दक्षे प्रत्यये यत्र नायक ॥१८
तनुस्थ पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न सशय ।
वैच्छन्दो वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि ।
तत्र भागे स्थित पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ॥१६
वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सक्रमते शिवा ।
घोरे घोराणि कार्य्याणि सौम्य वै मध्यमानि च ॥
प्रस्थिते भागतो हसे द्वाभ्या वै सर्ववाहिनी ॥२०
तदा मृत्यु विजानायाद्योगी यागविशारद ।
यत्र यत्र स्थित पृच्छेद्वामदक्षिणसमुख ॥२१
तत्र तत्र सम दिश्याद्वातस्योदयन सदा ।
अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।
वामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ॥२२

सौम्य आदि शुभ कार्यों म तथा लाभ आदि जय एव जीवित में, गमन और आगमन मे सब जगह वामा ही पूजित होती है ॥१६॥ युद्ध आदि में, भोजन में, घात मे तथा स्त्रियो के सङ्गम करने के कार्य मे, प्रवेश करने मे एव अन्य क्षुद्र कम मे दक्षिणा नाडी को प्रशस्त बताया गया है ॥१७॥ शुभ और अशुभ कार्य, जात-लाभ तथा अलाभ, जय और अजय एव जीव जीवन के लिये कभी कुछ भी न पूछे । वहाँ मध्यमा नाडी सिद्ध हुआ करती है । वामाचार मे अथवा दक्षिणाचार मे जिसमे नायक को विश्वास हो ॥१८॥ तनु मे स्थित होता हुआ जो पूछता है वहाँ पर सिद्धि अवश्य ही होती है—इसमे कुछ भी सशय नही है । जब आत्मा मे वैच्छन्द वामदेव वहन किया करता है उस

भाग में स्थित होता हुआ पूछता है तो सम्पूर्ण सिद्धि फल रहित हो जाया करती है ॥१९॥ वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में जहाँ पर शिवा एक मण किया करती हैं तो घोर में घोर कार्य और सौम्य में मध्यम कार्य करे। भाग से हंस के प्रस्थित होने पर और दोनों से सर्व वाणियाँ हो तो उस समय में योग के महामनीषी योगी को निश्चय ही मृत्यु जाननी चाहिए। जहाँ जहाँ पर वाम दक्षिण सम्मुख स्थित होता हुआ पूछे वहाँ-वहाँ पर सदा प्राण का वहन सम बतावे। अग्र भाग में वामिका श्रेष्ठ होती है और पृष्ठ भाग में दक्षिण शुभा हुआ करती हैं। वाम से वामिका कही गई है और दक्षिण में दक्षिण शुभ बताई गई है ॥२० से २२॥

जीवो जीवति जीवेन यच्छून्य तत् स्वरो भवेत् ।
यत्किञ्चित्कार्य्यमुद्दिष्टं जयादिशुभलक्षणम् ॥२३
तत्सर्वं पूर्णनाड्यान्तु जायते निर्विकल्पतः ।
अन्यनाड्यादिपर्य्यन्त पक्षत्रयमुदाहृतम् ॥२४
यावत्पष्ठीन्तु पृच्छाया पूर्णायां प्रथमो जयेत् ।
रिक्तायान्तु द्वितीयस्तु कथयेत्तदशाङ्किनः ॥२५
वामाचारसमो वायुर्जायते कर्मसिद्धिदः ।
प्रवृत्ते दक्षिणे मार्गे विषमे विषमाक्षरम् ॥२६
अन्यत्र वामवाहे तु नाम वै विषमाक्षरम् ।
तदासौ जयमाप्नोति योधः सग्रामसमध्यत ॥२७
दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम् ।
जायते नात्र संदेहो नाडीमध्ये तु लक्षयेत् ॥२८
पिङ्गलान्तर्गते प्राणे शमनीयाहवश्रयेत् ।
यावन्नाड्योदयं चारस्तां दिश यावदारयेत् ॥२९
न दातु जायते सोऽपि नात्र कार्य्या विचारणा ।
यत्र सग्राममध्ये तु यत्र नाडी सदा वहेत् ॥३०
सा दिशा जयमाप्नोति शून्ये भङ्गं विनिर्दिशेत् ।

जातचारे जयं विद्यान्मृतके मृतमादिशेत् ।
जयं पराजय चैव यो जानाति स पण्डितः ॥३१

जीव जीव से ही जीवित रहा करता है। जो शून्य है वह स्वर होता है। जय आदि का शुभ लक्षण वाला जो कुछ भी कार्य उद्दिष्ट होता है वह सभी निर्विकल्प रूप से पूर्ण नाड़ी में होता है। अन्य नाड़ी आदि पर्यन्त तीन पक्ष बतलाये गये हैं ॥२३।२४॥ यहाँ तक पृच्छा में पूर्णा में प्रथम जय प्राप्त करता है और रिक्ता में द्वितीय को पराजित होता हुआ कह देवे ॥२५॥ वामाचार के समान वायु कर्म की सिद्धि देने वाली होती है। दक्षिण मार्ग के प्रवृत्त होने पर ही होता है। विषम होने मे तो विषमाक्षर होता है ॥२६॥ अन्य स्थान में वाम वाह होने पर जो नाम विषम अक्षर वाला होता है तब यह योद्धा संग्राम के मध्य में जय की प्राप्ति किया करता है ॥२७॥ दक्ष वात के प्रवाह में यदि नाम मे सम अक्षर हो तो अवश्य ही होता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। नाड़ी के मध्य मे लक्षित करना चाहिये ॥२८॥ प्राण के पिङ्गला मे अन्तर्गत होने पर दमनीय युद्ध मे जय प्राप्त करता है। जब तक नाड़ी का उदय हो तब तक चार होता है। जब तक उस दिशा को प्राप्त करे ॥२ ॥ इस विषय मे कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये। इसके अनन्तर संग्राम के मध्य मे जहाँ नाड़ी सदा वहन करती है वही दिशा जय को प्राप्त होती है। शून्य होने पर भङ्ग का निर्देश होता है। जाताचार में जय समझना चाहिए और मृतक में मृत का आदेश कर देना चाहिए। इस प्रकार से जय और पराजय को जो जानता है वह पण्डित होता है ॥३०।३१॥

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सञ्चरते शिवम् ।
कृत्वा तत्पादमाप्नोति यात्रा सन्ततशोभना ॥३२
शशिसूर्य्यप्रवाहे तु सति युद्धं समाचरेत् ।
तत्रस्थः पृच्छते यस्तु स साधुर्जयते ध्रुवम् ॥३३
या दिश वहते वायुस्ता दिश यावदाजयेत् ।
जायते नात्र सन्देह इन्द्रो यद्यग्रतः स्थितः ॥३४

मेष्याद्या दश या नाड्यो दक्षिणा वामसंस्थिताः ।
चरस्थिरद्विमार्गे तास्तादृशे तादृशः क्रमात् ॥३५
निर्गमे निर्गमं याति सग्रहे संग्रहं विदु. ।
पृच्छकस्य वचः श्रुत्वा घण्टाकारेण लक्षयेत् ॥३६
वामे वा दक्षिणे वापि पञ्चतत्त्वस्थित. शिवे ।
ऊर्ध्वेऽग्निरध आपश्च तिर्य्यक्संस्थः प्रभञ्जनः ।
मध्ये तु पृथिवी ज्ञेया नभः सर्वत्र सर्वदा ॥३७
ऊर्द्ध्वे मृत्युरधः शान्तिस्तिर्य्यक् चोच्चाटयेत्सुधी. ।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्मोक्ष. सर्वत्र सर्वगे ॥३८

वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग मे जहाँ शिव सञ्चरण करते हैं वहाँ यह करके जो पाद को प्राप्त करता है वह यात्रा सत्तत शोभन अर्थात् अच्छी हुआ करती है ॥३२॥ चन्द्र और सूर्य के प्रवाह होने पर युद्ध करे। वहाँ पर स्थित जो पूछता है वह साधु निश्चय ही जय प्राप्त करता है अर्थात् विजयी होता है ॥३३॥ जिस दिशा की ओर वायु वहन करता है उस दिशा को तब तक विजय किया करता है। इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है चाहे सामने इन्द्रदेव ही क्यों न खडे हो ॥३४॥ मेषी आदि जो दश नाडियाँ हैं जो कि दक्षिण एव वाम भाग मे स्थित हैं वे चर-स्थिर और द्विमार्ग में क्रम से वैसे मे वैसा ही होता है। निर्गम मे निर्गम को प्राप्त करता है और सग्रह मे सग्रह जानना चाहिए। पृच्छक के वचन का श्रवण कर घण्टाकार से देखना चाहिए ॥३५।३६॥ हे शिवे ! वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग मे पञ्च तत्त्व स्थित हैं। ऊर्ध्व भाग में अग्नि है, नीचे के भाग मे जल है, तिर्यक् संस्थ वायु है, मध्य भाग मे पृथ्वी तत्त्व है और आकाश सर्वदा सर्वत्र ही जानना चाहिए ॥३७॥ ऊर्ध्व मे मृत्यु है, अधोभाग मे शान्ति होती है-तिर्यक् भागो मे उच्चाटन होना है-मध्य मे स्तम्भन जानना चाहिए और सर्वत्र सर्वग में मोक्ष होता है ॥३८॥

३९—रत्नपरीक्षा—वज्रपरीक्षा

परीक्षां वच्मि रत्नाना वलो नामासुरोऽभवत् ।
इन्द्राद्या निर्जितास्तेन निर्जेतुं तैर्न शक्यते ॥१

वरव्याजेन पशुता याचितः स सुरैर्मखे ।
बलो ददौ स्वपशुतामतिसत्त्वो मखे हत ॥२
पशुवत्प्रविशेत्स्तम्भे स्ववाक्याशनियन्त्रित ।
बलो लोकोपकाराय देवानां हितकाम्यया ॥३
तस्य सत्त्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा ।
कायस्यावयवा सर्वे रत्नबीजत्वमाययु ॥४
देवानामथ यक्षाणां सिद्धानां पवनाशिनाम् ।
रत्नबीजमय ग्राह सुमहानभवत्तदा ॥५
तेषां तु पततां वेगाद्विमानेन विहायसा ।
यद्यत्पपात रत्नानां बीजं क्वचन किञ्चन ॥६
महोदधौ सरिति वा पर्वते कानने ऽपि वा ।
तत्तदाकरतां यातं स्थानमाधेयगौरवात् ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं रत्नों की परीक्षा बतलाता हूँ। बल नाम धारी एक असुर हुआ था। उसने इन्द्र आदि समस्त देवगणों को जीत लिया था और वह इनसे नहीं जीता जा सकता था ॥१॥ देवगणों के द्वारा मख में उस से वरके बहाने से पशुता की याचना की गई थी। बल ने अपने आपको पशुता प्राप्त करने के लिए दे दिया था और अत्यन्त सत्त्व वाला वह मख में मारा गया था ॥ २ ॥ अपने वचन रूपी पाश से नियन्त्रण में प्राप्त हुआ वह पशु के समान स्तम्भ में प्रवेश कर गया था। बल ने यह कार्य लोकों के उपकार के लिये और देवों के हित की कामना से ही किया था ॥३॥ सत्त्व से विशुद्ध उसके शरीर के समस्त अवयव रत्नों के बीजत्व को प्राप्त हो गये थे ॥४॥ इसके अनन्तर देवों के—यक्षों के—सिद्धों के और पवन के अशन करने वालों के रत्न बीजमय ग्राह उस समय में सुमहान् हो गया था ॥५॥ आकाश मार्ग से विमान के द्वारा उनके महान् वेग से गिरते वाले रत्नों का जो-जो भी कुछ बीज गिरा था वह समुद्र में, नदी में, पर्वत में अथवा कानन में स्थान एवं आधेय के गौरव से वहीं वह स्थान उसका आकर बन गया था ॥६॥७॥

तेपु रक्षो विषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च ।
प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च ॥८
वज्रमुक्ता तु मणयः सपद्मरागाः समरकता प्रोक्ताः ।
अपि चेन्द्रनीलमणिवरवैदूर्य्याश्च पुष्परागाश्च ॥६
कर्केतनं सपुलकं रुधिराख्यसमन्वितं तथा स्फटिकम् ।
विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्टं संग्रहे तज्ज्ञैः ॥१०
आकारवर्णौ प्रथमं गुणदोषौ तत्फलं परीक्ष्य च ।
मूल्यञ्च रत्नकुशलैर्विज्ञेयं सर्वशास्त्राणाम् ॥११
कुलग्नेपूपजायन्ते यानि चोपहतेऽहनि ।
दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा ॥१२
परीक्षापरिशुद्धानां रत्नानां पृथिवीभुजा ।
धारणं संग्रहो वापि कार्य्यं श्रियमभीप्सता ॥१३
शास्त्रज्ञाः कुशलाश्चापि रत्नभाजः परीक्षकाः ।
त एव मूल्यमानाया वेत्तारः परिकीर्तिताः ॥१४
महाप्रभावं विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहृतम् ।
वज्रपूर्वा परीक्षेयं ततोऽस्माभिः प्रकीर्त्यते ॥१५

उनमे रत्न पैदा होते है और उनमे राक्षस विष—व्याल—व्याधियो के नाशक तथा अघो के हनन करने वाले भी उत्पन्न होते हैं तथा विगुण भी होते हैं ॥८॥ वज्र (हीरा), मुक्ता (मोती), पद्मराग, मरकत ये मणियाँ कही गई हैं । इन्द्र नीलमणि, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन सपुलक, रुधिराख्य समन्वित, स्फटिक, विद्रुम मणि इनके संग्रह मे मणियो के ज्ञाताओ ने यत्न से कहा है ॥६ १०॥ सर्व मणियो के आकार और वर्ण फिर उनके गुण एवं दोष तथा उनके फलो का परीक्षण करे । इसके पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रो के विद्वान् रत्नो की विद्या में परम कुशल लोगो से उनका मूल्य भी जानना चाहिए ॥११॥ बुरी लग्नो मे तथा उपहत दिन मे जो रत्न उत्पन्न होते हैं वे दोषो से उपयुक्त हुआ करते हैं और गुणो की सम्पत्ति से हीन होते हैं ॥१२॥ श्री की अभीप्सा रखने वाले पृथ्वी के स्वामी के द्वारा भली-भाँति परीक्षण करके परम परिशुद्ध

रत्नों का धारण करना या संग्रह करना चाहिए ॥१३॥ शास्त्रों के ज्ञाता और परम कुशल रत्नों के रखने वाले पुरुष ही इनकी परीक्षा करने वाले हुआ करते हैं और वे ही इन रत्नों की मूल्य मात्रा के जानने वाले बताये गये हैं ॥१४॥ विबुध लोगों ने महान् प्रभाव वाले वज्र (हीरा) को बतलाया है। यह वज्र परीक्षा सर्वप्रथम होती है जो कि इस समय में हमारे द्वारा परि कीर्तित की जाती है ॥१५॥

तस्यास्थिलेशो निपपात येषु भुवः प्रदेशेषु कथञ्चिदेव ।
वज्राणि वज्रायुधनिर्जिगीषोर्भवन्ति नानाकृतिमन्ति तेषु ॥१६
हैममातङ्गसौराष्ट्रा पौण्ड्रकालिङ्गकोशला ।
वेण्वातटाः ससौवीरा वज्रस्याष्टविहारकाः ॥१७
आताम्रा हिमशैलजाश्च शशिभा वेण्वातटीयाः स्मृताः
सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजा. ।
कालिङ्गा. कनकावदातरुचिरा पीतप्रभा कोशले
श्यामा. पुण्ड्रभवा मतङ्गविषये नात्यन्तपीतप्रभाः ॥१८
अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पार्श्वेषु सम्यक्समम
रेखाबिन्दु कलङ्ककाकपदकत्रासादिभिर्वर्जितम् ।
लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद् दृश्यते ।
तस्मिन्देव समाश्रयो ह्यवितथ तीक्ष्णाग्रधार यदि ॥१९
वज्रे तु वर्णयुक्त्या देवानामपि विग्रह. प्रोक्तः ।
वर्णेभ्यश्च विभाग कार्य्यो वर्णाश्रयादेव ॥२०
हरितश्वेतपीतपिङ्गश्यामताम्रा स्वभावतो रुचिरा. ।
हरिवरुणशक्रहुतवहपितृपतिमरुता स्वका वर्णाः ॥२१
विप्रस्य शङ्खकुमुदस्फटिकावदातः
स्यात्क्षत्रियस्य शशबभ्रुविलोचनाभः ॥
वैश्यस्य कान्तकदलीदलसन्निकाशः शूद्रस्य
धौतकरवालसमानदीप्ति ॥२२

जिनमे भूमि के प्रदेशो मे किसी भी प्रकार से ही उसका अस्थिलेश गिर गया था उनमे वज्रायुध (इन्द्र) के निजिगणु के अनेक आकृति वाले वज्र हुआ करते हैं ॥१६॥ हैम—मातङ्ग—सौराष्ट्र—पौण्ड्र—कालिङ्ग—कोशल—वेण्वातट—ससौवीर ये आठ वज्र के विहारक होते हैं ॥१७॥ हिमशैल मे समुत्पन्न वज्र (हीरा) थोडे से ताम्र वर्ण वाले हुआ करते हैं। वेण्वातटीय वज्र चन्द्रमा की सी आभा से युक्त होते हैं। सौवीर वज्र असिताञ्जन एव मेघ के सदृश हुआ करते है। जो सौराष्ट्र मे समुत्पन्न वज्र होते हैं वे ताम्र वर्ण के हुआ करते हैं कालिङ्ग वज्र कनक के समान अवदात एव रुचिर होते हैं। कोशल देश मे उत्पन्न हुए वज्र पीत वर्ण की प्रभा से समन्वित होते हैं। पुण्ड मे जिनकी उत्पत्ति होती है वे श्याम होते है। मतङ्ग मे प्रभव होने वाले अत्यन्त पीत वर्ण की प्रभा से युक्त नहीं होते हैं ॥१८॥ बहुत ही अधिक लघु वर्ण से युक्त गुण वाला वज्र होता है जिनके पार्श्व भागो में भली-भाँति समान रेखा—बिन्दु—कलङ्क—काक—पदक और त्रासादि से जो रहित होता है। ऐसा वज्र इस लोक मे कही पर एक परमाणु के बराबर भी दिखलाई देता है और यदि अग्रधारा जिसमे तीक्ष्ण हो तो निश्चय ही उसमे देवो का समाश्रय होता है। यह पूर्णतया सत्य बात है ॥१९॥ वज्रो मे वर्णों की युक्ति से देवो का भी विग्रह बतलाया गया है। वर्णों के आश्रय से ही वर्णों से विभाग करना चाहिए ॥२०॥ हरित्—श्वेत—पीत—पिङ्ग—श्याम और ताम्र ये वर्ण सभी स्वाभाविक रूप से ही रुचिर हुआ करते है। ये वर्ण हरि—वरुण—इन्द्र—अग्नि—पितृपति और मरुत् देवो के अपने वर्ण होते हैं ॥२१॥ विप्रका वर्ण शङ्ख कुमुद और स्फटिक के समान अवदात होता है। क्षत्रिय का वर्ण शश बभ्रु और विलोचन के सदृश आभा वाला होता है। वैश्य का वर्ण कान्त कदली (केला) के दल के तुल्य होता है और शूद्र का वर्ण धौत करवाल के सदृश दीप्ति से युक्त हुआ करता है ॥२२॥

द्वौ वज्रवर्णौ पृथिवीपतीनां सद्भिः प्रदिष्टौ न तु सार्वजन्यौ।
य स्याज्जवाविद्रुमभङ्गशोणो यो वा हरिद्रारससन्निकाश ।२३

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्सार्ववर्णिकम् ।
कामतो धारयेद्राजा न त्वन्योऽन्यः कथञ्चन ॥२४
अधरोत्तरवृत्तो हि यादृक्स्याद्वर्णसङ्करः ।
ततः कष्टतरो वज्री वर्णाना सङ्करो मतः ॥२५
न च मार्गविभागमात्रवृत्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः ।
गुणवद्गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतुः ॥२६
एकमपि यस्य शृङ्गं विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा ।
गुणवदपि तन्न धार्यं श्रेयोऽर्थिभिर्भवने ॥२७
स्फुटिताग्निविशीर्णशृङ्गदेश मलवर्णं पृषतैर्व्यपेतमध्यम् ।
न हि वज्रभृतोऽपि वज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलालसां न कुर्याद् २८
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितवर्णचित्रम् ।
न तत्र कुर्याद् ह्रियमाणमाशु स्वच्छन्दमृत्योरपि जीवतान्तम् ॥२९

वज्र के दो वर्ण पृथिवी पतियों के लिये सत्पुरुषों ने बतलाये हैं और ये वर्ण सर्व साधारण पुरुषों के लिये नहीं कहे गये हैं। एक वर्ण तो वह होता है जो जवा विद्रुम के भङ्ग के समान वर्ण हो और दूसरा इसके विकल्प में हरिद्रा के रस के समान होता है ॥२३॥ समस्त वर्णों का स्वामी होने के कारण सभी वर्णों के गुणों से वह युक्त होता है। इसलिये स्वेच्छा से राजा धारण कर सकता है किन्तु राजा के अतिरिक्त अन्य कोई भी वर्ण वाला किसी भी प्रकार से धारण न करे ॥२४॥ अधरोत्तर वृत्त वाला जैसा कि वर्णों की सङ्करता वाला हो। उसमें वज्र रखने या धारण करने वाला कष्टतर होता है। ऐसा वर्णों का सङ्कर माना गया है ॥२५॥ मार्ग के विभाग मात्र की वृत्ति से ही विद्वान् पुरुष को वज्र का परिग्रह कभी नहीं करना चाहिए। जो गुणों से समन्वित वज्र होता है वह गुण और सम्पदाओं की विभूति होता है। इसके विपरीत वज्र व्यसनों (कष्टों) के उदय का कारण हुआ करता है ॥२६॥ जिस वज्र का एक भी शृङ्ग विदलित अथवा विशीर्ण यदि दिखलाई देता है तो चाहे अन्य गुणों से युक्त भी क्यों न हो उसे श्रेय के चाहने वाले पुरुषों को भवन में कभी धारण नहीं करना चाहिए ॥२७। स्फुटित अग्नि के सदृश

विशीर्ण जिस हीरा का शृङ्ग देश हो और मल वर्ण वाले पृषतों (बिन्दु रेखा) से मध्य भाग त्यपेन हो—ऐसे वज्र के धारण करने वाले का वह वज्र शीघ्र श्री नहीं करता है और उसे अन्याश्रय की लालसा भी नहीं करनी चाहिए। ।।२८।। जिसका एक भाग क्षतजा के समान अव भासित होता है अथवा लोहित वर्ण से चिन्हित सा हो उसे शीघ्रता में ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि वह स्वच्छन्द मृत्यु के भी जीवित का अन्त करने वाला होता है ।।२९।।

कोठय पार्श्वानि धाराश्च षडष्टौ द्वादशेति च ।
उत्तुङ्गसमतीक्ष्णाग्रा वज्रस्याकरजा गुणा ।।३०
षट्कोटिशुद्धममल स्फुटतीक्ष्णधार
वर्णान्वित लघु सुपार्श्वमपेतदोषम् ।
इन्द्रायुधांशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेव विध
भुवि भवेत्सुलभ न वज्रम् ।।३१
तीक्ष्णाग्र विमलमपेतसर्वदोष धत्ते य प्रयततनु सदैव वज्रम् ।
वृद्धिस्त प्रतिदिनमेति यावदायु स्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम् । ३२
व्यालवह्निविषव्याघ्रतस्कराम्बुभयानि च ।
दूरात्तस्य निवर्त्तन्ते कर्माण्याथर्वणानि च ।।३३
यदि वज्रमपेतसर्वदोष विभृयात्तण्डुलविंशति गुरुत्वे ।
मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुण रूपलक्षणमग्रमूल्यम् ।।३४
त्रिभागहीनार्द्धं तदर्द्धशेष त्रयोदश त्रिंशदतोऽर्द्धभाग ।
अशीतिभागोऽथ शताशभाग सहस्रभागोऽल्पसमानयोग ।।३५
यत्तण्डुलैर्द्वादशभि कृतस्य वज्रस्य मूल्य प्रथम प्रदिष्टम् ।
द्वाभ्या क्रमाद्धानिमुपागतस्य त्वेकावसानस्य विनिश्चयोऽयम् ।३६

जिस वज्र की कोटियाँ, पार्श्व भाग और धाराये छः—आठ तथा बारह हो तथा उत्तुङ्ग—सम और तीक्ष्ण अग्रवाली हो व हीरे के आकर (खान) में उत्पन्न होने वाले गुण हुआ करते हैं ।।३०।। छः कोटियों से युक्त—शुद्ध—अमल—स्फुट एव तीक्ष्ण धाराओं वाला—वर्णो से युक्त—लघु—अच्छे पार्श्व भागों वाला—सम्पूर्ण दोषों से रहित और इन्द्रायुध की किरणों की विभृति से

छुरित अन्तरिक्ष वाला इस प्रकार का वज्र (हीरा) इस भूलोक में सुलभ नहीं हुआ करता है ।।३१।। तीक्ष्ण अग्रभाग से समन्वित—बिना मल वाला—समस्त दोषों से विवर्जित वज्र को जो कोई प्रयत शरीर वाला सर्वदा धारण किया करता है उसकी आये दिन वृद्धि होती है और यह जब तक जीवित रहता है उसे स्त्री—धन—सुत धन—धान्य—गौ और पशुओं का पूर्ण सुख रहता है। ।।३२।। उस पुरुष से व्याल (सर्प)—अग्नि—विष—व्याघ्र—तस्कर और जल के भय तथा आथर्वण कर्म अर्थात् मारणोच्चाटनादि कर्म दूर से ही निवृत्त हो जाया करते हैं ।।३३।। यदि ऐसा वज्र अर्थात् हीरा जो सब प्रकार के दोषों से रहित हो और बीस तण्डुल (चावल) के बराबर गुरुत्व वाला हो उसे कोई पुरुष धारण करता है तो मणि शास्त्र के विद्वान् लोग उसका द्विगुण रूप लक्षण और अग्र मूल्य कहा करते हैं ।।३४।। त्रिभाग हीन का अर्ध और उसका अर्धशेष, त्रयोदश, तीसरा अर्ध भाग, अशीति भाग, शतांश भाग, सहस्र भाग इसका समान योग होता है ।।३५।। बहुल बारह के द्वारा किया वज्र का मूल्य प्रथम ही बताया गया है। क्रम से दो के द्वारा हानि को उपागत एकाद भाग का यह विनिश्चय होता है ।।३६।।

न चापि तण्डुलैरेव वज्राणां धारणक्रमः ।
अष्टाभिः सर्षपैर्गौरैस्तण्डुलं परिकल्पयेत् ।।३७
यत्तु सर्वगुणैर्युक्तं वज्रं तरति वारिणि ।
रत्नवर्गे समस्तेऽपि तस्य धारणमिष्यते ।।३८
अल्पेनापि हि दोषेण लक्ष्यालक्ष्येण दूषितम् ।
स्वमूल्याद्दशमं भागं वज्रं लभति मानवः ।।३९
प्रकटानेकदोषस्य स्वल्पस्य महतोऽपि वा ।
स्वमूल्याच्छतशो भागो वज्रस्य न विधीयते ।।४०
स्पृष्टदोषमलङ्कारे वज्रं यद्यपि दृश्यते ।
रत्नानां परिकल्पार्थं मूल्यं तस्य भवेल्लघु ।।४१

केवल तण्डुलों (चावल) से ही जो गुरुत्व पहिले बताया गया है यही इस वज्र (हीरा) के धारण का क्रम नहीं होता है। बल्कि आठ सफेद सरसों

से उस तण्डुल की परिकल्पना कर लेनी चाहिए ॥३७॥ जो समस्त गुणों से युक्त वज्र जल में तैर जाया करता है और सम्पूर्ण रङ्ग वर्ण के होने पर भी उसका धारण करना अभीष्ट होता है ॥३८॥ लक्ष्य और अलक्ष्य अल्प दोष से भी दूषित अपने मूल्य से दशम भाग जहाँ मानव प्राप्त करता है तथा प्रकट अनेक दोषों वाले छोटे अथवा बड़े का अपने मूल्य से सौवाँ भाग वज्र का नहीं होता है ॥३९।४०॥ दोषों से स्पृष्ट वज्र यद्यपि अलङ्कारों में दिखलाई दिया करता है। किन्तु रत्नों के परिकल्पित मूल्य से उसका मूल्य थोड़ा ही होता है ॥४१॥

प्रथम गुणसम्पदाभ्युपेत प्रतिबद्ध समुपैति यच्च दोषम् ।
अलमाभरणेन तस्य राज्ञो गुणहीनोऽपि मणिर्न भूषणाय ॥४२
नार्य्या वज्रमधार्य्यं गुणवदपि सुतप्रसूतिमिच्छन्त्या ।
अन्यत्र दीर्घचिपटह्रस्वाद् गुणैर्विमुक्ताच्च ॥४३
अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च ।
वैदूर्य्यस्फटिकाभ्याञ्च काचैश्चापि पृथग्विधैः ॥४४
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जना. ।
परीक्षा तेषु कर्त्तव्या विद्वद्भिः सुपरीक्षकैः ।
क्षारोल्लेखनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम् ॥४५
पृथिव्यां यानि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः ।
सर्वाणि विलिखेद्वज्रं तच्च तैर्न विलिख्यते ॥४६
गुरुता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम् ।
वज्रे तां वैरीत्येन सूरय परिचक्षते ॥४७
जातिरजातिं विलिखन्ति वज्रकुरुविन्दा. ।
वज्रं वज्रं विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम् ॥४८
वज्राणि मुक्तामणयो ये च केचन जातय ।
न तेषां प्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ॥४९
तिर्य्यक्क्षतत्वात्केषांचित्कथञ्चिद्यदि दृश्यते ।
तिर्य्यगालिख्यमानानां स पार्श्वेषु विहन्यते ॥५०

समान सुन्दर विस्फुरण वाला हीरा को जैसा कि बताया गया है, धारण करने वाला राजा पराक्रम से आक्रान्त पर प्रताप वाला सम्पूर्ण सामन्तों की भू का उपभोग किया करता है ॥५१॥५२॥

३८—मुक्ता परीक्षा

द्विपेन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि ।
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषाञ्च शुक्त्युद्भवमेव भूरि ॥१
तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निविश्यते रत्नपरस्य जातु ।
वेध्यन्तु शुक्त्युद्भवमेव तेषां शेषाण्यवेध्यानि वदन्ति तज्ज्ञाः ॥२
त्वक्सारनागेन्द्रतिमिप्रसूत यच्छङ्खज यच्च वराहजातम् ।
प्रायोविवृत्तानि भवन्ति भासा शस्तानि माङ्गल्यतया तथापि ॥३
या मौक्तिकानामिह जातयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिता रत्नविनिश्चयज्ञैः ।
कम्बूद्भव तेष्वधम प्रदिष्टमुत्पद्यते यच्च गजेन्द्रकुम्भात् ॥४
स्वयोनिमध्यच्छवितुल्यवर्णं शाङ्खं बृहत्कोलपलप्रमाणम् ।
उत्पद्यते वारणकुम्भमध्यादापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ॥५
ये कम्बवः शार्ङ्गमुखावमर्षपीतस्य शङ्खप्रवरस्य गोत्रे ।
मतङ्गजाश्चापि विशुद्धवश्यास्ते मौक्तिकानां प्रभवाः प्रदिष्टाः ।
उत्पद्यते मौक्तिकमेषु वृत्तमापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ॥६
पाठीनपृष्ठस्य समानवर्णं मीनात् सुवृत्तं लघु चातिसूक्ष्मम् ।
उत्पद्यते वारिचराननेषु मत्स्याश्च ते मध्यचराः पयोधेः ॥७

सूतजी ने कहा—मुक्ताफल अर्थात् मोती द्विपेन्द्र—जीमूत—वराह—शङ्ख—मत्स्य—अहि (सर्प) और शुक्ति से उत्पन्न तथा वेणु से जन्म ग्रहण करने वाले प्रसिद्ध हैं। उन सबमें संसार में शुक्तियों (सीपों) से उद्गव प्राप्त करने वाले मोती ही अधिक हैं ॥१॥ उनमें रत्न पर एक की ही मूल मात्रा विनिवेशित की जाती है। जो सीप से समुत्पन्न मोती होते हैं उन सबमें वे ही मोती विद्ध हुआ करते हैं बाकी अन्य प्रकार से समुत्पन्न मुक्ताओं को इस शास्त्र के ज्ञाता लोग अवेध्य ही बतलाते हैं ॥२॥ त्वक्सार-नागेन्द्र (हाथी)-तिमि (रोहू

मछली) से समुत्पन्न मोती और जो शङ्ख से उद्भूत मोती तथा वराह से उत्पन्न होने वाला मुक्ता ये प्रायः भा से विमुक्त ही होते हैं तो भी माङ्गल्यता से इनको प्रशस्त कहा जाता है ॥३॥ रत्नों के विशेष निश्चय करने के ज्ञान को रखने वाले विद्वानों ने जो मौक्तिकों की आठ जातियाँ बतलाई हैं उन सबमें शङ्ख से समुत्पन्न मोती प्रथम प्रकार का बताया गया है। जो मुक्ता गजेन्द्र के कुम्भ स्थल से उत्पन्न होता है वह अपनी योनि के मध्य भाग की छवि के तुल्य वर्ण वाला होता है। शङ्ख से समुत्पन्न मोती जो है वह बृहत्कोण फल के बराबर होता है। हाथी के कुम्भ स्थल के मध्य से जो मुक्ता उत्पन्न होता है वह थोड़ा-सा पीत वर्ण का और प्रभा से रहित होता है ॥४।५॥ जो कम्बु से उत्पन्न होने वाले मोती हैं वे शाङ्ख मुरावमपपीत शङ्खों में श्रेष्ठ के गोत्र में हुआ करते हैं। मतङ्ग (हाथी) से उत्पन्न भी विशुद्ध वंश में होने वाले मुक्ता होते हैं। ये मौक्तिकों की उत्पत्तियाँ बतला दी गई हैं। इनमें जो मोती उत्पन्न होता है वह वृत्ताकार वाला—थोड़ी-सी पीतिमा वाला और प्रभा से उत्पन्न होता है ॥६॥ मीन से जो मोती उत्पन्न होता है वह सुवृत्त और पाठीन (मछली) की पीठ के समान वर्ण वाला—लघु और अत्यन्त सूक्ष्म हुआ करता है। जलचरों के मुखों में वह मोती उत्पन्न होता है। ये मछलियाँ समुद्र में मध्य में विचरण करने वाली हुआ करती हैं ॥७॥

वराहदंष्ट्राप्रभवं प्रदिष्टं तस्यैव दंष्ट्राङ्कुरतुल्यवर्णम् ।
क्वचित् कथञ्चित् स भुवः प्रदेशे प्रजायते शूकरवद्विशिष्टः ॥८
दर्वोपलानां समवर्णशोभं त्वक्सारपर्वप्रभवं प्रदिष्टम् ।
ते वेणवो भव्यजनोपभोग्ये स्थाने प्ररोहन्ति न सार्वजन्ये ॥९
भौजङ्गमं मीनविशुद्धवृत्तं मस्यानत्ताऽप्युज्ज्वलं स्वर्णशोभम् ।
नितान्तधौतप्रविवस्वमाननिम्निग्रधारामसवर्णकान्ति ॥१०
प्राप्यातिरत्नानि महाप्रभाणि राज्यं श्रियं वा महती दुरापाम् ।
तेजोऽन्विताः पुण्यकृतो भवन्ति मुक्ताफलस्याहिशिरोभवस्य ॥११
जिनागया रत्नधनं विधिज्ञैः शुभे मुहूर्त्ते प्रयतैः प्रयत्नात् ।
रक्षाविधानं सुमहद्विधाय हर्म्योपरिष्ठं क्रियते यदा तत् ॥१२

हुआ करता है। उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि चारों ओर सहस्रों योजन तक समस्त अनर्थों को दूर भगा दिया करता है ॥१६॥ उस महासुर की दन्तावलि आकाश मे नक्षत्रों की माला के समान विशीर्ण हुई है। विचित्र वर्ण वाले जल के स्वामी के जल मे विशुद्ध वर्ण वाली वह गिरी थी ॥२०॥ सम्पूर्ण चन्द्र के अंशु कलाप के समान कान्ति वाले—महान् गुणों से समन्वित मणियों में श्रेष्ठ थे बीजने शुक्ति वालों में स्थिति प्राप्त की थी पहिले भी जो अन्य भवन थे ॥२१॥

यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारुमुक्तामणिरत्नबीजम् ।
तस्मिन्पयस्तायधरावकीर्णं शुक्तौ स्थित मौक्तिकतामवाप ॥२२
सैंहलिकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रपर्णिपारशवा ।
कौवेरपाण्ड्यहाटकहेमका इत्याकरास्त्वष्टौ ॥२३
शुक्त्युद्भव नाति निकृष्टवर्णं प्रमाणसंस्थानगुणप्रभाभि ।
उत्पद्यते वर्द्धनपारलौकपाताललोकान्तरसिंहलेषु ॥२४
चिन्त्या न तस्याकरजा विशेषा रूपे प्रमाणे च यतेत विद्वान् ।
न च व्यवस्थास्ति गुणागुणेषु सर्वत्र सर्वाकृतयो भवन्ति ॥२५
एकस्य शुक्तिप्रभवस्य मुक्ताफलस्य शाणेन समुन्मितस्य ।
मूल्य सहस्राणि तु रूपकाणा त्रिभि शतैरप्यधिकानि पञ्च ॥२६
यन्माषकार्द्धेन ततो विहीन तत्पञ्चभागद्वयहीनमूल्यम् ।
यन्माषकास्त्रीन् विभृयात्सहस्रे द्वे तस्य मूल्य परम प्रदिष्टम् ॥२७
अर्द्धाधिकौ द्वौ वहतोऽस्य मूल्य त्रिभि शतैरप्यधिक सहस्रम् ।
द्विमाषकोन्मापितगौरवस्य शतानि चाष्टौ कथितानि मूल्यम् ॥२८

जिस प्रदेश मे अम्बुनिधि मे सुचारु मुक्तामणि का रत्न बीज गिरा था उसमें जल के नीचे के भाग मे बिखरी हुई जो शुक्ति (सीप) थी उसमे वह बीज स्थित होता हुआ मौक्तिक के स्वरूप को प्राप्त हो गया था ॥२२॥ उसके सैंहलिक, पारलौकिक, सौराष्ट्रिक, ताम्रपर्णी, पारशव, कौवेर, पाण्ड्य हाटक, हेमक ये आठ आकर हैं ॥२३॥ शुक्ति से समुत्पन्न मोती प्रमाण, संस्थान, गुण और प्रभा से अति निकृष्ट वर्ण वाला नहीं होता है। यह वर्द्धन पारलौक पाताल

लोकान्तर निहतो मे उत्पन्न होता है ॥२४॥ उसके ग्राकर मे उत्पन्न होने वाली विशेषताग्रो का कोई चिन्तन नही करना चाहिए बल्कि विद्वान् पुरुष को उसके रूप ग्रौर प्रमाण मे ही यत्न करना चाहिए। उसके गुण ग्रौर ग्रगुणो की कोई विशेष व्यवस्था नही की गई है क्योकि सभी जगह सब प्रकार की ग्राकृति वाले हुग्रा करते है ॥२५॥ शुक्ति से समुत्पन्न एक मोती जब शाण से समुन्मित हो जावे तो उसका तीन ग्रौर पाँच सौ से ग्रधिक सहस्रो रुपये मूल्य होता है ॥२६॥ जो एक उद के ग्र धे भाग के बराबर हो या उससे भी कम हो तो वह उसके पञ्चभाग द्रव से हीन मूल्य वाला होता है। जो तीन मापको के बराबर होता है उसका मूल्य दो सहस्र रुपये होता है—ऐसा बताया गया है ॥२७॥ दो अर्ध ग्रधिक वहन करने वाले इसका मूल्य एक सहस्र से तीन सौ अधिक हुग्रा करता है। दो मापक ग्रौर उन्मापन मे गौरव युक्त का मूल्य ग्राठ सौ से ग्रधिक कहा गया है ॥२८॥

ग्रर्द्धाधिक मापकमुन्मितस्य सपञ्चविशतित्रय शतानाम् ।
गुञ्जाश्च षड् धारयत शत द्वे मूल्य परतम्य वदन्ति तज्ज्ञा ।
ग्रध्यर्द्धमुन्मापकृत शत स्यान्मूल्य गुणैस्तस्य समन्वितस्य ॥२९
यदि पोडशभिर्भवदनून धरण तत्प्रवदन्ति दार्विकाख्यम् ।
ग्रधिक दशभि शतञ्च मूल्य समाप्नोत्यपि वालिशस्य हस्तात् ।३०
द्विगुणैर्दशभिर्भवेदनून धरण तद्भवक वदन्ति सज्ज्ञा ।
नवसप्ततिमाप्नुयात्स्वमूल्य यदि न स्याद् गुणसम्पदा विहीनम् ।३१
त्रिशता धरण पूर्ण शिक्यन्तस्येति कार्त्यते ।
चत्वारिंशद् भवेत्तस्या परो मूल्यो विनिश्चय ॥३२
चत्वारिंशद् भवेच्छिक्यो निमन्मूल्य लभेत सा ।
षष्टिनिकरशीर्ग स्यात्तस्य मूल्य चतुर्दश ॥३३
ग्रशीतिर्नवनिश्चैव कूप्येति परिकीर्तिता ।
एकादश स्यान्नव च तयामूल्यमनुक्रमात् ॥३४

ग्रादाय तत्मकलमव ततोऽन्नभाण्ड जम्बीरजातरसयोजनया विपक्वम् ।
धृष्ट ततो मृदुतनूकृतपिण्डमूलै कुर्याद्यथेष्टमनुमौक्तिकमाशुविद्धम् ।३५

आधा अधिक मापक और उन्मित मोती का मूल्य तीन सौ बीस होता है। इस विषय के ज्ञाता लोग छै गुञ्जा के प्रमाण वाले का परम मूल्य दो सौ रुपये बतलाते हैं। इसके आधे प्रमाण वाला यदि उन्मापक न हो और गुणों से समन्वित हो तो उसका मूल्य एक सौ रुपये होता है ॥२६॥ यदि सोलह से से न्यून धरण हो तो उसे वार्तिकाख्य कहते हैं। दश से अधिक सौ रुपये भी किसी बालिश (मूर्ख) के हाथ से प्राप्त हो जाता है ॥३०॥ दुगुने दश से न्यून धरण हो तो उसके ज्ञाता लोग उसे भवक कहा करते हैं। यदि वह गुणों की सम्पदा से विहीन न हो तो उसका अपना मूल्य नौ सप्तति (नौ सत्तर) प्राप्त हो जाता है। ३१॥ तीन सौ का पूर्ण धरण शिक्य-नहीं—यह कहा जाता है। उसका सबसे अधिक मूल्य चालीस होता है—यह बिल्कुल निश्चित होता है। ॥३२॥ जो चालीस शिक्य होता है उसका मूल्य तीस रुपये ही प्राप्त होते हैं। साठ निकर शीर्ष जो हो उसका मूल्य चौदह होता है ॥३३॥ अस्सी और नब्बे कूप्या—यह परिकीर्त्तित किया गया है। इन दोनों का मूल्य एकादश और नौ अनुक्रम से होता है ॥३४॥ उन सबको लेकर अन्न के पात्र में जम्बीर जात रस की योजना द्वारा विपक्व करे फिर कोमल तनूकृत पिण्ड मूलों से घर्षण करे तो प्रत्येक मौक्तिक शीघ्र ही यथेच्छया विद्ध कर लेवे। अर्थात् फिर तुरन्त ही अपनी इच्छा के अनुसार मोती वेध के योग्य हो जाता है ॥३५॥

मृल्लिप्तमत्स्यपुटमध्यगतन्तु कृत्वा पश्चात्पचेत्तनु ततश्च वितानपत्या।
दुग्धे तत पयसि त विपचेत्सुधायाः पक ततोऽपि पयसा शुचिचिक्कणेन।
शुद्ध ततो विमलवस्त्रनिघर्षणेन स्यान्मौक्तिक विपुलसद्गुण-
कान्तियुक्तम् ॥३६
व्याडिर्जगाद जगता हि महाप्रभावसिद्धो विदग्धहिततत्परया दयालु।
श्वेतकाचमम तार हेमाग्रदातयोजितम् ॥३७
रसमध्ये प्रधार्म्यंत मौक्तिक दहभूषणम् ॥
एव हि सिंहले देशे कुर्वन्ति मुदाला जना ॥३८
यस्मिन्कृत्रिमसन्देह क्वचिद्भवति मौक्तिके।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशा तद्वासयेज्जले ॥३९

व्रीहिभिर्मर्दनीय वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम् ।
यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेय तदकृत्रिमम् ॥४०
सित प्रमाणवत् स्निग्धं गुरु स्वच्छ सुनिर्मलम् ।
तेजोऽधिकं सुवृत्तञ्च मौक्तिक गुणवत्स्मृतम् ॥४१
प्रमाणवद् गौरवरश्मियुक्तं सित सवृत्त समसूक्ष्मवेधम् ।
ग्रक्रेतुरप्यावहति प्रमोद यन्मौक्तिक तद्गुणवत् प्रदिष्टम् ॥४२
एव समस्तेन गुणोदयेन यन्मौक्तिक योगमुपागत स्यात् ।
न तस्य भर्त्तारमनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोष ॥४३

मृत्तिका से लिप्त करके मत्स्य पुट मे रक्खे और फिर विताल पत्ती से थोडा पाचन करे । फिर दुग्ध मे तथा इसके पश्चात् जल मे पाचन करे । सुधा मे पक्व करे और फिर शुचि चिक्कण पय के साथ पकावे । इसके करने के पश्चात् स्वच्छ वस्त्र से मोतियो का निघर्षण करे तो वे मोती परम शुद्ध और बहुत सद्गुण एव कान्ति से युक्त हो जाते हैं । महा प्रभाव सिद्ध एव दयालु व्याडि ने ससार के लोगो पर कृपा करके जनो के हित पर ध्यान देकर ऐसा कहा था ॥३६।३७॥ दमन काँच के सम चाँदी और जो हेमाश शन से योजित हो ऐसे देह के भूषण मौक्तिक को रस के मध्य मे धारण करना चाहिए । इसी प्रकार से सिंहल देश मे कुशल पुरुष किया करते हैं ॥३८। जिस मौक्तिक मे बनावटी होने का सन्देह हो उसे उष्ण लवण सहित स्नेह मे एक रात्रि जल मे वासित करे अथवा शुष्क वस्त्र से उपवेष्टित कर व्रीहियो के साथ मर्दन करे । ऐसा करने पर जिसमे कोई भी विवर्णता न आवे तो समझ लेना चाहिये कि वह अकृत्रिम अर्थात् असली मौक्तिक ही है बनावटी नही है ॥३९।४०॥ सित, प्रमाणवत्, स्निग्ध, गुरु, स्वच्छ, सुनिर्मल, अधिक तेज से युक्त और सुवृत्त मौक्तिक गुणों से समन्वित कहा गया है ॥४१॥ प्रमाणवत् गौरव और रश्मियो से युक्त सित, सवृत्त तथा सम एव सूक्ष्म वेध वाला जो न खरीददारी करने वाले के मन को भी प्रमोद देने वाला हो वही मोती गुण गण से समन्वित बताया गया है ॥४२॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण गुणो के उदय से जो मौक्तिक

योग को प्राप्त हुआ हो उस मोती के स्वामी तथा धारण करने वाले को ग्र से समुत्पन्न कोई एक भी दोष उपस्थित नहीं होता है ॥४३॥

३६—पद्मराग परीक्षा

दिवाकरस्तस्य महामहिम्नो महासुरस्योत्तमरत्नबीजम् ।
असृग् गृहीत्वा चरितुं प्रतस्थे निस्त्रिंशनीलेन नभःस्थलेन ॥१
जेत्रा सुराणां समरेष्वजस्रं वीर्य्यावलेपोद्धतमानसेन ।
लङ्काधिपेनार्द्धपथे समेत्य स्वर्भानुनेव प्रसभं निरुद्धः ॥२
तत्सिंहलीचारुनितम्बबिम्बविक्षोभितागाधमहाह्रदायाम् ।
पूगद्रुमाबद्धतटद्वयाया मुमोच सूर्य्यः सरिदुत्तमायाम् ॥३
ततःप्रभृति सा गङ्गा तुल्यपुण्यफलोदया ।
नाम्ना रावणगङ्गेति प्रथिमानमुपागता ॥४
ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैर्निचितानि तस्याः ।
सुवर्णनाराचशतैरिवान्तर्बहिःप्रदीप्तैर्निशितानि भान्ति ॥५
तस्यास्तटेषूज्ज्वलचारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्मरागाः ।
सौगन्धिकोत्थाः कुरुविन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसंप्रसूताः ॥६
बन्धूकगुञ्जासकलेन्द्रगोपजवासमासृक्समवर्णशोभाः ।
भ्राजिष्णवो दाड़िमबीजवर्णास्तथापरे किंशुकपुष्पभासः ॥७

सूत जी ने कहा—उस महान् महिमा से युक्त महासुर का उत्तम रत्न बीज यह दिवाकर है जो असृक् (रुधिर) ग्रहण करके निस्त्रिंश नील इस नभःस्थल के द्वारा चरण करने के लिये प्रस्थान करता था ॥ १ ॥ समरों में निरन्तर सुरों को जीतने वाले—वीर्य—पराक्रम के गर्व से उद्धत मन वाले लङ्का के स्वामी ने अर्ध पथ में आकर स्वर्भानु की ही भाँति इसे बलात् रोक दिया था ॥ २ ॥ सिंहल द्वीप की ललनाओं के अति सुन्दर नितम्ब बिम्बों से विक्षोभित और अगाध महान् ह्रद वाली—दोनों ओर के तटों पर पूगों की वृक्षावली से सुशोभित सरिताओं में परमोत्तम में सूर्य ने मोचन किया था ॥ ३ ॥ तभी से लेकर वह सरिता गङ्गा के समान पुण्यों के फलोदय वाली "रावण गङ्गा"

इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी ॥ ४ ॥ तब से ही आरम्भ कर के उसके कूल रात्रियों में रत्नों से निचित रहा करते हैं। सुवर्ण नारानशतों के समान भीतर—बाहिर से प्रदीप्तों से निचित भासित होते हैं ॥ ५ ॥ उस नदी के तटों पर और जलों मे उज्ज्वल एवं चारु राग वाले पद्मराग होते हैं। सौगन्धिक और कुरु विन्दज—महान् गुणों वाले तथा वे स्फटिक सम्प्रसून होते हैं ॥ ६ ॥ बन्धूक पुष्प—गुञ्जाफल—पकलेन्द्रगोप और जवा के समान तथा असृक् (रक्त) के समान वर्ण की शोभा वाले—भ्राजिष्णु तथा अनार के दाने के तुल्य वर्ण वाले और अन्य ढाक के पुष्प के समान दीप्ति वाले हैं ॥७॥

सिन्दूरपद्मोत्पलकुङ्कुमानां लाक्षारसस्यापि समानवर्णाः ।
सान्द्रेऽपि रागे प्रभया स्वयैव भान्ति स्वलक्ष्या स्फुटमध्य-शोभाः ॥८
भानोश्च भामामनुवेधयोगमासाद्य रश्मिप्रकरेण दूरम् ।
पार्श्वानि सर्वाण्यनुरञ्जयन्ति गुणोपपन्ना. स्फटिकप्रसूताः ॥९
कुसुम्भनीलव्यतिमिश्ररागप्रयुग्ररक्ताम्बुजतुल्यभास. ।
तथापरेऽरुण्करकण्टकारीपुष्पत्विषो हिंगुलकत्विषोऽन्ये ॥१०
चकोरपुंस्कोकिलसारसाना नेत्रावभासश्च भवन्ति केचित् ।
अन्ये पुनः सन्ति च पुष्पितानां तुल्यत्विषः कोकनदोत्स-मानाम् ॥११
प्रभावकाठिन्यगुरुत्वयोगै प्राय. समाना स्फटिकोद्भवानाम् ।
आनीलरक्तोत्पलचारुभास. सौगन्धिकोत्था मणयो भवन्ति ॥१२
काम तु राग. कुरुविन्दजेषु स तैव यादृक्स्फटिकोद्भवेषु ।
निरर्चिषोऽन्तबहुला भवन्ति प्रभावयन्तोऽपि न तैः समस्तैः ॥१३
ये तु रावणगङ्गाया जायन्ते कुरुविन्दका ।
पद्मरागघन राग विभ्रणा. स्फटिकार्चिषः ॥१४

सिन्दूर-पद्मोत्पल—कुङ्कुम और लाक्षारस के समान वर्ण वाले हैं। सान्द्र राग के होने पर भी अपनी ही प्रभा से स्वलक्ष्य तथा स्पष्ट मध्य की शोभा वाले होते हैं ॥ ८ ॥ दूर से ही सूर्य की दीप्तियों की किरणों के समु-

दाय से अनुवेध के योग को प्राप्त कर गुणों से सम्पन्न तथा स्फटिक से समुत्पन्न समस्त पार्श्व भागों को अनुरञ्जित किया करते हैं ॥ ६ ॥ कुछ कुसुम्भ और नील के व्यतिमिश्रित राग से प्रयुग्र रक्त कमल की तुल्य दीप्ति वाले होते हैं। अन्य अरुष्कर कण्टकारी के पुष्प के समान कान्ति वाले हैं और कुछ हिंगुल के तुल्य कान्ति से युक्त हुआ करते हैं ॥ १० ॥ चकोर—पुंस्कोकिल और सारस के नेत्रों के समान अवभासित होने वाले कुछ हुआ करते हैं। कुछ उत्तम एवं पुष्पित कोक नद के समान कान्ति वाले होते हैं ॥ ११ ॥ प्रभाव—कठिनता—और गुरुत्व के योग से प्राय स्फटिक से उद्भव होने वाले समान ही होते हैं। सौगन्धिकोत्थ मणियाँ थोड़ी नील—रक्तोत्पल के समान दीप्ति वाली हुआ करती हैं ॥ १२ ॥ जो कुरुविन्द से समुत्पन्न हैं उनमें राग यथेष्ट होता है वह स्फटिक से उद्भव प्राप्त करने वालों में जैसा होता है वैसा नहीं है। वे उन सम्पूर्णों में प्रभाव वाले होते हुए भी बिना अर्चियों वाले और घनवंहन होते हैं ॥ १३ ॥ जो रावण गङ्गा में कुरुविन्दक उत्पन्न होते हैं वे पद्मराग के समान घना राग धारण करने वाले और स्फटिक जैसी अर्चियों को धारण करने वाले हुआ करते हैं ॥ १४ ॥

वर्णानुयायिनस्तेषा अन्ध्रदेशे तथा परे।
न जायन्ते हि ये केचिन्मूल्यलेशमवाप्नुयु ॥१५
तथैव स्फाटिकोत्थाना देशे तुम्बुरुसञ्ज्ञके।
सधर्माण प्रजायन्ते स्वल्पमूल्या हि ते स्मृता ॥१६
वर्णाधिक्य गुरुत्वञ्च स्निग्धता समताच्छता।
अर्चिष्मत्ता महत्ता च मणीना गुणसग्रह ॥१७
ये कर्करच्छिद्रमलोपदिग्धा. प्रभाविमुक्ता परुषा विवर्णा.।
न ते प्रशस्ता मणयो भवन्ति समानता जातिगुणै. समस्त ॥१८
दोषोपसृष्ट मणिमप्रबोधाद्बिभर्ति य: कश्चन कश्चिदेव।
त यार चिन्तामयमृत्युवित्तनाशादयो दोषगणा हरन्ति ॥१६
याम धारनग पद्म जातीना प्रतिरूपका:।
विजातय प्रयत्नेन विद्वान्तानुपलक्षयेत् ॥२०

कलमपुरोद्भवसिंहलतुम्बुरुदेशोत्थमुक्तपाणीया ।
श्रीपूर्णकाश्च सदृशा विजातय पद्मरागाणाम् ॥२१
तुषोपसर्गात्कलसाभिधानमाताम्रभावादपि तुम्बुरुत्थम् ।
कार्ष्ण्याच्चतथा सिंहलदेशजात मुक्ताभिधान नभस स्वभावात्॥२२
श्रीपूर्णक दीप्तिविनाकृतत्वाद्विजातिलिङ्गाश्रय एव भेद ।
यस्ताम्रिका पुष्यति पद्मरागो योगात्तुषाणामिव पूर्णमध्य ।२३

उन्ही के जैसे वर्ण का अनुकरण करने वाले दूसरे अन्ध्र देश मे उत्पन्न नही होते हैं जो कोई मूल्य का लेश भी प्राप्त कर सकें ॥ १५ ॥ उसी प्रकार से तुम्बुरु नाम वाले देश में स्फटिक से समुत्पन्नो के समान धर्म वाले पैदा होते हैं किन्तु वे बहुत थोडी मूल्य वाले कहे गये हैं ॥ १६ ॥ मणियो की वर्ण की अधिकता–गुरुता–स्निग्धता–समता–स्वच्छता–अर्चियो वाली होना–महत्ता ये ही गुण हैं जिनका सग्रह होना है ॥१७॥ जो मणियाँ कर्कर–छिद्र और मल से उपदिग्ध होती हैं तथा अभाव (जोकि मणि रत्नों का बताया गया है) से रहित है—कठोर और बिना समुचित वर्ण वाली है वे जाति एव गुणो के पूर्ण होने पर भी प्रशस्त नही होती हैं ॥ १८ ॥ जो कोई पुरुष अज्ञान वश दोषो से उपसृष्ट मणि को धारण किया करता है उसको शोक–चिन्ता–रोग–मृत्यु –वित्तनाश आदि दोषो के समूह हरण कर लेते हैं ॥१९॥ पाँच जातियो के चारुतर अपेक्ष प्रति रूपक विजातीय रत्न होते है। विद्वान् पुरुष को पूर्ण प्रयत्न से उनको देख लेना चाहिए ॥ २० ॥ कलशपुर मे उत्पन्न-सिंहल और तुम्बुरु देश मे समुत्पन्न–मुक्त पाणीय और श्री पूर्वक ये विजातीय रत्न पद्मरागो के सदृश ही हुआ करते हैं ॥ २१ ॥ तुषोपसर्ग से कलस नाम वाला और थोडा ताम्र भाव होने से तुम्बुरुत्थ तथा कृष्णता होने से सिंहल देश मे समुत्पन्न नभ के स्वभाव होने से मुक्ता नाम वाला है ॥ २२ ॥ दीप्ति के विनाकृत्त होने से श्रीपूर्णक है और विजातीय चिह्न का आश्रय प्राप्त करना उसका भेद–होता है। जो पद्मराग ताम्रिका का पोषण करता है तुषाओं के समान योग से पूर्ण मध्य होता है ॥ २३ ॥

स्नेहप्रदिग्ध· प्रतिभाति यश्च यो वा प्रघृष्टः प्रजहाति दीप्तिम् ।
आक्रान्तमूर्द्धा च तथागुलिभ्या य. कालिका पार्श्वगता बिर्भात ।२४
सप्राप्य चोत्क्षिप्य यथानुवृत्ति बिर्भात यः सर्वगुणानतीव ।
तुल्यप्रमाणस्य च तुल्यजातेर्यो वा गुरुत्वेन भवेत्तु तुल्य. ।
प्राप्यापि रत्नाकरजा स्वजाति लक्षेद् गुरुत्वेन गुणेन विद्वान् ।२५
अप्रणश्यति सन्देहे शाणे तु परिलेखयेत् ।
स्वजातकसमुत्थेन लिखित्वापि परस्परम् ।।२६
वज्रं वाकुरुविन्दं वा विमुच्यानेन केनचित् ।
नाशक्य लेखन कर्तुं पद्मरागेन्द्रनीलयोः ।।२७
जातस्य सर्वेऽपि मणेस्तु याद्दग् विजातय सन्ति समानवर्णा ।
तथापि नामाकरणार्थमेव भेदप्रकार. परमः प्रदिष्ट ।।२८
गुणोपपन्नेन सहावबद्धो मणिर्न धार्य्यो विगुणो हि जात्य. ।
न कौस्तुभेनापि सहावबद्धं विद्वान् विजाति बिभृयात्कदाचित् ।।२९

जो स्नेह से प्रदिग्ध प्रतीत होता है अथवा जो प्रघृष्ट होता हुआ दीप्ति को त्याग देता है और जो अंगुलियो से आक्रान्त मूर्धा वाला होकर पार्श्वगत कालिका को धारण कर लेता है ।। २४ ।। जो यथा अनुवृत्ति प्राप्त कर और उत्क्षिप्त होकर समस्त गुणो को अत्यन्त रूप से धारण किया करता है तथा प्रमाण की समानता से तथा जाति के अनुसार जो गुरुत्व से तुल्य होता है और रत्नो के आकार मे समुत्पन्न अपनी जाति को प्राप्त होकर भी गुरुत्व एव गुरुगरिमा रखता है इन सब बातो के होने से ही विद्वान् पुरुष को देखभाल रत्न की करनी चाहिए ।। २५ ।। सन्देह के प्रणष्ट न होने पर शाण पर रखे जाने पर उसे परिलक्षित करे तथा स्वजातक से समुत्पन्न परस्पर मे लिखित करके भी देखना चाहिए । वज्र अथवा कुरुविन्द हो इसका त्याग कर पद्मराग तथा इन्द्रनील पर लेखन इससे यदि नही किया जा सकता है तो इस जाति के रत्न समान वर्ण होने वाले सभी विजातीय ही होते हैं—ऐसा समझ लेना चाहिए । तथापि नाम करण करने के लिये ही यह भेदों का परम प्रकार यहाँ

बता दिया गया है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ गुणों से उपपन्न होता हुआ भी जो महावयद्ध हो ऐसा रत्न मणि जो जातीय विगुणता से युक्त हो कभी धारण नहीं करना चाहिए। कौस्तुभ मणि की समानता रखने वाला भी भले ही वह मणि क्यों न हो यदि विजातीय है तो विद्वान् पुरुष को कभी ऐसा रत्न धारण नहीं करना चाहिए ॥ २६ ॥

चण्डाल एकोऽपि यथा द्विजातीन्समेत्य भूरीनपि हन्त्ययत्नात् ।
अथो मणीन्भूरिगुणोपपन्नान्शक्नोति विप्लावयितुं विजात्य ।।३०
सपत्नमध्येऽपि कृताधिवास प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम् ।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्त्तारमापत्स्पृशतीह काचित् ।।३१
दोषोपसर्गप्रभवाश्च ये ते नोपद्रवास्त समभिद्रवन्ति ।
गुणै. समुत्तेजितचारुराग य पद्मराग प्रयतो विभर्ति ।।३२
वज्रस्य तत्तण्डुलसख्ययोक्त मूल्य समुत्पादितगौरवस्य ।
तत्पद्मरागस्य महागुणस्य तन्मापकस्याकलितस्य मूल्यम् ।।३३
वर्णदीप्त्युपपन्नं हि मणिरत्न प्रशस्यते ।
ताभ्यामीषदपि भ्रष्ट मणिर्मूल्यात्प्रहीयते ।।३४

जिस प्रकार से एक भी चण्डाल द्विजातियों के साथ मिलकर बहुत से उनको बिना ही किसी यत्न के द्विजातित्व से हनन कर दिया करता है उसी तरह से विजात्य मणि बहुत से गुणों से उपपन्न अनेक मणियों को विप्लावित कर सकता है ॥ ३० ॥ शत्रुओं के मध्य में अधिवास करने वाले और प्रमाद की वृत्ति में भी वर्तमान रहने वाले महान् गुण युक्त पद्मराग को धारण करने वाले स्वामी को कोई भी आपत्ति स्पर्श नहीं किया करती है ॥ ३१ ॥ दोषों के उपसर्ग से उत्पन्न होने वाले जो भी उपद्रव हुआ करते हैं वे उसको उपद्रुत नहीं किया करते हैं जो गुणों से समुत्तेजित सुन्दर राग वाले पद्मराग मणि को प्रयत्नशील होता हुआ धारण किया करता है ॥ ३२ ॥ जो वज्र तण्डुल की संख्या में वज्र का मूल्य कहा गया है वह समुत्पादित गौरव वाले तथा महान् गुणों से सम्पन्न एकमापक पद्मराग का मूल्य होता है ॥ ३३ ॥ वर्ण और दीप्ति

से उत्पन्न ही मणि रत्न प्रशस्त कहा जाता है। इन दोनों गुणों से यदि थोड़ा भी हीन हो तो वह रत्न मूल्य में हीन हो जाता है ॥ ३४ ॥

४०--मरकत परीक्षा

दानवाधिपते पित्तमादाय भुजगाधिप ।
द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ ॥१
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ ।
राजतः स महानेक खण्डसेतुरिवाबभौ ॥२
ततः पक्षनिपातेन संहरन्निव रोदसी ।
गरुत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्त्तुमुपचक्रमे ॥३
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाढ्यस्तनुरस्कपादपायाम् ।
नलिकावनगन्धवासितायां वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम् ॥४
तस्य प्रपातसमनन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे ।
स्थानं क्षितेरुपपयोनिधितीरलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरतां जगाम ५
तत्रैव किञ्चित्पततस्तु पित्तादुपेत्य जग्राह ततो गरुत्मान् ।
मूर्च्छापरीतः सहसैव घोणारन्ध्रद्वयेन प्रमुमोच सर्वम् ॥६
तत्राकठोरशुककण्ठशिरीषपुष्पखद्योतपृष्ठचरशाद्वलशैवलानाम् ।
कह्लारशष्पकभुजङ्गभुजाश्च पत्रप्राप्तत्विषो मरकता शुभदा भवन्ति ॥

श्री सूतजी बोले—भुजगों का स्वामी वासुकि नाग दानवों के अधिपति के पित्त को लेकर व्योम के दो भाग मानों करता हुआ शीघ्र चला गया था ॥१॥ उस समय में वह अपने सिर के रत्न की प्रभा से प्रदीप्त नभ रूपी अम्बुधि में एक महान् खण्ड सेतु की भाँति सुशोभित हुआ था ॥२॥ इसके अनन्तर गरुड पक्षों के निपात से रोदसी का संहार करते हुए की भाँति पन्नगेन्द्र के ऊपर प्रहार करने को उद्यत हुआ था ॥३॥ उस फणीन्द्र ने सहसा ही उसे सुरसादि से उत्त तुरस्क पादपों वाली—नलिका वन की गन्ध से सुवासित वरमाणिक्य गिरि की उपत्यका में छोड़ दिया था ॥४॥ उसके गिरने के समनन्तर काल में ही रमा के समीप में उसके श्रेष्ठ आलय को व्यतीत कर उसी के समान भूमि

के उपपयोनिधि के तट की लेखा वाला उसके प्रत्यय से वह स्थान मरकत मणि की खान बन गया था ॥५॥ वहाँ पर ही गुरुत्मान् ने आकर उन गिरते हुए पित्त से कुछ थोडा सा भाग ग्रहण कर लिया था। मूर्च्छा से परीत होकर उसने तुरन्त ही नासिका के दोनों नथुनों से उस सबको त्याग दिया था ॥६॥ वहाँ पर अकठोर युक्त कण्ठ–शिरीष पुरुष—खद्योत–पृष्ठ–चर—शाद्वल–शैवल–कल्हार–शष्पक–और भुजङ्ग भुज के पत्रों की कान्ति प्राप्त करने वाले शुभ देने वाले मरकत मणि रत्न होते हैं ॥७॥

तद्यत्र भोगीन्द्रभुजाभियुक्तं पपात पित्तं दितिजाधिपस्य ।
तस्याकरस्यातितरां स देशो दुःखोपलभ्यश्च गुणैश्च युक्तः ॥८
तस्मिन्मरकतस्थाने यत्किञ्चिदुपजायते ।
तत्सर्वं विषरोगाणां प्रशमाय प्रकीर्त्यते ॥९
सर्वमन्त्रौषधिगणैर्यन्न शक्यं चिकित्सितुम् ।
महाहिदष्ट्राप्रभवं विष तत् तेन शाम्यति ॥१०
अन्यदप्याकरे तत्र यद्दोषैरुपवर्जितम् ।
जायते तत्पवित्राणामुत्तम परिकीर्तितम् ॥११
अत्यन्तहरितवर्णं कोमलमर्चिर्विभेदजटिलञ्च ।
काञ्चनचूर्णस्यान्तः पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च ॥१२
युक्तं संस्थानगुणैः समरागं गौरवेण ।
सवितुः करसस्पर्शाच्छुरयति सर्वाश्रमं दीप्तया ॥१३
हित्वा च हरितभावं यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्तिः ।
अचिरप्रभाप्रभाहतशाद्वलसमन्विता भाति ॥१४

वह जहाँ पर भोगीन्द्र भुजा से अभियुक्त दिति के पुत्रों के अधिप का पित्त गिरा था वह देश भाग उसके आकर का बहुत अधिक बड़ा स्थान है किन्तु यह देश गुणों से युक्त और बहुत दुःखों से उपलब्ध करने के योग्य होता है ॥८॥ उस मरकतों के आकर के स्थान में जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह सभी दुष्ट विष रोगों के प्रशमन के लिये कहा जाता है ॥९॥ अन्य समस्त औषधियाँ और मन्त्रों के समूह भी जिसे अच्छा नहीं कर सकते हैं वहाँ की

उत्पन्न वस्तुऐं महान् विषैले सर्प की दाढ से उत्पन्न विष को प्रशमित कर दिया करती है ॥१०॥ उस आकर मे अन्य जो कुछ भी दोषो से उप वर्जित उत्पन्न होता है वह सम्पूर्ण पवित्रो मे भी परम पवित्र होता है—ऐसा कीर्त्तित किया गया है ॥११॥ अत्यन्त हरे वर्ण वाला—कोमल—अर्चियो के विभेद से जटिल अर्थात् जिसमे बहुत अर्चियाँ फूटी पडती हो। जो मध्य मे काञ्चन चूर्ण से पूर्ण दिखलाई देता है। संस्थान के गुणो से युक्त और गौरव से समान राग वाला तथा जो सूर्य की किरणों के संस्पर्श होने से दीप्ति के द्वारा सम्पूर्ण आश्रम को छुरित कर देता है—जो हरित भाव का त्याग कर अन्दर मे छिपी हुई दीप्ति को प्रकट करता है और अचिर प्रभा से प्रभाहत शाद्वल (कोमल एवं हरी घास) से समन्वित भासित होता है वह मरकत रत्न होता है ॥१२ से१४॥

यच्च मनसः प्रसाद विदधाति निरीक्षितमतिमात्रम् ।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदा मनोवृत्तिः ॥१५
वर्णस्यातिबहुलत्वाद्यस्यान्तः स्वच्छकिरणपरिधानम् ।
सान्द्रस्निग्धविशुद्ध कोमलवर्हिप्रभादिसमकान्ति ॥१६
वर्णोज्ज्वलया कान्त्या मान्द्राकारो विभासया भाति ।
तदपि न गुणवत् सञ्ज्ञामाप्नोति यादृशी पूर्वम् ॥१७
धवलकठोरमलिन रूक्षं पाषाणकर्करोपेतम् ।
दिग्धञ्च शिलाजतुना मरकतमेवंविधं विगुणम् ॥१८
यत्सन्निधरोपितं रत्नमन्य मरकताद्भवेत् ।
श्रेयस्कामैर्न तद्धार्यं क्रेतव्य वा कथञ्चन ॥१९
भल्लातकीपुत्रिका च तद्वर्णसमयोगतः ।
मणेर्मरकतस्यैते लक्षणीया विजातयः ॥२०
क्षौमेण वाससा मृष्टा दीप्ति त्यजति पुत्रिका ।
लाघवेनैव काचस्य शक्या कर्त्तुं विभावना ॥२१

— जो देखने भर से ही अत्यधिक मन मे अन्दर प्रसन्नता उत्पन्न करता है वह मरकत मणि महान् गुणों वाला होता है—ऐसा रत्न शास्त्र के विद्वानो के मन का विचार है ॥१५॥ वर्ण के अत्यधिक होने से जिसका अन्तर्भाग स्वच्छ

किरणों का परिधान हो जाता है और जो सान्द्र–स्निग्ध और विशुद्ध एवं कोमल बर्हि तथा प्रभादि से समान कान्ति वाला है—जो उज्ज्वल वर्ण वाली कान्ति से सान्द्र आकार वाला है और विशेष दीप्ति से शोभा देता है वह मरकत भी गुण वाला होने की संज्ञा को प्राप्त नहीं किया करता है जैसा कि पहिले बतलाया हुआ मरकत उत्तम होता है ॥१६।१७॥ शबल(चित्र-विचित्र वर्ण वाला) कठोर–मलिन–रूक्ष और पाषाण कर्कर से युक्त तथा शिलाजीत से दिग्ध जो मरकत होता है वह विगुण हुआ करता है ॥१८॥ जो सन्धि से दोषित मरकत से अन्य रत्न होता है उसे श्रेष्ठ चाहने वाले लोगों को धारण नहीं करना चाहिए और ऐसे रत्न को कभी खरीदना भी नहीं चाहिए ॥१६॥ भल्लातकी पुत्रिका और उनके वर्ण के समयोग से मरकत मणि के ये विजातीय लक्षण जान लेने चाहिए ॥२०॥ जो पुत्रिका है वह यदि क्षौम वस्त्र से मृष्ट की जावे तो अपनी दीप्ति को त्याग देता है। काँच के लाघव से ही उसकी विभावना की जा सकती है ॥२१॥

कस्यचिदनेकरूपैर्मरकतमनुगच्छतोऽपि गुणवर्णैः ।
भल्लातकस्यानिलैर्गैपम्यमुपैति वर्णस्य ॥२२
वज्राणि मुक्ताः सन्त्यन्ये ये च केचिद्द्विजातय. ।
तेषां नाप्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ॥२३
ऋजुत्वाच्चैव केषाञ्चित् कयाञ्चिदुपजायते ।
तिर्यगालोच्यमानानां सद्यश्चैव प्रणश्यति ॥२४
स्नानाचमनजप्येषु रक्षामन्त्रक्रियाविधौ ।
ददद्भिर्गोहिरण्यानि कुर्वद्भिः साधनानि च ॥२५
दैवपैत्रातिथेयेषु गुरुसपूजनेषु च ।
याप्यमानेषु विविधैर्दोपजातैर्विषोद्भवैः ॥२६
दोषैर्हीनं गुणैर्युक्तं काञ्चनप्रतियोजितम् ।
संग्रामे विचरद्भिश्च धार्य्यं मरकतं बुधैः ॥२७
तुलया पद्मरागस्य यन्मूल्यमुपजायते ।
लभतेऽप्यधिकं तस्माद्गुणैर्मरकतं गुनम् ॥२८

तथा च पद्मरागाणां दोषैर्मूल्य प्रहीयते ।
ततोऽप्यापधिका हानिर्दोषैर्मरकते भवेत् ॥२९

मरकत मणि का अनुकरण करने वाले किसी के अनेक रूपों वाले भल्लातक के अनिल गुण वर्णों से वर्ण की विषमता को प्राप्त होते हैं ॥२२॥ जो वज्र (हीरे) और मुक्ता (मोती) कोई विजातीय होते हैं अपति वह उनकी दीप्ति ऊर्ध्वगामिनी हुमा करती है ॥ २३ ॥ कुछ ऐसे होते हैं कि उन्हें सीधा रक्खा जावे तो किसी तरह से उनकी दीप्ति उत्पन्न होती है और यदि तिरछा करके देखे जावें तो वह तुरन्त ही नष्ट हो जाया करती है ॥ २४ ॥ स्नान—आचमन—जाप—रक्षा मन्त्र की क्रिया विधि में गौ और सुवर्ण का दान करने वाली तथा भावनों को करने वाले के द्वारा देव—पित्र—प्रातिथेय—गुरुमपूजन एवं विषोद्भव अनेक दोषों से बाध्यमान होने से समस्त दोषों से रहित—गुणों से समन्वित तथा सुवर्णालङ्कार में प्रति योजित मरकत मणि को संग्राम में विचरण करने वाले बुधों के द्वारा धारण करना चाहिए ॥२५॥२६॥२७॥ तुला-से पद्म राग मणि का जो मूल्य होता है उससे अधिक मूल्य गुणों से युक्त मरकत मणिका होता है ॥२८॥ पद्मराग मणियों का मूल्य दोषों के होने से कम हो जाया करता है किन्तु यदि मरकत मणि में दोष हो तो केवल मूल्य की ही कमी नहीं होती बल्कि उससे भी कहीं अधिक हानि हो जाया करती है ॥२९॥

४१—इन्द्रनील परीक्षा

तत्रैव सिंहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबाललवलीकुसुमप्रवाले ।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्त प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति
नेत्रयुग्मम् ॥१॥

तत्प्रत्ययादुभयशोभनवीचिभासा विस्तारिणी जलनिधेरुपकच्छभूमि. ।
प्रोद्भिन्नकेतकवनप्रतिबद्धलेखा सान्द्रेन्द्रनीलमणिरत्नवती विभाति ॥२

तत्रासिताब्जहलभृद्घनसमानि भृङ्गाङ्गदर्पगुणाङ्गहरस्यकण्ठकषायपुष्पैः ।
शुभ्रेतरैश्च कुसुमैर्गिरिकर्णिकायास्तस्माद्भवन्ति मणयः सदृशा-
वभासाः ॥३॥

अन्ये प्रसन्नपयसः पयसा निधातुरम्बुत्विषः शिखिगणप्रतिमास्तथान्ये ।
नीलीरसप्रभवबुद्बुदभाश्च केचित्केचित्तथा समदकोकिलकण्ठभासः ॥४
एवप्रकारा विस्पष्टवर्णशोभावभासिनः ।
जायन्ते मणयस्तस्मिन्निन्द्रनीला महागुणा ॥५
मृत्पाषाणशिलारन्ध्रकर्कराभाससयुताः ।
अभ्रिकापटलच्छायावर्णदोषैश्च दूषिताः ॥६
तत एव हि जायन्ते मणयस्तत्र भूरय ।
शास्त्रसम्बोधितधियस्तान्प्रशसन्ति सूरय ॥७
धार्य्यमाणस्य ये दृष्टा. पद्मरागमरोगुंणा. ।
धारणादिन्द्रनीलस्य तानेवाप्नोति मानव ॥८

सूतजी ने कहा—वहाँ पर ही सिंहल देश की वधू के कर–पल्लव द्वारा व्यालून जो बाल लवली कुसुम का प्रवाल जिस देश में है उस देश में दितिज (महासुर) के अत्यन्त सुन्दर विकसित कमल के समान द्युति वाले दोनो नेत्रो का जोड़ा गिरा था ॥१॥ उसके प्रत्यय से दोनो शोभा युक्त वीथियो की भा (दीप्ति) वाली—विस्तार से युक्त जलनिधि की उपकण्ठ भूमि जोकि प्रोद्भिन्न (विकसित) केतक दल से प्रतिबद्ध लेखा वाली थी और सान्द्र इन्द्र नील मणि रत्नो से समन्वित शोभित होती है ॥ २ ॥ वहाँ पर असित कमल और बहल भृङ्गो के समान तथा भृङ्ग–शार्ङ्गी युधाङ्क–हरकण्ठ (शिव की गरदन)–कषाय पुष्प—शुभ्रेतर गिरि कणिका के कुसुमो के सदृश भासित मणियाँ उस देश मे समुत्पन्न होती हैं ॥ ३ ॥ अन्य पयोनिधि के प्रसन्न पय के समान हैं—कुछ अम्बु के तुल्य कान्ति वाली है तथा दूसरी मणियाँ मयूरों के समूह के समान प्रतिमा वाली होती हैं । कुछ नीली रस से समुत्पन्न बुद्बुदो के तुल्य भा वाली है और कुछ मद से युक्त कोकिल के कण्ठ की दीप्ति के समान दीप्ति वाली होती हैं ।४॥ उन मणियो मे एक ऐसे प्रकार वाली मणियाँ होती हैं जो विशेष रूप से स्पष्ट वर्ण तथा शोभा से अवभासित हुआ करती हैं। उनमें इन्द्र नील मणियाँ महान् गुणो से युक्त होती हैं ॥५॥ ये मणियाँ मृत्तिका—पाषाण—शिला—रन्ध्र–कर्करा भास से युक्त और अभ्रिका पटल की छाया और वर्ण

दोषों से दूषित होती हैं ॥६॥ वहाँ पर तभी से बहुत सी मणियाँ उत्पन्न होती हैं। शास्त्रों के द्वारा भली भाँति बाधित बुद्धि वाले विद्वान् पुरुष उनकी प्रशंसा किया करते हैं ॥७॥ पद्मराग मणि के धारण करने पर जो गुण देखे गये हैं उन्हीं गुणों को इन्द्रनील मणि के धारण करने से मानव प्राप्त किया करता है ॥ ८ ॥

यथा च पद्मरागाणां जातकत्रितयं भवेत् ।
इन्द्रनीलेष्वपि तथा द्रष्टव्यमविशेषतः ॥९
परीक्षा प्रत्ययैर्यैश्च पद्मरागः परीक्ष्यते ।
तत्रैव प्रत्यया दृष्टा इन्द्रनीलमणेरपि ॥१०
यावन्तं चक्रमेदग्निं पद्मरागोपयोगतः ।
इन्द्रनीलमणिस्तमाक्रमेत सुमहत्तरम् ॥११
तथापि न परीक्षार्थं गुणानामभिवृद्धये ।
मणिरग्नौ समाधेयः कथञ्चिदपि कश्चन ॥१२
अग्निमात्रापरिज्ञाने दाहदोषैश्च दूषितः ।
सोऽनर्थाय भवेद्भर्त्तुः कर्त्तुः कारयितुस्तथा ॥१३

जिस तरह से पद्मरागों के तीन जातक होते हैं उसी भाँति इन्द्र नीलों में भी बिना किसी विशेषता के देखने योग्य होते हैं ॥ ९ ॥ प्रत्ययों से परीक्षा पद्मराग की होती है और जिनके द्वारा वह परीक्षित होता है वहीं इन्द्र नील मणियों में भी वेही प्रत्यय देखे गये हैं ॥१०॥ पद्मराग के उपयोग से जितना अग्नि चक्रामित होता है इन्द्र नील मणि उससे सुमहत्तर क्रमित किया करता है ॥११॥ तो भी जाँच के लिए और गुणों की अभिवृद्धि के लिए कोई भी किसी भी प्रकार से मणि को अग्नि में समाहित न करे ॥१२॥ अग्नि मात्रा के परिज्ञान में दाह के दोषों से दूषित वह मणि धारण करने वाले स्वामी को, करने वाले को और कराने वाले को अनर्थ के लिए ही होती है अर्थात् अनर्थ वाली हो जाती है ॥१३॥

काचोत्पलकरवीरसस्फटिकाद्या इह बुधैः सर्वदूर्याः ।
कथिता विजातय इमे सदृशा मणिनेन्द्रनीलेन ॥१४

गुरुभावकठिनभावावेतेषां नित्यमेव विज्ञेयौ ।
काचाद्यथावदुत्तरविवर्द्धमानौ विशेषेण ॥१५
इन्द्रनीलो यथा कथञ्चिद् बिभर्त्यौताम्रवर्णताम् ।
रक्षणीयौ तथा ताम्रौ करवीरोत्पलावुभौ ॥१६
यस्य मध्यगता भाति नीलस्येन्द्रायुधप्रभा ।
तमिन्द्रनीलमित्याहुर्महार्हं भुवि दुर्लभम् ॥१७
यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरे शतगुणे स्थिते ।
नीलता तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते ॥१८
यत्पद्मरागस्य महागुणस्य मूल्यं भवेन्माषसमन्वितस्य ।
तदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य वर्णस्य सख्याकुलितस्य मूल्यम् ॥१९

काचो उत्पल–करवीर–स्फटिक आदि तथा वैदूर्य बुधों के द्वारा लोक में ये इन्द्र नील मणि के सदृश विजातीय कहे गये हैं ॥१४॥ इनका गुरुभाव और कठिन भाव नित्य ही जान लेने योग्य हैं काच से यथावत् विशेष रूप से उत्तर विवर्द्धमान होते हैं ॥ १५ ॥ जैसे इन्द्रनील थोड़ा सा ताम्र वर्णता का धारण करता है उसी भाँति करवीरोत्पल दोनों ताम्रों की रक्षा करनी चाहिए ॥१६॥ जिसके मध्य में रहने वाली नील की इन्द्रायुध प्रभा आभा देती है उस इन्द्रनील को बहुत अधिक मूल्य वाला और लोक में दुर्लभ कहा गया है ॥ १७ ॥ जिसके वर्ण की अधिकता होने से सौगुने क्षीर में समास्थित होकर उस समस्त क्षीर को नीलता प्रदान कर देता है वह महानील कहा जाता है ॥ १८ ॥ जो माष समन्वित पद्मराग का जिसमें महान् गुण हो, मूल्य होता है वह महान् गुण से युक्त वर्ण की संख्या से आकुलित इन्द्रनील का मूल्य होता है ॥१९॥

४२—वैदूर्य परीक्षा

वैदूर्यगुणरागाणां कर्त्तनभीष्मवयो ।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज ॥१
कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्निर्ह्लादकल्पाद्दितिजस्य नादात् ।
वैदूर्यमुत्पन्नमनेकवर्णं शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम् ॥२

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्गरोधस. ।
कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरो भवेत् ॥३
तस्य नादसमुत्थत्वादाकर सुमहागुण ।
अभूदुत्तरितो लोके लोकत्रयविभूषण· ॥४
तस्यैव दानवपतेर्निनदानुरूपा प्रावृट्पयोदवरदर्शितचारुरूपा: ।
वैदूर्यरत्नमणयो विविधावभासास्तस्मात्स्फुलिङ्गनिवहा इव सबभूवु ५

पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ ।
सर्वास्तान्वर्णशोभाभिर्वैदूर्यमनुगच्छति ।।६
तेषा प्रधान शिखिकण्ठनील यद्वा भवेद् वेणुदलप्रकाशम् ।
चाषाग्रपक्षप्रतिमश्रियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भि ॥७

सूतजी ने कहा—हे द्विज ! वैदूर्य—पुष्पराग—कर्केतन और भीष्मक की परीक्षा ब्रह्माजी के द्वारा प्रोक्त है और उसे फिर व्यास महर्षि ने कहा है ॥१॥ दितिज (महासुर) के नाद से कल्प के अन्त तक के समय में क्षुभित जो अम्बुराशि (समुद्र) उसके निर्ह्लाद कल्प से अनेक वर्णों वाला वैदूर्य रत्न जोकि शोभा—अभिरामता—द्युति और वर्ण का बीज है समुत्पन्न हुआ था ।।२।। उत्तुङ्ग रोधश वाले विदूर गिरि के निकट ही मे काम भूतिक सीमा के पीछे उसका आकर होता है ॥३॥ उसके नाद से समुत्थ होने के कारण सुमहान् गुणो वाला लोक मे उत्तरित और तीनों लोको का भूषण आकर हुआ था ।।४।। उस दानवो के स्वामी के नाद के अनुरूप वर्षा के समय मे मेघो के श्रेष्ठ दर्शित सुन्दर रूप वाले अनेक प्रकार की दीप्ति से युक्त वैदूर्य रत्न मणियाँ उससे स्फुलिङ्गो के समूहो की भाँति उत्पन्न हुए थे ॥५॥ पद्मराग का उपादान करके भूमण्डल मे जो मणियो के वर्ण विद्यमान हैं उन सबको वर्णों की शोभाओ से वैदूर्य अनुगमन किया करता है ॥६॥ उन वर्णों में शिखि (मयूर) के कण्ठ के समान नील वर्ण प्रधान है । अथवा वेणु के दल के समान प्रकाश वाला प्रधान होता है । जो चाषाग्र के पक्षो की प्रतिमा की श्री के आश्रय वाले हैं उन्हे मणियो के शास्त्र के ज्ञाताओं ने प्रशस्त नही बताया है ॥७॥

गुणवान्वैदूर्यमणिर्योजयति स्वामिनं वरभाग्यैः ।
दोषैर्युक्तो दोषैस्तस्माद्यत्नात्परीक्षेत ॥८
गिरिकाचशिशुपालौ काचस्फटिकाश्च धूम्रनिर्भिन्नाः ।
वैदूर्यमणेरेते विजातयः सन्निभाः सन्ति ॥९
लिख्याभावात्काचं लघुभावाच्छैशुपालकं विद्यात् ।
गिरिकाचमदीप्तित्वात्स्फटिकं वर्णोज्ज्वलत्वेन ॥१०
यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य सुवर्णसंख्याकलितस्य मूल्यम् ।
तदेव वैदूर्यमणेः प्रदिष्टं पलद्वयोन्मापितगौरवस्य ॥११
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग्विजातयः सन्ति समानवर्णाः ।
तथापि नामाकरणानुमेयभेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ॥१२

जो गुणों से सम्पन्न वैदूर्य मणि होता है वह अपने स्वामी को श्रेष्ठ भाग्यों से योजित किया करता है । जो दोषों से युक्त होता है वह अनेक दोषों से स्वामी को दूषित कर देता है । अतएव यत्न पूर्वक परीक्षा अवश्य करनी चाहिए ॥८॥ गिरि काच—शिशुपाल—काच स्फटिक और धूम्र निर्भिन्न ये इतने वैदूर्य मणि के सदृश विजातीय रत्न हुआ करते हैं ॥९॥ लिख्य के अभाव रहने से काच का तथा लघुभाव होने से शैशुपालक का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । दीप्ति रहित होने से गिरि काचको और वर्ण की उज्ज्वलता होने से स्फटिक को पहिचान लेना चाहिए ॥१०॥ जो महान् गुणों से युक्त सुवर्ण सख्याकलित का मूल्य होता है वही पलद्वय से उन्मापित गौरव वाले वैदूर्य मणि का मूल बताया गया है ॥११॥ जात्य मणि के सभी समान वर्ण वाले जैसे विजातीय रत्न होते हैं तो भी नामाकरण से अनुमान करने के योग्य भेदों का प्रकार बहुत अच्छा बताया गया है ॥१२॥

सुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण ।
स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्वं विजातलिङ्गं खलु सार्वजन्यम् ॥१३
कुशलाकुशले प्रपूर्यमाणा प्रनिबद्धा प्रतिसत्क्रियाप्रयोगे ।
गुणदोषसमुद्भवं लभन्ते मणयोऽर्थान्तरमूल्यमेव भिन्नाः ॥१४

क्रमशः समतीतवर्त्तमाना: प्रतिबद्धा मणिबन्धकेन यत्नात् ।
यदि नाम भवन्ति दोषहीना मणयः षड्गुणमाप्नुवन्ति मूल्यम् ॥१५
आकरान्समतीतानामुदधेस्तीरसन्निधौ ।
मूल्यमेतन्मणीनान्तु न सर्वत्र महीतले ॥१६
सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्तः षोडशमाषकः ।
तस्य सप्तमो भागः संज्ञारूपं करिष्यति ॥१७
शाणश्चतुर्माषमानो माषकः पञ्चकृष्णलः ।
पलस्य दशमो भागो धरणः परिकीर्तितः ॥१८
इति मणिविधिः प्रोक्तो रत्नानां मूल्यनिश्चये ॥१९

विद्वान् पुरुष के द्वारा गुरु पूर्वक देखने के योग्य यह प्रभेद सदा ही विचार करने के योग्य होता है–स्नेह प्रभेद—लघुता–मृदुता और सर्व साधारण में होने वाला विजाति चिह्न ॥१३॥ कुशल और मकुशलों के द्वारा द्वारा प्रदृश्य से पूर्वमाण तथा प्रति मक्रिया के प्रयोगों से प्रतिबद्ध मणियाँ गुणों और दोषों के समुद्भव को प्राप्त किया करती हैं और मर्यान्तर मूल्य ही से भिन्न होती हैं ॥ १४ ॥ क्रम से समतीत वर्तमान वाली और यत्न पूर्वक मणि बन्धक के द्वारा प्रतिबद्ध मणियाँ यदि दोषों से हीन हो जाती हैं तो फिर वे छःगुनी कीमत को प्राप्त होती हैं ॥१५॥ सागर के तट के समीप में आकर (खान) से समतीत (निकली हुई) मणियों का मूल्य भूमण्डल में सर्वत्र निश्चय ही नहीं हुआ करता है ॥१६॥ षोडश माषक सुवर्ण मनु के द्वारा कहा गया है उसका सातवाँ भाग संज्ञा के स्वरूप को करेगा ॥१७॥ चार माष मान शाण और पाँच माषक कृष्णल तथा पलका दशम भाग धरण परिकीर्तित किया गया है ॥१८॥ यही रत्नों के मूल्य के निश्चय करने में मणियों की विधि बताई गई है ॥१९॥

४३—अन्य रत्न परीक्षा

पतितायां हिमाद्रौ तु त्वचस्तस्य सुरद्विप ।
प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणाः ॥१

आपीतपाण्डुरुचिरः पाषाण पद्मरागसञ्ज्ञकः ।
कौरुण्डकनामा स्यात्स एव यदि लोहितस्तु पीतः ॥२
आलोहितस्तु पीतः स्वच्छः कापायकः स एवोक्तः ।
आनीलशुक्लवर्णः स्निग्धः सोमानकः सगुणः ॥३
अत्यन्तलोहितो यः स एव खलु पद्मरागसञ्ज्ञः स्यात् ।
अपि चेन्द्रनीलसञ्ज्ञ. स एव कथितः सुनीलः सन् ॥४
मूल्य वैदूर्य्यमणेरिव गदित ह्यस्य रत्नशास्त्रविदा ।
धारणफलञ्च तद्वत्किन्तु स्त्रीणां सुतप्रदो भवति ॥५

अब अन्य रत्नों की परीक्षा के विषय मे बतलाया जाता है । सूतजी बोले—उस महासुर की त्वचा जब हिमाद्रि से गिरि तो उससे महान् गुणों वाले पुष्पराग रत्नो का प्रादुर्भाव होता है ॥१॥ आपीत पाण्डु और सुन्दर वर्ण वाला पद्मराग सञ्ज्ञा वाला पाषाण कौरुण्डक नाम वाला होता है । वह ही यदि लोहित एवं पीत होता है । आलोहित पीत और स्वच्छ वह ही कापायक कहा गया है आनील शुक्ल वर्ण वाला गुणो से युक्त एव स्निग्ध सोमानक कहा जाता है ॥२।३॥ जो बहुत ही अधिक लोहित होता है तो वही पद्मराग की संज्ञा वाला होता है । और इन्द्रनील की सञ्ज्ञा वाला हो तो वह ही सुनील ऐसा कहा गया है । रत्न शास्त्र के विद्वानो के द्वारा इसका मूल्य वैदूर्य मणि का जैसा ही कहा गया है तथा इसके धारण करने का फल भी उसी के समान होता है किन्तु स्त्रियों को यह सुत के प्रदान करने वाला होता है ॥४।५॥

वायुर्नखान्दैत्यपतेर्गृहीत्वा चिक्षेप सत्पद्मवनेषु हृष्टः ।
ततः प्रसूत पवनोपपन्न कर्केतन पूज्यतमं पृथिव्याम् ॥६
वर्णेन तद्रुधिरसोममधुप्रकाशमाताम्रपीतदहनोज्ज्वलित विभाति ।
नील पुनः खलु सित परुष विभिन्नं व्याध्यादिदोषकरणे न च तद्विभाति ॥७॥

स्निग्धा विशुद्धाः समरागिणश्च आपीतवर्णा गुरवो विचित्राः ।
त्रासव्रणव्यालविवर्जिताश्च कर्केतनास्ते परम पवित्राः ॥८

पात्रेण काञ्चनमयेन तु वेष्टयित्वा तप्तं यदा हुतवहैर्भवति प्रकाशम् ।
रोगप्रणाशनकरं कलिनाशनं तदायुष्करं कुलकरञ्च सुखप्रदञ्च ॥९
एवंविधं बहुगुणं मणिमावहन्ति ककेंतनं शुभमलङ्कृतये नरा ये ।
ते पूजिता बहुधना बहुबान्धवाश्च नित्योज्ज्वला. प्रमुदिता अपि ते भवन्ति ॥१०॥
एकेऽपनह्य विकृताकुलनीलभासः प्रम्लानरागलुलिताः कलुषा विरूपा ।
तेजोऽतिदीप्तिकुलपुष्टिविहीनवर्णा कर्केतनस्य सदृशं वपुरुद्वहन्ति ॥११
कर्केतनं यदि परीक्षितवर्णरूपं प्रत्यग्रभास्वरदिवाकरसुप्रकाशम् ।
तस्योत्तमस्य मणिशास्त्रविदा महिम्ना तुल्यन्तु मूल्यमुदितं तुलितस्य कार्य्यम् ॥१२॥

सूतजी ने कहा—कि उस दैत्यों के स्वामी के नखों को वायु ने ग्रहण कर प्रसन्नता से भरे हुए ने उन्हें पद्मों के वन में डाल दिया था और फिर वहीं पर पवनोपपन्न वह इस मही मण्डल में पूज्यतम कर्केतन समुत्पन्न हुआ था ॥६॥ वह कर्केतन रत्न वर्ण से रुधिर—सोम—और मधु के समान द्युति वाला है तथा थोड़ा सा ताम्र एवं पीत अग्नि के सदृश जाज्वल्यमान प्रतीत होता है। वह फिर नील—सित और परुष (कठोर) विभिन्न प्रकार वाला होता है तथा व्याधि आदि दोषों के करने मे वह कोई प्रभाव नहीं रखता है ॥७॥ स्निग्ध—विशुद्ध—समराग वाले—आपीत वर्ण वाले—गुरुत्व युक्त तथा विचित्र स्वरूप वाले हैं और त्रास—व्रण और व्याल से रहित कर्केतन परम पवित्र होते हैं ॥८॥ काञ्चनमय पात्र के द्वारा वेष्टन करके जब तप्त किया जाता है तो वह हुतवह के द्वारा प्रकाश देता है। वह रोगों के नाश करने वाला—कलिहर नाशक—आयु की वृद्धि करने वाला—कुल कर और सुख प्रदान करने वाला होता है ॥९॥ इस तरह से जो मनुष्य बहुत गुणों वाले कर्केतन को शुभ अलङ्करण के लिये धारण किया करते हैं वे परम पूजित—अधिक धन से युक्त—बहुत बान्धवों वाले—नित्य उज्ज्वल और प्रमुदित भी हुआ करते हैं ॥१०॥ एक ऐसे भी होते हैं जो विकृत आकुल नील दीप्ति वाले—प्रम्लान राग से लुलित—कलुष—विरूप तथा तेज, दीप्ति, कुल और पुष्टि से विहीन वर्ण वाले हैं तथा बिल्कुल कर्केतन के समान

ही वपु को धारण किया करते हैं ।।११।। यदि कर्केतन परीक्षित वर्ण एवं रूप वाला है तो वह प्रत्यग्र–भास्वर दिवाकर के समान प्रकाश वाला होता है। उस उत्तम कर्केतन का मणि शास्त्र के विद्वान् महिमा से तुलित का मूल्य तुल्य कहते हैं ।।१२।।

हिमवत्युत्तरे देशे वीर्य्यं पतितं सुरद्विपस्तस्य ।
सम्प्राप्तमुत्तमानामाकरतां भीष्मरत्नानाम् ।।१३
शुक्ला. शङ्खाब्जनिभाः स्योनाकसन्निभाः प्रभावन्तः ।
प्रभवन्ति ततस्तरुणा वज्रनिभा भीष्मपाषाणाः ।।१४
हेमादिप्रतिबद्धाः शुद्धमपि शुद्धया विधत्ते यः ।
भीष्ममणिं ग्रीवादिषु सम्पद सर्वदा लभते ।।१५
निरीक्ष्य पलायन्ते ये तमरण्यनिवासिन समीपेऽपि ।
द्वीपिवृकशरभकुञ्जरसिंहव्याघ्रादयो हिंस्रा ।।१६
तस्योत्कलभक्तिनोर्भयं नचास्तीशमुपहसन्ति ।
भीष्ममणिगुंणयुक्तो सम्यक्प्राप्ताङ्गुलीयकलत्रत्वम् ।।१७
पितृतर्पणापि पितृणा तृप्तिर्वहुवार्षिकी भवति ।
शाम्यन्त्युद्भूतान्यपि सर्पाण्डजाखुवृश्चिक विषाणि ।
सलिलाग्निवैरितस्करभयानि भीमानि नश्यन्ति ।।१८
शैवलवलाहकाभ परुष पीतप्रभ प्रभाहीनम् ।
मलिनद्युति च विवर्णं दूरात्परिवर्जयेत्प्राज्ञः ।।१९
मूल्यं प्रकल्प्यमेषां विबुधवरैर्देशकालविज्ञानात् ।
दूरे भूतानां बहु किञ्चिन्निकटप्रसूतानाम् ।।२०

सूतजी ने कहा—हिमवान् के उत्तर देश मे उस महासुर का वीर्य पतित हुआ था और वह वीर्य उत्तम भीष्म रत्नो की आकरता को प्राप्त हुआ था ।।१३।। वहाँ पर भीष्म पाषाण शुक्ल—शङ्ख और कमल के तुल्य–स्योनाक के सदृश प्रभा वाले—वज्र के समान और तरुण उत्पन्न होते हैं ।। १४ ।। सुवर्ण आदि से प्रतिबद्ध शुद्ध विधि से शुद्ध किया हुआ भीष्ममणि को जो ग्री वाआदि अङ्गो मे धारण करता है वह सर्वदा सम्पदा को प्राप्त किया करता है ।।१५।।

इस रत्न के धारण करने वाले पुरुष को समीप में भी अरण्य के निवास करने वाले हाथी–भेड़िया—शरभ—कुञ्जर–सिंह और व्याघ्र आदि हिंसक जीव भी देखते ही दूर भाग जाया करते है ॥१६॥ उत्कलभकृति उसको भय नही होता है। स्वामी का उपहास करते है। गुणो से युक्त भीष्म मणि को जिसने भली भाँति अगूठी मे कलत्रत्व को प्राप्त कर लिया है उस मनुष्य के करों से पितृगण को किया हुआ तर्पण भी बहुत वर्षों तक तृप्ति दिया करता है। सर्पाण्डज—आखु और वृश्चिक के समुत्पन्न विष भी उपशान्त हो जाया करते है तथा बहुत भयानक जल–अग्नि–शत्रु—तस्कर के भय भी नष्ट हो जाते है॥ १७।१८ ॥ प्राज्ञ पुरुष को शैवल और वलाहक के समान आभा वाले–परुष (कठोर)—पीली प्रभा से युक्त–प्रभा से रहित—मलिन कान्ति वाला एवं वर्ण रहित रत्न मणि का त्याग दूर से ही कर देना चाहिए ॥१९॥ देश और काल के विज्ञान से निपुणवरों के द्वारा इन रत्न मणियों का मूल्य प्रकल्पित करना चाहिए। दूर मे होने वालो का बहुत और निकट मे प्रसूतो का कुछ होता है ॥२०॥

पुण्येषु पर्वतवरेषु च निम्नगासु स्थानान्तरेषु च तथोत्तरदेशगासु ।
संस्थापिताश्च नखरा भुजगैः प्रकाशं संपूज्य दानवपतिं प्रथिते प्रदेशे ॥२१
दाशार्णवागदवमेकलकालगादौ गुञ्जाञ्जनक्षौद्रमृणालवर्णाः ।
गन्धर्ववह्निकदलीसदृशावभासा एते प्रशस्ताः पुलकाः प्रसूताः ॥२२
शङ्खाब्जभृङ्गार्कविचित्रभङ्गा सूत्रैर्व्यपेताः परमाः पवित्राः ।
माङ्गल्ययुक्ता बहुभक्तिचित्रा वृद्धिप्रदास्ते पुलका भवन्ति ॥२३
काकश्वरासभश्रृगालवृकोग्ररूपैगृ ध्रैः समासरुधिरार्द्रमुखैरुपेताः ।
मृत्युप्रदाश्च विदुषा परिवर्जनीया मूल्यं पलस्य कथितञ्च शतानि पञ्च २४,
हुतभुग्रूपमादाय दानवस्य यथेप्सितम् ।
नर्मदायां निचिक्षेप किञ्चिद्वीनादिभूमिषु ॥२५
तत्रेन्द्रगोपकलितं शुकवक्त्रवर्णं संस्थानतः प्रकटपीनसमानमात्रम् ।
नानाप्रकारविहितं रुधिराख्यरत्नमुद्धृत्य तस्य खलु सर्वसमानमेव ॥२६
मध्येन्दुपाण्डरमतीव विशुद्धवर्णं तच्चेन्द्रनीलसदृशं पटलं तुले स्यात् ।
संश्वर्य्यभृत्यजननं कथितं तदेव पक्वञ्च तत्किल भवेत्सुरघग्रवर्णम् ॥२७

सूतजी कहते हैं—परम पुण्य श्रेष्ठ पर्वतो मे—स्थानान्तरो मे तथा उत्तर देश मे रहने वाली नदियो मे और पवित प्रदेश मे दानव-पति का भली भाँति पूजन करके भुजगो के द्वारा प्रकृष्ट मे नगरो को संस्थापित किया था ॥२१। दाशार्णवा मदवमेकल कालगादि मे गुञ्जा—अञ्जन—शहद और मृणाल के समान वर्ण वाले तथा गन्धर्व—अग्नि—कदली के सदृश अवभासित होने वाले ये प्रशस्त पुलक समुत्पन्न हुए थे ॥ २२ ॥ शङ्ख—पद्म—भृङ्ग और अर्क के तुल्य विचित्र भग वाले और सूत्रो से व्यपेत परम पवित्र होते हैं। माङ्गल्य से समन्वित—बहुत भक्तियो से चित्रित ये पुलक वृद्धि के प्रदान करने वाले होते हैं ॥२३॥ कौआ—कुत्ता—रासभ—शृगाल—वृक—से उग्र रूप वाले गिद्धो से जोकि मास एवं रुधिर से आर्द्र मुख हैं इनसे समुपेत रत्न मृत्यु प्रद होते हैं और विद्वान् पुरुष को उन्हे त्याग ही देना चाहिए। इनके एक पल का मूल्य पाँच सौ रुपये कहा गया है ॥ २४ ॥ सूतजी ने कहा—दानव का यथेप्सित हुतभुग् का रूप लेकर शुद्ध हीनादि भूमियो मे नर्मदा मे डाल दिया था ॥२५॥ वहाँ पर इन्द्र गोप के समान सुन्दर—शुक के मुख के सदृश वर्ण वाला—प्रकट पीन समान मात्र—अनेक प्रकार का विहित रुधिर राक्ष रत्न का उद्धरण कर उसका सब समान ही मध्यम मे इन्द्र के समान पाण्डर अत्यन्त विशुद्ध वर्ण वाला और इन्द्रनील के तुल्य-तुल मे पटल होता है। यह परम ऐश्वर्य एव भृत्य के जनन करने वाला है—ऐसा कहा गया है। यह ही जब पक्व होता है तो निश्चय ही मुरवत्त्व के तुल्य वर्ण वाला हो जाता है ॥२६।२७॥

कावेरविन्ध्ययवनचीननेपालभूमिषु ।
लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नत ॥२८
आकाशशुद्ध तैलाख्यमुत्पन्नं स्फटिक ततः ।
मृणालशङ्खधवल किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम् ॥२९
न तत्तुल्य हि रत्नस्य सर्वथा पापनाशनम् ।
संस्कृत शिल्पिना सतो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्तत ॥३०
आदाय शेषस्तस्यान्त्र यलस्य केरलादिषु ।
निक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः ॥३१

तत्र प्रधानं शशलोहिताभं गुञ्जाजवापुष्पनिभं प्रदिष्टम् ।
सुनीलकं देवकरोमकञ्च स्थानानि तेषु प्रभवं सुरागम् ।
अन्यत्र जातञ्च न तत्प्रधानं मूल्यं भवेच्छिल्पिविशेषयोगात् ॥३२
प्रसन्नं कोमलं स्निग्धं सुरागं विद्रुमं हि तत् ।
धनधान्यकरं लोके विषार्त्तिभयनाशनम् ॥
स्फटिकस्य विद्रुमस्य रत्नज्ञानाय शौनक ॥३३

सूतजी बोले—उस महा दानव का मेद लाङ्गली ने प्रयत्न पूर्वक कावेर विन्ध्य–यवन–चीन और नेपाल देश की भूमि मे बखेर दिया था ॥२८॥ वहाँ तैलाख्य आकाश शुद्ध स्फटिक समुत्पन्न हुआ था । यह मृणाल एवं शङ्ख के समान धवल होता है और कुछ अन्य वर्णों से भी युक्त होता है ॥२९॥ इसके समान सर्वथा पापो के नाश करने वाला अन्य रत्न नही है । शिल्पी के द्वारा तुरन्त ही संस्कार किये जाने वाला हो तो उस कुछ मूल्य भी प्राप्त किया जाता है ॥३०॥ सूतजी ने कहा—शेष ने उस बलवान् के अस्त्र को लेकर केरल आदि देशो मे क्षिप्त कर दिया था । वहाँ पर सुमहान् गुणो से समन्वित विद्रुम समुत्पन्न होते हैं ॥३१॥ उनमे प्रधान शश और लोहित की आभा वाला है तथा गुञ्जा—जवा के पुष्प के तुल्य वर्ण वाला भी बताया गया है । सुनीलक और देवक रोमक स्थान हैं उनमें सुन्दर राग वाले का प्रभव होता है । अन्य स्थानों मे जो पैदा होता है वह प्रधान नहीं है । इसका किसी शिल्पी के विशेष योग प्राप्त हो जाने से मूल्य हुआ करता है ॥३२॥ प्रसन्न–कोमल–स्निग्ध और सुन्दर रंग वाला वह विद्रुम होता है । यह लोक मे धन–धान्य करने वाला और विष–पीडा भय के नाश करने वाला होता है ॥३३॥

४४—तीर्थ माहात्म्य

सर्वतीर्थानि वक्ष्यामि गङ्गा तीर्थोत्तमोत्तमा ।
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ॥१
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
प्रयागं परमं तीर्थं मृतानां भुक्तिमुक्तिदम् ॥२

सेवनात्कृतपिण्डानां पापजित्कामदं नृणाम् ।
वाराणसी परं तीर्थं विश्वेशो यत्र केशवः ॥३
कुरुक्षेत्र परं तीर्थं दानाद्यैर्भुक्तिमुक्तिदम् ।
प्रभासं परमं तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च ॥४
द्वारका च पुरी रम्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिका ।
प्राची सरस्वती पुण्या सप्तसारस्वतं परम् ॥५
केदारं सर्वपापघ्नं शम्भलग्राम उत्तमम् ।
नारायणं महातीर्थं मुक्त्यै बदरिकाश्रमम् ॥६
श्वेतद्वीपं पुरी माया नैमिषं पुष्करं परम् ।
अयोध्या चार्य्यतीर्थन्तु चित्रकूटश्च गोमती ॥७

सूतजी ने कहा—अब हम समस्त तीर्थों को बतलाते हैं। गंगा उन समस्त तीर्थों मे उत्तम से भी उत्तम तीर्थ है। यह गंगा सर्वत्र ही सुलभ होती है केवल यह तीन स्थानो मे दुर्लभ हुआ करती है ॥१॥ वे तीन स्थान हैं—हरिद्वार—प्रयाग और गगा-सागर सगम। प्रयाग परम तीर्थ है जो मृत पुरुषो को मुक्ति एवं भुक्ति प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ वाराणसी भी परम तीर्थ है जहां विश्व के नाथ केशव विद्यमान रहते हैं। इसके सेवन करने से तथा यहाँ पिण्ड-दान करने से प्राणी पापों पर विजय प्राप्त कर लेना है और यह मानवो की अभीष्ट कामनाओं को देने वाला है ॥३॥ कुरुक्षेत्र भी एक परमोत्तम तीर्थ है। यहाँ दान आदि देने पर इनके द्वारा मनुष्य भुक्ति एवं मुक्ति दोनो की प्राप्ति किया करता है। प्रभास क्षेत्र अति श्रेष्ठ तीर्थ है। यहा पर भगवान् सोमनाथ विराजते है ॥ ४ ॥ द्वारकापुरी परम सुन्दर है जो भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाली है। प्राची सरस्वती पुण्या है और सप्त सारस्वत परम तीर्थ हैं ॥५॥ केदार तीर्थ समस्त प्रकार के पापों का हनन करने वाला है तथा शम्भल ग्राम अति उत्तम है। नारायण महान् तीर्थ हैं। मुक्ति के प्राप्त करने के लिए बदरिकाश्रम है ॥ ६ ॥ श्वेतद्वीप—मायापुरी—नैमिष और पुष्कर परम तीर्थ हैं। अयोध्या आर्य्यों का श्रेष्ठ तीर्थ है। चित्रकूट—गोमती तीर्थ हैं ॥७॥

वनायकं महातीर्थं रामगिर्य्याश्रमं परम् ।
काञ्चीपुरी तुङ्गभद्रा श्रीशैलं सेतुबन्धनम् ॥८
रामेश्वरं परं तीर्थं कार्त्तिकेयं तथोत्तमम् ।
भृगुतुङ्गं कामतीर्थं कामरं कटकं तथा ॥६
उज्जयिन्यां महाकालः कुब्जके श्रीधरो हरिः ।
कुब्जाम्रकं महातीर्थं कालसर्पिश्च कामदः ॥१०
महाकेशी च कावेरी चन्द्रभागा विपाशया ।
एकाम्रञ्च तथा तीर्थं ब्रह्मेशं देवकोटकम् ॥
मथुरा च पुरी रम्या शोणश्चैव महानदः ॥११
जम्बूसरो महातीर्थं तानि तीर्थानि विद्धि च ।
सूर्य्यः शिवो गणो देवी हरिर्यत्र च तिष्ठति ॥१२
एतेषु च तथान्येषु स्नानं दानं जपस्तपः ।
पूजा श्राद्धं पिण्डदानं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥१३
शालग्रामं सर्वदं स्यात् तीर्थं पशुपतेः परम् ।
गोकामुखञ्च वाराहं भाण्डीरं स्वामिसञ्ज्ञकम् ॥१४
मोहदण्डे महाविष्णुर्मन्दारे मधुसूदनः ।
कामरूपं महातीर्थं कामाख्या यत्र तिष्ठति ॥
पुण्ड्रवर्द्धनकं तीर्थं कार्त्तिकेयश्च यत्र च ॥१५

वैनायक महान् तीर्थ है । रामगिरि—आश्रम भी परम तीर्थ है । काञ्ची-पुरी—तुङ्गभद्रा—श्री शैल—सेतुबन्ध—रामेश्वर तथा कार्तिकेय ये सब बहुत बड़े तीर्थ हैं । भृगु तुङ्ग—कामतीर्थ—कामर—कटक ये सभी श्रेष्ठतम तीर्थ हैं ॥८॥ ॥६॥ उज्जयिनी पुरी विशाल तीर्थ है जहाँ पर भगवान् महाकालेश्वर विद्यमान हैं । कुब्जक तीर्थ में श्रीधर हरि विराजमान रहते हैं । कुब्जाम्र महान् तीर्थ है । काल सर्पि तीर्थ कामनाओं की पूर्ति करने वाला है ॥ १० ॥ महाकेशी-कावेरी—चन्द्रभागा—विपाशा—एकाम्र—ब्रह्मेश—देवकोटक ये सब महान् तीर्थ हैं । मथुरापुरी परम रम्य तथा उत्तम तीर्थ है । महानद शोण है ॥११॥ जम्बूसर भी महान् तीर्थ है । इन समस्त तीर्थों को भली-भाँति समझ लो यहाँ

पर सविता देव—शिव—गणेश—साक्षात् शक्ति देवी और भगवान् हरि सस्थित रहा करते हैं ॥ १२ ॥ इन उपर्युक्त तीर्थों मे तथा जो नहीं बताये गये हैं ऐसे अन्य तीर्थों मे किया हुआ स्नान—दान—जाप—तप—पूजा—श्राद्ध और पिण्ड-दान आदि सभी सत्कर्म अक्षय हो जाया करते है ॥१३॥ शालग्राम का अर्चन सभी शुद्ध प्रदान करने वाला है। पशुपति का परम तीर्थ है। गौ का मुख वाराह—भाण्डीर—स्वामी सज्ञा वाला है। माह दण्ड मे महा विष्णु हैं तथा मन्दार में मधुसूदन हैं। कामाख्या काम रूप एक महान् तीर्थ है जहाँ पर भगवती कामाख्या विराजमान रहती हैं। पुण्ड्र वर्द्धनक तीर्थ है जहाँ पर स्वामि कार्त्तिकेय विद्यमान हैं ॥१४।१५॥

विरजस्तु महातीर्थं तीर्थं श्रीपुरषोत्तमम् ।
महेन्द्रपर्वतस्तीर्थं कावेरी च नदी परा ॥१६
गोदावरी महातीर्थं पयोष्णी वरदा नदी ।
विन्ध्य पापहर तीर्थं नर्मदाभेद उत्तम. ॥१७
गोकर्णं परम तीर्थं तीर्थं माहिष्मती पुरी ।
कालञ्जर महातीर्थं शुक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥१८
कृते शौचे मुक्तिदश्च शार्ङ्गधारी तदन्तिके ।
विरज सर्वद तीर्थं स्वर्णाक्ष तीर्थमुत्तमम् ॥१९
नन्दितीर्थं मुक्तिदश्च कोटितीर्थफलप्रदम् ।
नासिक्यश्च महातीर्थं गोवर्द्धनमत परम् ॥२०
कृष्णा वेणी भीमरथा गण्डकी या त्विरावती ।
तीर्थं विन्दुसर पुण्य विष्णुपादोदक परम् ॥२१

विरज महान् तीर्थ है और श्री पुरुषोत्तम तीर्थ है। महेन्द्र पर्वत भी तीर्थ है तथा कावेरी परम नदी है। गोदावरी नदी भी महान् तीर्थ इसका है और पयोष्णी वर देने वाली नदी है। विन्ध्य पापो के हरण करने वाला तीर्थ है तथा नर्मदा भेद उत्तम है ॥१६।१७॥ गोकर्ण परमोत्तम तीर्थ है और माहिष्मती पुरी तीर्थ है। कालञ्जर महान् तीर्थ है तथा सर्वोत्तम शुक्रतीर्थ है ॥१८॥ ये सम्पूर्ण प्रकार के पापो से शुद्ध करके मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

उनके पास में ही शार्ङ्गधारी तीर्थ है। विरज नामधारी तीर्थ सभी कुछ देने वाला है। स्वर्णाक्ष अति उत्तम तीर्थ है ॥ १९ ॥ नन्दि तीर्थ मुक्तिदायक है और करोड़ो तीर्थो के फलो का देने वाला है। नासिक्य महातीर्थ है। इससे भी परतीर्थ गोवर्द्धन है। कृष्णा, वेणी, भीमरथा, गण्डकी और इरावती ये सभी तीर्थ हैं। बिन्दुसर परम पवित्र तीर्थ है तथा विष्णुपादोदक परम तीर्थ है ॥२०।२१॥

ब्रह्मध्यान पर तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रह ।
दमस्तीर्थं तु परम भावशुद्धिः सरस्तथा ॥२२
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ।
य स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमा गतिम् ॥२३
इद तीर्थमिद नेति ये नरा भेददर्शिन ।
तेषा विधीयते तीर्थगमन तत्फलञ्च यत् ॥
सर्व ब्रह्मेति योऽवैति नातीर्थं तस्य किञ्चन ॥२४
एतेषु स्नानदानानि श्राद्ध पिण्डमथाक्षयम् ।
सर्वा नद्य सर्वशैला तीर्थं देवादिसेवितम् ॥२५
श्रीरङ्गञ्च हरेस्तीर्थं तापी श्रेष्ठा महानदी ।
सप्तगोदावर तीर्थं तीर्थं कोणगिरि परम् ॥२६
महालक्ष्मीयन देवी प्रणीता परमा नदी ।
सह्याद्रौ देवदेवेश एकवीर सुरेश्वरी ॥२७
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते विन्ध्यके नीलपर्वते ।
स्नान कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे ॥२८
एतान्यन्यानि तीर्थानि स्नानाद्यं सर्वदानि हि ।
श्रुत्वाऽब्रवीद् हरेर्ब्रह्मा व्यास दक्षादिसयुतम् ॥२९
एतान्युक्त्वा च तीर्थानि पुनस्तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
गयाख्य प्राह सर्वेषामक्षय ब्रह्मलोकदम् ॥३०

ब्रह्मध्यान अर्थात् नितान्त एकान्त स्थल में एकाग्र मन से ब्रह्म का ध्यान करना सबसे उत्तम एव श्रेष्ठ तीर्थ है। अपनी समस्त इन्द्रियो पर पूर्ण निय

मरण कर लेना भी तीर्थ के समान है। इन्द्रियों का दमन करना परमतीर्थ है तथा अपनी भावनाओं की शुद्धि कर लेना सर के समान है ॥ २२ ॥ ज्ञानरूपी ह्रद मे और राग तथा द्वेष के मल का अपहरण करने वाले ध्यान रूपी जल में जो नित्य प्रति इस मानस तीर्थ मे स्नान करता है वह मनुष्य परमगति को प्राप्त हो जाता है ॥ २३ ॥ यह तो तीर्थ है और यह तीर्थ स्थान नहीं है जो मनुष्य इस प्रकार से भेद के देखने वाले हैं उनको ही तीर्थों के गमन करने का विधान है और उनको ही तीर्थों का फल भी प्राप्त होता है जोकि ऊपर मे बतलाया गया है। जो सभी को ब्रह्ममय हो मानता है उस की दृष्टि तथा बुद्धि मे अतीर्थ कुछ भी नहीं है ॥२४॥ इन तीर्थों में किये हुए स्नान—दान—श्राद्ध और पिण्ड सब अक्षय हो जाते हैं। समस्त नदियाँ और सम्पूर्ण शैल देवादि से सेवित हैं और तीर्थ स्वरूप है ॥२५॥ श्री रंग हरि का तीर्थ है। तापी महानदी श्रेष्ठ है। सप्त गोदावर तीर्थ है और कोणागिरि परम तीर्थ है ॥ २६ ॥ जहाँ पर महालक्ष्मी देवी है वहाँ पर परमा प्रणीता नदी है। सह्याद्रि मे देवदेवेश एक वीर है और पुरेश्वर है ॥२७॥ गङ्गाद्वार मे—कुशावर्त मे—विन्ध्यक मे और नील पर्वत मे तथा कनखल तीर्थ मे जो स्नान किया जाता है वह स्नान करने वाला इस संसार मे पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥ २८ ॥ सूतजी ने कहा—ये उपर्युक्त तीर्थ तथा अन्य तीर्थ जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, इनमे स्नानादि के द्वारा सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। यह वृत्तान्त श्री हरि भगवान् से श्रवण करके ब्रह्माजी दक्षादि से समुत व्यासजी से बोले—इन समस्त तीर्थों को कहकर फिर तीर्थों मे परम श्रेष्ठ गया नामक तीर्थ के विषय में कहा था जोकि सर्व अक्षय है और ब्रह्मलोक को प्रदान कराने वाला है ॥२९।३०॥

४५—गया माहात्म्य

सारात्सारतर व्यास गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ॥१
गयासुरोऽभवत् पूर्वं वीर्य्यवान् परमः स च ।
तपस्तप्यन्महाघोर सर्वभूतोपतापनम् ॥२

तत्पस्तापिता देवास्तद्वधार्थं हरिं गताः ।
शरणं हरिरूचे तान्भवितव्य शिवात्मभि. ॥३
पातितेऽस्य महादेहे तथेत्यूचुः सुरा हरिम् ।
कदाचिच्छिवपूजार्थं क्षीराब्धेः कमलानि च ॥४
आनीय कीटके देशे शयनं चाकरोब्दली ।
विष्णुमायाविमूढोऽसौ गदया विष्णुना हतः ॥५
अतो गदाधरो विष्णुर्गयायां मुक्तिदः स्थित. ।
तस्य देहो लिङ्गरूपी स्थितः शुद्धे पितामहः ॥६
जनार्दनश्च कालेशस्तथाऽन्य. प्रपितामहः ।
विष्णुराहाथ मर्यादां पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥७

ब्रह्मा जी ने कहा—हे व्यास देव ! सारों में भी परम सार स्वरूप और अत्युत्तम गया तीर्थ का माहात्म्य है । हम उसे अब तुमको संक्षेप से बतलाते हैं । यह सांसारिक सम्पूर्ण सुखों के उपभोग और संसार में आवागमन के बन्धन से छुटकारा दोनों का प्रदान करने वाला है । इस का अब श्रवण करो ॥ १ ॥ पहिले प्राचीन समय में गया नाम धारी एक परम पराक्रमी असुर हुआ था । उसने समस्त प्राणियों को उत्ताप देने वाला महान् घोर तप किया था ॥ २ ॥ उसकी इस घोर तपश्चर्या के ताप से परम तापित देवगण उसके वध के लिये श्री हरि के शरण में गये थे । तब भगवान् हरि उन देवों से बोले कि इस महान् देह के पातित करने में शिव की आत्माओं को होना चाहिए देवों ने ऐसा होगा—यह श्री हरि से कहा था । किसी समय में भगवान् शिव की पूजा के लिये क्षीर सागर से कमलों को लाकर कीकट देश में यह बलवान् शयन कर रहा था । विष्णु की माया से विमूढ हुआ यह गदा के द्वारा विष्णु से हत किया गया था ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ इससे गदाधर विष्णु मुक्ति देने वाले गया में स्थित हैं । उसका लिङ्ग रूपी देह स्थित है । शुद्ध में पितामह जनार्दन तथा अन्य प्रपितामह का लेश हैं । इसके अनन्तर विष्णु ने मर्यादा बतलाई थी कि महापुण्य क्षेत्र हो जायगा ॥६॥७॥

यत्र श्राद्धं पिण्डदानं स्नानादि कुरुते नर ।
स स्वयं ब्रह्मलोकञ्च गच्छेन्न नरक नरः ॥८
गयातीर्थं परं ज्ञात्वा याग चक्रे पितामह.।
ब्राह्मणान्पूजयामास ऋत्विगर्थमुपागतान् ॥९
महानदी रसवहा सृष्ट्वा वाप्यादिकं तथा ।
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च कामधेनुं तथासृजत् ॥
पञ्चक्रोश गयाक्षेत्र ब्राह्मणेभ्यो ददौ प्रभुः ॥१०
धर्मयागेषु लोभात्त् प्रतिगृह्य धनादिकम् ।
स्थिता विप्रास्तदा शप्ता गयाया ब्राह्मणास्तत ॥११
माभूत्त्रैपुरुषी विद्या माभूत्त्रैपुरुष धनम् ।
युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वत ॥१२
शप्तैस्तु प्रार्थितो ब्रह्माऽनुग्रह कृतवान् प्रभुः ।
लोका पुण्या गयाया हि श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः ॥
युष्मान् वै पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ॥१३
ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्ध गोगृहे मरण तथा ।
वास पुंसा कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४

जो मनुष्य यहा पर यज्ञ—श्राद्ध—पिण्डदान और स्नान आदि किया करता है वह मनुष्य स्वर्ग और ब्रह्मलोक चला जाता है और फिर नरक में कभी नही जाया करता है ॥ ८ ॥ पितामह ने इस गया तीर्थ में स्नान करके याग• किया था। जो ब्राह्मण ऋत्विक् के काम के लिये आये थे उन सबका पूजन किया था ॥ ९ ॥ रस का वहन करने वाली महानदी की रचना करके वापी आदि का सृजन किया था तथा भक्ष्य—भोज्य फलादि को एव कामधेनु को सृजा था। प्रभु ने पाँच कोश के विस्तार वाला गया तीर्थ ब्राह्मणों को दे दिया था ॥ १० ॥ धर्म के भोगो मे लालच से धनादि का प्रतिग्रह लेकर वहाँ स्थित रहा करते थे। तब से गया में विप्र शप्त हो गये हैं ॥ ११ ॥ उन विप्रो को ऐसा शाप था कि तीन पढियो तक विद्या नही होगी—और तीन पुरुषो तक लगातार धन—वैभव भी नही रहेगा। तुम्हारी यह जल का वहन करती रहने वाली नदी है और पाषाण पर्वत है। इस प्रकार से जब शाप दिया गया

तो उन शप्त विप्रों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी तब प्रभु ने उन पर अनुग्रह किया था और कहा था कि परम पुण्य शाली लोग गया में श्राद्ध करने वाले होंगे और फिर वे ब्रह्म लोक में गमन करने वाले हो जायगे। उनके द्वारा मैं सदा पूजित होऊँगा और वे आप सबकी पूजा किया करेंगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ ब्रह्मज्ञान—गया में श्राद्ध—गो गृह में मरण तथा कुरुक्षेत्र में पुरुषों का निवास करना यह चार प्रकार की मुक्ति कही गई है ॥ १४ ॥

समुद्रा सरित सर्वा वापीकूपह्रदानि च ।
स्नातुकामा गयातीर्थं व्यास यान्ति न सशय ॥१५
असस्कृता मृता ये च पशुचोरहताश्च ये ।
सर्पदष्टा गयाश्राद्धान्मुक्ताः स्वर्गं व्रजन्ति ते ॥१७
गयाया पिण्डदानेन यत्फल लभते नर ।
न तच्छक्य मया वक्तु वर्षकोटिशतैरपि ॥१८

हे व्यास देव ! सब समुद्र—समस्त नदियाँ और सभी वापी, कूप और ह्रद स्नान करने की इच्छा वाले गया तीर्थ में आया करते हैं—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥ १५ । जो बिना ही सस्कार वाले मृत हो गये हैं या जो पशु तथा चोरों के द्वारा हत हुए हैं एव जिन की मृत्यु सर्प-दशन से हो गई वे सब गया के श्राद्ध से मुक्त होकर स्वर्ग लोक में जाते हैं। तात्पर्य यह है कि उक्त प्रकार की अपमृत्यु वाले पुरुष गया में किये गये श्राद्ध से ही विमुक्त हुआ करते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ गया में पिण्ड दान से जो फल मनुष्य प्राप्त किया करता है वह मैं भी सैकड़ो करोड़ वर्षों में भी नही बतला सकता हूँ अर्थात् मेरी इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उसके महान् फलों का बयान कर सकू ॥१८॥

४६ गया में तीर्थ माहात्म्य

कीकटेषु गया पुण्या पुण्य राजगृह वनम् ।
विषयश्चारण पुण्यो नदीनाञ्च व पुन पुन ॥१
मुण्डपृष्ठ तु पूर्वस्मिन्पश्चिमे दक्षिणोत्तरे ।
सार्द्धं क्रोशद्वय मान गयाया परिकीर्त्तितम् ॥२

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्र क्रोशमेकं गयाशिर: ।
तत्र पिण्डप्रदानेन पितृणां परमा गतिः ॥
गयागमनमात्रेण पितृणामनृणो भवेत् ॥३
गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनार्द्दनः ।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात् ॥४
रथमार्गं गयातीर्थे दृष्ट्वा रुद्रं पदाधिके ।
कालेश्वरञ्च केदार पितृणामनृणो भवेत् ॥५
दृष्ट्वा पितामहं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
लोकं स्वनामय याति दृष्ट्वा च प्रपितामहम् ॥६
तथा गदाधरं देवं माधवं पुरुषोत्तमम् ।
त प्रणम्य प्रयत्नेन न भूयो जायतेः नरः ॥७

ब्रह्मा जी ने कहा—कीकटों मे गया पुण्य स्थल है। राजगृह वन परम पुण्य स्वरूप है। नदियों मे पुनः पुनः पारण विषय पुण्यमय है ॥ १ ॥ पूर्व पश्चिम मे मृत्यु पृष्ठ है और दक्षिणोत्तर मे ढाई कोस पर्यन्त गया का मान बताया गया है ॥ २ ॥ पांच कोश तक गया क्षेत्र है और एक कोश गया का शिर है। वहाँ पर पिण्ड प्रदान करने से पितरों की परम गति होती है। केवल गया मे गमन करने ही से पितरों के ऋण से मनुष्य उऋण हो जाया करता है ॥ ३ ॥ गया मे पितृ रूप से देवों के भी देव भगवान् जनार्दन स्थित है। पुण्डरीकाक्ष उनको देखकर ही कि गया मे आगम है उन्हें तीनो ऋणों से मुक्त कर दिया करते है अथवा पुण्डरीकाक्ष का वहाँ दर्शन प्राप्त करते ही वह तीनों ऋणो से छुटकारा पा जाता है ॥ ४ ॥ गया तीर्थ में रथ के मार्ग को और पदाधिक पर रुद्र को—कालेश्वर और केदार को देख कर अर्थात् इन सब का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य पितरो के ऋण से उऋण हो जाता है ॥ ५ ॥ पितामह देव का दर्शन करके मानव समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। प्रपितामह का दर्शन कर निरामय लोक की प्राप्ति करता है ।६। तथा गदाधर देव—पुरुषों मे उत्तम माधव को प्रयत्न पूर्वक प्रणाम करके मनुष्य फिर इस संसार मे जन्म नहीं ग्रहण करता है ॥७॥

मौनादित्यं महात्मानं कनकार्कं विशेषतः ।
दृष्ट्वा मौनेन विप्रर्षे पितृणामनृणो भवेत् ॥८
ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥
गायत्रीं प्रातरुत्थाय यस्तु पश्यति मानवः ॥९
सन्ध्यां कृत्वा प्रयत्नेन सर्ववेदफलं लभेत् ।
सावित्रीञ्चैव मध्याह्ने दृष्ट्वा दानफलं लभेत् ॥१०
नगस्थमीश्वरं दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत् ।
धर्मारण्यं धर्ममीशं दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ॥११
देवं गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा को न मुच्येत बन्धनात् ।
धेनुं दृष्ट्वा धेनुवने ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥१२
प्रभासेशं प्रभासे च दृष्ट्वा याति परां गतिम् ।
कोटीश्वरं चाश्वमेधं दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ॥१३
स्वर्गद्वारेश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ।
रामेश्वरं गदालोलं दृष्ट्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥१४

गया में ब्रह्मा की अर्चना करके मनुष्य सीधा ब्रह्म लोक को चला जाता है ॥ ८ ॥ प्रातःकाल में शय्या से उठकर जो मनुष्य गायत्री माता का दर्शन करता है और प्रयत्न पूर्वक सन्ध्या—वन्दन करता है वह समस्त देवों के समर्चना का फल प्राप्त कर लिया करता है ॥ ९ ॥ मध्याह्न में जो सावित्री देवी का दर्शन अर्थात् ध्यान करता है वह यज्ञ के फल को प्राप्त करता है और सायाह्न के समय में सरस्वती का दर्शन करता है वह महान् दान के फल को प्राप्त किया करता है ॥ १० ॥ नग पर संस्थित ईश्वर का दर्शन करके मनुष्य पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है । धर्मारण्य—धर्म और ईश का दर्शन करने से भी ऋण का नाश हो जाता है ॥ ११ ॥ गृध्रेश्वर देव को देखकर कौन पुरुष है जो बन्धन से मुक्त नहीं होता है अर्थात् सभी बन्धन मुक्त अवश्य ही हो जाते हैं । धेनु वन में धेनु का दर्शन कर मनुष्य अपने पितृगण को ब्रह्मलोक में ले जाया करता है ॥ १२ ॥ प्रभास के स्वामी का दर्शन कर मनुष्य परा-गति को प्राप्त करता है । कोटीश्वर और अश्वमेध का दर्शन कर ऋण का

नाश कर दिया करता है ॥ १३ ॥ स्वर्ग द्वार के ईश्वर का दर्शन करके मनुष्य भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। रामेश्वर और गदा लोक का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करता है ॥१४॥

ब्रह्मेश्वर तथा दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया।
मुण्डपृष्ठे महाचण्डी दृष्ट्वा कामानवाप्नुयात् ॥१५
फल्ग्वीश फल्गुचण्डीञ्च गौरी दृष्ट्वा च मङ्गलाम्।
गोमेकं गोपति देव पितृणामनृणो भवेत् ॥१६
अङ्गारेशञ्च सिद्धेशं गयादित्य गजं तथा।
मार्कण्डेयेश्वर दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत् ॥१७
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देव गदाधरम्।
एतेन किं न पर्य्याप्त नृणा सुकृतिकारिणाम् ॥
ब्रह्मलोक प्रयान्तीह पुरुषानेकविंशतिम् ॥१८
पृथिव्या यानि तीर्थानि ये समुद्रा सरासि च।
फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिने दिने ॥१९
पृथिव्याञ्च गया पुण्या गयायाञ्च गयाशिरः।
श्रेष्ठ तथा फल्गुतीर्थं तन्मुखञ्च सुरस्य हि ॥२०
उदीचि कनकानद्या नाभितीर्थन्तु मध्यत।
पुण्य ब्रह्मसदस्तीर्थं स्नानात्स्याद्ब्रह्मलोकद ॥२१

तथा ब्रह्मेश्वर का दर्शन कर ब्रह्म हत्या से मुक्ति पा जाता है। मुण्ड पृष्ठ पर महा चण्डी का दर्शन कर मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति करता है ॥ १५ ॥ फल्गु के स्वामी और फल्गु की चण्डी तथा मङ्गला गौरी—गोमेक—गोपति देव का दर्शन करके पितरो के ऋण से उरिण हो जाता है ॥ १६ ॥ अङ्गारेश—सिद्धेश—गयादित्य—गज—मार्कण्डेयेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य पितृगण के ऋण से मुक्त हो जाया करता है ॥ १७ ॥ फल्गु नदी मे नर-स्नान करके तथा गदाधर देव का दर्शन करके इतने ही से क्या पर्याप्त नही होता ? जो मनुष्य सुकृत करने वाले हैं उनको इतने से ही सब

मुख प्राप्त होता है। ये लोग अपने इक्कीस पूर्व पुरुषों ब्रह्म लोक में इस पुण्य फल से भेज दिया करते हैं ॥ १८ ॥ इस मही मण्डल में जो तीर्थ हैं—जितने सागर और सरोवर हैं वे सभी प्रतिदिन एक फल्गु तीर्थ में आया करते हैं।१६। भू-मण्डल में गयाक्षेत्र परम पुण्यमय है और गया में भी गया का शिर परम श्रेष्ठ है तथा फल्गु तीर्थ और सुर का मुख अतीव उत्तम है ॥ २० ॥ उत्तर में कनका नदियाँ और मध्य में नाभि तीर्थ और ब्रह्म सद तीर्थ परम पुण्यमय हैं। इसमें स्नान करने से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है ॥२१॥

कूपे पिण्डादिक कृत्वा पितृणामनृणो भवेत्।
तथा क्षयवटे श्राद्ध ब्रह्मलोक नयेत् पितृन् ॥२२
हंसतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
कोटितीर्थे गयालोके वैतरण्याञ्च गामके ॥
ब्रह्मलोक नयेत् श्राद्धी पुरुषानेकविंशतिम् ॥२३
ब्रह्मतीर्थे रामतीर्थे आग्नेये सोमतीर्थके।
श्राद्धी रामह्रदे ब्रह्मलोक पितृकुल नयेत् ॥२४
उत्तरे मानस श्राद्धी न भूयो जायते नरः।
दक्षिणे मानसे श्राद्धी ब्रह्मलोक पितॄन् नयेत् ॥२५
भीष्मतर्पणकृत्तस्य कूटे तारयते पितृन्।
गृध्रेश्वरे तथा श्राद्धी पितृणामनृणो भवेत् ॥२६
श्राद्धी च धेनुकारण्ये ब्रह्मलोक पितृन्नयेत्।
तिलधेनुप्रदः स्नात्वा दृष्ट्वा धेनु न मशयः ॥२७
ऐन्द्रेषु वा नरतीर्थेषु वासवे वैष्णवे तथा।
महानद्या कृतश्राद्धो ब्रह्मलोक नयेत्पितृन् ॥२८

कूप में पिण्ड आदि करके मनुष्य अपने पितृगण के ऋण से मुक्त हो जाता है। क्षय वट पर श्राद्ध करे तो वह अपने पितरों को ब्रह्मलोक में प्राप्त कर दिया करता है ॥ २२ ॥ हंस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से विमुक्ति पा जाता है। कोटि तीर्थ में—गया लोक में—वैतरणी में और गोमक में श्राद्ध करने वाला अपने इक्कीस पूर्व पुरुषों को ब्रह्मलोक प्राप्त करा

देता है ॥२३॥ ब्रह्मतीर्थ मे—रामतीर्थ मे—अग्नेय मे और सोमतीर्थ मे तथा रामह्रद मे श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने पितृ कुल को ब्रह्मलोक में प्राप्त करा दिया करता है ॥२४॥ उत्तर मानस मे श्राद्ध करने वाला मानव फिर इस लोक में जननी के जठर निवास की पीडा प्राप्त नही करता है। दक्षिण मानस मे श्राद्ध विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने पितरो को ब्रह्मलोक मे ले जाया करता है ॥२५॥ कूट मे भीष्म तर्पण करने वाला अपने पितरो का उद्धार कर देता है। गृघेश्वर मे श्राद्ध करने वाला पितरों के ऋण से उऋण हो जाता है ॥२६॥ धेनुकारण्य मे श्राद्धकर्त्ता पितृगण को ब्रह्मलोक मे पहुचा देता है। तिल और धेनुका दान करने वाला धेनुका दर्शन करता है—इसमें कुछ भी सशय नही है ॥२७॥ ऐन्द्र—नरतीर्थ वासव तथा वैष्णव मे एव महानदी मे श्राद्ध करने वाला पितरो का ब्रह्मलोक मे प्राप्त करा दिया करता है ॥ २८ ॥

गायत्रे चैव सावित्रे तीर्थे सारस्वते तथा।
स्नानसन्ध्यातर्पणकृत् श्राद्धी चैकोत्तर शतम् ॥
पितृणा तु कुल ब्रह्मलोक नयति मानवः ॥२६
ब्रह्मयोनि विनिर्गच्छेत्प्रयत पितृमानस ।
तर्पयित्वा पितृन् देवाश्च विद्येयोनिसङ्कटे ॥३०
तर्पणे काकजङ्घाया पितृणा तृप्तिरक्षया।
धर्मारण्ये मतङ्गस्य वाप्या श्राद्धी दिव व्रजेत् ॥३१
धर्मयूपे च कूपे च पितृणामनृणो भवेत् ।
प्रमाण देवता· सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ॥
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितृणा निष्कृति कृता ॥३२
रामतीर्थे नरः स्नात्वा श्राद्ध कृत्वा प्रभासके।
शिलाया प्रेतभावा· स्युर्मुक्ता पितृगणा किल ॥३३
श्राद्धकृच्च स्वपृष्ठाया त्रि सप्तकुलमुद्धरेत् ।
श्राद्धकृन्मुण्डपृष्ठादौ ब्रह्मलोक नयेत्पितॄन् ॥३४

गयाया न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ।
पञ्चकोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तु पिण्डदः ॥
अक्षय फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥३५

गायत्र–सावित्र तथा सारस्वत तीर्थ में स्नान–सन्ध्या और तर्पण करने वाला एवं श्राद्ध विधि को सम्पन्न करने वाला मानव एकसौ एक पितरों के कुल को ब्रह्मलोक की प्राप्ति करा देता है ॥२९॥ पितृ मानस अर्थात् अपने पितरों के समुद्धार करने के लिये मन लगाने वाला प्रयत्नशील पुरुष ब्रह्मयोनि का विनिर्गमन करता है । पितरों और देवों को तृप्त करके वह फिर योनि के सङ्कट में प्राप्त नहीं होता है ॥३०॥ अपने पितृगण की तृप्ति करने की रक्षा से काक-जङ्घा में तर्पण करने पर तथा धर्मारण्य में एवं मतङ्ग की वापी में श्राद्ध करने वाला पुरुष दिवलोक की प्राप्ति करता है ॥ ३१ ॥ धर्म कूप और कूप में श्राद्ध करने वाला मनुष्य भी पितरों से उरिण हो जाता है । इसके प्रमाण स्वरूप देवगण हैं और इसके साक्षी लोकपाल होते हैं । मैंने यहाँ मतंग में आकर अपने पितृगण की निष्कृति की है ॥३२॥ रामतीर्थ में स्नान करके मनुष्य प्रभासक में श्राद्ध करे तो शिला में प्रेत भाव को प्राप्त पितृगण मुक्त हो जाते हैं । स्व-पृष्ठ में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर देता है । मुण्ड पृष्ठ में श्राद्ध करने वाला पुरुष पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति करा दिया करता है ॥ ३३।३४ ॥ गया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जो तीर्थ स्वरूप वाला न हो । पाँच कोश वाले गया के क्षेत्र में जहाँ–तहाँ पर पिण्डदान करने वाला पुरुष कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला फल प्राप्त करता है और पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचा दिया करता है ॥३५॥

जनार्दनस्य हस्ते तु पिण्डं दद्यात्स्वकं नरः ।
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥३६
परलोकं गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति पितृभिः सह निश्चितम् ॥३७
गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा ।
गयशीर्षेऽक्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥३८

धर्मारण्य धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च ।
दृष्ट्वैतानि पितृश्चार्घ्य वंशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥३९
ब्रह्मारण्य मयनद्या. पश्चिमे भाग उच्यते ।
पूर्वे ब्रह्मसदो भागो नागाद्रिर्भरताश्रमः ॥४०
भरतस्याश्रमे श्राद्धी मतङ्गस्य पदे भवेत् ।
गयाशीर्षाद्दक्षिणतो महानद्याश्च पश्चिमे ॥४१
तस्मृतश्चम्पकवन तत्र पाण्डुशिलास्ति हि ।
श्राद्धी तत्र तृतीयाया निश्चिरायाश्च मण्डले ॥
महाह्रदे च कौशिक्यामक्षय फलमाप्नुयात् ॥४२

जनार्दन के हाथ मे मनुष्य अपना पिण्ड देवे और प्रार्थना करे कि हे जनार्दन देव ! यह पिंड मैंने आपके हाथ मे दिया है । अब परलोक जाने पर लोक जाने पर मुझे आप अक्षय्य मोक्ष प्रदान करे । ऐसा करने वाला मानव अपने पितरो के सहित निश्चित रूप से ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है ॥३६।३७॥ गया में ब्राह्मण धर्म पृष्ठ पर सर मे—गया के तीर्थ मे—अक्षय वट मे पितरो को पिंड देने वाला अक्षय पुण्य—फल को प्राप्त करता है ॥३८॥ धर्मारण्य–धर्म पृष्ठ और धेनुकारण्य इनका दर्शन करके पितरो को अर्घ्य देने वाला पुरुष अपने बीस वशों का उद्धार करता है ॥३९॥ ब्रह्मारण्य मय नदी का पश्चिम भाग कहा जाता है और पूर्व मे ब्रह्मसद भाग है तथा नागाद्रि और भरताश्रम है ॥ ४० ॥ भरत के आश्रम मे श्राद्ध करने वाला मतग के पद मे होता है । गया शीर्ष से दक्षिण में और महानदी के पश्चिम में वहाँ पर चम्पक वन बताया गया है । वहाँ पर पाण्डु शिला है । वहाँ श्राद्ध करने वाला तृतीया मे और निश्चिरा के मडल मे तथा महाह्रद मे एव कौशिकी में श्राद्ध-कर्ता अक्षय फल का भागी होता है ॥४१।४२॥

वैतरण्याश्चोत्तरतस्तृतीयाख्यो जलाशय ।
पदानि तत्र क्रौञ्चस्य श्राद्धी स्वर्गं नयेत्पितॄन् ॥४३
क्रौञ्चपादादुत्तरतो निश्चिराख्यो जलाशयः ।

सकृद् गयाभिगमनं सकृत्पिण्डप्रपातनम् ॥
दुर्लभं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितः ॥४४
महानद्यामपः स्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलञ्चापि समुद्धरेत् ॥
सावित्रे पठ्यते सन्ध्या कृता स्याद्द्वादशाब्दिकी ॥४५
शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः ।
पुनात्यासप्तमञ्चैव कुलं नास्त्यत्र संशयः ॥४६
गयायां मुण्डपृष्ठञ्च अरविन्दञ्च पर्वतम् ।
तृतीयं क्रौञ्चपादञ्च दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ॥४७
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ॥४८
महाह्रदे च कौशिक्यां मूलक्षेत्रे विशेषतः ।
गुहायां गृध्रकूटस्य श्राद्धं सप्त महाफलम् ॥४९

वैतरणी से उत्तर में तृतीयाख्य एक जलाशय है। वहाँ पर क्रौञ्च के पद हैं। वहाँ श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त करा दिया करता है ॥४३॥ क्रौञ्चपाद के उत्तर की ओर निश्चिर संज्ञा वाला एक जलाशय विद्यमान है। एक बार गया में गमन करना तथा एक बार पिंडों का प्रपातन करना ही इतना फल देने वाला है कि उस पुरुष को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है और जो यहाँ नित्य ही ऐसा व्यवस्थित होकर करते हैं उनका तो कहना ही क्या है ॥४४॥ महानदी के जलों का स्पर्श करके जो पितृगण और देवर्षियों को तृप्त करता है वह अक्षय लोकों की प्राप्ति करता है और अपने कुल का भी उद्धार कर दिया करता है। सावित्र में पढ़ी हुई सन्ध्या द्वादशाब्दिकी की हुई होती है ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य कृष्ण और शुक्ल दोनों ही मास के पक्षों में गया में निवास किया करता है वह सात कुलों को पवित्र कर देता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४६॥ गया में मुण्ड पृष्ठ—अरविन्द पर्वत—तृतीय—क्रौञ्चपाद इनके दर्शन करके मानव समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥ ४७ ॥ मकर संक्रान्ति तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के समय पर गया में पिंडों का पातन

करना तीनो लोको मे महान् दुर्लभ है ॥ ४८ ॥ महाह्रद में—कौशिकी में और विशेषतया मूल क्षेत्र में—गृध्र कूट की गुहा मे किया हुआ श्राद्ध सात महा फल वाला होता है ॥४६॥

यत्र माहेश्वरी धारा श्राद्धी तत्रानृणो भवेत् ।
पुण्या विशालामासाद्य नदी त्रैलोक्यविश्रुताम् ॥
अग्निष्टोममवाप्नोति श्राद्धी प्रायाद्दिव नर ॥५०
श्राद्धी सोमपदे स्नात्वा वाजपेयफल लभेत् ।
रविपादे पिण्डदानात्पतितोद् धारण भवेत् ॥५१
यो गयास्थो ददात्यत्र पितरस्तेन पुत्रिण ।
काक्षते पितर. पुत्रान् नरकाद् भयभीरव ॥५२
गया यास्यति य कश्चित्सोऽस्मान् सन्तारयिष्यति ।
गयाप्राप्त सुत दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ॥५३
पद्भ्यामपि जल स्पृष्ट्वा अस्मभ्य किल दास्यति ।
आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा ॥५४
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्ड त नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ।
पुण्डरीक विष्णुलोक प्राप्नुयात्कोटितीर्थग ॥५५
या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितृणा तारणाय हि ॥५६

जहाँ पर माहेश्वरी धारा है वहाँ श्राद्ध करने वाला उऋण हो जाया करता है । परम पुण्यमयी और त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध विशाला नदी को प्राप्त करके श्राद्ध करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है और फिर वह दिवलोक को चला जाता है ॥५०॥ सोमपद मे स्नान करके श्राद्ध के विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष वाजपेय यज्ञ का फल पा जाता है । रविपाद में पिंडो के प्रदान करने से पतितो का उद्धार होता है ॥ ५१ ॥ जो गया में स्थित होकर यहाँ का दान करता है उसी पुत्र से पितृगण पुत्र वाले होते हैं । पितर लोग नरक से भय भीरु होते हुए ऐसे पुत्रों की इच्छा किया करते हैं ॥५२॥ पितरगण सोचा करते हैं कि हमारे पुत्रादि में से जो कोई भी

कभी गया जायगा तो वह हमारा उद्धार कर देगा। गया मे प्राप्त हुए अपने पुत्रादि को देखकर पितृगण को बड़ी प्रसन्नता होती है और वे एक तरह का उत्सव-सा मनाते हैं ॥५३॥ पैरो से भी जल का स्पर्श करके हमारे लिये देगा वह आत्मज हो तथा अन्य कोई हो जब गया के कूप में जिसके नाम से पिंडो का पातन करेगा उसी समय मे उ को शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है। कोटि तीर्थ में गमन करने वाला पुण्डरीक विष्णुलोक में प्राप्त होता है ॥५४-॥५५॥ जो वैतरणी नदी है वह तीनो लोको में प्रसिद्ध है वह गया के क्षेत्र मे पितरों के तारने के लिए अवतीर्ण हुई है ॥५६॥

श्राद्धदः पिण्डदस्तत्र गोप्रदान करोति यः ।
एकविंशतिवशान् स तारयेन्नात्र संशयः ॥५७
यदि पुत्रो गया गच्छेत्कदाचित् कालपर्य्यये ।
तानेव भोजयेद्विप्रान् ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥५८
तेषां ब्रह्मसदः स्थान विप्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः ।
ब्रह्मप्रकल्पितं स्थानं विप्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः ।
पूजितै. पूजिताः सर्वे पितृभिः सह देवताः ॥५६
तर्पयेत्तु गयाविप्रान् हव्यकव्यविधानतः ।
स्थानं देहपरित्यागे गयायान्तु विधीयते ॥६०
यः करोति वृषोत्सर्गं गयाक्षेत्रे ह्यनुत्तमे ।
अग्निष्टोमशत पुण्यं लभते नात्र सशयः ॥६१
आत्मनोऽपि महाबुद्धिर्गयायां तु तिलैर्विना ।
पिण्डनिर्वपनं कुर्य्यादन्येषामपि मानवः ॥६२
यावन्तो ज्ञातयः पित्र्या बान्धवाः सुहृदस्तथा ।
तेभ्यो व्यास गयाभूमौ पिण्डो देयो विधानत. ॥६३

वहाँ पर श्राद्ध के देने वाला–पिंडद न करने वाला और जो गौ का दान किया करता है वह अपने पूर्वजो की इक्कीस पीढियों का उद्धार कर दिया करता है–इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥ ५७ ॥ यदि पुत्र किसी भी समय में काल के विपर्य होने पर गया तीर्थ मे जावे तो उन्ही विप्रो को भोजन कराता

चाहिए जो ब्रह्म के द्वारा प्रकल्पित किये हुए हैं ॥५८॥ जो विप्र ब्रह्म प्रकल्पित हैं उनका ब्रह्म सद्स्थान है। ब्रह्म प्रकल्पित स्थान है और विप्र भी ब्रह्म प्रकल्पित हैं। पूजित पितृगणों के साथ समस्त देवगण पूजित किये गये हैं ॥५९॥ गया वासी विप्रों को विधि–विधान से हव्य–कव्यों के द्वारा तृप्त करना चाहिए गया में देह परित्याग करने में स्थान दिया जाता है ॥६०॥ परमोत्तम गया क्षेत्र में जो वृष का उत्सर्ग करता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है–इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ॥६१॥ महान् बुद्धिमान् पुरुष को अपना भी तिलों के बिना गया में पिंडों का निर्वपन करे और मनुष्य औरों का भी करे ॥६२॥ जितने भी ज्ञाति वाले–बान्धव और सुहृद्गण स्थित हैं हे व्यास देव ! उन सबके लिये विधान के साथ गया की भूमि में पिंड देना चाहिए ॥६३॥

रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोशतस्याप्नुयात्फलम् ।
मतङ्गवाप्यां स्नात्वा च गोसहस्रफलं लभेत् ॥६४
निश्चिरासङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ।
वसिष्ठस्याश्रमे स्नात्वा वाजपेयञ्च विन्दति ॥
महाकोश्यां समावासादश्वमेधफलं लभेत् ॥६५
पितामहस्य सरसः प्रसूता लोकपावनी ।
समीपे त्वग्निधारेति विश्रुता कपिला हि सा ॥
अग्निष्टोमफलं श्राद्धी स्नात्वाऽत्र कृतकृत्यता ॥६६
श्राद्धी कुमारधारायामश्वमेधफलं लभेत् ।
कुमारमभिगम्याथ महामुक्तिमवाप्नुयात् ॥६७
सोमकुण्डे नरः स्नात्वा सोमलोकञ्च गच्छति ।
संवर्त्तस्य नरो वाप्यां सुभगः स्यात्तु पिण्डदः ॥६८
धौतपापो नरो याति प्रेतकुण्डे च पिण्डदः ।
देवनद्यां लेलिहाने मथने जानुगर्तके ॥६९
एवमादिषु तीर्थेषु पिण्डदस्तारयेत् पितृन् ।
गत्वा देव वसिष्ठेश प्रभूतमृणनाशयत् ॥७०

रामतीर्थ मे स्नान करने से मनुष्य सौ गौओ का दान का फल प्राप्त करता है। मातङ्ग वापी में स्नान करने से एक सहस्र गौ के दान का फल मिलता है ॥ ६४ ॥ निश्चिरा के सगम में स्नान से पितरो को ब्रह्मलोक प्राप्त करा दिया करता है। वसिष्ठ के आश्रम मे स्नान करके वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। और महाकोशी में समावास से अश्वमेध यज्ञ का फल मिला करता है ॥ ६५ ॥ पितामह केसर से लोकपावनी परम प्रसिद्ध है समीप में ही अग्निधारा विश्रुत है वह कपिला है। यहाँ पर स्नान करके श्राद्ध करने वाला पुरुष अग्निष्टोम के पुण्य—फल का लाभ किया करता है और उसे कृत कृत्यता हो जाती है ॥६६॥ कुमार धारा मे श्राद्ध करने वाला मानव अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है। इसके अनन्तर कुमार को प्राप्त कर महा मुक्ति का लाभ करता है ॥६७॥ सोम कुण्ड में मनुष्य स्नान कर सोम (चन्द्र) के लोक की प्राप्ति कर लेता है। सवर्त की वापी म पिण्डदान करने वाला परम सुभग हो जाता है ॥६८॥ प्रेत कुण्ड में पिंड वपन करने वाला मनुष्य धौत पाप अर्थात् समस्त पापो को धो लेने वाला हो जाता है। देव नदी में—लेलिहान में—जानुगर्तक मथन में एवमादि तीर्थों में पिंडो का दान करने वाला मनुष्य अपने पितृगणों का उद्धार कर दिया करता है। वसिष्ठेश देव को नमस्कार करके प्रभूत ऋण का सक्षय कर लेता है ॥६६-७०॥

४७- गया में तीर्थ कर्तव्य

उद्यतस्तु गया गन्तु श्राद्ध कृत्वा विधानत ।
विधाय कापट वेश ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम् ॥१

ततो ग्रामान्तर गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ।
कृत्वा प्रदक्षिण गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जित ॥२

गृहाच्चलितमात्रस्य गयाया गमन प्रति ।
स्वर्गारोहणसोपान पितृणा तु पदे पदे ॥
मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वय विधि ॥३

वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम् ।
दिवा च सर्वदा रात्रौ गयायां श्राद्धकृद्भवेत् ॥४
वाराणस्यां कृत श्राद्धं तीर्थे शोणनदे तथा ।
पुन. पुनर्महानद्यां श्राद्धी स्वर्गं पितृन्नयेत् ॥५
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ।
तस्मिन्निवर्त्तयेद् श्राद्धं स्नानञ्चैव निवर्त्तयेत् ॥
कामांश्च लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च सर्वशः ॥६
दक्षिणं मानसं गत्वा मौनी पिण्डादि कारयेत् ।
ऋणत्रयापाकरणं लभेद्दक्षिणमानसे ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—गया को जाने के लिये उद्यत पुरुष पहिले विधान से श्राद्ध करे और फिर कार्पट वेश करके ग्राम की भी प्रदक्षिणा करे ॥१॥ इसके अनन्तर अन्य ग्राम मे जाकर श्राद्ध से शेष का भोजन करे और फिर प्रदक्षिणा करके प्रतिग्रह से रहित होता हुआ आगे जाना चाहिए ॥२॥ गृह से चलने वाले के जो कि गया के प्रति गमन करता है, पितर लोग एक-एक पद (कदम) पर स्वर्ग के समारोहण करने के सोपान (सीढ़ी) पर ऊपर चढ़ा करते हैं। गया क्षेत्र को जाने वाले का मुण्डन और उपवास समस्त मार्ग मे आने वाले तीर्थों में होना चाहिए क्योंकि यही शास्त्रीय विधान है ॥३॥ कुरुक्षेत्र और विशाला विरजा गया को छोड़ कर सर्वदा दिन मे और गया में रात्रि में श्राद्ध करने वाला होवे ॥ ४ ॥ वाराणसी में तथा शोणनद मे किया हुआ श्राद्ध तथा महानदी मे पुन. पुनः श्राद्ध करने वाला अपने पितृगण को स्वर्ग मे प्राप्त करा देता है ॥५॥ उत्तर मानस में जाकर परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है। उसमे ही श्राद्ध का निर्वर्त्तन करे और उसी मे स्नान-क्रिया को पूर्ण करना चाहिए। ऐसा पुरुष अपनी परम दिव्य कामनाओं को प्राप्त करता है और सभी मोक्ष के उपाय का भी लाभ करता है ॥ ६ ॥ दक्षिण मानस में पहुँच कर मौन धारण कर पिण्डदान आदि करे-करावे । दक्षिण मानस में जाकर यह करने से तीनों प्रकार के ऋणों का अपाकरण करता है ॥७॥

सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानाञ्च भयङ्करैः ।
लेलिहानैर्महाघोरैरक्षतैः पन्नगोत्तमैः ॥८
नाम्ना कनखल तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणसेवितम् ॥६
तत्र स्नात्वा दिवं याति श्राद्धं दत्तमथाक्षयम् ।
सूर्यं नत्वा त्विद कुर्य्यात्कृतपिण्डादिसत्क्रियः ॥१०
कव्यवाहास्तथा सोमो यमश्चैवार्य्यमा तथा ।
अग्निष्वात्ता वर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः ॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितस्त्विह ॥११
मदीया· पितरो ये च कुले जाता· सनाभयः ।
तेषा पिण्डप्रदाताहमागतोऽस्मि गयामिह ॥१२
कृतपिण्ड. फल्गुतीर्थे पश्येद्देव पितामहम् ।
गदाधर तत पश्येत्पितृणामनृणो भवेत् ॥१३
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देव गदाधरम् ।
आत्मानं तारयेत्सद्यो दशपूर्वान्दिशापरान् ॥१४

सिद्धों की प्रीति को उत्पन्न करने वाले और पापों को भयङ्कर—लेलिहान—महान् घोर—अक्षत पन्नगों में उत्तमों से युक्त कनखल नाम वाला तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । उदीची में देव—ऋषिगणों के द्वारा सेव्यमान मुण्ड पृष्ठ का तीर्थ है ॥८ ६॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य दिवलोक को चला जाता है और दिया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है । सूर्य को नमस्कार करके यह करना चाहिए पिंडादि की सत्क्रिया करने वाला यह प्रार्थना करे कि—कव्यवाह—सोम—यम तथा अर्यमा—अग्निष्वात्त—वर्हिषद—सोमप पितृ देवता समस्त महा भाग यहाँ आवें और आप लोग यहाँ की रक्षा करें ॥१०।११॥ मेरे जो पितर गण हैं और जो मेरे कुल में सनाभि समुत्पन्न हैं उन सबके लिए पिंड प्रदान करने वाला मैं यहाँ इस गया के पुण्य क्षेत्र में आगया हूं । १२॥ इस प्रकार से पिंडों का प्रदान करने वाला फल्गुतीर्थ में पितामह का दर्शन करे इसके अनन्तर गदाधर का दर्शन करना चाहिए । ऐसा करने वाला मानव अपने पितरों के

मरण से छुटकारा पा जाता है ॥१३॥ फल्गुतीर्थ में मनुष्य स्नान करके गदाधर देव का दर्शन करे तो तुरन्त ही अपने आपका और दश पहिले तथा दश आगे आने वाले कुलो का उद्धार कर देता है ॥१४॥

प्रथमे हि विधि. प्रोक्तो द्वितीयदिवसे व्रजेत् ।
धर्मारण्यं मतङ्गस्य वाप्या पिण्डादिकृतद्भवेत् ॥१५
धर्मारण्यं समासाद्य वाजपेयफलं लभेत् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फल स्याद् ब्रह्मतीर्थके ॥१६
श्राद्धं पिण्डोदक कार्य्यं मध्ये वै यूपयूपयो ।
कूपोदकेन तत्कार्य्यं पितृणा दत्तमक्षयम् ॥१७
तृतीयेऽह्नि ब्रह्मसदो गत्वा स्नात्वाथ तर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्धादिक पिण्ड मध्ये वै यूपकूपयो. ॥१८
गोप्रचारसमोपस्था आब्रह्म ब्रह्मकल्पिता. ।
तेषा सेवनमात्रेण पितरो मोक्षगामिन. ॥
यूप प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफल लभेत् ॥१९
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्ध गयाशीर्षे देवरुद्रपदादिषु ॥२०
पिण्डान्देहि मुखे व्यास पञ्चाग्नौ च पदत्रये ।
सूर्येन्दुकार्तिकेयेषु कृत श्राद्ध तथाऽक्षयम् ॥
श्राद्ध तु नवदैवत्य कुर्य्याद् द्वादशदैवतम् ॥२१

प्रथम दिवस की विधि बतलायी गई है अब दूसरे दिन मे गमन करे। धर्मारण्य और मतङ्ग की वापी में पिंडो का प्रदान करने वाला होवे ॥१५॥ धर्मारण्य को प्राप्त कर वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। ब्रह्मतीर्थ में पिंडदान एवं स्नानादि करने से राजसूय और अश्वमेध दोनो यज्ञो के फलो की प्राप्ति किया करता है ॥ १६ ॥ कूप यूप के मध्य मे श्राद्ध एवं पिंडोदक कार्य करना चाहिए। कूपोदक से यह सब करना चाहिए। इसमे पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥१७॥ अब तीसरे दिन मे ब्रह्मसद में जाकर स्नान करे तथा तर्पण करे। यूप और कूप के मध्य मे पिंड और श्राद्धादि करके गो प्रचार

के समीप मे स्थित आम्रहा म्रहा कल्पित हैं उनके सेवन मात्र से ही समस्त पितरगण मोक्षगामी हो जाते हैं। यूप की प्रदक्षिणा करके वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं ॥१८।१६॥ तीसरे दिन के इस उपर्युक्त कृत्यको समाप्त करके अब चतुर्थ दिन आरम्भ होता है। इस चौथे दिन मे फल्गु तीर्थ में स्नान करके और देवादि का तर्पण करके फिर गया शीर्ष मे देव रुद्र पदादि में श्राद्ध करे। हे व्यास देव ! मुख मे-पञ्चाग्नि में और पद त्रय मे पिंडो को देवे सूर्य चन्द्र और कार्त्तिकेय मे किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है। यह श्राद्ध नव दैवत्य तथा द्वादश दैवत करना चाहिए ॥२०।२१।

अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां मृतवासरे ।
अत्र मातु पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥२२
स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देव पितामहम् ।
रुद्रपाद नर· स्पृष्ट्वा न चेहावर्त्तते पुन· ॥२३
त्रिवित्तपूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलमवाप्नुयात् ।
स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्ध गयाशिरे ॥२४
शमीपत्रप्रमाणेन पिण्ड दद्याद् गयाशिरे ।
पितरो यान्ति देवत्व नात्र कार्य्या विचारणा ॥२५
मुण्डपृष्ठे पद न्यस्त महादेवेन धीमता ।
अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यमवाप्नुयात् ॥२६
गयाशीर्षे तु य पिण्डान्नाम्ना येषां तु निर्वपेत् ।
नरकस्था दिव यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयु ॥२७
पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा वटतले तत ।
पिण्ड दद्यात्पितृणाञ्च सकल तारयेत्कुलम् ॥२८

अन्वष्टका मे—वृद्धि मे—गया मे मृत वासर के समय में यहाँ पर माता का पृथक् श्राद्ध करे और अन्य स्थल में पति के साथ ही करे ॥२२॥ दशाश्व मेध मे स्नान करके तथा पितामह देव का दर्शन करे। मनुष्य रुद्रपाद का स्पर्श करके फिर इस संसार में दुबारा जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥२३॥ तीन वित्तों से पूर्ण पृथ्वी का दान करके जो फल प्राप्त होता है उसे गया शिर में

श्राद्ध करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥ गया शिर में शमी के पत्र के प्रमाण वाला पिंड देना चाहिए। इससे पितरगण देवत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥ २५ ॥ मुण्ड पृष्ठ मे धीमान् महादेव ने पद न्यस्त किया है। वहाँ पर अल्प तप से ही महान् पुण्य की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ गया शीर्ष में जो पिंड नाम के द्वारा जिनको निर्वपन करता है उसके पितर जो नरक में स्थित हो वे दिवलोक को चले जाते हैं और जो स्वर्गवास करने वाले हैं वे मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं ।२७। अब पाँचवाँ दिन का कृत्य बतलाया जाता है। पाँचवे दिन में गदालोल में स्नान करे और फिर वट के नीचे पितरों को पिंडदान करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने समस्त कुल को तार दिया करता है ॥२८॥

वटमूलं समासाद्य शाकेनोष्णोदकेन च ।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२९
कृते श्राद्धेऽक्षयवटे दृष्ट्वा च प्रपितामहम् ।
अक्षयाल्लभते लोकान्कुलानामुद्धरेच्छतम् ॥३०
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गया व्रजेत् ।
यजेद्वा अश्वमेधेन नील वा वृषमुत्सृजेत् ॥३१
प्रेतः कश्चित्समुद्दिश्य वणिज कश्चिदब्रवीत् ।
मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्वपन कुरु ॥
प्रेतभावाद्विमुक्तः स्यात्स्वर्गदो दातुरेव च ॥३२
श्रुत्वा वणिग्गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम् ।
प्रददावनुजैः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ॥३३
सर्वे मुक्ता विशालोऽपि सपुत्रोऽभूच्च पिण्डदः ।
विशालाया विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद् द्विजान् ॥३४
कथ पुत्रादयः स्युर्मे विप्राश्चोचुर्विशालकम् ।
गयाया पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥
विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ॥३५

वट के मूल में प्राप्त होकर शाक और उष्णोदक के द्वारा एक विप्र के भोजन करा देने पर एक करोड़ के भोजन का फल होता है ॥२६॥ अक्षय वट में श्राद्ध के करने पर और प्रपितामह का दर्शन करके अक्षय लोकों की प्राप्ति किया करता है तथा अपने सौ कुलों का उद्धार कर देता है ॥ ३० ॥ बहुत-से पुत्रों की इच्छा रखनी चाहिए उनमें यदि कोई भी एक गया चला जाता है अथवा अश्वमेध का यजन करता है या नील वृष का उत्सर्ग करता है तो परम कल्याणकारी है ॥ ३१ ॥ कोई प्रेत किसी वैश्य को उद्दिष्ट कर बोला था कि तुम मेरे नाम से गया तीर्थ में पिंड का निर्वपन कर दो तो मैं प्रेतभाव से विमुक्त हो जाऊँगा और देने वाले को भी स्वर्ग देने वाला होऊँगा ॥३२॥ यह श्रवण कर उस वणिक् ने उस प्रेतराज के लिए गया तीर्थ में पिंडदान किया था। इसके पश्चात् अनुजों के साथ अपने पितरों को भी पिंड दान दिया था ॥३३॥ वे सभी मुक्त हो गये थे। इसी प्रकार से पिंडदान करने वाला विशाल भी पुत्रों से युक्त हो गया था। विशाला में विशाल एक राज पुत्र हुआ था। वह ब्राह्मणों से बोला—मेरे पुत्रादि किस प्रकार हो सकेंगे? तब विप्रगण विशाल से बोले कि गया में पिंडदान करने से तुमको यह सभी कुछ हो जायगा। तब यह विशाल गया तीर्थ में पिंडदान करके पुत्रों वाला हो गया था ॥३४।३५॥

हृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत् ।
के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम् ॥३६
अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकं गतः शुभात् ।
मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्परः ॥३७
अयं पितामहः कृष्ण ऋषयोऽनेन घातिताः ।
अवीचिं नरकं प्राप्तौ मुक्तौ जातौ च पिण्डदः ॥३८
मुक्तीकृतास्ततः सर्वे व्रजामः स्वर्गमुत्तमम् ।
कृतकृत्यो विशालोऽपि राज्यं कृत्वा दिवं ययौ ॥३९
येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।
ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिः सृताः ॥४०

येषा दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धास्तथापरे ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परा गतिम् ॥४१
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥४२
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च ।
वृद्धप्रमातामहश्चाथ मातामही तत. परम् ॥४३
प्रमातामही च तथा वृद्धप्रमातामहीति वै ।
अन्येषाञ्चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥४४

आकाश मे विशालक ने सित–रक्त और कृष्ण वर्ण वाले पुरुष को देखा था । उसने पूछा था—आप कौन हैं तब उन मे से एक सित जो था वह बोला ॥३६॥ मैं सित तेरा पिता हूँ और इस शुभ कर्म से इन्द्रलोक को प्राप्त हो गया हूँ । हे पुत्र ! मेरे पिता रक्त वर्ण वाले हैं । यह ब्रह्म हत्यारे और अधिक पाप करने वाले हैं ॥ ३७ ॥ यह कृष्ण वर्ण वाले पितामह हैं । इनने ऋषियो को पातित किया था । ये दोनो अवीचि नरक में प्राप्त थे । अब हे पिंड देने वाले ! ■ मुक्त होकर नारकीय यातना से छूट गये हैं ॥ ३८ । इसके अनन्तर हम सभी मुक्त होकर अब उत्तम स्वर्गलोक में जा रहे हैं । यह विशाल भी परम कृतकृत्य होकर राज्य के सुख भोग कर दिवलोक को चला गया था ॥३६॥ वहाँ पिंडदान करने के समय में प्रार्थना करे कि जो हमारे कुल मे ऐसे पितृगण हो जिनकी पिंडोदक क्रिया लुप्त होगई हो अर्थात् कोई भी पिंड तथा उदक देने वाला न रहा हो तथा जो चूड़ा सस्कार रहित हो—और जो गर्भ से ही विनिमृत होगये हो—जो ऐसे हो कि दाह ही न किया जाता हो—जो अग्नि से दग्ध होकर मृत हुए हो तथा अन्य भी जो कोई हो वे सभी भूमि मे दिये हुए उदकसे तृप्त हो और तृप्त होकर परम गति को प्राप्त होवें ॥४०।४१॥ पिता पितामह तथा प्रपितामह, माता पितामही तथा प्रपितामही एव मातामह–प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामह एव मातामही—प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामही तथा अन्य जो भी कोई हों उन सबके लिये यह पिंड अक्षय होवे—यह कहकर पिंडदान करना चाहिए ॥४२।४३।४४॥

४८—मन्वन्तर वर्णन

चतुर्दश मनून्वक्ष्ये तत्सुतांश्च शुकादिकान् ।
मनुः स्वायम्भुव. पूर्वमग्निघ्राद्याश्च तत्सुता: ॥१
मरीचिरत्र्यङ्गिरसो पुलस्त्य. पुलहः क्रतु. ।
वसिष्ठश्च महातेजा ऋषयः सप्त कीर्त्तिता. ॥२
जयाख्याश्चामिताख्याश्च शुक्रो यामास्तथैव च ।
गणा द्वादशकाश्चेति चत्वारः सोमपायिनः ॥३
विश्वभुग्वामदेवेन्द्रो वाष्कलिस्तदरिर्ह्यभूत् ।
स हतो विष्णुना दैत्यश्चक्रेण सुमहात्मना ॥४
मनु. स्वारोचिषश्चाथ तत्पुत्रो मण्डलेश्वरः ।
चत्रको विनतश्चैव कर्णान्तो विद्युतो रविः ॥५
वृहद्गुणो नभश्चैव महाबलपराक्रमः ।
ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राण ऋषभो निचुलस्तथा ॥६
दम्भोलिश्चार्ववीरश्च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ।
तुषिता द्वादश प्रोक्तास्तथा पारावताश्च ये ॥७

हरि ने कहा—अब हम चौदह मनुओं को बतलाते हैं और उनके पुत्र शु'ादि को बताते हैं । पहिले स्वायम्भुव मनु हुए थे तथा अग्निघ्रादि उनके पुत्र हुए थे ॥१॥ मरीचि–अत्रि–अङ्गिरा–पुलस्य–पुलह–क्रतु और महान् तेज वाले वसिष्ठ ये सात ऋषिवृन्द कीर्तित किये गये हैं ॥२॥ जयाख्य—अमिताख्य–शुक्र तथा याम और द्वादश गण ये चार सोम पायी थे ॥३॥ विश्व भुक्–वाम देवेन्द्र वाष्कलि उनका शत्रु हुआ था । वह दैत्य सुमहात्मा विष्णु के द्वारा चक्र से मारा गया था ॥४॥ इसके अनन्तर स्वारोचिष मनु हुए थे । उसका पुत्र मण्डलेश्वर–चैत्रक–विनत—कर्णान्त–विद्युत–रवि—वृहद्गुण और महान् बल तथा पराक्रम वाला नभ ये थे । ऊर्ज–स्तम्ब—प्राण—ऋषभ—निचल—दम्भोलि और अर्ववीर ये सात ऋषि कीर्तित किये गये हैं । द्वादश तुषित कहे गये हैं और पारावत बताये गये हैं ॥५।६।७॥

इन्द्रो विपश्चिद्देवाना तद्रिपु पुरुकुत्सर ।
जघान हस्तिरूपेण भगवान्मधुसूदन ॥८
ग्रौत्तमस्य मनो पुत्रा आजश्च परशुस्तथा ।
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्र सुबल शुचि ।
देवो देवावृधो रुद्र महोत्साहाजितस्तथा ॥९
रथौजा ऊर्ध्वबाहुश्च शरणश्चानघो मुनि ।
सुतपा शङ्कुरित्येते ऋषय सप्त कीर्तिता ॥१०
वशवर्त्ति स्वधामान शिवा सत्या प्रतदना ।
पञ्च देवगणा प्रोक्ता सर्वे द्वादशकास्तु ते ॥११
इन्द्र स्वशान्तिस्तच्छुक प्रलम्बो नाम दानव ।
मत्स्यरूपी हरिर्विष्णुस्त जघान च दानवम् ॥१२
तामसस्य मनो पुत्रा जानुजङ्घोऽथ निर्भय ।
नवख्यातिर्नयश्चैव प्रियभृत्या विनिक्षिप ॥१३
हव्युष्कधि प्रस्तलाक्ष कृतबन्धु कृतस्तथा ।
ज्योतिर्धामा धृष्टकाव्यश्चैनश्च ताग्निहेमको ॥१४
मुनय कीर्त्तिता सप्त सुरागा स्वधियस्तथा ।
हरयो देवतानाञ्च चत्वार पञ्चविंशका ॥१५

देवो का इन्द्र विपश्चिद था और उसका शत्रु पुरुकुत्सर था । भगवान् मधु सूदन ने हस्ती के रूप से उसका हनन किया था ॥८॥ औत्तम मनु के पुत्र आज—परशु—विनीत—सुकेतु—सुमित्र—सुबल—शुचि—देव—देवावृध तथा महोत्साहाजित रुद्र थे ॥९॥ उस म वन्तर मे रथौजा, ऊर्ध्व बाहु शरण, अनघ मुनि, सुतपा, और शकु ये सप्तर्षि बताये गये हैं ॥१०॥ वशवर्ति—स्वधामान—शिवा स य और प्रतदन य पाँच देवगण कीर्त्तित किये गय हैं वे सब द्वादशक थे ॥ ११ ॥ स्वशाति नामक इ द्र था और उसका शुक्र प्रलम्ब नामधारी दानव था । उस दानव को मत्स्य का स्वरूप धारण करने वाले हरि विष्णु ने हनन किया था ॥१२॥ तामस नामक मनु के पुत्र जानुजघ—निर्भय—नवख्याति—नय—प्रियभृत्य विनिक्षिप—हव्युष्कधि—प्रस्तलाक्ष—कृतबन्धु—कृत ये और ज्योतिर्धामा—धृष्ट

काव्य–चैत्र–श्वेताग्नि–हेमक ये सात मुनि बताये गये हैं। सुरागा और स्वविय हरि थे तथा देवताओं के चार पञ्च विंशक गुण हुए थे ॥१३।१४।१५॥

गण इन्द्र शिविस्तस्य शत्रुर्भीमरथा स्मृता ।
हरिणा कूर्मरूपेण हतो भीमरथोऽसुरः ॥१६
रैवतस्य मनोः पुत्रा महाप्राणश्च साधकः ।
वनबन्धुर्निरमित्रः प्रत्यङ्गः परहा शुचिः ॥१७
दृढव्रत केतुशृङ्ग ऋषयस्तस्य वर्ण्यते ।
देवश्रीर्वेदबाहुश्च ऊर्ध्वबाहुस्तथैव च ॥
हिरण्यरोमा पर्जन्यः सत्यनामा स्वधाम च ॥१८
अभूतरजश्चैवैक स्तथा देवाश्वमेधसः ।
वैकुण्ठश्चामृतश्चैव चत्वारो देवतागणाः ॥१९
गणे चतुर्दश सुरा विभुरिन्द्र प्रतापवान् ।
शान्तशत्रुर्हतो दैत्यो हंसरूपेण विष्णुना ॥२०
चाक्षुषस्य मनोः पुत्रा ऊरु पूरुर्महाबल ।
शतद्युम्नस्तपस्वी च सत्यबाहुः कृतिस्तथा ॥२१
अग्निष्णुरतिरात्रश्च सुद्युम्नश्च तथा नरः ।
हविष्मान्सुतनुः श्रीमान्स्वधामा विरजस्तथा ॥
अभिमानः सहिष्णुश्च मधुश्री ऋषयः स्मृताः ॥२२

उनका इन्द्र शिवि था और उसका शत्रु भीमरथ कहे गये हैं। भगवान् हरि ने कूर्मावतार धारण कर भीम रथ असुर का वध किया था ॥१६॥ रैवत मनु के पुत्र–महाप्राण साधक–वनबन्धु–निरमित्र—प्रत्यङ्ग—पराहा–शुचि–दृढ़ व्रत और केतुशृङ्ग हुए थे। अब उस मन्वन्तर के ऋषि वर्णित किये जाते हैं– देव श्री–वेदबाहु—ऊर्ध्व बाहु–हिरण्य रोमा–पर्जन्य–सत्य नामा और स्वधाम थे ॥१७।१८॥ अभूत रज–देवाश्वमेध–वैकुण्ठ और अमृत ये चार देवो के गण थे। इस गण मे चौदह सुर थे। उनका प्रतापवान् विभु इन्द्र हुआ था। उसका शत्रु शान्तासुर हुआ था जिस दैत्य का हंस रूप धारी भगवान् विष्णु ने हनन किया था ॥१९।२०॥ अब चाक्षुष मन्वन्तर को बतलाते हैं। चाक्षुष मनु के

पुत्र ऊरु—पूरु—महाबल—शतद्युम्न—तपस्वी—सत्य बाहु—कृति—अग्निष्णु—अतिरात्र—सुद्युम्न तथा नर ये हुए थे। हविष्मान्—सुतनु—श्रीमान्—स्वधामा—विरज—अभिमान—सहिष्णु और मधु श्री ऋषिगण बताये गये हैं ॥२१।२२॥

आर्य्या प्रसूता भाव्यश्च लेखाश्च पृथुकास्तथा।
अष्टमस्य गणाः पञ्च तथा प्रोक्ता दिवौकसाम् ॥२३
इन्द्रो मनोजव. शत्रुर्महाकालो महाभुज।
अश्वरूपेण स हतो हरिणा लोकधारिणा ॥२४
मनोर्वैवस्वतस्यैते पुत्रा विष्णुपरायणाः।
इक्ष्वाकुरथ नाभाख्यो विष्टि. सर्जातिरेव च ॥२५
हविष्यन्तस्तथा पाशुर्नभो नेदिष्ठ एव च।
करूपश्च पृषध्रश्च सुद्युम्नश्च मनो सुता ॥२६
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्जामदग्निश्च कश्यपः।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ सप्तम ॥२७
तथा ह्येकोनपञ्चाशन्मरुत परिकीर्त्तिता।
आदित्या वसव साध्या गणा द्वादशकास्त्रय ॥२८

आर्य्या—प्रसूता—भाव्य—लेखा और पृथुक ये देवों के अष्टम के पाँच गण कहे गये है। उनका इन्द्र मनोजव था और इन्द्र का शत्रु महा भुज महा काल हुआ था। उसका वध लोकों के धारण करने वाले भगवान् हरि ने अश्व का स्वरूप धारण करके किया था ॥२३.२४॥ अब वैवस्वत मन्वन्तर को बतलाया जाता है—वैवस्वत मनु के पुत्र सब विष्णु परायण हुए थे। उनके नाम ये हैं—इक्ष्वाकु—नाभाख्य—विष्टि—सर्जाति—हविष्यन्त—पाशु—नभ—नेदिष्ठ—करूप पृषध्र—सुद्युम्न हैं ॥२५।२६॥ अत्रि—वसिष्ठ—भगवान् जामदग्नि—कश्यप—गौतम भरद्वाज और विश्वामित्र ये उस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं ॥२७॥ उसमे उनचास मरुद्गण कहे गये हैं। आदित्य—वसु और साध्य ये तीन द्वादशक गण थे। तथा एकादश रुद्र हुए थे और अष्ट वसु थे। दो अश्विनीकुमार विनिर्दिष्ट किये गये हैं तथा दश विश्वेदेवा हैं ॥२८॥

एकादश तथा रुद्रा वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिता ।
द्वावश्विनौ विनिर्दिष्टौ विश्वेदेवास्तथा दश ॥
दशैवाङ्गिरसो देवा नव देवगणास्तथा ॥२६
तेजस्वी नाम वै शक्रो हिरण्याक्षो रिपु स्मृत ।
हतो वाराहरूपेण हिरण्याक्षोऽथ विष्णुना ॥३०
वक्ष्ये मनोर्भविष्यस्य सावर्ण्याख्यस्य वै सुतान् ।
विजयश्चार्ववीरश्च निर्देह सत्यवाक्कृतिः ॥
वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च वाच सगतिरेव च ॥३१
अश्वत्थामा कृपो व्यासो गालवो दीप्तिमानथ ।
ऋष्यशृङ्गस्तथा राम ऋषय सप्त कीर्त्तिता ॥३२
सुतपा अमृताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुरा ।
तेषा गणस्तु देवाना एकैको विंशक स्मृत ॥३३
विरोचनसुतस्तेषा बलिरिन्द्रो भविष्यति ।
दत्त्वेमा याचमानाय विष्णवे य पदत्रयम् ॥
ऋद्धमिन्द्रपद हित्वा तत सिद्धिमवाप्स्यति ॥३४
वारुणेर्दक्षसावर्णेर्नवमस्य सुतान् शृणु ।
धृष्टिकेतुर्दीप्तिकेतु पञ्चहस्तो निराकृति ॥
पृथुश्रवा बृहद्द्युम्न ऋचीकी बृहतो गुण ॥३५
मेधातिथिर्द्युतिश्चैव सबलो वसुरेव च ।
ज्योतिष्मान्हव्यकव्यौ च ऋषयो विभुरीश्वर ॥३६
परो मरीचिगर्भश्च स्वधर्माणश्च ते त्रय ।
देवशत्रु कालकाक्षस्तद्धन्ता पद्मनाभक ॥३७

दश अङ्गिरस देव हैं तथा नौ देवगण हैं ॥२६॥ तेजस्वी नाम वाला इन्द्र हुआ था और उसका शत्रु हिरण्याक्ष नामधारी दैत्य था। उस दैत्य का भगवान् विष्णु ने वराह अवतार लेकर वध किया था ॥३०॥ अब सावर्ण्य सज्ञा धारी भविष्य मनु के विषय में बतलायेंगे। सावर्ण्य मनु के पुत्र विजय—अववीर—निर्देह—सत्य वाक-कृति—वरिष्ठ—गरिष्ठ—वाच और सगति थे ॥३१॥ अश्व

श्यामा–कृप–व्यास–गालव–दीप्तिमान्–ऋष्य शृङ्ग–राम थे उस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं ।।३२।। सुतपा–अमृताभा और मुख्या ये उन देवों के गण हैं जो एकैक विंशक कहा गया है । उनका इन्द्र विरोचन का पुत्र बलि होगा जिसने भूमि के तीन पैड की याचना करने वाले वामन रूपधारी विष्णु को देकर और जो इस श्रद्ध इन्द्र पद का त्याग करके सिद्धि की प्राप्ति करेगा ।।३३।३४।। अब इसके अनन्तर वारुणि दक्ष सावर्णि नवम के पुत्रों को सुनो–धृष्टिकेतु–दीप्ति केतु–पञ्च हस्त–निराकृति–पृथुश्रवा–वृहद् द्युम्न–ऋचीक–वृहतो गुण—मेधातिथि—द्युति–सबल और वसु थे । ज्योतिष्मान्—हव्य–कव्य—विभ्र और ईश्वर ये ऋषिगण हुए थे । पर-मरीचि–गभ और स्वधर्मा ये तीन थे । देवों का शत्रु कालक सज्ञा वाला है । उसका हनन करने वाले पद्म नाम हुए हैं ।।३५।३६।३७।।

धर्मपुत्रस्य पुत्रास्तु दशमस्य मनोः शृणु ।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिश्रेण्यश्च वीर्य्यवान् ।।३८
शतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च शान्तिरिन्द्रः प्रतापवान् ।।३९
अयोमूर्तिर्हविष्माश्च सुकृतश्चाव्ययस्तथा ।
लाभगोऽप्रतिमश्चैव सौरभा ऋषयस्तथा ।।४०
प्राणाख्या शतसंख्यास्तु देवताना गणास्तदा ।
बलिशत्रुस्त हरिश्च गदया घातयिष्यति ।।४१
रुद्रपुत्रस्य ते पुत्रान् वक्ष्याम्येकादशस्य तु ।
सर्वत्रय सुशर्मा च देवानीक पुरुर्गुरुः ।।४२
क्षेत्रवर्णो दृढेपुश्च आर्द्रकः पुत्रकस्तथा ।
हविष्माश्च हविष्यश्च वरुणो विश्वविस्तरौ ।।४३
विष्णुश्चैवाग्नितेजाश्च ऋषय सप्त कीर्तिताः ।
विहङ्गमा. कामगमा निर्माणरुचयस्तथा ।।४४
एकैकश्चयस्तेषा गणश्चेन्द्रश्च वै वृष. ।
दशग्रीवो रिपुस्तस्य श्रीरूपी घातयिष्यति ।।४५

अब दसम मनु धर्म पुत्र के नामों का श्रवण करो—उनके नाम ये हैं-सुक्षेत्र-उत्तमौजा-भूरिश्रेण्य-वीर्यवान्-शतानीक—निरमित्र—वृषसेन-जयद्रथ-भूरिद्युम्न—सुवर्चा। इनका इन्द्र शान्ति नामधारी था जो बड़ा प्रताप वाला था ॥३८।३९। अयोमूर्त्ति-हविष्मान्-सुकृत-अव्यय-नाभाग-अप्रतिम और सौरभ य उस मन्वन्तर के ऋषिगण थे ॥४०॥ उस समय म प्राणाख्य सौ सख्या वाले देवताओं के गण थे। बलि के शत्रु को हरि गदा से घातित करेंगे ॥४१॥ अब मैं ग्यारहवे रुद्र पुत्र के पुत्रों को तुम्हे बतलाता हूँ-सर्वत्रग—सुशर्मा-देवानीक-पुरु-गुरु—क्षत्र वर्ण-दृढेपु-आर्द्रक व उसक पुत्रों के नाम हैं। हविष्मान्-हविष्य वरुण-विश्व-विस्तर विष्णु और अग्नि तेजा ये सात ऋषि बनाये गये हैं। विह ङ्गम-कामगम-निर्माण रुचि और एकंक रुचि उनके गण हैं। उनका वृष इन्द्र है। दश ग्रीव उसका शत्रु है उस शत्रु का श्री रूपी धान करेंगे ॥४२ से ४५॥

मनोस्तु दक्षपुत्रस्य द्वादशस्यात्मजान् शृणु।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथ ॥४६
मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रबन्धुश्च वीर्यवान्।
मित्रवाह प्रवाहश्च दक्षपुत्रमनो सुता ॥४७
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्त्तिस्तपोरति।
तपोधृतिर्द्युतिश्चान्य सप्तपयस्तपोधना ॥४८
स्वधर्माण सुतपसो हरितो रोहितस्तथा।
सुरारयो गणाश्चते प्रत्येक दशको गण ॥४९
ऋतधामा च भद्रेन्द्रस्तारको नाम तद्रिपु।
हरिर्नपु सको भूत्वा घातयिष्यति शङ्कर ॥५०
त्रयोदशस्य रौच्यस्य मनो पुत्रान्निबोध मे।
चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधर्मरतो धृति ॥५१
सुनेत्र क्षेत्रवृत्तिश्च सुनयो धर्मपा दृढ।
धृतिमानव्ययश्चैव निशारूपा निरुत्सुक ॥५२
निर्माणस्तत्त्वदर्शी च ऋपय सप्त कीर्त्तिता।
स्वरामाण स्वधर्माण स्वकर्माणस्तथामरा ॥५३

त्रयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवानां तत्र वै गणाः ।
इन्द्रो दिवस्पतिः शत्रुस्त्विष्टिमो नाम दानवः ॥५४
मायूरेण च रूपेण घातयिष्यति माधव ।
चतुर्दशस्य भौत्यस्य शृणु पुत्रान्मनोर्मम ॥५५

अब दक्ष पुत्र मनु के बारह पुत्रों का श्रवण करो—उनके नाम ये हैं—देववान्–उपदेव–देव श्रेष्ठ–विदूरथ–मित्रवाह—मित्रदेव–मित्रविन्दु–वीर्यवान्—मित्रवाह–प्रवाह ये सब दक्ष–पुत्र मनु के पुत्र हैं ॥४६।४७॥ तपस्वी–सुतपा–तपोमूर्ति–तपोरति–तपोधृति–द्युति और अन्य ये तपोधन सात ऋषि हैं ॥४८॥ स्वधर्मा–सुतपा–हरित—रोहित तथा सुरारि ये गण हैं और प्रत्येक के दशक गण हैं ॥४९॥ ऋतधामा भद्र इन्द्र है और उसका शत्रु तारक नाम वाला दैत्य है। हे शङ्कर ! हरि भगवान् नपुंसक होकर उसका हनन करेंगे ॥५०॥ अब तेरहवें रौच्य मनु के पुत्रों को जानलो, मैं उन्हें यहाँ बतलाता हूँ। उनके नाम चित्रसेन—विचित्र—तपोधर्म रत—धृति—सुनेत्र क्षेत्र वृत्ति हैं। धर्मप—दृढ़—धुतिमान्—अव्यय—निशारूप—निरुत्सुक निर्मोह और तत्वदर्शी ये सात ऋषि बताये गये हैं। स्वरोमाण–स्वधर्माण—स्वकर्माण देवगण हैं। उनके तैंतीस विभेद हैं जोकि यहाँ पर देवों के गण होते हैं। उनका दिवस्पति इन्द्र है। उस इन्द्र का शत्रु इष्टिम नामक दानव है। इस दानव का माधव मयूर का स्वरूप धारण करके हनन करेंगे। अब चौदहवें भौत्य मनु के पुत्रों को मुझसे श्रवण करो ॥५१ से ५५॥

ऊरुर्गम्भीरो धृष्टश्च तरस्वी ग्राह एव च ।
अभिमानी प्रवीरश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥
तेजस्वी दुर्लभश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ॥५६
अग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च मागधश्च तथा शुचिः ।
अजितो मुक्तशुक्रौ च सप्तर्षयः सप्त योगिनः ॥५७
चाक्षुषा कर्मनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिनस्तथा ।
वाचावृद्धा देवगणाः पञ्च प्रोक्तास्तु सप्तकाः ॥५८

शुचिरिन्द्रो महादैत्यो रिपुहन्ता हरिः स्वयम् ।
एको देवश्चतुर्द्धा तु व्यासरूपेण विष्णुना ॥५६
कृतस्ततः पुराणानि विद्याश्चाष्टादशैव तु ।
अङ्गानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः ॥६०
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ।
धनुर्वेदश्च गान्धर्वो विद्या ह्यष्टादशैव ताः ॥६१

भौत्य चतुर्दश मनु के पुत्रों के नाम ये हैं—ऊरु—गभीर—धृष्ट—तपस्वी—ग्राह—अभिमानी—प्रवीर—जिष्णु—संक्रन्दन—तेजस्वी—दुर्लभ ॥५६॥ अग्निध्र—अग्नि बाहु—मागध—शुचि—अजित—मुक्त और शुक्र ये चौदहवें मनु के सात ऋषि हैं। चाक्षुप—कर्मनिष्ठ—पवित्र—भ्रान्तिन और वाचा वृथा ये पाँच देवों के गण हैं जो कि सप्तक बताये गये हैं ॥५७।५८॥ उन देवताओं के इन्द्र का नाम शुचि है। उसका शत्रु महा दैत्य है जिसके हनन करने वाले स्वयं भगवान् हरि हैं। एक ही देव है। वही चार रूप से विद्यमान है। व्यास के रूप वाले विष्णु ने फिर समस्त पुराणों की रचना की है। अठारह विद्या—चार वेद—उन वेदों के छै अङ्ग शास्त्र—मीमांसा—न्याय शास्त्र का विस्तार—पुराण—धर्मशास्त्र—आयुर्वेद—अर्थशास्त्र—धनुर्वेद—गान्धर्व वेद ये ही सब अष्टादश विद्याएँ कही जाती हैं। इन सबकी रचना विष्णु ने व्यासदेव के स्वरूप में होकर की हैं ॥५९।६०।६१॥

४६—पित्राख्यान—पितृस्तोत्र

हरिर्मन्वन्तराण्याह ब्रह्मादिभ्यो हराय च ।
मार्कण्डेयः पितृस्तोत्रं क्रौञ्चुकिं प्राह तच्छृणु ॥१
रुचिःप्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहङ्कृतिः ।
यत्रास्तमितमायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥२
अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम् ।
विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुः स्वपितरो मुनिम् ॥३
वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रह ।
स्वर्गापवर्गसेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशं विना ॥४

को उत्पन्न न करके देवों और पितरों का तर्पण न करके तू कैसे मोएहच स्वर्गति को प्राप्त करना चाहता है ? क्लेश बोध से एक ही पुत्र तेरे अन्याय से होवे तो मृत के नरक को त्याग कर अन्य जन्म मे क्लेश ही होगा ।।६।७।८।६।।

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा ।
भवत्यतो मया पूर्वं न कृतो दारसग्रह. ।।१०
आत्मनः संशयोपायः क्रियते क्षणमन्त्रणात् ।
स्वमुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ।।११
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवस य आत्मा निष्परिग्रहः ।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि विद्याम्भोभिर्वर हि तत् ।।१२
अनेकभवसभूतकर्मपङ्काङ्कितो बुधै. ।
आत्मा तत्त्वज्ञानतोयैः प्रक्षाल्य नियतेन्द्रियैः ।।१३
युक्तं प्रक्षालन कर्त्तुमात्मनोऽपि यतेन्द्रियै. ।
किन्तु नोपायमार्गोऽयं यतस्त्व पुत्र वर्त्तसे ।।१४

रुचि ने कहा—इस संसार मे जो भी कुछ परिग्रह होता है वह अत्यन्त दु.ख के लिए ही हुआ करता है । परिग्रह पाप और अधोगति के करने के लिए होता है । इसीलिए मैंने दाराओं का सग्रह नहीं किया है ।। १० ।। आत्मा के सशय का उपाय मैं क्षण मन्त्रण से किया करता हू । यह परिग्रह से स्वमुक्ति का हेतु नही होता है ।।११।। जो निष्परिग्रह होकर अनुदिन आत्मा का प्रक्षालन करता है । विद्याम्भ से ममत्व के पङ्क से दिग्ध भी वह श्रेष्ठतर होता है ।।१२।। अनेक जन्मो मे होने वाले कर्मों के पङ्क से अङ्कित आत्मा को नियत इन्द्रियों वाले बुधजन तत्त्वज्ञान के जल से प्रक्षालित किया करते है ।।१३।। तब यह सुन कर पितरगण बोले—हे पुत्र ! यत इन्द्रियो वालो के द्वारा अपनी अनेक जन्मो मे पङ्काङ्कित आत्मा का प्रक्षालन करलेना बहुत युक्त है किन्तु यह तुम्हारे लिये कोई उपाय का मार्ग नही है जिसे कि तुम कर रहे हो ।।१४।।

पञ्चयज्ञैस्तपोदानैरशुभं नुदतस्तव ।
फलाभिसन्धिरहितं. पूर्वकर्म शुभाशुभं. ।।१५

एवं न बाधा भवति कुर्वतः करणात्मकम् ।
न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसन्धितम् ॥१६
पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयते ह्यनिशं तथा ।
सुखदुःखात्मकं वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम् ॥१७
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते ।
रक्ष्यश्च स्वविवेकेन पापपङ्केन लिप्यते ॥१८
अविद्या पच्यते वेदे कर्ममार्गा पितामहाः ।
तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ॥१९
अविद्या सर्वमेवैतत्कर्मणैतन्मृषा वच ।
किन्तु विद्यापरिप्राप्तौ हेतु कर्म न संशयः ॥२०
विहिताकरणानर्थो न सद्भिः क्रियते तु यः ।
संयमो मुक्तये योऽन्य प्रत्युताधोगतिप्रद ॥२१

पाप कर्मों से-तप और दानों से अशुभ कर्म का नोदन करने वाले तुम्हारा पूर्व कर्म शुभाशुभ फलों की अभिसन्धि से रहित है। इस प्रकार से करणात्मक कर्म करते हुए को बाधा नहीं होती है और वह कर्म बन्ध के लिये भी नहीं होता है क्योंकि वह अनभिसन्धित होता है जो पूर्व कर्म है वह निरन्तर भोगों के द्वारा क्षीण होता है। हे वत्स! मनुष्यों के पुण्यापुण्यात्मक कर्म सुख एवं दुःख स्वरूप भोगों से क्षीयमाण हो जाते हैं। इसी प्रकार से प्राज्ञ पुरुषों के द्वारा आत्मा-प्रक्षालित किया जाता है और बन्ध से रक्षित किया जाया करता है। और अपने विवेक से ही रक्षा करते रहते हैं जो कि पाप के पङ्क से लिप्यमान नहीं होता है॥१६ से १८॥ रुचि ने कहा—हे पितामहो! आप तो कर्म मार्ग पर हैं। वेद में इस अविद्या का पाठन किया जाता है। यह क्यों जानते हुए आप मुझे पुनः कर्म मार्ग में क्यों योजित कर रहे हैं? पितृगण बोले—यह सम्पूर्ण अविद्या ही है। यह कर्म ही है—यह बिल्कुल मिथ्या वचन है किन्तु विद्या परिप्राप्ति में कर्म हेतु है इसमें कोई भी संशय नहीं है॥ १९।२० ॥ सत्पुरुषों के द्वारा विहित कर्मों के न करने का दोष जो नहीं किया जाता है वह

सयम मुक्ति के लिए होता है बल्कि अन्य जो है वह अधोगति के प्रदान करने वाला है ॥२१॥

प्रक्षालयामीति भावान्यदेतन्मन्यते वरम् ।
विहिताकरणोद् भूतै पापैस्त्वमसि दह्यसे ॥२२
अविद्याऽप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् ।
अनुष्ठानाभ्युपायेन बन्धयोग्यापि नो हि सा ॥२३
तस्माद्वत्स कुरुष्व त्व विधिवद्दारसग्रहम् ।
आजन्म विफल तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलोकिकम् ॥२४
वृद्धोऽह साम्प्रत को मे पितर सम्प्रदास्यति ।
भार्य्यान्तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसग्रह ॥२५
अस्माक पतन वत्स भवतश्चाप्यधोगति ।
नून भावि भविश्री च नाभिनन्दसि नो वच ॥२६
इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम ।
बभूवु सहसाऽदृश्या दीपा वातहता इव ॥२७
मुनि क्रौञ्चुक्ये प्राह मार्कण्डेयो महातपा. ।
रुचिवृत्तान्तमखिल पितृसवादलक्षणम् ॥२८

मैं भावो का प्रक्षालन कर रहा हूँ—यहां जो तुम श्रेष्ठ मानते हो वह तुम विहित कर्म के न करने से समुत्पन्न पापो से दग्ध हो रहे हो ॥२२॥ अविद्या भी मनुष्यो को विष की भाँति उपकार के लिये होती है । वह अविद्या अनुष्ठान के अभ्युपाय मे बन्ध के योग्य भी नही है ॥२३॥ इससे हे वत्स ! तुम विधि पूर्वक दारा का सग्रह करो । आजन्म अन्य लौकिक को सम्प्राप्त न करके तेरा जन्म विफल होवे ॥२४॥ इसके पश्चात् रुचि ने कहा—हे पितृवृन्द ! मैं तो इस समय वृद्ध हो गया हू अब मुझे कौन भार्या प्रदान करेगा । मुझ जैसे दरिद्री को इस समय दार सग्रह करना अत्यन्त कठिन कार्य है ॥२५॥ तब पितरों ने कहा—हे वत्स ! तुम हमारे वचन को नही स्वीकार कर रहे हो तथा अपने भावि एव भविश्रा जो ता का भो अ ना दा नहीं करते हो ।

इससे हम लोगों का तो पतन होगा और तुम्हारी भी अधोगति हो जायगी। ।।२६।। हे मुनि सत्तम ! उसके पितृगण इतना कह कर उसके देखते-देखते ही बात से हत दीपों की भाँति सहसा अदृश्य हो गये थे ।।२७।। महान् तपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने क्रौञ्चुकि से कहा था यह सम्पूर्ण रुचि का वृत्तान्त और उसके साथ होने वाला पितरों के साथ सम्वाद है ।।२८।।

५०- पित्राख्यान—पितृस्तोत्र (२)

पृष्ट क्रौञ्चुकिनोवाच मार्कण्डेय पुनश्च तम् ।
स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानस ।।१
कन्याभिलाषी वि-र्षि परिबभ्राम मेदिनीम् ।
कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्येन दीपित ।।
चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानस ।।२
किं करोमि क्व गच्छामि कथ मे दारसग्रह ।
क्षिप्र भवेन्मत्पितृणा ममाभ्युदयकारकम् ।।३
इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मन ।
तपसाऽऽराधयाम्येन ब्रह्माण कमलोद्भवम् ।।४
ततो वपशत दिव्य तपस्तपे महामना ।
तत्र स्थितश्चिर काल वनेषु नियमस्थित ।।
आराधनाय स तदा पर नियममास्थित ।।५
तत प्रदर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामह ।
उवाचाथ प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ।।६
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माण जगता गतिम् ।
पितृणा वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ।।७

सूतजी ने कहा—क्रौञ्चुकि के द्वारा पूछे गये मार्कण्डेय मुनि ने पुन उससे कहा कि वह रुचि उन पितरों के वाक्य से बहुत ही अधिक उद्विग्न मन वाला हो गया था ।।१।। अब तो वह रुचि किसी कन्या प्राप्त करने की इच्छा वाला होकर सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल में भ्रमण करने लगा था। उसे जब कहीं

नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिनः ॥१७
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८
नमस्येऽहं पितॄन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकल्मषैः ॥१९
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकैर्धर्मचारिभिः ।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः २०
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ॥२१

मैं अपने पितरो को नमस्कार करता हूं जिनको स्वर्ग मे सिद्ध लोग श्राद्धो मे समस्त दिव्य और परमोत्तम उपहारो के द्वारा सन्तृप्त किया करते हैं ॥१५॥ मैं अपने पितृगण की सेवा मे प्रणाम करता हू जोकि दिविलोक मे तन्मयता के साथ परा आत्यन्तिकी ऋद्धि की इच्छा करने वाले गुह्यकों के द्वारा भक्ति-भाव से समर्चित किये जाते है ॥१६॥ मैं अपने पितरो को प्रणाम करता हू जो सदा इस भूमण्डल मे मनुष्यो के द्वारा बडी श्रद्धा से अभीष्ट लोक और पुष्टि के प्रदान करने वाले श्राद्धो मे पूजित किये जाते हैं ॥१७॥ मैं अपने पितृगण को प्रणाम करता हूं जो पितरगण सर्वदा इस मही मण्डल मे प्राजापत्य के प्रदान करने वाले हैं और वाछित अभीष्ट लाभ के देने वाले हैं विप्रो के द्वारा समर्चित हुआ करते हैं ॥१८॥ मैं अपने पितृदेवो की सेवा मे प्रणाम करता हू जो वो वन मे निवास करने वाले—तपस्या से निर्धूत कल्मष वाले और आहार वाले मनुष्य श्राद्धो के द्वारा सदा तृप्त किया करते हैं ॥१९॥ मैं उन पितरो को प्रणाम करता हू जो धर्मचारी—संयत आत्मा वाले नैष्ठिक विप्रो के द्वारा नित्य ही समाधियो के द्वारा सन्तृप्त किये जाया करते हैं ॥२०॥ मैं उन पितृ देवो को नमस्कार करता हूं जिनको क्षत्रिय लोग लोक द्वार के फलो को देने वाले होने के कारण विधि पूर्वक सम्पूर्ण श्राद्धो में कव्यो के द्वारा तृप्त करते हैं ॥२१॥

वे मेरे मनोपनीत को प्रदान करें ॥२७॥ मैं पितृगणों को प्रणाम करता हूँ जो परमार्थ स्वरूप एवं अमूर्त्त रूप वाले विमान में निवास किया करते हैं और जिनको क्लेशों की मुक्ति के कारण भूतों को योगीश्वर गण निरस्त मत वाले मनों से यजन किया करते हैं ॥२८॥

पितृन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥२६
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमितोऽधिकं वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि ॥३०
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥३१
येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसस्थाः ।
ये पिण्डदानेन मुद प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥३२
ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥३३
कथान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषां मम पूजितानाम् ।
तेषाञ्च सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु ।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम् ३५

मैं पितरों को नमस्कार करता हूँ जो दिवलोक में मूर्त्त रूप वाले हैं और काम्य फल की अभिसन्धि में स्वधा का योग करने वाले हैं तथा समस्त अभीष्टों के प्रदान करने में समर्थ हैं एवं जो किसी फल की आकाङ्क्षी नहीं हैं उनको विमुक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥२६॥ इच्छा रखने वालों की कामनाओं को जो पूर्ण किया करते हैं वे समस्त पितृगण इसमें तृप्ति लाभ करें। सुरत्व प्राप्त करने की—इन्द्र के पद पाने की या इससे भी अधिक कोई पद पाने की अभिलाषा हो और गज—अश्व—रत्न एवं महान् गृह पाने की कामना हो पितृगण सभी को पूर्ण किया करते हैं ॥३०॥ जो चन्द्रमा की रश्मियों में—

रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ।
सर्वतः पितरो रक्षां कुर्वन्तु मम नित्यशः ॥४२

द्विजो के जो कुमुद और चन्द्र की आभा के समान आभा वाले पूज्य हैं जो क्षत्रियो के अग्नि और सूर्य के तुल्य वर्ण वाले हैं तथा वैश्यो के सुवर्ण के समान अवदात है और शूद्रो के जो नीली की प्रभा के तुल्य प्रभा वाले हैं वे समस्त पितृगण इसमे मेरे द्वारा निवेदित किये पुष्प—गन्ध-धूप-जल और भोजनीय पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होवें तथा जो अग्निहोम से तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं उन पितरो को मैं सदा प्रणाम करता हूं ॥ ३६।३७ ॥ जो देव पूर्व अभि तृप्ति प्राप्त करने के लिए शुभ एव आहृत कव्यो का अशन किया करते है जो भूति के सृजन करने वाले तृप्त हैं वे यहाँ पर भी तृप्त हो जावें। मैं उनके समक्ष मे प्रणत होता हूं ॥३८॥ जो पितृगण हैं वे राक्षस—भूत तथा अन्य उग्र असुरो का एव प्रजाओ के अशुभ हैं उसका नाश कर देवे । जो सुरो में सर्व प्रथम हैं और देवेश के द्वारा पूजा के योग्य हैं वे पितर इसमे तृप्ति का लाभ करें। मैं उनको प्रणाम करता [illegible] ॥३९॥ अग्निस्वात्त-बर्हिषद—आज्यप तथा सोमपान करने वाले है वे समस्त पितर मेरे द्वारा इस श्राद्ध मे तर्पित होते हुए परम तृप्ति को प्राप्त होवें ॥४०॥ अग्निष्वात्त पितृगण मेरी प्राची दिशा की रक्षा करें। बर्हिषद पितृगण सदा मेरी याम्य दिशा की रक्षा करें। आज्य (घृत) का पान करने वाले पितृगण प्रतीची दिशा और सोमपान करने वाले उदीची दिशा मे रक्षा करे ॥४१॥ पितरगण सर्वदा नित्य ही राक्षस-भूत-पिशाचो से तथा असुरो के किये हुए दोषो से मेरी रक्षा करें ॥४२॥

विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः ।
भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव ॥४३
कल्याणः कल्यदः कर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रय. ।
कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ॥४४
वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिदः पुष्टिदस्तथा ।
विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणाः स्मृताः ॥४५

महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः ।
गणाः पञ्च तथैवैते पितॄणां पापनाशनाः ।।४६
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ।
पितॄणां कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ।।४७
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
त एवात्र पितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितम् ।।४८
एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः ।
प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ।।४९
तद् दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समाच्छाद्य स्थितं जगत् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ।।५०

विश्व–विश्व भुक्—आराध्य–धर्म–धन्य—शुभानन–भूतिद—भूति कृत् और भूति ये पितरो के नौ गण है ।। ४३ ।। कल्याण–कल्यद–कर्त्ता—कल्य–कल्यतराश्रय–कल्यका हेतु और अनघ ये छै गण कहे गये है ।।४४।। वर—वरेण्य–वरद–तुष्टिद–पुष्टिद–विश्व पाता और धाता ये सात गण कहे गये हैं ।। ४५ ।। महान्–महात्मा–महित–महिमावान्–महाबल ये पापो के नाश करने वाले पितरो के उसी प्रकार से पाँच गण है ।। ४६ ।। सुखद–धनद–अन्य धर्मद और अन्य भूतिद ये उसी भाँति पितरो के चार गण कहे जाते है ।।४७।। इस प्रकार से इकत्तीस पितृगण है जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । वे सभी यहाँ मेरे निवेदित श्राद्ध म पितृगण तृप्ति को प्राप्त होवें ।।४८।। मार्कण्डेय जी बोले—इस प्रकार से स्तवन करते हुए उसकी तेज की राशि उच्छ्रित हुई और तुरन्त ही गगन मे व्याप्ति करने वाली वह प्रादुर्भूत हुई थी ।।४९।। उस सुमहान् तेज को देखकर जो कि सम्पूर्ण जगत् को समाच्छादित कर स्थित था, घुटनो के बल से भूमि पर स्थित होकर रुचि ने इस स्तोत्र का गायन किया था ।। ५० ।।

अर्चितानाममूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ।।५१

इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ॥५२
मन्वादीनाञ्च नेतारः सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्यहं सर्वान्पितॄनप्युद्दधार सः ॥५३
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥५४
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥५५
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ।
स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥५६
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्त्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥५७

रुचि ने कहा—अर्चित एवं अमूर्त तथा दीप्त तेज वाले—ध्यानी और दिव्य चक्षुओं वाले उन पितृगणों को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ इन्द्र आदि देवों के नेता—दक्ष और मारीच के नेता—सप्तर्षियों के तथा अन्यों के नेता उन कामनाओं के देने वालों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५२॥ मनु आदि के नेता तथा सूर्य और चन्द्र के नायक मैं उन सब पितृगण को नमस्कार करता हूँ । उसने समस्त पितरों का उद्धार किया था ॥५३॥ नक्षत्रों—ग्रहों का नेता—वायु और अग्नि का नेता—नभका एवं द्यावा पृथिवी के नेता उनको मैं कृताञ्जलि होकर प्रणाम करता हूँ ॥५४॥ प्रजापति कश्यप—सोम—वरुण और योगेश्वरों के लिए मैं सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ सात लोकों में सात गणों के लिये नमस्कार है । स्वायम्भू के लिए नमस्कार है और योगचक्षु वाले ब्रह्मा के लिए नमस्कार है ॥५६॥ सोमाधार तथा योग मूर्तिधर पितृगणों को एवं जगतों के पिता सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् ।
अग्निसोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥५८

ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥५६
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्य. पितृभ्यो यतमानमः ।
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥६०
एवंस्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमाः ।
निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥६१
निवेदनञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थितान् ॥६२
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥६३
ततः प्रसन्ना· पितरस्तमूचुर्मु निसत्तमम् ।
वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धर· ॥६४

अग्नि रूप अन्य पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि सोममय है ॥५८॥ और जो ये तेज मे हैं तथा जो वे सोम–सूर्य और अग्नि की मूर्त्ति वाले है । इस सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले हैं तथा ब्रह्म के स्वरूप वाले हैं उन समस्त योगी पितरो को दत्तचित्त होकर मेरा बारम्बार नमस्कार है मेरा आपके लिये प्रणाम है । सब स्वधा भोजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥५६।६०॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर इस प्रकार से उसके द्वारा स्तवन किये गये तेज स्वरूप मुनि सत्तम वे पितृगण दशों दिशाओं को भासित करते हुए निकले थे ॥ ६१ ॥ उसके द्वारा जो भी कुछ पुष्प–गन्ध और अनुलेपन निवेदित किया गया था उस सबसे विभूषित उनको साम ने स्थित उसने देखा था ॥६२॥ रुचि ने फिर हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया और बहुत ही भक्ति के भाव से प्रणिपात किया था । रुचि ने "आपको नमस्कार है–आपको नमस्कार है"–ऐसा पृथक् रूप से आदर के साथ कहा था ॥६३॥ इसके अनन्तर पितरगण उस पर बहुत प्रसन्न हुए और मुनि श्रेष्ठ से बोले–तुम अपना अभीष्ट वरदान माँग लो । इसे सुनकर अपनी गरदन नीचे झुकाकर उनसे कहा—॥६४॥

प्रजाना सर्गकर्त्तृत्वमादिष्ट ब्रह्मणा मम ।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्या दिव्या प्रजावतीम् ॥६५
अत्रैव सद्य पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ।
तस्याञ्च पुत्रो भविता भवतो मुनिसत्तम ॥६६
मन्वन्तराधिपो धीमास्तन्नाम्नैवोपलक्षित ।
रुचे रौच्य इति ख्याति प्रयास्यति जगत्त्रये ॥६७
तस्यापि बहव पुत्रा महाबलपराक्रमा. ।
भविष्यन्ति महात्मान पृथिवीपरिपालका. ॥६८
त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजा सृष्ट्वा चतुर्विधा ।
क्षीणाधिकारो धर्मज्ञस्तत सिद्धिमवाप्स्यसि ॥६९
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मास्तोष्यति भक्तित ।
तस्य तुष्टा वय भोगानात्मज ध्यानमुत्तमम् ॥७०

रुचि ने कहा—प्रजाओ के सर्ग को करने के लिए ब्रह्माजी ने मुझे आदेश प्रदान किया है। इसलिये मैं प्रजा का सृजन करने के लिए परमदिव्य धन्य और प्रजाओं वाली पत्नी चाहता हू ॥६५॥ पितृगण ने कहा—यहाँ पर ही तुरन्त ही अत्यन्त मनोरमा आपकी पत्नी हो जावेगी। हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! उस पत्नी मे तुम्हारे एक पुत्र होगा ॥६६॥ वह मन्वन्तर का स्वामी—परम बुद्धिमान् और उसी नाम से उपलक्षित रुचि का रौच्य इस ख्याति को तीनो जगत् म प्राप्त करेगा ॥६७॥ इसके भी बहुत-से पुत्र होगे जो महान् बल और पराक्रम वाले होंगे और महान् आत्मा वाले तथा पृथ्वी के परिपालन करने वाले होंगे ॥६८॥ और तुम प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा का सृजन करके क्षीण अधिकार वाले होते हुए धर्म के ज्ञाता हो जोगे और इसके अनन्तर परम सिद्धि की प्राप्ति करोगे ॥६९॥ इस स्तोत्र से जो मनुष्य हमारी भक्ति के सहित स्तुति करेगा उस पर हम परम सन्तुष्ट होते हैं और उसे समस्त भोग—पुत्र तथा उत्तम ध्यान प्रदान किया करते हैं ॥७०॥

आयुरोग्यमर्थञ्च पुत्र पौत्रादिक तथा ।
वाञ्छद्भि सतत स्तव्या. स्तोत्रेणानेन वै यत ॥७१

श्राद्धेषु य इम भक्त्या अस्मत्प्रीतिकर स्तवम् ।
पठिष्यति द्विजाग्र्याणा भुञ्जता पुरत. स्थितः ॥७२
स्तोत्रश्रवणसप्रीत्या सन्निधाने परे कृते ।
अस्माभिरक्षय श्राद्ध तद्भविष्यत्यसशयः ॥७३
यद्यप्यश्रोत्रिय श्राद्ध यद्यप्युपहत भवेत् ।
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥७४
अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतैः ।
अकालेऽप्यथवा देशे विधिहीनमथापि वा ॥७५
अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य यत्कृतम् ।
अस्माक तृप्तये श्राद्ध तथाप्येतदुदीरणात् ॥७६
यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ।
अस्माक जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥७७

जो आयु–आरोग्य–अर्थ और पुत्र–पौत्रादिक के प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं उन्हें इस स्तोत्र से निरन्तर हमारी स्तुति करनी चाहिए ॥७१॥ श्राद्धों में जो इस हमारी प्रीति के समुत्पन्न करने वाले स्तव का भक्ति भाव के साथ पाठ करेगा जबकि श्राद्ध के समय में ब्राह्मण लोग भोजन कर रहे होवे । उनके समक्ष में स्थित होकर इसको पढ़ेगा तो इस स्तोत्र के श्रवण की प्रीति से हमारे द्वारा सन्निधान को किये जाने पर वह श्राद्ध अक्षय हो जायगा–इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥७२॥७३॥ यद्यपि श्रोत्रिय विप्रो से रहित श्राद्ध हो–यद्यपि उपहृत और अन्याय से प्राप्त किये हुए धन से किया गया हो जिसका कि विधान नहीं है–श्राद्ध के अयोग्य एव उपहृत उपहारों से किया गया हो और अकाल एवं अदेश में विधान से रहित किया गया हो–बिना श्राद्ध के दम्भ का आश्रय लेकर पुरुषों के द्वारा किया गया हो किन्तु यदि इस स्तव का पाठ किया जावे तो वह भी हमारी परम प्रीति के लिए हो जाता है ॥७४॥७५॥७६॥ जिस श्राद्ध में हमारे सुख के देने वाले इस स्तव का पाठ किया जाता है तो हमको बारह वर्ष के लिए इससे परम प्रीति एव तृप्ति हो जाया करती है ॥७७॥

हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ।
शिशिरे द्विगुणाब्दानि तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ।।७८
वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ।
ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ७९
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ।
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ।।८०
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ।
अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ।।८१
यस्मिन्गेहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ।
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ।।८२
तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः ।
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिकारकम् ।।८३

यदि इस प्रकार से इस स्तोत्र के पाठ के साथ हेमन्त ऋतु में श्राद्ध करें तो बारह वर्ष तक के लिए तृप्ति होती है । शिशिर ऋतु में किये गये ऐसे श्राद्ध से इससे भी दुगुनी तृप्ति अर्थात् चौबीस वर्ष तक के लिए होती है । ऐसा यह परम शुभ स्तोत्र है ।।७८।। वसन्त ऋतु में सोलह वर्ष के लिए इस श्राद्ध कर्म से तृप्ति होती है । ग्रीष्म ऋतु में भी सोलह वर्ष की तृप्ति इस स्तोत्र के पठन करने से समुत्पन्न होती है ।।७९।। श्राद्ध चाहे विकल भी किया गया हो किन्तु इस स्तोत्र से यदि वह साधित किया जावे तो हे रुचे ! वर्षा ऋतु में किये गये श्राद्ध से हम लोगों की तृप्ति अक्षय होती है ।।८०।। शरत् ऋतु में किये गये श्राद्ध के समय में इस स्तव के द्वारा हमारी पन्द्रह वर्ष के लिए तृप्ति होती है ।।८१।। जिस घर में यह लिखा हुआ स्तोत्र नित्य ही विद्यमान रहा करता है तो श्राद्ध के सन्निधान करने पर वह हमारे लिये ही हो जायगा ।।८२।। इसलिये हे महा भाग ! तुमको श्राद्ध के समय में विप्रों के भोजन करने के अवसर पर उनके समक्ष में इस स्तोत्र को श्रवण करना चाहिए । इससे हमको परम पुष्टि होती है ।।८३।।

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा ।
प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सरा ॥८४
सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् ।
प्रमादयामास भूय प्रम्लोचा च वराप्सरा ॥८५
अतीवरूपिणी कन्या मत्प्रसादाद्वराङ्गना ।
जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥८६
ता गृहाण मया दत्ता भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्या समुत्पत्स्यति ते सुत ॥८७
तथेति तेन साप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उद्धार तत कन्या मानिनी नाम नामत ॥८८
नद्याश्च पुलिने तस्मिन्स मुनिर्मुनिसत्तमा ।
जग्राह पाणि विधिवत्समानीय महामुनि ॥८९
यस्या तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महाद्युति. ।
रुचे रौच्य इति ख्यातो यो मया पूर्वमीरित ॥९०

श्री मार्कण्डेय महामुनि ने कहा — इसके अनन्तर उस नदी के मध्य भाग से परम सुन्दरी प्रम्लोचा नाम वाली एक तन्वङ्गी उत्थित हुई जोकि एक बहुत ही श्रेष्ठ अप्सरा थी । वह उसके समीप में आई और उस महान् आत्मा वाले रुचि से अत्यन्त मधुर अक्षरो म बोली तथा उस प्रम्लोचा अप्सरा ने उसको प्रसन्न कर दिया था ॥८४।८५॥ उसने कहा कि वरुण के पुत्र पुष्कर के द्वारा मेरी कृपा से अतीव रूप वाली तथा परम श्रेष्ठ अङ्गों वाली कन्या उत्पन्न हुई है उसे मैं आपकी सेवा म समर्पित करती हू आप उसे अपनी भार्या के रूप मे वर वर्णिनी को ग्रहण कीजिए । उसमे महान् मति वाले मनु आपके पुत्र समुत्पन्न होगे ॥८६।८७॥ मार्कण्डेय मुनि न कहा—ऐसा ही होगा—इस तरह से रुचि ने उनके कथन को स्वीकार कर लिया तो फिर उस जल स एक परम सुन्दरी मानिनी नाम वाली कन्या को उससे निकाला था ॥८८॥ हे मुनि सत्तमो ! उसी नदी के पुलिन मे उस मुनि ने उसे लाकर विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया था ॥८९॥ फिर उसमे उनका एक महान् वीर्य वाला तथा अत्यन्त द्युति

से सम्पन्न पुत्र हुआ था जोकि रुचि का पुत्र रौच्य—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था जैसा कि हमने पहिले ही आपको बतला दिया है ॥६०॥

५१—हरिध्यान माहात्म्य

स्वायम्भुवाद्या मुनयो हरिं ध्यायन्ति कर्मणा ।
व्रताचारार्चनाध्यानस्तुतिजप्यपरायणा ॥१
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
आकाशेन विहीनं वै तेजसा परिवर्जितम् ॥२
उदकेन विहीनं वै तद्धर्मपरिवर्जितम् ।
पृथिवीरहितञ्चैव सर्वभूतविवर्जितम् ॥३
भूताध्यक्षं तथा बुद्धं नियन्तारं प्रभुं विभुम् ।
चैतन्यरूपतारूपं सर्वाध्यक्षं निरञ्जनम् ॥४
मुक्तसङ्गं महेशानं सर्वदेवप्रपूजितम् ।
तेजोरूपमसत्त्वञ्च तपसा परिवर्जितम् ॥५
रहितं रजसा नित्यं व्यतिरिक्तं गुणैस्त्रिभिः ।
सर्वरूपविहीनं वै कर्तृत्वादिविवर्जितम् ॥६
वासनारहितं शुद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
पिपासावर्जितं तत्तच्छोकमोहविवर्जितम् ॥७

सूतजी ने कहा—व्रत—आचार—अर्चना—ध्यान—स्तुति और जाप्य में तत्पर स्वायम्भुव आदि मुनिगण कर्म के द्वारा भगवान् श्री हरि का ध्यान करते हैं। वह हरि देह—इन्द्रिय—मन—बुद्धि—प्राण और अहङ्कार से वर्जित हैं। पृथ्वी से रहित हैं, आकाश से हीन और तेज से विहीन हैं। जल से रहित और उसके धर्म से परिवर्जित हैं एवं समस्त भूतों से रहित हैं ॥१।२।३॥ श्री हरि समस्त भूतों के अध्यक्ष—बुद्ध—नियन्ता—प्रभु—विभु—चैतन्य रूपता के रूप वाले—सबके अधिपति और निरञ्जन हैं ॥४॥ मुक्त सङ्ग वाले—महेशान और समस्त देवों के द्वारा प्रपूजित हैं। श्री हरि तेजो रूप वाले—असत्व और तप से परिवर्जित हैं ॥५॥ रजोगुण से रहित और तीनों गुणों से व्यतिरिक्त हैं। सब

प्रकार के रूपों से विहीन और हरि भगवान् कर्त्तृत्व आदि से विवर्जित हैं ॥६॥ वे वासना से रहित हैं, शुद्ध हैं, सम्पूर्ण दोषों से विवर्जित-प्यास से रहित और तत्तत् शोक से वर्जित हैं ॥७॥

जरामरणहीनं वै कूटस्थं मोहवर्जितम् ।
उत्पत्तिरहितञ्चैव प्रलयेन विवर्जितम् ॥८
सर्वाचारहीनं सत्यं निष्कलं परमेश्वरम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिवर्जितं नामवर्जितम् ॥९
अप्रत्यक्षं जाग्रदादीनां शान्तरूपं सुरेश्वरम् ।
जाग्रदादिस्थितं नित्यं कार्य्यकारणवर्जितम् ॥१०
सर्वदृष्टं तथा मूर्त्तं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं परम् ।
ज्ञानदृक्श्रोत्रविज्ञानं परमानन्दरूपकम् ॥११
विश्वेन रहितं तद्वत्तैजसेन विवर्जितम् ।
प्राज्ञेन रहितञ्चैव तुरीयं परमाक्षरम् ॥१२
सर्वगोप्तृ सर्वहन्तृ सर्वभूतात्मरूपि च ।
बुद्धिधर्मविहीनं वै निराधारं शिवं हरिम् ॥१३

भगवान् हरि जरा (वृद्धावस्था) और मरण से रहित-कूटस्थ—मोह से वर्जित-उत्पत्ति से रहित और प्रलय से वर्जित हैं ॥८॥ सम्पूर्ण आचारों से हीन सत्यस्वरूप-निष्कल परम ईश्वर नाम से हीन और जाग्रति, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्थाओं से वर्जित हैं अर्थात् जाग्रति आदि कोई भी अवस्था उनमें नहीं होती है ॥९॥ जाग्रद् आदि के अप्रत्यक्ष हैं—शान्त स्वरूप हैं और सुरों के ईश्वर हैं—जाग्रत् आदि में स्थित-नित्य-कार्य और कारण से वर्जित हैं ॥१०॥ भगवान् सर्व दृष्ट-मूर्त्त सूक्ष्म तथा परम सूक्ष्मतर हैं। ज्ञान-दृक् और श्रोत्र के विज्ञान वाले—परम आनन्द के स्वरूप से समन्वित हैं ॥११॥ वे हरि विश्व से रहित और तैजस से विवर्जित-प्राज्ञ से रहित एवं तुरीय तथा परमाक्षर हैं ॥१२॥ सबके गोप्ता-सभी के हन्ता और समस्त भूतों के आत्मरूपी-बुद्धि, धर्म से विहीन-निराधार-शिव और हरि हैं ॥१३॥

विक्रियारहितश्चैव वेदान्तैर्वेद्यमेव च ।
वेदरूप परं भूतमिन्द्रियेभ्य परं शुभम् ॥१४
शब्देन वर्जितश्चैव रसेन च विवर्जितम् ।
स्पर्शेन रहितं देव रूपमात्रविवर्जितम् ॥१५
रूपेण रहितश्चैव गन्धेन परिवर्जितम् ।
अनादि ब्रह्मरन्ध्रान्तमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥१६
एवं ज्ञात्वा महादेव ध्यानं कुर्य्याज्जितेन्द्रिय ।
ध्यानं य कुरुते ह्येवं स भवेद् ब्रह्म मानव ॥१७
इति ध्यानं समाख्यातमीश्वरस्य मया तव ।
अधुना कथयाम्यन्यत्किं तद् ब्रूहि वृषध्वज ॥१८

भगवान् समस्त प्रकार की विक्रियाओं से रहित है तथा वेदान्तों के द्वारा जानने के योग्य हैं–हरि वेदों के स्वरूप वाले–पर भूत–इन्द्रियों की पहुंच से पर एवं शुभ स्वरूप वाले हैं। वे शब्द से–रस से–स्पर्श से रहित देव हैं। केवल रूप से रहित हैं ॥१४।१५॥ रूप–गन्ध से परिवर्जित हैं–अनादि हैं–ब्रह्म रन्ध्र के अन्त और मह केवल ब्रह्म हूं—ऐसे स्वरूप वाले हैं ॥१६॥ हे महादेव ! जितेन्द्रिय पुरुष को इस रीति से भगवान् श्री हरि का ज्ञान एवं ध्यान करना चाहिए। जो इस विधि से ध्यान किया जाता है वह मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है। मैंने यह ईश्वर का ध्यान करने का प्रकार सम्पूर्ण तुमको बतला दिया है। अब आगे यह बतलाओ हे वृषध्वज ! मैं आपको क्या बताऊँ ? ॥१७।१८॥

५२—विष्णुध्यान माहात्म्य

विष्णोर्ध्यानं पुनर्ब्रूहि शङ्खचक्रगदाधर ।
येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नर ॥१
प्रवक्ष्यामि हरेर्ध्यानं मायातन्त्रविमर्दकम् ।
मूर्त्तामूर्त्तादिभेदेन तद्ध्यानं द्विविधं हर ॥२
अमूर्त्तं रुद्र कथितं हृत मूर्त्तं ब्रवीम्यहम् ।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशो जिष्णुर्भ्राजिष्णुरेव त ॥३

कुन्दगोक्षीरधवलो हरिर्ध्येयो मुमुक्षुभिः ।
विशालेन सुसौम्येन शङ्खेन च समन्वितः ॥४
सहस्रादित्यतुल्येन ज्वालामालोग्ररूपिणा ।
चक्रेण चान्वितः शान्तो गदाहस्तः शुभानन ॥५
किरीटेन महार्हेण रत्नप्रज्वलितेन च ।
आयुधः सर्वगो देव. सरोरुहधरस्तथा ॥६
वनमालाधरः शुभ्रः समांसो हेमभूषणः ।
सुवस्त्र शुद्धदेहश्च सुकर्णं पद्मसंस्थितः ॥७

श्री रुद्र ने कहा—हे शङ्ख चक्र और गदा के धारण करने वाले ! आप भगवान् विष्णु के ध्यान करने की विधि पुन बतलाइये जिसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाया करता है ॥१॥ श्री हरि ने कहा—अब मैं हरि के ध्यान को तुम्हे बतलाता हूँ जो ध्यान इस माया तन्त्र का विवर्दन करने वाला है । हे हर ! वह हरि का ध्यान मूर्त्त ध्यान एव अमूर्त्त ध्यान इन भेदों से दो प्रकार का होता है ॥२॥ हे रुद्र ! जो अमूर्त्त ध्यान होता है वह तो मैंने अभी तुमको बतला ही दिया है । अब मैं भगवान् हरि के मूर्त्त ध्यान को बतलाता हूँ । उसका श्रवण करो । करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले—विष्णु और हरि भ्राजिष्णु होते हैं ॥३॥ कुन्द के पुष्प और गाय के दुग्ध के समान धवल वर्ण वाले हरि का ध्यान मुक्ति की इच्छा करने वालों को करना चाहिए । हरि का स्वरूप विशाल एव परम सौम्य शङ्ख से समन्वित है ॥ ४ ॥ भगवान् हरि सहस्रों सूर्यों के तुल्य ज्वालाओं की मालाओं से उग्र रूप वाले चक्र से समन्वित हैं । हरि का स्वरूप परम शान्त है । उनका आनन परम शुभ है और गदा हाथों में धारण किये हुए हैं ॥ ५ ॥ रत्नों की प्रभा से अतीव जाज्वल्यमान, महान् कीमती किरीट से सुशोभित हैं । भगवान् हरि का स्वरूप आयुधों से युक्त सर्वत्र गमनशील और कमल के धारण करने वाला है ॥६॥ वनमाला धारी—शुभ्र-समान अंसों से युक्त और सुवर्ण के भूषणों से शोभित श्री हरि हैं । पद्मासन पर विराजमान परम सुन्दर वस्त्रों को धारण किये हुए—शुद्ध देह वाले और सुन्दर कानों वाला श्री हरि का स्वरूप है ॥७॥

हिरण्मयशरीरश्च चारुहारो शुभाङ्गद ।
केयूरेण समायुक्तो वनमालासमन्वित ॥८
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो लक्ष्मीवक्षेक्षणान्वित ।
अणिमादिगुणैर्युक्त सृष्टिसंहारकारक ॥९
मुनिध्येयोऽसुरध्येयो देवध्येयोऽतिसुन्दर ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तभूतजातहृदि स्थित ॥१०
सनातनोऽव्ययो मेध्य सर्वानुग्रहकृत्प्रभु ।
नारायणो महादेव स्फुरन्मकरकुण्डल ॥११
सन्तापनाशनोऽभ्यर्च्यो मङ्गल्यो दुष्टनाशन ।
सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वगो ग्रहनाशन ॥१२
चार्वङ्गुरीयसयुक्त सुदीप्तनख एव च ।
शरण्य सुखकारी च सौम्यरूपो महेश्वर ॥१३
सर्वालङ्कारसयुक्तश्चारुचन्दनचर्चित ।
सर्वदेवसमायुक्त सर्वदेवप्रियङ्कर ॥१४

श्री हरि का सम्पूर्ण शरीर हिरण्य मय है—सुन्दर हार के धारण करने वाले एव शुभ अङ्गदो के पहिनने वाले हैं। आप केयूर से समायुक्त और वनमाला से सुभूषित हैं ॥ ८ ॥ श्री वत्स एव कौस्तुभ मणि से युक्त हैं तथा महा लक्ष्मी के वन्दना करने के योग्य नेत्रो से समन्वित हैं अर्थात् लक्ष्मी के द्वारा दर्शनीय हैं। अणिमा—महिमा आदि गुणो स युक्त तथा सृष्टि के संहार करने वाले हैं ॥ ९ ॥ भगवान् श्री हरि का मूर्त्त स्वरूप महा मुनियो के द्वारा ध्यान करने के योग्य है—असुरो के द्वारा भी ध्यान क योग्य है और देवो के द्वारा भी ध्येय है। भगवान् का स्वरूप अतीव सुन्दर है और ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त भूतमात्र के हृदय म विराजमान रहने वाले हैं ॥१०॥ वे सब पर अनुग्रह करने वाले प्रभु हैं—परम पवित्र एव सनातन अर्थात् सदा सर्वदा से चले आये सनातन अव्यय है। नारायण महान् देव और दीप्तिमान् मकर के तुल्य कुण्डलो वाले हैं ॥११॥ श्री हरि का मूर्त्त स्वरूप सन्तापो का नाश करने वाला है अर्थात् उनके स्वरूप के ध्यान मात्र स ही सब प्रकार के ताप नष्ट हो जाया

करते हैं। अभ्यर्चना करने के योग्य हैं। परम मङ्गल प्रदान करने वाला तथा दुःखों का नाश करने वाला उनका स्वरूप होता है। सबकी आत्मा अर्थात् सबमें अन्तर्यामी रूप से विराजमान—सबमें गमनशील–सर्व स्वरूप और उनका मूर्त्त रूप ग्रहों को नष्ट करने वाला है॥ १२॥ भगवान् श्री हरि अपने हाथों की अँगुलियों में अतीव सुन्दर अँगूठियाँ धारण की हुई हैं—उनके नख सुदीप्ति से से समन्वित हैं—शरणागति में प्राप्त होने वाले की रक्षा करने वाले–मुक्त करने वाले—सौम्य स्वरूप से युक्त और महान् ईश्वर हैं॥ १३॥ समस्त प्रकार के सुन्दर अलङ्कारों से भूषित—चारु चन्दन से चर्चित—सम्पूर्ण देवों से समायुक्त और सब देवों के प्रिय करने वाले हैं॥१४॥

सर्वलोकहितैषी च सर्वेश सर्वभावन ।
आदित्यमण्डले सस्थो ह्यग्निस्थो वारिसस्थित ॥१५
वासुदेवो जगद्धाता ध्येयो विष्णुर्मुमुक्षिभि ।
वासुदेवोऽहमस्मीति आत्मा ध्येयो हरिर्हरि ॥१६
ध्यायन्त्येवञ्च ये विष्णु ते यान्ति परमा गतिम् ।
याज्ञवल्क्य पुरा ह्येव ध्यात्वा विष्णु सुरेश्वरम् ॥
धर्मोपदेशकर्त्त त्व सप्राप्याप्तवापर पदम् ॥१७
तस्मात्त्वमपि देवेश विष्णु चिन्तय शङ्कर ।
विष्णुध्यान पठेद्यस्तु प्राप्नोति परमा गतिम् ॥१८

सब लोकों के हित सम्पादन करने वाले—सभी के स्वामी—सबके भावन (प्रिय)—सूर्य मण्डल में सस्थित—अग्नि में स्थित और जल में विराज॰ हैं॥१५॥ वासुदेव प्रभु सम्पूर्ण जगत् का ध्यान रखने वाले—सबके ध्यान करने के योग्य—मुक्ति की चाहना करने वालों के विष्णु हैं। मैं ही वासुदेव हरि हूँ–इस प्रकार से हरि भगवान् का आत्मरूप से ध्यान करना चाहिए॥१६॥ जो लोग इस उक्त स्वरूप वाले विष्णु भगवान् का इस रीति से ध्यान किया करते हैं वे परमोत्तम गति को प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि ने पहिले इस प्रकार से सुरेश्वर विष्णु का ध्यान किया था, अतएव धर्मों का उपदेश करके परम पद को

प्राप्त हुए थे ।। १७ ।। हे देवेश ! इसलिये आप भी इसी विधि से विष्णु का ध्यान—चिन्तन करो । हे शङ्कर ! जो इस मेरे बताये हुए भगवान् विष्णु के ध्यान का पठन किया करता है वह भी परमोत्तम गति को प्राप्त कर लेता है ।१८।

५३—वर्णधर्म कथन (१)

याज्ञवल्क्येन वै पूर्वं धर्मः प्रोक्तः कथं हरे ।
तन्मे कथय केशिघ्न यथातत्त्वेन माधव ॥१
याज्ञवल्क्यं नमस्कृत्य मिथिलायां समास्थितम् ।
अपृच्छन्नृषयो गत्वा वर्णधर्मानशेषतः ।
तेभ्यः स कथयामास विष्णुं ध्यात्वा जितेन्द्रियः ॥२
यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मं निबोधत ।
पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रार्थमिश्रिता ॥३
वेदाः स्नानानि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दश ।
वक्तारो धर्मशास्त्राणां मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः ॥४
वसिष्ठदक्षसंवर्त्ता शातातपपराशराः ।
आपस्तम्बोशनसौ व्यासः कात्यायनबृहस्पती ॥५
गौतमः शङ्खलिखितौ हारीतोऽत्रिर्ऋषिस्तथा ।
एते विष्णुसमाराध्या जाता धर्मोपदेशकाः ॥६
देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ।७

श्री महेश्वर ने कहा—हे माधव ! हे केशी असुर के हनन करने वाले ! याज्ञवल्क्य मुनि ने पहिले किस प्रकार से धर्म बतलाया था—इसे ठीक—ठीक रीति से हमको बतलाने की कृपा करें । श्री हरि ने कहा—ऋषि वृन्द ने मिथिला में विराजमान याज्ञवल्क्य मुनि को प्रणाम करके सम्पूर्ण वर्णों के धर्मों को उनसे पूछा था । उन ऋषियों से इन्द्रियों को जीत लेने वाले याज्ञवल्क्य मुनि ने भगवान् विष्णु का ध्यान करके कहा था ॥१।२॥ याज्ञवल्क्य महामुनि ने कहा—जिस देश में कृष्ण वर्ण के मृग रहा करते हो उसी देश में धर्म की स्थिति होती

है—ऐसा समझना चाहिए। पुराण—न्याय-मीमांसा अर्थ से मिश्रित धर्म-शास्त्र-वेद समस्त चौदह विद्याओं और धर्म का स्थान होते हैं। इन धर्म शास्त्रों के वक्ता मनु-विष्णु-यम-अङ्गिरा-वसिष्ठ-दक्ष-शातातप-पराशर-आपस्तम्ब-उशना-व्यास-कात्यायन-बृहस्पति—गौतम—शङ्ख-लिखित—हारीत-अत्रि-ये ऋषि हैं अर्थात् इन सबकी निर्मित स्मृतियाँ हैं। ये सब विष्णु के समान ही आराधना करने के योग्य धर्मों के उपदेश करने वाले हुए हैं ॥३।४।५।६॥ देश काल-उपाय से एवं श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो पात्र में प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का लक्षण होता है ॥७॥

इज्याचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च।
अयञ्च परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥८
चत्वारो वेदधर्मज्ञा पर्षत्त्रैविद्यमेव वा।
सा ब्रूते यत्स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः ॥९
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः।
निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥१०
गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म च ॥११
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कुर्याद्यथाकुलम् ॥१२
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्।
तूष्णीमेताः क्रिया स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ॥१३

यमोष्ट आचार का होना—दम—अहिंसा—दान—स्वाध्याय कर्म और योग

स्पन्दन से पूर्व पु सवन सस्कार—छटवें या आठवें मास मे सीमन्त सस्कार—प्रसव और जात कर्म सस्कार—ग्यारहवें दिन मे नामकरण सस्कार—तथा जब शिशु चार मास का हो जावे तो उसका बाहिर निष्क्रमण करना चाहिए। छटवें मास में अन्न प्राशन करे तथा चूडा कर्म सस्कार अपने कुल मे समागन प्रथा के अनुसार ही जिस समय और जिस प्रकार से होता हो करना चाहिए। इस प्रकार से पापो का शमन हुआ करता है जो कि बीज और गर्भ से समुत्पन्न होता है। ये समस्त क्रियाऐं चुपचाप ही स्त्रियो के द्वारा हुआ करती हैं किन्तु विवाह सस्कार का कर्म मन्त्रो के द्वारा ही पूर्ण किया जाता है ॥११ से १

५४-वर्णधर्म कथन (२)

गर्भाष्टमाष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥१
उपनीय गुरुः शिष्य महाव्याहृतिपूर्वकम् ।
वेदमध्यापयेदेन शौचाचाराश्च शिक्षयेत् ॥२
दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥३
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।
गन्धलेपक्षयकर शौच कुर्य्यान्महाव्रत. ॥४
अन्तर्जानु. शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुख ।
भाग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥५
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्र करस्य च ।
प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥६
त्रि प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखान्यद्भिश्च सस्पृशेत् ।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभि हीनाभिः फेनबुद्बुदै. ॥७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—गर्भ से आठवें वर्ष मे अथवा जन्म से आठवें वर्ष मे ब्राह्मण का उप नयन संस्कार किया जाता है। क्षत्रियो का उपनयन ग्यारहवें वर्ष मे करावे। वैश्यो का भी ऐसा ही सस्कार करावे—ऐसा एको

का मत है तथा कुछ का मत है कि वैश्यो मे कुल रीति की जो भी पद्धति हो उसी समय करावे ॥१॥ गुरु शिष्य का उपनयन करके फिर महा व्याहृतियों के सहित इस शिष्य को वेदो का अध्यापन करे और शौच तथा आचारो की शिक्षा भी देवे ॥ २ ॥ दिन मे और दोनो सन्ध्याओ के समयो मे कानपर ब्रह्म सूत्र (जनेऊ) चढ़ाकर उत्तर की ओर मुख करके मूत्र तथा पुरीष का त्याग करना चाहिए। और यदि रात्रि मे मलमूत्र का उत्सर्ग करना हो तो दक्षिण की दिशा की ओर मुख करके करे ॥३॥ मलमूत्र त्याग करके अपने शिश्न को पकड़े हुए उठे और महान् क्षत वाले पुरुष को मिट्टी से उद्धृत जल के द्वारा दुर्गन्ध लेप के नाश करने वाली शुद्धि करनी चाहिए ॥४॥ अन्तर्जानु होकर पवित्र स्थल मे बैठकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके अथवा पूर्व की ओर मुख करके द्विज को ब्राह्म तीर्थ मे नित्य उपस्पर्शन करना चाहिए ॥५॥ कनिष्ठिका—देशिनी—अंगुष्ठ मूल और कर (हाथ) का अग्र भाग ये क्रम से प्रजापति—पितृ—ब्रह्म और दैव तीर्थ होते हैं ॥६॥ फेन और बुलबुलो से रहित प्रकृति मे स्थित रहने वाले जलो से उपस्पर्शन करना चाहिए। तीन बार जल का आचमन करके और जलो से मुखो को दो बार उन्माज्जित करे ॥७॥

हृत्कण्ठतालुनाभिस्तु यथासख्य द्विजातयः।
शुध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥८
स्नानं तद्वतमन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः।
सूर्य्यस्य चाप्युपस्थान गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥९
गायत्री शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसयुक्तां त्रिवार प्राणसंयमः ॥१०
प्राणायामस्य सशुद्धिस्त्यथा मद्वतेन तु।
जपन्नासीत सावित्री प्रत्यगातारकोदयात् ॥११
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेव हि तिष्ठन्नासूर्य्यदर्शनात्।
अग्निकार्य्यं ततः कुर्य्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥१२
ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्।
गुरुश्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥१३

आहूतश्चाप्यधीयीत सर्वञ्चास्मै निवेदयेत् ।
हितञ्चास्यापराञ्चित्य मनोवाक्कायकर्मभिः ॥१४

द्विजातियों को हृदय–कण्ठ–तालु और नाभि की संख्या के अनुसार शुद्धि करनी चाहिए। स्त्री और शूद्र को एकबार ही स्पर्श करके अन्तत शुद्धि करनी चाहिए ॥८॥ तद्दैवत मन्त्रो के द्वारा स्नान–मार्जन–प्राण सयम और सूर्य का उप स्थान करे तथा प्रतिदिन गायत्री का जप करना चाहिए ॥ ६ ॥ तद्दैवत तीन ऋचाओ से प्राणायाम की भली भाँति शुद्धि करे और तारो के उदय से पहिले तक सावित्री का जप करता हुआ रहे। गायत्री का जाप शिर के साथ व्याहृतियाँ पूव म लगा कर प्रतिप्रणव से सयुक्त तीन बार प्राणायाम करना चाहिए ॥१०।११॥ इस प्रकार से प्रात काल मे सूर्य का दर्शन न हो इससे पूर्व ही सध्या कर्म कर लेवे। इसके अनन्तर फिर दोनों सन्ध्याओ के अवसर मे अग्नि कार्य करना चाहिए ॥ १२ ॥ इस सम्पूर्ण कृत्य के करने के अनन्तर मैं अमुक नाम तथा गोत्र वाला हू–ऐसा उच्चारण करते हुए अपने से जो वृद्ध हो उनका अभिवादन करे। फिर स्वाध्याय के लिए समाहित होकर अपने गुरुदेव की उपासना करनी चाहिए ॥१३॥ और आहूत (बुलाया गया) भी अध्ययन करे। गुरु की सेवा मे सभी कुछ निवेदन कर देना चाहिए। गुरु का जो भी हित हो उसे मन–वाणी–शरीर और कर्म के द्वारा नित्य ही सम्पादित करे ॥१४॥

दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत् ।
द्विजेषु चारयेद् भैक्ष्यमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये ॥१५
आदिमध्यावसानेषु भवेच्छब्दोपलक्षित ।
ब्राह्मण क्षत्रियविशा भैक्ष्य चर्य्याद्यथाक्रमम् ॥१६
कृताग्निकार्य्यो भुञ्जीत विनीतो गुर्वनुज्ञया ।
आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्वाऽन्नमकुत्सयन् ॥१७
ब्रह्मचर्य्यास्थितोऽनेकमन्नमद्यादनापदि ।
ब्राह्मण काममश्नीयात् श्राद्धे व्रतमपीडयन् ॥१८
मधुमास तथा स्विन्नमित्यादि परिवर्जयेत् ।
स तु गुरुर्यं क्रिया कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥१६

उपनीय ददात्येनमाचार्य्यं स प्रकीर्त्तित ।
एकदेश उपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते ।।२०
एते मान्या यथापूर्वमेम्यो माता गरीयसी ।
प्रतिवेद ब्रह्मचर्य्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ।।२१
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडश ।
आषोडशाद् द्वाविंशाच्च चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ।।२२
ब्रह्मक्षत्रविशा काल उपनायनिक परः ।
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मविवर्जिता ।।
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतो ।।२३

ब्रह्मचर्य दशा मे स्थित होकर अध्ययन के समय मे दण्ड–अजिन (मृग चर्म-छाला)—उपवीत और मेखला धारण करे। आत्म वृत्ति के लिये अर्थात् शरीर पोषण के वास्ते द्विजो के भिक्षा करे जोकि अनिन्दित अर्थात् प्रशस्त हो ।।१५।। छन्दोपलक्षित ब्राह्मण–क्षत्रिय और वैश्य यथाक्रम आदि—मध्य और अवसान म भिक्षाचर्या करें ।।१६।। अग्नि–कार्य पूर्ण करके गुरु की आज्ञा प्राप्त कर विनीत भ य से भोजन करे। भोजन के पूर्व आपोशन क्रिया करे अर्थात् आचमन करे और फिर अन्न का सत्कार करके उसकी ओर से कोई भी कुत्सा का भाव न रखते हुए भोजन करना चाहिए ।।१७।। ब्रह्मचर्य व्रत म समास्थित होकर अनापत्ति काल मे अनेक अन्न का भोजन करे। श्राद्ध मे ब्राह्मण व्रत को पीड़ित न करते हुए इच्छापूर्वक भोजन करे ।। १८ ।। मधु–मांस तथा स्त्रियां इत्यादि का परिवर्जन करना चाहिए। वह गुरु है जो समस्त क्रिया करके इसको वेद का ज्ञान प्रदान करता है ।।१६।। जो उपनयन करके उपदेश दिया करता है वह इसका आचार्य कहा गया है। जो एक देश का ही उपदेश करता है वह उपाध्याय कहा जाता है और यज्ञ करने वाला ऋत्विक् कहा जाया करता है ।।२०।। ये सब ही मान्य होते हैं किन्तु पूर्व क्रम से इनकी मान्यता अधिक और फिर न्यून हुआ करती है किन्तु माता इन सबम विशेष मान्य होती है। प्रत्येक वेद के अध्ययन के लिए बारह अथवा पाँच वर्ष हुआ करते हैं ।।२१।। कुछ लोग ग्रहणान्तिक समय कहते हैं और केशान्त षोडश कहते हैं। सोलह से लेकर

बाईस और चौबीस वर्ष तक ब्राह्मण–क्षत्रिय और वैश्यों का उपनयन का परकाल है। इससे आगे ये सब पतित हो जाया करते हैं तथा समस्त धर्मों से हीन हो जाया करते हैं। जो सावित्री से पतित होते हैं वे व्रात्य हो जाते हैं और क्रतु के विना व्रात्य स्तोम से मुक्ति नहीं होती है ॥२२।२३॥

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीय मौञ्जिबन्धनम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजातयः ॥२४
यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानाञ्चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥२५
मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेद् द्विजः ।
पितृन्मधुघृताभ्याञ्च ऋचोऽधीते हि सोऽन्वहम् ॥२६
यजुः साम पठेत्तद्वदथर्वाङ्गिरस द्विजः ।
सन्तर्पयेत् पितृन्देवान्सोऽन्वहं हि घृतामृतैः ॥२७
वेदवाक्यं पुराणञ्च नावाशसीश्च गाथिकाः ।
इतिहासास्तथा वेदान्योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ॥२८
सन्तर्पयेत्पितृन्देवान्मासक्षीरोदनादिभिः ।
ते तृप्तास्तर्पयन्त्येन सर्वकामफलैः शुभैः ॥२९
य य क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ।
भूमिदानस्य तपसः स्वाध्यायफलभाग् द्विज. ॥३०
नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्य्यसन्निधौ ।
तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥३१
अनेन विधिना देह साधयेद्विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥३२

आरम्भ मे माता के उदर से जन्म ग्रहण किया करते हैं। दूसरा जन्म मौञ्जिबन्धन से हुआ करता है। इसीलिए ब्राह्मण–क्षत्रिय और वैश्य ये द्विजाति कहे जाते हैं क्योंकि इनका उपनयन होता है तथा द्विजाति होते हैं यज्ञ–तपश्चर्या और अन्य शुभ कर्मों मे द्विजातियो का वेद ही परम निःश्रेयस

करने वाला है ॥२४।२५॥ द्विज को मधु-पय से देवों का तर्पण करना चाहिए। घृत और मधु से उसे प्रतिदिन पितरों का सन्तर्पण करना चाहिए। वह अनुदिन ऋचाओं का अध्ययन करता है ॥२६॥ द्विज को यजुर्वेद और सामवेद पढ़ना चाहिए और इसी भाँति अथर्वाङ्गिरस का भी अध्ययन करे। वह वह अनुदिन घृतामृत से पितरों और देवों का तर्पण करे ॥ २७ ॥ वेदों के वाक्य—पुराण और नाराशंसी गाथाएँ—इतिहास तथा वेदों का अनुदिन भरसक जो अध्ययन करता है वह पितरों और देवों को क्षीर-ओदन आदि से सन्तृप्त किया करता है वे जब पूर्ण तथा सन्तृप्त होते हैं तो फिर इसको भी शुभ कामनाओं के फलों से सन्तुष्ट किया करते हैं ॥२८।२९॥ जिस-जिस क्रतु का यह अध्ययन करता है उसी-उसी क्रतु के करने का फल इसे प्राप्त हुआ करता है। स्वाध्याय के फल का सेवन करने वाला द्विज भूमिदान और तप के फल को प्राप्त किया करता है ॥३०॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपने आचार्य की सन्निधि में ही वास करना चाहिए। अभाव में शिष्य का आचार्य-भाव आचार्य के पुत्र-पत्नी और वैश्वानर में भी होना चाहिए। इस विधि से विजित इन्द्रियों वालों को देह का साधन करना चाहिए वह फिर ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है और इस भूमण्डल में दूसरा जन्म ग्रहण नहीं करता है। अर्थात् उसका आवागमन के बन्धन से छुटकारा ही हो जाया करता है ॥३१,३२॥

५५—गृहस्थ धर्म निर्णय

शृण्वन्तु मुनयो धर्मान्गृहस्थस्य यतव्रताः।
गुरवे च धनं दत्त्वा स्नात्वा च तदनुज्ञया ॥१
समापितब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥२
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।
पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥३
द्विपञ्चनवविख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्।
सवर्णः श्रोत्रियो विद्वान्वरो दोषान्वितो न च ॥४

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रादारोपसंग्रहः ।
न तन्मम मतं यस्मात्तत्राय जायते स्वयम् ॥५

तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशाद्भार्या वा शूद्रजन्मनः ॥६

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता ।
तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥७

याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा—हे मुनि गणो ! अब आप लोग यत चित्त वाले होकर मुझसे गृहस्थ के धर्मों का श्रवण करो । वेदों का साङ्ग सम्पूर्ण अध्ययन समाप्त कर फिर ब्रह्मचारी को गुरु को धन (दक्षिणा-भेंट) देना चाहिए और गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त कर देवे तथा फिर परम सुलक्षणा स्त्री के साथ विवाह करे । वह कान्ता ऐसी होनी चाहिए कि जिसके पूर्व अन्य कोई न हो—असपिण्ड हो अर्थात् अपने गोत्र वाली न हो और उम्र में छोटी होवे ॥१।२॥ स्त्री जिसके साथ विवाह करे वह रोगों से रहित हो—भाइयों वाली हो और असमान ऋषि गोत्र में समुत्पन्न होने वाली हो । माता और पिता से पाँच या सात पीढ़ी से ऊपर की ही होवे । क्योंकि सात पीढ़ी तक ही सपिण्ड माना जाता है ॥३॥ दो-पाँच और नौ से विख्यात श्रोत्रियों के महा कुल से सवर्ण श्रोत्रिय विद्वान् वर दोषान्वित नहीं होता है ॥४॥ द्विजातियों का शूद्र से जो आरोप संग्रह कहा जाता है वह हमको सम्मत नहीं है क्योंकि वहाँ तो यह स्वयं ही समुत्पन्न होता है ॥५॥ वर्णानुपूर्वी से तीन—दो तथा एक ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्य से भार्या है अथवा शूद्र जन्मा से है ॥६॥ वह ब्रह्म विवाह है जिसमें आह्वान करके अपनी शक्ति के अनुसार आभरणों से अलङ्कृत करके कन्या का दान किया जाता है । ऐसी कन्या से विवाह होने पर जो भी पुत्र उत्पन्न होगा वह दोनों कुलों (मातृ एवं पितृ) के इक्कीस पूर्वज पितरों को पवित्र कर देता है ॥७॥

यज्ञस्थायर्त्विजे दैवमादायार्षस्तु गोयुगम् ।
चतुर्दशप्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥८

इत्युक्त्वा चरता धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने ।
सकाय पावयेत्तज्ज षड्वश्यानात्मना सह ॥९
आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्व समयान्मिथ.।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाच कन्यकाच्छलात् ॥१०
चत्वारो ब्राह्मणस्याद्यास्तथा गान्धर्वराक्षसौ ।
राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हित ॥११
पाणिर्ग्राह्य सवर्णासु गृह्णीत क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद् वेदने चाग्रजन्मन ॥१२
पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
कन्याप्रद. पूर्वनाशे प्रकृतिस्थ पर पर ॥१३
अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृतौ ।
एषामभावे दातृणा कन्या कुर्यात्स्वयवरम् ॥१४

आर्ष विवाह वह है जिसमे गो युग को लकर कन्या दी जाती है । यज्ञ में स्थित ऋत्विज के लिए जहाँ कन्या का दान होता है वह दैव विवाह कहलाता है । दैव विवाह से समुत्पन्न बालक चौदह पुरुषो को और आर्ष विवाह से उत्पन्न सुत छै पुरुषो को पुनीत करता है ॥८॥ धर्म का आचरण करो—यह कहकर जो किसी अर्थी को कन्या दी जाती है उस विवाहित स्त्री से उत्पन्न होने वाला अपने साथ छै वश म हुए पुरुषो को पवित्र किया करता है ॥९॥ धन देकर जो विवाह किया जाता है वह आसुर विवाह होता है । आपस म ही वचन बद्ध होकर जो स्त्री पुरुष विवाह कर लेते हैं वह गान्धर्व विवाह होता है युद्ध म जीत कर जो कन्या का हरण किया जाता है और उस पत्नी बना लेते हैं वह राक्षस विवाह होता है । छल म कन्या को लाकर विवाह कर लेना पैशाच विवाह कहा जाता है ॥१०।११॥ आदि क चार विवाह ब्राह्मण के लिए बताये गये हैं । गान्धर्व और राक्षस ये दो विवाह क्षत्रिय के होते हैं । आसुर विवाह वैश्य का और पैशाचिक विवाह शूद्र का है जोकि बहुत निन्दित होता है ॥१२॥ सवर्णा स्त्रियों का पाणि (हाथ) का ग्रहण करना चाहिए । क्षत्रिया शर का ग्रहण करे तथा वैश्या प्रतोद का ग्रहण करे और अग्र जन्मा के वेदन

ग्रहण करे । पिता—पितामह—भ्राता—सकुल्य तथा माता ये सब कन्या के प्रदान करने के समुचित अधिकारी होते हैं किन्तु इनमें सबसे प्रमुख पूर्वोक्त होता है उसके नाश होने पर पर–पद प्रकृतिस्थ हुआ करता है। यथा पिता न हो तो बाबा और बाबा भी न रहे तो भाई आदि ॥१३॥ कन्या ऋतुमती हो जाने पर भी उसका प्रदान किसी वर को नहीं किया जावे तो प्रत्येक ऋतु काल में भ्रूण हत्या का महा पाप होता है। यदि उपर्युक्त कन्या के देने वालों में कोई भी न रहे तो कन्या स्वयं वर वरे अर्थात् किसी श्रेष्ठ समुचित वर को स्वयं ही ग्रहण कर लेवे ॥१४॥

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्ता चौरदण्डभाक् ।
अदुष्टा हि त्यजन्दण्डय सुदुष्टा तु परित्यजेत् ॥१५
अपुत्री गुर्वनुज्ञाता देवरं पुत्रकाम्यया ।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्तो ऋतावियात् ॥१६
आगर्भसम्भवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत् ।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रपस्य भवेत्सुतः ॥१७
कृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपसेविनीम् ।
परिभूतामधः शय्यां वासयेद् व्यभिचारिणाम् ॥१८
सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम् ।
पावकः सर्वदा मेध्यो मेध्यो वै योपिता ह्यतः ॥१९
व्यभिचारादृतेऽशुद्धे गर्भत्यागं करोति या ।
गर्भभर्तृवधे तासां तथा महति पातके ॥२०
सुरापी व्याधिता द्वेष्ट्री विहर्त्तव्या प्रियंवदा ।
भर्त्तव्या चान्यथा ह्येन स्त्रपयो हि भवेन्महत् ॥२१

कन्या का दान एक बार ही किया जाता है। उसका हरण करने वाला चोर को प्राप्त होने वाले दण्ड को भोगने वाला होता है। जो अदुष्टा और सब प्रकार के दोषों से रहित हो ऐसी कन्या को ग्रहण करके भी त्याग देता है वह दण्ड देने के योग्य होता है किन्तु वह दुष्टा हो तो उसे त्याग देना चाहिए ॥१५॥

जिसके कोई भी पुत्र न होता हो या हुआ ही न हो उसका गुरु गं को आज्ञा पाकर देवर सगोत्र या कोई भी सपिण्ड व्यक्ति घृत से अभ्यक्त होकर केवल पुत्र की कामना से ऋतु समय में गमन करे ॥१६॥ जब तक उसको गर्भ धारण न हो तब तक ही उसका गमन करे। अन्यथा गमन करने में तो पतित हो जायगा। इस प्रकार से समुत्पन्न पुत्र क्षेत्रज का होता है ॥१७॥ अधिकार करने वाली-मलिन-पिण्डमात्र के उपसेवन करने वाली-परिभूत और व्यभिचारिणी स्त्री को अधःशय्या कर देनी चाहिए ॥१८॥ उन स्त्रियों को सोम ने शुद्धि दी है और गन्धर्व ने शुभ वाणी प्रदान की है। पावक सर्वदा मेध्य होता है इसलिए योषित भी मेध्य होता है ॥१९॥ व्यभिचार के बिना जो स्त्री अशुद्धि से गर्भ का त्याग कर देती है। उनके गर्भ भर्त्ता के वध में तथा महान् पातक से-सुरापी—व्याधित—द्वेष्ट्री—प्रियम्वदा विहरण करने के योग्य है। अन्यथा इसका भरण करना चाहिए। नहीं तो वह ऋषिगण कहते हैं कि महान् पाप होता है ॥२०।२१॥

यत्राविरोधी दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते ।
मृते जीवति या पत्यौ या नान्यमुपगच्छति ॥२२
सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ।
शूद्रां त्यजंस्तृतीयाश दद्यादाभरणं स्त्रियाः ॥२३
स्त्रीभिर्भर्तु र्वच. कार्य्यमेष धर्म. परः स्त्रियाः ।
षोडशर्त्तु निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ॥२४
ब्रह्मचारी च पर्वण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत् ।
.एव गच्छन्स्त्रियं क्षामान्मघां मूलञ्च वर्जयेत् ॥२५
नक्षत्रे जनयेदेव पुत्रं रोगविवर्जितम् ।
यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां स्मरमनुस्मरन् ॥२६
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतस्ततः ।
भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः ॥२७
बन्धुभिश्च स्त्रिय. पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ॥२८

जहाँ पर दम्पति का अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों का कोई विरोध न हो वहाँ पर त्रिवर्ग की वृद्धि होती है। जो पति के मृत हो जाने पर या उसके जीवित रहने पर अन्य पुरुष का उपगमन नहीं करती है वह स्त्री इस लोक में कीर्त्ति प्राप्त करने की भागिनी होती है और अन्त में उमा देवी के साथ मोद प्राप्त किया करती है। यदि पूर्णतः परिशुद्धा अर्थात् किसी भी दोष से जो युक्त न हो ऐसी स्त्री का त्याग करे तो स्त्री के आभरणों का तृतीय भाग उसे दे देना चाहिए ।।२२।२३।। स्त्रियों को अपने स्वामी के वचनों का पूर्णतया पालन करना चाहिए। यही स्त्री का परम धर्म है स्त्री जब ऋतुमती हो तो ऋतु काल से सोलह रात्रियों में जो युग्म रात्रि हो उनमें उसका गमन करे ।।२४।।ब्रह्मचारी को पर्व में और पहिली जो ऋतुकाल की चार रात्रियाँ हैं उन्हें त्याग देना चाहिए। मघा और मूल नक्षत्र हो तो उसको भी वर्जित कर देवे। इस प्रकार से स्त्री का गमन करे तो कामना की प्राप्ति होती है ।।२५।। इस विधि से स्त्री का गमन करने पर वह स्त्री शुभ लक्षणों से समन्वित और रोगों से रहित पुत्र को उत्पन्न किया करती है। अथवा जभी काम उत्तेजित हो और स्त्रियों का सत् भी अनुस्मृत हो जावे तो गमन करे ।।२६।। अपनी स्त्री में निरत रहे। स्त्रियाँ स्वामी—भाई—पिता—ज्ञाति—सास—श्वसुर और देवर के द्वारा सदा रक्षा करने के योग्य होती हैं ।।२७।। बन्धुओं के द्वारा भूषण—आच्छादन और भोजन के माध्यम से स्त्रियाँ पूज्य हुआ करती हैं किन्तु स्त्रियों को भी सयतोपस्कर वाली—दक्ष-हृष्ट और व्यय के पराङ्मुख होना चाहिए ।।२८।।

श्वश्रूश्वशुरयोः कुर्यात्पादयोर्वन्दनं सदा।
क्रीडाशरीरसंस्कारसमाजोत्सवदर्शनम् ।।२९
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका।
रक्षेत्कन्यां पिता बाल्ये यौवने पतिरेव ताम् ।।३०
वार्द्धक्ये रक्षते पुत्रो ह्यन्यथा ज्ञातयस्तथा।
पतिं विना न तिष्ठेत दिवा वा यदि वा निशि ।।३१
ज्येष्ठां धर्मविधौ कुर्यान्न कनिष्ठां कदाचन।
दाहयेदग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ।।३२

आहारेद्विधिवद्दारानग्निश्चैवाविलम्बित ।
हिता भर्त्तु दिव गच्छेदिह कीर्त्तीरवाप्य च ॥३३

स्त्रियों को अपने सास–श्वशुर की चरणों की वन्दना सदा करनी चाहिए। जो प्रोषित भर्त्तृका स्त्री हो अर्थात् जिसका पति परदेश निवासी हो उसे कोई भी क्रीडा—शारीरिक संस्कार अर्थात् शरीर को वेश–भूषा से सुसज्जित करना–समाज म सम्मिलित होना—उत्सवों का देखना—हास्य करना—दूसरों के घर पर जाना आदि का त्याग कर देना चाहिए। कन्या की रक्षा बचपन में पिता और यौवन में उसकी सुरक्षा पति को करनी चाहिए ॥२९।३०॥ वार्द्धक्य की अवस्था मे उसकी रक्षा पुत्र को करनी चाहिए। पुत्र न हो तो ज्ञाति के लोग उसकी रक्षा करें। पति के बिना स्त्री को कहीं भी दिन या रात्रि म नहीं रहना चाहिए ॥३१॥ सवंदा जो ज्येष्ठा स्त्री हो उसी को धार्मिक विधि से साथ म नियुक्त करे और कनिष्ठा को कभी न करे। पाणिग्रह वाली अर्थात् सवर्णा स्त्री का दाह अग्निहोत्र के द्वारा करे ॥३२॥ विधिवत् विलम्ब न करके दाराओं और अग्निका आहरण करे भर्त्ता की हिता स्त्री यहाँ यश पाकर दिवलोक म जाती है ॥३३॥

५६—द्रव्य शुद्धि

द्रव्यशुद्धि प्रवक्ष्यामि तां निबोधत सत्तमा ।
सौवर्णराजताब्जानां शङ्खरज्ज्वादिचर्मणाम् ॥
पात्राणां चमसानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥१
उष्णाद्भिः स्रुक्स्रुवयोर्धान्यानां प्रोक्षणेन च ।
तक्षणाद् दारुशृङ्गादेर्यज्ञपात्रस्य मार्जनात् ॥२
गोपलोन्दकगोमूत्रं शुद्धपरयाविकोपितम् ।
मेध्य शोधितमुक्त पदन्पुन पावान्महीमयम् ॥३
गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते ।
भस्मक्षेपादिशुद्धिः स्याद् भूशुद्धिर्मार्जनादिना ॥४

त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः ।
भस्माद्भिर्लोहकास्यानामज्ञातश्च सदा शुचि ॥५

महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा—हे सत्तमो ! अब मैं द्रव्यों की शुद्धि के विषय में कहता हूँ उसे आप लोग भली भाँति समझ लो । सुवर्ण—रजत—अब्ज दारु—रज्जु आदि तथा चर्म के पात्र एवं आसनों की शुद्धि केवल जल से ही हो जाया करती है ॥१॥ स्रुक् और स्रुवा की शुद्धि उष्ण जल से होती है । धान्यों की शुद्धि केवल जल से प्रोक्षण करने पर हो जाया करती है । काष्ठ और सींग के पदार्थों की शुद्धि तक्षण करने से होती है और अन्न के पात्रों की शुद्धता मार्जन से हुआ करती है ॥२॥ गोघ्रात अन्न में तथा केश, मक्षिका और कीटों से दूषित में भस्म के क्षेप करने से शुद्धि होती है । भूमि की शुद्धता केवल मार्जन तथा लेपन—प्रक्षालन आदि से होती है । आविक और कौषिक पदार्थ उष्ण जल एवं गोमूत्र से शुद्ध होते हैं । भैक्ष और स्त्री का मुख देखकर ही शुद्ध होता है । जो महीमय पदार्थ है उसकी पुनः पाक करने से शुद्धि होती है ॥३।४॥ त्रपु—सीसा और ताम्र के पात्रों की शुद्धता क्षार—अम्ल (खटाई) और जल से हुआ करती है । लोह के पात्रों की तथा कांसे के पात्रों की शुद्धि भस्म तथा जल से होती है । जो अज्ञात पदार्थ या पात्र है वह तो सदा ही शुचि होता है ॥५॥

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धलेपापकर्षणात् ।
शुचि गोतृप्तिदं तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥६
तथा मांसं श्वचण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् ।
रश्मिरग्निरजश्छाया गौरश्वो वसुधानिलश्च ॥७
अश्वाजविप्रुषो मेध्यास्तथा च मलबिन्दवः ।
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे ॥८
आचान्तः पुनराचामेद्वासोऽन्यत्परिधाय च ।
क्षुते निष्ठीवने स्वापे परिधानेऽश्रुपातने ॥९
पञ्चस्वेतेषु नाचामेद् दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।
तिष्ठन्त्यग्न्यादयो देवा विप्रकर्णे तु दक्षिणे ॥१०

अमेध्य (अपवित्र) और सक्त अर्थात् तैलादि से युक्त पात्र एवं पदार्थ की शुद्धि मिट्टी एवं जल से करे जब तक कि उस पर जो गन्ध तथा लेपन है वह न छूट जावे । जो एक गौ की तृषा शान्त करदे उतना जल शुद्ध होता है और जो जल स्वाभाविक रूप से भूमिगत होता है वह भी शुद्ध होता है ॥६॥ कुत्ता–चण्डाल और क्रव्याद आदि के द्वारा निपातित मांस, रश्मि, अग्नि–रज की छाया—गौ–वसुधा—घोड़ा और बकरी के मुख की बूँदें एवं मल की बूँदें सदा मेध्य होती हैं । स्नान करके—पान करके—छींक लेकर—सोकर–खाकर और गली में चल–फिर कर आचान्त होकर भी पुनः आचमन करना चाहिए अन्य वस्त्र का परिधान करके—क्षुत और निष्ठीवन करने पर–स्वाप में—परिधान में तथा अश्रुपातन में इन पाँच कर्मों में आचमन न करे केवल दक्षिण श्रवण का स्पर्श कर लेवे । ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में अग्नि आदि देवगण सर्वदा निवास किया करते हैं । अतएव उसके स्पर्श मात्र से ही शुद्धि का विधान बताया गया है ॥७।८।९।१०॥

५७—श्राद्धविधि

अथ श्राद्धविधिं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।
अमावस्याष्टकावृद्धिकृष्णपक्षायनद्वयम् ॥१
द्रव्य ब्राह्मणसम्पत्तिर्विपुवत्सूर्य्यसंक्रमः ।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहण चन्द्रसूर्य्ययोः ।
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालः प्रकीर्त्तितः ॥२
अग्र्यो य. सर्वदेवेषु श्रोत्रियो वेदविद्युवा ।
तिथिज्ञाने च कुशलः त्रिमधुस्त्रिसवर्णिकः ॥३
स्वस्रीयऋत्विग्जामाताचार्य्यश्वशुरमातुला. ।
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥४
कर्मनिष्ठा द्विजा. केचित्पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः ।
पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धदेवताः ॥५
रोगी हीनातिरिक्ताङ्ग. काणः पौनर्भवस्तथा ।
अवकीर्णादयो ये च ये चाचारविवर्जिताः ॥६

अवैष्णवाश्च ये सव श्राद्धार्हा न कदाचन ।
निमन्त्रयेच्च पूर्वेद्यु द्विजैर्भाव्यं च सयतैः ॥७

श्री याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा—अब मैं श्राद्ध की उस विधि को तुमको बतलाता हूँ जो कि समस्त प्रकार के पापो का नाश करने वाली होती है। अमावस्या—अष्टका वृद्धि—कृष्ण पक्ष—अयन द्वय—द्रव्य—ब्राह्मण सम्पत्ति—विपुवत् मे सूर्य का संक्रमण—व्यतीपात—गजच्छाया तथा सूर्य एवं चन्द्र का ग्रहण और श्राद्ध करने के प्रति रुचि का होना ये श्राद्ध के उत्तम काल बताये गये हैं ॥१।२॥ समस्त देवो मे वह अग्र होता है जो श्रोत्रिय और वेदो का विद्वान् युवा हो। तिथि के ज्ञान मे कुशल—त्रिमधु—त्रिमर्वाणक—स्वस्रीय (भानजा) ऋत्विक्—जामाता—याज्य—श्वशुर—मातुल—त्रिणाचिकेत—दौहित्र (धेवता)—शिष्य—सम्बन्धी और बान्धव—कुम्भ कर्मनिष्ठ ब्रह्मचारी द्विज जो पञ्चाग्नि करने वाले हों तथा पितृ परायण और मातृ परायण हो ये सब ब्राह्मण श्राद्ध देवता होते हैं ॥३।-।।४ ५।। जो रोगी हो—हीनाङ्ग या अतिरिक्ताङ्ग हो—काना—पौनर्भव और अवकीर्ण आदि जो हो वे सब आधार से वर्जित होते हैं ॥६॥ जो विप्र विष्णु के भक्त न हो वे सभी कभी भी श्राद्ध के योग्य नही हुआ करते हैं श्राद्ध जिस दिन करना हो उसके पहिले दिन मे ही ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे देना चाहिए जैसे ही श्राद्ध का निमन्त्रण प्राप्त हो वैसे ही विप्रो को भी संयत होकर रहना चाहिए ॥७॥

आचान्ताश्च व पूर्वाह्णे ह्यासनेपूपवेशयेत् ।
युग्मन्दैवे तथा पित्र्ये स्वप्रदेशेष्वशक्तितः ॥८
द्वौ दैवे प्रागुदक्पित्र्ये त्रीण्येकश्चोभयोः पृथक् ।
मातामहानामप्येव मन्त्र वा वैश्वदेविकम् ॥९
हस्तप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थे कुशानपि ।
आवाह्य तदनुज्ञातो विश्वेदेवा महानृचा ॥१०
यवैरघ्यं विकीर्य्याथ भाजने सपवित्रके ।
शन्नोदेव्या पय. क्षिप्त्वा यवोऽसि ति यवांस्तथा ॥११

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वेव विनिक्षिपेत् ।
गन्धं तथोदकञ्चैव धूपादींश्च पवित्रकम् ॥१२
अपसव्य ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् ।
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् ॥१३
आवाह्य तदनुज्ञातेर्जपेदायान्तु नस्ततः ।
यवार्थस्तु तिलैः कार्य्यः कुर्य्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ॥१४

श्राद्ध के दिन पूर्वाह्न मे आचान्त होते हुए उन्हे आसनो पर उपविष्ट कराना चाहिए । उनसे प्रार्थना करे कि आपको दैव–पित्र्य कर्म के लिये आमन्त्रित किया है । अपने प्रदेशो मे प्राप्त कराने की शक्ति नहीं है ।।८।। दो को पूर्व मे दैव कर्म के लिये—उत्तर दिशा मे पित्र्य कर्म के लिये तीन को—इस तरह दोनों को पृथक् रक्खे । इसी रीति से माता महादिक के लिये भी करे । अथवा वैश्वदेविक मन्त्र का प्रयोग करे ॥९॥ फिर इसके अनन्तर हस्त–प्रक्षालन देकर विष्टर के लिये कुशाओ को देवे । फिर उनके द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कर महान् ऋचा से विश्वेदेवाओ का आवाहन करे ॥१०॥ यवो के द्वारा पवित्री के सहित पात्र मे अन्न का विकरण करे । "शन्नो देवी"—इस मन्त्र से पय का क्षेपण कर "यवोऽसीति"—मन्त्र से यवो का विकरण करे । "या दिव्या"—इस मन्त्र के द्वारा उनके हाथो मे ही गन्ध–उदक–धूप और पवित्रक आदि को विनिक्षिप्त करना चाहिए ॥११।१२॥ इसके अनन्तर अपसव्य होकर पितरो के अप्रदक्षिण मे द्विगुण कुशाओ के देकर "उशन्तस्त्वा"–इस मन्त्र से पितृगण का आवाहन करे । फिर उनसे अनुज्ञात होकर "आयान्तु नस्तत"—इस मन्त्र का जाप करे यवार्थ तिलो के द्वारा करना चाहिए । फिर पूर्व की भाँति अर्घ्य आदि करे ॥१३।१४॥

दत्त्वार्घ्यं संश्रव ह्येपां पात्रे कृत्वा विधानत. ।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्र करोत्यधः ॥१५
अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
सव्याहृतिञ्च गायत्री मधुवातेत्यृचस्तथा ॥१६

जप्त्वा यथासुख वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ।
अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनो नरः ॥१७
अतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजप तथा ।
अन्नमादाय तृप्ता स्थ शेषञ्चैवान्नमन्वहम् ॥१८
तदन्नं विकिरेद् भूमौ दद्याच्चापि सकृत्सकृत् ।
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ॥१६
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् ।
मातामहानामप्येवं दद्याच्चाचमन ततः ॥२०
स्वस्ति वाच्यस्ततो दद्यादक्षय्योदकमेव च ।
दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ॥२१

अर्घ्य निवेदित करके इनका संश्रव विधान से पात्र में करे। "पितृभ्यः स्थानमसि"—इस मन्त्र से उस न्युब्ज पात्र को अधः करे ॥ १५ ॥ "अग्नौ करिष्ये"—इससे घृत प्लुत अन्न को लेकर पूछे और व्याहृतियों के सहित गायत्री का तथा "मधु वात"—इस ऋचा का जाप करके उनसे कहे आप सुख पूर्वक भोजन करें। उन श्राद्ध में भोजन करने वाले विप्रों को भी मौन होकर भोजन करना प्रारम्भ करना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता मानव को बिना किसी प्रकार का क्रोध किये हुए उन ब्राह्मणों को इष्ट अन्न और हविष्य समर्पित करना चाहिए ॥१६।१७॥ जब तक उन ब्राह्मणों की तृप्ति हो तब तक उन्हें खूब अच्छी तरह तृप्ति पूर्वक भोजन करावे और पवित्र मन्त्रों का जाप करता रहे। जब वे यह कहदें कि हम खूब तृप्त होगये हैं उन्हें एक-एक बार देवे और शेष अन्न को लेकर भूमि में विकीर्ण कर देवे। फिर सम्पूर्ण अन्न को तिलों सहित लेकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके पितृयज्ञ की भाँति उस उच्छिष्ट के समीप में ही पिंड देवे। इसी रीति से मातामह आदि के लिये भी देवे। इस प्रकार से यह सम्पूर्ण कृत्य करके फिर उन्हें आचमन समर्पित करना चाहिए ॥१८।१६।२०॥ स्वस्ति कहकर फिर अक्षय उदक देवे। इसके पश्चात् दक्षिणा देकर जोभी अपनी शक्ति से हो इसके पश्चात् स्वधाकार का उच्चारण करे ॥२१॥

वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यश्च स्वधोच्यताम् ।
विप्रैस्तु स्वधेत्युक्तो भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ॥२२
प्रीयन्तामिति चोहैव विश्वेदेवा जल ददत् ।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्ता वेदा. सन्ततिरेव च ॥२३
श्रद्धा च नो माव्यगमद्वहु देयञ्च नोऽस्त्विति ।
इत्युक्तोऽपि प्रियं वाच प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥२४
वाजे वाजे इति प्रीत्या पितृपूर्वं विसर्जनम् ।
यस्मिस्ते सश्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निपातिताः ॥
पितृपात्र तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥२५
प्रदक्षिणमनुस्तुत्य भुञ्जीत पितृशेषितम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तत्र रजनी भार्य्यया सह ॥२६
एवं सदक्षिण कुर्य्याद्वृद्धौ नान्दीमुखानपि ।
यजेत्तदधिककर्कन्धुमिश्रा पिण्डा यवै श्रिताः ॥२७
एकोद्दिष्टं दैवहीन एकान्नैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहित ह्यपसव्यवत् ॥२८
उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रान्विसर्जयेत् ।
अभिरम्यता प्रब्रूयात्प्रोचुस्तेभिरताः स्वहः ॥२९
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं कुर्य्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्र प्रसेचयेत् ॥३०
ये समाना इति द्वाभ्या शेष पूर्ववदाचरेत् ।
एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥३१

स्वधा का वाचन करो—इस प्रकार से उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर पितृगण के लिये स्वधा का वाचन करना चाहिए । विप्रों के द्वारा 'स्वधा होवे'—ऐसा कहने पर उस जल को भूमि पर सिञ्चित कर देवे ॥२२॥ जल देता हुआ विश्वेदेवा प्रसन्न होवें—यह बोले । हमारे दाता–वेद-ख्याति बढ़ें । हमारी श्रद्धा का लोप न होवे और हमको देय होवे–इस प्रकार से प्रिय वचन कहकर उनको प्रणिपात करके फिर विसर्जन करे । "वाजे-वाजे"—इस का उच्चारण करते

हुए प्रीति से पितरों का विसर्जन करे। पहिले जिसमें वे सश्रव थे और अर्घ्य-पात्र में निपातित थे उस पितृ पात्र को उत्तान करके विप्रों का विसर्जन करना चाहिए ॥२३।२४।२५॥ प्रदक्षिणा और अनुस्तुति करके जो पितृ शेष अन्न हो उसका भोजन करे। अपनी भार्या के साथ उस रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ॥ २६ ॥ इसी प्रकार से वृद्धि के अवसर पर दक्षिणा के सहित नान्दी मुखों को भी करे अर्थात् नान्दी मुख श्राद्ध करना चाहिए। कर्कन्धु मिश्रित यवों से मिश्रित पिंडों का उस समय में यजन करना चाहिए ॥२७॥एको-द्दिष्ट श्राद्ध दैवहीन और एकान्न, एक पवित्रक होता है। अपसव्यवत् आवाहन और अग्नौकरण रहित होता है ॥२८॥ उपतिष्ठताम्—इससे अक्षय्य स्थान में विप्रों का विसर्जन करना चाहिए। फिर 'अभिरम्यताम्'—यह बोले। वे 'अभि-रता स्वह'—यह बोले ॥२९॥ गन्धोदक तिलों से मिश्रित चार पात्र करे। अर्घ्य के लिये पितृ पात्रों में प्रेत पात्र को प्रसेचित करे ॥३०॥ 'समाना'—इन दो मन्त्रों से शेष सब पूर्व की भाँति ही करना चाहिए। यह सपिण्डीकरण एकोद्दिष्ट स्त्री को भी करना चाहिए ॥३१॥

अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् ।
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरे द्विज ॥
पिण्डाश्च गोऽजाविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ॥३२
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।
मात्स्यहारिणऔरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥३३
ऐणरौरववाराहशशमांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्धयापि तुष्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ॥३४
दद्याद्वर्षत्रयोदश्यां मघासु च न संशयः ।
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेव कन्यादीञ्छ्राद्धदो लभेत् ॥३५
शस्त्रेण निहतानां तु चतुर्दश्यां प्रदीयते ।
स्वर्गं ह्यपत्ययोगञ्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा ॥३६
अरोगित्वं यशो वीतशोकता परमा गतिम् ।
धनं विद्याञ्च वाक्सिद्धिं कुप्यं गोऽजाविकं तथा ॥

अश्नानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं सम्प्रतीच्छति ॥३७
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामो प्राप्नुयादिमान् ।
वस्त्राढ्याः प्रीणयन्त्येव नव श्राद्धकृत द्विजाः ॥३८
आयु प्रजा धन विद्या स्वर्गमोक्षसुखानि च ।
प्रयच्छति तथा राज्य प्रीत्या नित्य पितामहः ॥३९

सपिण्डी करण के पीछे जिसका सवत्सर से हावे उसका भी सोद कुम्भ अन्न द्विज को सवत्सर मे दे देना चाहिए और पिंडो को गो—प्रजा तथा विप्रो को दे देवे अथवा अग्नि या जल मे दे देना चाहिए ॥३२॥ हविष्यान्न से मास मे—पायस से वरसर मे पितामह सन्तुष्ट होते हैं । गरस्यादि के आमिष के यथा-क्रम मास वृद्धि मे देने पर भी उन्हे परम सन्तोष हुआ करता है ॥३३।३४॥ त्रयोदशी मे और मघा में अर्घ्य देवे । इस प्रकार से प्रतिपदा प्रभृति में श्राद्ध दाता कन्यादि की प्राप्ति करता है—इसमे सशय नही है ॥३५॥ जिनका निहनन शस्त्र से हुआ हो उनको श्राद्ध चतुर्दशी तिथि मे दिया जाता है । जो विधि-विधान के साथ श्राद्ध देता है उसे स्वर्ग—अपत्य योग—शौर्य—क्षेत्र—बल—अरोगिता यश—वीतशोकता—परमगति—धन—विद्या—वाक्‌सिद्धि—कुप्य—गो—अजाविक—अश्व आयु आदि की प्राप्ति होती है ॥३६।३७॥ कृत्तिका से आदि लेकर भरणी के अन्त तक कामना वाला इन उक्त पदार्थों को प्राप्त किया करता है । नव श्राद्ध करने वाले पर वस्त्रो से आढ्य द्विज परम प्रसन्न होते हैं । पितामह प्रीति से नित्य आयु—प्रजा—धन—विद्या—स्वर्ग—मोक्ष—सुख तथा राज्य को प्रदान किया करते हैं ॥३८।३९॥

५८ विनायकोपसृष्ट लक्षण

विनायकोपसृष्टस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जल मुण्डाश्च पश्यति ॥१
विमना विफलारम्भः ससीदत्यनिमित्ततः ।
राजा राज्य कुमारी च पति पुत्रश्च गुर्विणी ॥२
नाप्नुयात्स्नपनन तस्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।

गौरसर्षपगन्धेन साज्येनोत्सारितस्य तु ॥
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसं तथा ॥३
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्य द्विजान्शुभान् ।
मृत्तिका रोचना गन्धान्गुग्गुलुश्चाप्सु निक्षिपेत् ॥४
एकाकृत्या ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् ।
चर्मण्यानुडहे रक्ते स्नाप्य भद्रासने तथा ॥५
सहस्राक्ष शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥६
भगवान्वरुणो राजा भगं सूर्य्यो बृहस्पतिः ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—अब मैं विनायक के द्वारा उपसृष्ट पुरुष का लक्षण बताता हू उन्हें समझ लो । ऐसा पुरुष स्वप्न मे जल का अत्यधिक अवगाहन किया करता है । और मुण्डो को भी देखता है ॥१॥ सदा विमना (उदास) रहता है और जो भी कुछ आरम्भ करता है वह सब विफल होते हैं । वह पुरुष बिना ही किसी कारण के दुःखी रहा करता है । राजा राज्य को—कुमारी पति को और गर्भवती स्त्री पुत्र को प्राप्त नहीं किया करते हैं । इस उप सर्ग के निवारण करने के लिये किसी शुभ दिन मे उसका विधि-विधान के साथ स्नपन कराना चाहिए । आज्य (घृत) के सहित और सरसों के गन्ध से पहिले उत्सारित करके फिर स्नान करावे । सर्वौषधियों से और समस्त गन्धो से उसका शिर विलिप्त करे ॥ २॥३ ॥ फिर भद्रासन पर उसे बिठा कर शुभ द्विजों से स्वस्ति वाचन करावे । मिट्टी—रोचना—गन्ध और गुग्गुलु को जल में निक्षिप्त करना चाहिए । फिर एक सी आकृति वाले और एक ही वर्ण से युक्त चार कलशो के द्वारा ह्रद से चर्म में अनुडह रक्त भद्रासन पर स्नान कराना चाहिए ॥४॥५॥ ऋषियो ने सहस्राक्ष शत धारा वाला पावन किया था उससे तुम्हारा अभिषिञ्चन करता हूँ । पावमानी से पुनीत करें ॥६॥ भगवान् वरुण राजा—भग को सूर्य्य बृहस्पति और भग को इन्द्र तथा भग को वायु और सात ऋषियो ने दिया था ॥७॥

यत्ते केशेषु दौर्भाग्य सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोर्नाश तद्यातु ते सदा ॥८
स्नातस्य सार्षप तैल श्रवणे मस्तके तथा ।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्माज्यान्सपरिगृह्य च ॥९
मित. सयमितश्चैव तथा शालकटङ्कटे ।
कूष्माण्ड राजपुत्राश्च अन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥१०
सद्याच्चतुष्पथे भूमौ कुशानास्तीर्य्य सर्वश. ।
कृताकृत तथा चैव तण्डुलोदनमेव च ॥११
पुष्प चित्र सुगन्धश्च सुराश्च त्रिविधामपि ।
दधिपायसमन्नश्च घृतञ्च गुडमोदकम् ॥१२
एतान्सर्वानुपाकृत्य भूमौ कृत्वा तत शिव ।
अम्बिकामुपतिष्ठेच्च दद्यादघ्न कृताञ्जलि ॥१३
दूर्वासर्षपपुष्पैश्च पुत्रजन्मभिरन्तत ।
कृतस्वस्त्ययनश्चैव प्रार्थयेदम्बिका सतीम् ॥१४
रूप देहि यशो देहि भाग्य भवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि श्रिय देहि सर्वान्कामाश्च देहि मे ॥१५
ब्राह्मणास्तोपयेत्पश्चाच्छुक्लवस्त्रानुलेपनं ।
वस्त्रयुग्म गुरोर्दद्यात्सपूज्यश्च ग्रहस्तथा ॥१६

जो तेरे केशों मे—सीमन्त मे और मूर्द्धा मे दौर्भाग्य है तथा ललाट मे—कानों मे और नेत्रों मे दौर्भाग्य है वह सदा नाश को प्राप्त होवे ॥८॥ जब स्नान कर लेवे तो उस नहाये हुए के श्रवण मे तथा मस्तक में और मूर्द्धा मे घृत सहित कुशाओं को ग्रहण कर सरसो के तैल की आहूतियाँ देवें ॥९॥ मित और सयमित हो शाल कटङ्कटों से युक्त कूष्माण्ड तथा अन्त मे स्वाहा से समन्वित राज पुत्रो का सद्य से चतुष्पथ पर भूमि मे सब ओर कुशाओ को आस्तृत करे। कृताकृत तण्डुल और ओदन—पुष्प—चित्र—सुगन्ध और तीनो प्रकार की सुरा—दधि—पायस—अन्न —घृत—गुड मोदक इन समस्त वस्तुओ को उपस्कृत करके भूमि मे रक्खे और इसके अनन्तर शिव एव अम्बिका का उप-

स्थान करे। हाथ जोड़कर अन्न समर्पित करे। पुत्र के जन्म के अन्त में दूर्वा और सरसों के पुष्पों से यजन कर तथा स्वस्त्ययन करके सती अम्बिका की प्रार्थना करनी चाहिए ॥१० से १४॥ हे देवि ! आप मुझे रूप प्रदान करें—यश देवें—सौभाग्य देवें—पुत्र देवें—श्री देवें और मेरी समस्त कामनाओं को प्रदान करें। इसके पश्चात् शुक्ल वस्त्र तथा अनुलेपनों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे। दो वस्त्र गुरु को समर्पित करे और ग्रह की भली भाँति पूजा करनी चाहिए ॥१५॥१६॥

५६—ग्रहयाग

श्रीकाम शान्तिकामो वा ग्रहदृष्टयभिचारवान्।
ग्रहयाग सम कर्य्याद् ग्रहाश्चं ते बुधैं स्मृता ॥१
सूर्य्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः।
शुक्र शनैश्चरो राहु केतुग्रहगणा स्मृता ।२
ताम्रकास्यस्फाटिकाच्च रक्तचन्दनस्वर्णकात्।
रजतादयस सीसात्वास्याद् हष्टि प्रशाम्यति ॥३
रक्त शुक्लस्तथा रक्त पीत पीत सितासित।
कृष्ण कृष्ण क्रमाद्वर्ण निबोध मुनयस्तत ॥४
स्नापयेद्धोमयेच्चैव ग्रहद्रव्यैविधानत।
सुवर्णानि प्रदेयानि वासासि कुसुमानि च ॥५
गन्धादिबलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलु।
चरु व्यास्तत्र मन्त्रैश्च अधिप्रत्यधिदेवतै ॥६
आकृष्णेन इम देवा अग्निर्मूद्धादिव ककुत्।
उद्बुध्यस्वेति जुहुयाद्भिरेव यथाक्रमम् ॥७

याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा—श्री की कामना करने वाला शान्ति की अभिलाषा रखने वाला अथवा ग्रहों की दृष्टि के अभिचार वाला पुरुष सम ग्रहयाग करे। बुधजनों ने ये ग्रह बताये हैं—सूर्य—चन्द्र—मङ्गल—बुध—बृहस्पति—शुक्र शनैश्चर—राहु और केतु ये ग्रह गण कहे गये हैं ॥१।२॥ इन युक्त नौ ग्रहों की दृष्टि ताम्र—कांस्य (कासा)—स्फटिक—रक्त चन्दन—सुवर्ण—रजत (चाँदी)—लोह—सीसा से प्रशान्त होती है ॥३। रक्त—शुक्ल तथा रक्त—पीत, पीत और सिता-

सित-कृष्ण-कृष्ण ये क्रम से वर्ण हैं। हे मुनिगण! इनको समझलो ॥४॥ इन ग्रहों के द्रव्यों से विधान के साथ स्नपन करावे तथा होम करावे। सुवर्ण का दान करे। वस्त्र और कुसुमों को देवे ॥५॥ गन्ध आदि वलय देवे। गूगल की धूप देनी चाहिए। वहाँ पर ग्रह याग में अधि प्रत्यधि देवत मन्त्रों के द्वारा यह सब कृत्य पूर्ण करने चाहिए ॥६॥ 'आकृष्णेन–इम–देवा–अग्निमूर्धादिवः ककुत् उद्बुध्य स्व'—इन ऋचाओं से क्रमानुसार हवन करना चाहिए ॥७॥

बृहस्पते परिदीयेति अन्नात्परिश्रु तोरसम्।
शन्नोदेवी कयानश्च केतु कृण्वन्निति क्रमात् ॥८
अर्क पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्या दध्ना चैव समन्वितः ॥९
गुडोदनो पायसञ्च हविष्य क्षीरषाष्टिकम्।
दध्योदन हवि पूपान्मांस चित्रान्नमेव च ॥१०
दद्याद् द्विज क्रमादेतान्ग्रहेभ्यो भोजन ततः।
धेनुः शङ्खस्तथानड्वान्हेमवासो हयस्तथा ॥११
कृष्णा गौरायस छाग एता वै दक्षिणा क्रमात्।
ग्रहा पूज्याः सदा यस्माद्राज्ञापि प्राप्यते फलम् ॥१२

'बृहस्पते परिदीय'—इससे 'अन्नात्परि श्रुतोरसन्'—शन्नोदेवी–कय.नश्च केतु कृण्वन्'—इनसे क्रम पूर्वक आहुतियाँ देवे ॥ ८ ॥ अर्क (आक)–पलाश (ढाक)–खदिर–अपामार्ग–पीपल–गूलर–शमी (छौंकर)–दूर्वा (दूब) और कुशा ये इनके हवन करने के लिये क्रम से समिधाएँ होती हैं। मधु (शहद) और सर्पि (घृत) से जोकि दधि (दही) से समन्वित हो हवन करे ॥९॥ गुड–ओदन–पायस ये हविष्य हैं। क्षीर षष्टिक–दधि–ओदन ये हवि हैं। पूप (पूआ) आमिष–चित्रान्न यह भोजन द्विज को ग्रहों के लिये देना चाहिए। फिर विप्रों को ग्रहों की सन्तुष्टि के लिए दक्षिणा देवे। दक्षिणा क्रम से धेनु–शङ्ख–अन-ड्वान्–हेम–वस्त्र–अश्व–श्यामा गौ–आयस छाग यह होती हैं। इस प्रकार से

ग्रहो की सदा पूजा करनी चाहिए । राजा भी इस तरह पूजा से फल की प्राप्ति किया करते हैं ।।१०।११।।१२।।

६० —वानप्रस्थ भिक्षुकाश्रम

वानप्रस्थाश्रमं वक्ष्ये तत्करस्तु महर्षयः ।
पुत्रेषु भार्य्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ।।१
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः शमदमक्षमी ।
अर्चयेत्साग्निकान्विप्रान्पितृदेवातिथींस्तथा ।।२
भृत्यास्तु तर्पयेच्छ्मश्रुजटालोमभृदात्मवान् ।
दान्तस्त्रिसवनं स्नायान्निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् ।।३
स्वाध्यायवान्ध्यानशीलः सर्वभूतहिते रतः ।
अह्नो मासस्य मध्ये वा कुर्य्यात्स्वार्थपरिग्रहम् ।।४
निराश्रय स्वपेद् भूमौ कर्म कुर्य्यात्फलं विना ।
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ।।५
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते योगाभ्यासाद्दिनं नयेत् ।
अक्रुद्धः परितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ।।६

याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा—हे महर्षि गणो ! अब मैं वानप्रस्थ आश्रम के विषय मे कहता हूं जोकि एक वानप्रस्थाश्रमी को करना चाहिए । वानप्रस्थाश्रमी को चाहिए कि अपनी भार्या को अर्थात् उसके पोषणादि के समस्त भार को अपने पुत्रो के सुपुर्द कर देवे अथवा उस भार्या को अपने ही साथ मे लेकर चले जाना चाहिए । अर्थात् घर का त्याग करके वन मे जावे । वानप्रस्थ आश्रम मे रहने वाले व्यक्ति को ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिए । उसे साग्नि अर्थात् अग्नि यजन करने वाला रहना चाहिए । शम-दम और क्षमा से युक्त उसे रहना होता है । वानप्रस्थों को साग्निक विप्रो का—पितरों का—देवो का तथा अतिथियो का यजन करना चाहिए ।।१।२।। अपने भृत्यो को निरन्तर तृप्त करना चाहिए वानप्रस्थी को जटा और लोम धारण कर आत्मवान् अर्थात् सबमे अपनी ही आत्मा को समझने वाला रहना आवश्यक है। दान्त होकर त्रिकाल

स्नान-सन्ध्या करे और कभी किसी का प्रतिग्रह ग्रहण न करे ।। ३ ।। निरन्तर वेदादि निगमों का स्वाध्याय करे । ध्यान के स्वभाव वाला बने । समस्त प्राणी-मात्र के हित-सम्पादन के कार्य में रति रक्खे । दिन के अथवा मास के मध्य में स्वार्थ का परिग्रह करना चाहिए ।।४।। बिना किसी वस्तु का आश्रय लेकर भूमि में शयन करे और फल की आकाङ्क्षा से रहित होकर कर्म करना चाहिए । ग्रीष्म ऋतु में पञ्च अग्नि तपे और वर्षा ऋतु में स्थण्डिल शायी रहे ।।५।। हेमन्त में गीले वस्त्र धारण कर प्रतिदिन योग का अभ्यास करे । सर्वदा क्रोध रहित-परितोष से सम्पन्न रहे । समस्तों को भी ऐसा ही रक्खे और अपने आपको भी ऐसा रक्खे ।।६।।

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि त निबोधत सत्तमा ।
वनान्निवृत्य कृत्वेष्टिं सर्ववेदप्रदक्षिणाम् ।।७
प्राजापत्य तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनि ।
सर्वभूतहित शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलु ।।
सर्वायास परित्यज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ।।८
अप्रमत्तश्चरेद् भैक्ष्य सायाह्ने नाभिलक्षित ।
वाहितंभिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुप ।।९
भवेत्परमहसो वा एकदण्डी यमादित ।
सिद्धयोगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात् ।।१०
योगमभ्यस्य मितभुक्परा सिद्धिमवाप्नुयात् ।
दाताऽतिथिप्रियो ज्ञानी गृही श्राद्धेऽपि मुच्यते ।।११

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं—अब भिक्षु के धर्म को बताता हूँ—हे सत्तमो ! उसे समझो । वानप्रस्थाश्रम में रहकर वन से निवृत्त होवे । इष्टि करके समस्त वेदों की प्रदक्षिणा करे । इसके अन्त में प्राजापत्य करे और अपनी आत्मा में अग्नि का आरोपण करे । सब भूतों के हित में रत होते हुए शान्ति धारण कर तीन दण्ड धारण करे और कमण्डलु का ग्रहण करे ।।७।८।। समस्त प्रकार के आयाम का परित्याग कर भिक्षा का अर्थी होकर ग्राम का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । अप्रमत्त होकर भिक्षाचरण करे और सायाह्न में अभिलक्षित न होवे ।

पाहित भिक्षुकों के साथ यात्रा मात्रा का कभी लोलुप न होवे ॥ ९ ॥ अथवा परमहंस होकर रहे। यमादि धारण कर एक दण्ड धारी रहे। इस तरह से सिद्ध योग वाला होकर अपने देह का जो त्याग करता है वह यहाँ सिद्धि को एवं अमृतत्व को प्राप्त किया करता है ॥१०॥ योग का अभ्यास कर परिमित भोजन करे तो परा सिद्धि को प्राप्त किया करता है। दाता—अतिथियों के प्रिय करने वाला ज्ञानशील गृहस्थ भी श्राद्ध करने पर मुक्ति को प्राप्त किया करता है ॥११॥

६१—नर्क में पापियों के फल

नरकात्पातकोद्‌भूतात्पापस्य कर्मणः क्षयात् ।
ब्रह्महा श्वा खरोष्ट्र- स्यान्मूकश्चान्ते भविष्यति ॥१
स्वर्णचौरः कृमिः कोट- तृणादिर्गुरुतल्पगः ।
क्षयरोगी श्यावदन्त. कुनखी शिपिविष्टकः ॥
ब्रह्महत्याक्रमात्स्युश्च तत्सर्वं वा शिशोर्भवेत् ॥२
धान्यहर्त्ता त्वनाहारी मूको रागापहारक ।
धान्यहाऽप्यतिरिक्ताङ्ग पिशुनः पूतिनासिकः ॥३
तैलहारी तैलपायी पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ।
जायन्ते लक्षणभ्रष्टा दरिद्राः पुरुषाधमाः ॥
जायन्ते लक्षणोपेता धनधान्यसमन्विताः ॥४

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—महा पातकों से प्राप्त नरक से—पापों के कर्म का क्षय होने से ब्रह्म हत्यारा व्यक्ति फिर कुत्ता—गधा और ऊँट की योनि प्राप्त किया करता है और अन्त में मूक हो जाता है ॥ १ ॥ सुवर्ण की चोरी करने वाला व्यक्ति कृमि और कीट की योनि प्राप्त किया करता है। गुरु की शय्या पर गमन करने वाला क्षय का रोगी—श्याव दाँतों वाला—कुनखी और शिपि विष्टक होता है। ब्रह्महत्या के क्रम से ये सभी हुआ करते हैं अथवा यह सब शिशु के होता है ॥२॥ धान्य का हरण करने वाला अनाहारी-मूक और रोगापहारक, धान्यहारी, अतिरिक्त अङ्गों वाला—पिशुन एवं पूतिनासिका वाला होता

है ॥३॥ तैल का हरण करने वाला तैल पीने वाला—दुर्गन्ध युक्त मुख वाला—सूचक होता है। ऐसे पुरुष समस्त शुभ लक्षणों से भ्रष्ट—दरिद्र और पुरुषों म अधम होते हैं और जन्म ग्रहण किया करते हैं। शुभ लक्षणों से उपेत धन धान्य से समन्वित हुआ करते हैं ॥४॥

६२—प्रेत शौच वर्णन

प्रेतशौच प्रवक्ष्यामि मच्छृणुध्व यतव्रता ।
ऊनद्विवर्ष निखनेन्न कुर्य्यादुदक तत ॥१
आश्मशानादनुव्राह्य इतरैर्ज्ञातिभिर्युत ।
यमसूक्त तथा जप्य जपद्भिर्लौकिकाग्निना ॥
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् ॥२
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयाऽभ्युपयान्त्यप ।
अपन सोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखा ॥३
एव मातामहाचार्य्यप्रेतानाश्चोदकक्रिया ।
कामोदका सखिपुत्रस्वस्त्रीयश्वशुरद्विजा ॥
नामगोत्रेण ह्युदक सकृत्सिञ्चन्ति वाग्यता ॥४
पापण्डपतिताना तु न कुर्य्युरुदकक्रिया ।
न ब्रह्मचारिणो व्रात्या योपित कामगास्तथा ॥५
सुरापा स्वात्मघातिन्यो न शौचोदकभाजना ।
ततो न रोदितव्य हि त्वनित्या जीवसस्थिति ॥६
क्रिया कार्य्या यथाशक्ति ततो गच्छेद् गृहान् प्रति ।
विदार्य्य निम्वपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मन ॥७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—हे यत व्रत वालो ! अब हम प्रेत के कारण होने वाले आशौच के विषय म आपको बतलाते हैं उसका आप लोग श्रवण करे—जो दो वर्ष से कम हो उसका निखनन करे अर्थात् भूमि में गाड देवे और फिर उदक क्रिया न करे। श्मशान तक अनुवाहित करके इतर ज्ञातियो के सहित यम सूक्त का जप करना चाहिए। इस प्रकार से जाप करने वालो के

द्वारा यह लौकिक अग्नि से दग्ध नहीं करना चाहिए अर्थात् साधारण आग से उसका दाह न करे। यदि ढ़ेर हो तो वाहिताग्नि से आवृत अर्थ की भांति करे ॥१.२॥ सप्तम अथवा दशम में जाति के लोग जल का ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से पितृ दिश् की ओर मुख वाले अघ का निवारण किया करते हैं। इसी विधि से मातामह-आचार्य और पत्नी की उदक क्रिया होती है। सखा-पुत्र-स्वस्रीय (बहिन का पुत्र)-श्वसुर और द्विज कामोदक होते हैं अर्थात् जल की कामना वाले होते हैं। वाग्यत (मौन) होकर नाम और गोत्र से एक बार का सिञ्चन करते हैं ॥ ३.४ ॥ पाषण्ड से जो पतित हों उनकी उदक क्रिया नहीं करनी चाहिए। ब्रह्मचारी-व्रात्य और योषित उसी प्रकार से पात्र नहीं होते हैं अर्थात् उदक क्रिया के योग्य नहीं हैं ॥५॥ सुरा का पान करने वाले-अपनी आत्मा का घात करने वाले भी शौचोदक के पात्र नहीं हैं। उनके लिये रुदन भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि जीवों की संस्थिति अनित्य होती है ॥ ६ ॥ यथा शक्ति क्रिया करनी चाहिए और फिर गृहों के प्रति चले जाना चाहिए। जब घर के द्वार पर पहुँचे तो नियत रूप से स्थित होकर निम्ब के पत्तों का विदारण करे ॥७॥

आचम्याथाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान्।
प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥८

प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसम्पर्शनादपि।
ईक्षतां तत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात् ॥९

क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् पृथक्।
पिण्ड यज्ञकृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम् ॥१०

जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं तु मृन्मये।
वैतानोपासना कार्या क्रियाश्च श्रुतिचोदिताः ॥११

आदन्तजन्मनः सद्य आचूडं नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥१२
त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमुच्यते।

ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति ॥१३

दशद्वादशवर्णानां तथा पञ्चदशैव च ।
त्रिंशद्दिनानि च तथा भवति प्रेतसूतकम् ॥१४

आचमन करके इसके अनन्तर अग्नि—उदक—गोमय (गोबर) और गौर सर्षप (सरसों) का प्रवेश करे । समलमन पत्थर पर करके धीरे पद रक्खे ।८। इस प्रकार से प्रवेशन आदि कर्म करे । प्रेत के सस्पर्श से और देखने वालों की उसी समय शुद्धि होती है और दूसरों की स्नान—मयम से शुद्धि हो जाती है ॥९॥ खरीद कर लाये हुए तथा कहीं से प्राप्त हुए भोजन को करने वाले वे पृथक्-पृथक् भूमि पर ही शयन करे । यज्ञ करने वाले पुरुष को प्रेत के लिये तीन दिन तक अन्न पिंड देना चाहिए ॥ १० ॥ एक दिन आकाश में जल तथा मृण्मय पात्र में क्षीर स्थापित करे । श्रुति प्रतिपादित वैतानोपासना की क्रिया करनी चाहिए ।११। जिसके दाँत पैदा न हुए हो उसकी जन्म से दाँत उगने तक सद्यः शुद्धि हो जाती है । चूडा कर्म होने तक एक निशा की अशुद्धि रहती है । व्रतादेश होने के पूर्व तक तीन रात्रिका आशौच मृतक का होता है । इससे ऊपर दश रात्रि तक अशौच रहा करता है ॥१२॥ तीन रात्रि अथवा दश रात्रि शव में सम्बन्धित अशौच हुआ करता है । दो वर्ष से कम का दोनों में (जन्म-मरण में) केवल माता को ही सूतक होता है । जन्म-मरण के अन्तर में शेष दिनों में विशुद्धि होती है ॥१३॥ वर्णों का आशौच क्रम से दश—बारह—पन्द्रह और तीस दिन का प्रेत सूतक होता है । अर्थात् ब्राह्मण को दश दिन का—क्षत्रिय को बारह दिन का—वैश्य को पन्द्रह दिन का और शूद्र को तीस दिन का सूतकाशौच होता है ॥१४॥

अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।
गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥१५

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्य्यास्वन्यगतासु च ।
नीरसे राजनि तथा तदहः शुद्धिकारकम् ॥१६

हतानां नृपगोविप्रैरलक्षं चात्मघातिनाम् ।
विषाद्यैश्च हतानाञ्च नाशौचं पृथिवीपतेः ॥१७
सत्रिव्रतब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा ।
दाने विवाहे यज्ञे च सग्रामे देशविप्लवे ॥१८
आपद्यपि हतानाञ्च सद्यः शौचं विधीयते ।
कालोऽग्निकर्म मृद्वायुर्मनो ज्ञानं तपो जपः ॥१९
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेषां शुद्धिहेतवः ।
अकार्य्यकारिणां दानं वेगो नद्यास्तु शुद्धिकृत् ॥२०

अदत्त कन्याओं में और बालों में विशोधन एक दिन होता है। गुरु-अन्ते वासी (शिष्य)-अनूचान-मातुल-श्रोत्रिय-मनौरस पुत्र—अन्यगता भार्या-नौरस राजा में वह दिन ही शुद्धि कारक होता है अर्थात् उसी एक दिन में आशौच की निवृत्ति हो जाती है ॥१५।१६॥ नृप-गौ और विप्र के द्वारा हत और अलक्ष आत्मघाती तथा विषादि के द्वारा हत हुए का पृथिवी पति को आशौच नहीं होता है ॥१७॥ सत्री-व्रती-ब्रह्मचारी-दाता-ब्रह्मवेत्ता का दान में—विवाह में-यज्ञ में—सग्राम में—देश के विप्लव के समय में तथा आपत्ति काल में जो हत हो उनका शौच तुरन्त ही हो जाता है। काल—अग्नि कर्म-मृत्तिका—वायु—मन—ज्ञान—तप—जप—पश्चात्ताप और निराहार ये सब भी शुद्धि के हेतु होते हैं अर्थात् इन उक्त कर्मों से सभी प्रकार की शुद्धि होजाया करती है। अकार्यों के करने वालों का दान और नदी का वेग शुद्धि के करने वाला है ॥१८।१९।२०॥

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः ।
फलसोमक्षौमवीरुद्दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥
तिलौदनरसक्षारमधुलाक्षायुत हविः ॥२१
वस्त्रोपलासवं पुष्पं शाकमृच्चर्मपादुकम् ।
एणत्वचं च कौषेयं लवणं मांसमेव च ॥२२
पिण्याकमूलगन्धांश्च वैश्यवृत्तो न विक्रयेत् ।
धर्मार्थं विक्रयस्तेषां तिलधान्येन सयुतम् ॥२३

लवणादि न विक्रीयात् तथा चापद् गतो द्विजः ।
कुर्य्यात् कृष्यादिकं तद्वद्विक्रेया ह्यास्तथा ॥२४
बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा दृष्ट्वा वृत्तिविवर्जितम् ।
राजा धर्मान्प्रकुर्वीत वृत्तिं विप्रादिकस्य च ॥२५

द्विज को यदि निर्वाह न होता है तथा आपत्ति काल उपस्थित हो जावे तो उसे क्षत्रिय के अथवा वैश्य के कर्म से जीवन-निर्वाह कर लेना चाहिए। वैश्य की वृत्ति का आश्रय भी लेवे तो फल-सोम-क्षौम-वीरुद्-दधि-क्षीर—घृत—जल—तिल—ओदन—रस-क्षार-मधु—लाक्षायुत-हवि-वस्त्र-उपलासव पुरा-शाक—मृद—चर्म—पादुका—एणत्व—कौपेय—लवण-मांस-पिण्याक-मूल और गन्धों का विक्रय कभी नहीं करना चाहिए। इनका विक्रय धर्मार्थ है जोकि तिल धान्य से संयुत है। आपद्गत होने पर भी द्विज को लवण आदि का विक्रय कभी नहीं करना चाहिए। कृषि आदि का कार्य ही करना चाहिए। अश्वों का भी विक्रय नहीं करे। तीन दिन तक बुभुक्षित रहकर स्थित हो तो उसे देखकर जोकि वृत्ति से वर्जित है राजा को धर्म करना चाहिए और विप्रादि की वृत्ति की व्यवस्था करे ॥२१ से २५॥

६३—पराशरोक्त धर्म कीर्तन

पराशरोऽब्रवीद् व्यास धर्मं वर्णाश्रमादिकम् ।
कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्ति क्षीयन्ते न ह्यजादयः ॥१
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारो यः कश्चिद् वेदकर्तृकः ।
वेदाः स्मृताः ब्राह्मणादौ धर्मा मन्वादिभि: सदा ॥२
दानं कलियुगे धर्मः कर्तारञ्च कलौ त्यजेत् ।
पापकृत्यं तु तत्रैव शाप फलति वर्षतः ॥३
आचारात्प्राप्नुयात्सर्वं षट् कर्माणि दिने दिने ।
सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवातिथ्यादिपूजनम् ॥४
अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वा यतयस्तदा ।

क्षत्रिय परसैन्यानि जित्वा पृथ्वी प्रपालयेत् ॥
वणिक्कृष्यादि वैश्ये स्याद् द्विजभक्तिश्च शूद्रके ॥५
अभक्ष्यभक्षणाच्चौर्यादगम्यागमनात् पतेत् ॥
कृषिं कुर्वन्द्विज- श्रान्त बलीवर्दं न वाहयेत् ॥६
दिनार्द्धं स्नानयोगादिकारी विप्रांश्च भोजयेत् ।
निर्वपेत्पञ्च यज्ञानि क्रूरे निन्दांश्च कारयेत् ॥७

सूतजी ने कहा—पराशर मुनि ने व्यास महर्षि से वर्णों और आश्रमों के धर्म आदि कहे थे। कल्प–कल्प में क्षय और उत्पत्ति होते हैं किन्तु मन्वादिक क्षीण नहीं होते हैं ॥१॥ श्रुति—स्मृति और सदाचार जोकि वेद कर्तृक है। मन्वादि के द्वारा सदा ब्राह्मणादि में वेद ही धर्म कहे गये हैं ॥२॥ कलियुग में दान धर्म होता है। कलियुग में कर्त्ता का त्याग होता है। पाप कृत्य वहाँ पर ही फल देता है और शाप एक वर्ष में फल दिया करता है ।३। आचार से सभी कुछ की प्राप्ति होती है। ये षट् कर्म प्रतिदिन करने चाहिए—सन्ध्या–स्नान—जप—होम—देव और अतिथि का पूजन ये छैं कर्म हैं ॥४॥ सुव्रत वाला विप्र अपूर्व होता है और यति लोग भी उस समय अपूर्व होते हैं। क्षत्रिय लोग परों की सेनाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करें। वैश्य वाणिज्य और कृषि–गोपालन आदि कर्म करे। शूद्र में द्विजातियों की भक्ति और सेवा होनी चाहिए ॥५॥ जो अभक्ष्य पदार्थ हैं उनके भक्षण करने से—चोरी का कुत्सित कर्म करने से और जो गमन करने के अयोग्य नारी है उसका गमन करने से पतित हो जाता है। यदि आपत्ति काल में द्विज कृषि कर्म करे तो उसे चाहिए कि थके हुए वृषभ को वाहित न करे ॥६॥ दिन के अर्ध भाग में स्नान और योगादि के कर्म करे तथा विप्रों को भोजन करावे पञ्चयज्ञों का निर्वपन करे तथा क्रूर कर्म की निन्दा करे ॥७॥

तिलाज्य न विक्रीणीत शूनायज्ञादघान्वितः ।
राज्ञो दत्त्वा तु षड्भाग देवतानाञ्च विंशतिम् ॥
अर्यस्त्रिंशञ्च विप्राणां कृषिकर्त्ता न लिप्यते ॥८

कर्षकाः क्षत्रविट्शूद्राः खल्वदत्त्वा तु चौरकाः ।
दिनत्रयेण शुध्येत ब्राह्मणः प्रेतसूतके ।।९
क्षत्रो दशाहाद्वैश्यस्तु द्वादशान्मासि शूद्रकः ।
याति विप्रो दशाहात्तु क्षत्रो द्वादशकाद्दिनात् ।।१०
पञ्चदशाहाद्वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ।
एकपिण्डास्तु दायादा पृथग्भावनिकेतना ।।११
जन्मना च विपत्तौ च भवेत्तेपाञ्च सूतकम् ।
चतुर्थे दशरात्रस्य षण्निशाः पुंसि पञ्चमे ।।१२
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे च दिनत्रयम् ।
देशान्तरे मृते बाले सद्य शुद्धिर्यतो मृते ।।१३
अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृता ।
न तेषामग्निसंस्कारो न पिण्डं नोदककिया ।।१४

सूना यज्ञ से अघान्वित होता हुआ तिल और घृत का विक्रय कभी न करे। राजा को छटवां भाग और देवताओं को बीसवां भाग देवे। तेतीसवाँ भाग विप्रो को देवे तो कृषि के कर्म को करने वाला व्यक्ति कभी भी पाप से लिप्त नही होता है ।।८।। जो क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र कर्षक है और वे दान नही करते हैं तो चोर होते हैं। ब्राह्मण प्रेत सूतक मे तीन दिन मे शुद्ध हो जाता है ।।९।। क्षत्रिय दश दिन मे—वैश्य बारह दिन मे और शूद्र एक मास मे प्रेत सूतक मे शुद्ध हुआ करता है। विप्र दश दिन मे-क्षत्रिय बारह दिन मे—वैश्य पन्द्रह दिन मे और शूद्र एक मास मे शुद्ध होता है। एक पिंड वाले दायाद जिनके भाव और निकेतन पृथक् हो उनको जन्म और मरण मे सूतक सबको होता है। चौथी पीढी तक दश रात्रिका—पाँचवी पीढी मे छै रात्रिका-छटवी पीढी मे चार दिन का और सातवी पीढी मे तीन दिन मे शुद्धि होती है। देशान्तर मे मरने पर और बालक के मरने पर सद्य शुद्धि हो जाती है ।।१०।। ।।११।१२।१३।। अजात दन्त जो बालक हैं और जो गर्भ से निकले हुए बालक हैं उनका अग्नि सस्कार नहीं होता है—न उनका पिंडदान होता है और न उनके लिए उदक क्रिया ही होती है ।।१४।।

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ।
यावन्मासान्स्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ॥१५
आनामकरणात्सद्य आचूड़ान्तादहर्निशम् ।
आव्रतस्थात्त्रिरात्रेण तदूर्ध्वं दशभिर्दिनैः ॥१६
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
ब्रह्मचर्य्यादग्निहोत्रान्नाशुद्धिः सङ्गवर्जनात् ॥१७
शिल्पिनः कारवो वैद्या दासीदासाश्च भृत्यकाः ।
अग्निमाञ्छ्रोत्रियो राजा सद्यःशौचाः प्रकीर्त्तिताः ॥१८
दशाहाच्छुद्धयते माता स्नानात्सूते पिता शुचिः ।
सङ्गात् सूतो सूतकं स्यादुपस्पृश्य पिता शुचि. ॥१९
विवाहोत्सवयज्ञे षु अन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वसङ्कल्पितादन्यवर्जनञ्च विधीयते ॥२०
मृतेन शुद्धयते सूती मृतक जातकं त्वसौ ।
गोग्रहादौ विपन्नानामेकरात्रं तु सूतकम् ॥२१

यदि स्त्री का गर्भ गिर जावे या गर्भ का स्राव हो जावे तो जितने मास का उसको गर्भ हो उतने ही दिन तक उसे सूतक होता है ॥ १५ ॥ जब तक नामकरण संस्कार न हो और उसकी मृत्यु हो ज वे तो तुरन्त ही सूतक से शुद्धि हो जाती है । जब तक चूड़ा कर्म न हो तब तक एक दिन और एक रात्रि में शुद्धि होती है । व्रतस्थ तक तीन रात्रि मे शुद्धि होती है इसके ऊपर फिर दश रात्रि तक आशौच रहा करता है ॥१६॥ गर्भ जब स्थित हो उससे चौथे मास तक तो उसका स्राव कहा जाता है तथा पाँचवें और छटवें मास मे गर्भ क्षीण होता है तो उसे गर्भ का पात कहते हैं । ब्रह्मचर्य से—अग्निहोत्र से और सङ्ग के वर्जन से अशुद्धि नहीं होती है ॥१७॥ शिल्पी—कारु—वैद्य—दासी—दास—भृत्य—अग्निमान्—श्रोत्रिय—राजा ये तुरन्त ही शौच वाले बताये गये हैं ॥१८॥ माता दश दिन में शुद्ध होती है और पिता स्नान से शुचि हो जाता है । सूतक वाले के सङ्ग से भी सूतक होता है । पिता उपस्पर्शन करके शुचि होता है ॥१९॥ विवाह—उत्सव और यज्ञों मे यदि मध्य में मृत सूतक होता है तो पूर्व से जो भी

सङ्कल्पित कृत्य है उसका अन्य वर्जन किया जाता है ॥ २० ॥ यह सूतकी मृत और जातक से शुद्ध होता है। गो ग्रहादि में विप्रों का केवल एक रात्रि का सूतक होता है ॥२१॥

अनाथप्रेतवहनात् प्राणायामेन शुध्यति ।
प्रेतशूद्रस्य वहनात्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२२
आत्मघातिविषाद्वन्धकृमिदष्टे न सस्कृतिः ।
गोहतकृमिदष्टञ्च स्पृष्ट्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ॥२३
अदुष्टां पतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत् ।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्व वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥२४
बालहत्या त्वगमनादृतौ च स्त्री तु शूकरी ।
अगम्या व्रतकारिण्यो भ्रष्टपानोदकक्रियाः ॥२५
औरस क्षेत्रजः पुनः पितृजो पिण्डदो पितु ।
परिवित्तेस्तु कृच्छ्र स्यात्कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ॥२६
अतिकृच्छ्रं चरेद् दाता होता चान्द्रायणञ्चरेत् ।
कुब्जवामनपण्डेपु गद्गदेपु जड़ेपु च ॥
जात्यन्धवधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥२७
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे वा पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥२८

कोई अनाथ प्रेत हो और उसका वहन श्मशान तक किया जावे तो केवल प्राणायाम करने से ही शुद्धि हो जाया करती है। प्रेत शूद्र के वहन करने से तीन रात्रि में अशुचिता दूर होती है ॥२२॥ आत्मघात करने वाले—विष से—बन्ध से—कृमि के द्वारा दष्ट हो जाने से जो मृत्यु होती है उसका संस्कार नहीं होता है। गौ से हत और कृमि से दष्ट का स्पर्श करके कृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है ॥ २३ ॥ जो दोषों से रहित अपनी भार्या को यौवनावस्था में ही परित्यक्त कर देता है उसको सात जन्म तक स्त्री की योनि प्राप्त हुआ करती है और बारम्बार वह विधवा भी होती है ॥२४॥ बालहत्या और ऋतुकाल में

गमन न करने से स्त्री शूकरी होती है । व्रतकारिणी और भ्रष्ट पानोदक क्रिया मगम्या होती है ॥२५॥ औरस और क्षेत्रज पुत्र पिता के पितृज पिंडदान करने वाले होते हैं । परिवित्ति स और कन्या स जो हो वह कृच्छ्र होता है । ऐसे व्यक्ति को प्रतिकृच्छ्र व्रत शुद्धि के लिये करना चाहिए । दाता और होता को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । कुब्ज—बौना—पण्ड (नपुंसक)–गद्गद जड़—जन्मान्ध–बधिर और मूक का परिवेदन करन में कोई दोष नहीं होता है ॥२६।२७।२८॥

> श्वादिदष्टस्तु गायत्र्या जपाच्छुद्धो भवेन्नर ।
> दाह्यो लोकाग्निना विप्रश्चाण्डालाद्यैर्हतोऽग्निमान् ॥२६
> क्षीरे प्रक्षाल्य तस्यास्थि स्वाग्निना मन्त्रतो दहेत् ॥३०
> प्रवासे तु मृते भूय कृत्वा कुशमय दहेत् ।
> कृष्णाजिने समास्तीर्य्य षट्शतानि पलाशजा ॥३१
> शमी शिश्ने विनिक्षिप्य अरणिं वृषणे क्षिपेत् ।
> कुण्ड दक्षिणहस्ते तु वामहस्ते तथोपभृत् ॥३२
> पार्श्वे तूलूखल दद्यात्पृष्ठे तु मुपल दहेत् ।
> ऊरौ निक्षिप्य दृषद तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥३३
> श्रोत्रे च प्रोक्षणी दद्यादाज्यस्थालीञ्च चक्षुषो ।
> कर्णे नेत्र मुखे घ्राणे हिरण्यशकलान् क्षिपेत् ॥३४
> अग्निहोत्रोपकरणाद् ब्रह्मलोकगतिर्भवत् ।
> असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्याज्याहुति सकृत् ॥३५
> हससारसक्रौञ्चाना चक्रवाकञ्च कुक्कुटम् ।
> मयूरमेषघाती च अहोरात्रेण शुद्ध्यर्चति ॥३६
> पक्षिण सकलान् हत्वा अहोरात्रेण शुध्यति ।
> सर्वांश्च तुष्पदान्हत्वा अहोरात्रोषितो जपेत् ॥३७

श्वा आदि से दष्ट होने वाला पुरुष गायत्री के जप से शुद्ध हो जाता है । चाण्डाल आदि के द्वारा हनन किया हुआ अग्निमान् विप्र का दाह लौकिक अग्नि से करना चाहिए । और से उसकी अस्थियों का प्रक्षालन कर मन्त्र

पूर्वक स्वाग्नि से दाह करे ॥२९। ३०॥ यदि किसी की प्रवास मे मृत्यु हो जावे तो उसका पुत्तल कुशो से बना कर फिर उसका दाह करे। कृष्णाजिनमे छै सौ पलाशो का समास्तरण करे। शिश्न मे शमी को और वृषण मे अरणि का विनिक्षिप्त करे। दक्षिण हस्त मे कुण्ड तथा वाम हस्त मे उपभृत—पार्श्व मे उलूखल और पृष्ठ मे मुषल का दाह करे। ऊरुओ मे दृषद (पत्थर) और मुख मे तण्डुल—घृत और तिलो का निक्षेप करे ॥३१॥३२॥३३॥ श्रोत्र मे प्रोक्षणी देवे और चक्षुओ मे आज्य स्थाली देवे। कान—नेत्र—मुख और घ्राण मे सुवर्ण के टुकडे क्षिप्त करने चाहिए ॥३४॥ अग्नि होत्र के उपकरण से ब्रह्मलोक की गति वाला होता है। "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा"—इससे एक बार आहुति देवे ॥३५॥ हंस—सारस—क्रौञ्च—चक्र वाक—कुक्कुट—मयूर और मेष के घात करने वाला पुरुष एक रात्रि मे शुद्ध होता है ॥३६॥ समस्त प्रकार के पक्षियो का हनन करने पर एक अहोरात्र मे शुद्धि हुआ करती है। सब तरह के चतुष्पदो का हनन करने पर एक अहोरात्र तक उपोषित रहे और जप करे तो शुद्धि होती है ॥३७॥

९४—नीतिसार कथन

नीतिसारं प्रवक्ष्यामि अर्थशास्त्रादिसंश्रितम् ।
राजादिभ्यो हितं पुण्यमायुः स्वर्गादिदायकम् ॥१
सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः ।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम् ॥२
वर्जयेत्क्षुद्रसंवादं दुष्टस्य चैव दर्शनम् ।
विरोधं सह मित्रेण सप्रीतिं शत्रुसेविना ॥३
मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ।
दुष्टानां सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥४
ब्राह्मणं बालिशं क्षत्रमयोद्धारं विशं जड़म् ।
शूद्रमक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ॥५
कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः ।
कार्य्यंकारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पण्डितः ॥६

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं नीति शास्त्र का वर्णन करता हूं जो अर्थ शास्त्र आदि से सथित है और राजा आदि के लिये हितप्रद है, पुण्य—आयु और स्वर्ग आदि का प्रदान करने वाला है ॥१॥ सिद्धि की कामना करने वाले पुरुष को सदा सत्पुरुषों का सङ्ग करना चाहिए। असत्पुरुषों के साथ सङ्ग करने से इस लोक में कहीं भी हित नहीं होता है ॥२॥ क्षुद्र स्वभाव और कर्म वाले पुरुष के साथ सम्वाद करना उचित नहीं है। इसे वर्जित कर देना चाहिए और दुष्ट पुरुष का तो कभी दर्शन ही न करे। विरोध रखने वाले के साथ सम्प्रीति और मित्र के साथ विरोध भी नहीं करना चाहिए ॥३॥ मूर्ख शिष्य को उपदेश देने से और दुष्ट स्त्री का भरण करने से तथा दुष्टों का सम्प्रयोग करने से पण्डित पुरुष भी सर्वदा दुःखित रहा करता है ॥ ४ ॥ बालिश (मूर्ख) ब्राह्मण को—युद्ध न करने वाले क्षत्रिय को—जड वैश्य को तथा अक्षर संयुक्त शूद्र को दूर से ही त्याग देना चाहिए ॥ ५ ॥ समय पर शत्रु के साथ सन्धि करना और अवसर प्राप्त होने पर मित्र के साथ भी विग्रह करे किन्तु कार्य और कारण दोनों को भली भाँति विचार कर ही पण्डित पुरुष काल का क्षेप किया करते हैं ॥ ६ ॥ काल बड़ा प्रबल है—यह काल ही समस्त भूतों का पाचन किया करता है और काल ही सब का संहार करता है। काल सुप्तों में जागता है और यह काल अत्यन्त दुरतिक्रम वाला है ॥७॥

कालेषु चरते वीर्यं काले गर्भं च वर्द्धते ।
कालो जनयते सृष्टि पुनः कालोऽपि संहरेत् ॥८
कालः सूक्ष्मगतिर्नित्य द्विविधश्चेह भाव्यते ।
स्थूलसंग्रहचारेण सूक्ष्माचारान्तरेण च ॥९
नीतिसारं सुरेन्द्राय इममूचे बृहस्पतिः ।
सर्वज्ञो येन चेन्द्रोऽभूद् दैत्यान् हत्वाप्नुयाद् दिवम् ॥१०
राजर्षिब्राह्मणैः कार्य्यं देवविप्रादिपूजनम् ।
अश्वमेधेन यष्टव्य महापातकनाशनम् ॥११

उत्तमै सह साङ्गत्य पण्डितै. सह सत्कथाम् ।
अलुब्धै॰ सह मित्रत्व कुर्वाणो नावसीदति ॥१२
परदार परार्थंञ्च परिहास परस्त्रिया ।
परवेश्मनि वासञ्च न कुर्वीत कदाचन ॥१३
परोऽपि हितवान् बन्धुबन्धुरप्यहितहि पर ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥१४

काल मे ही वीर्य धारण करता है और काल मे ही गर्भ की वृद्धि होती है। काल सृष्टि का जनन किया करता है और फिर सृष्टि का सहार भी काल ही कर देता है ॥८॥ यह काल बहुत ही सूक्ष्म गति वाला है और नित्य ही दो प्रकार से प्रतीत हुआ करता है—एक इसका स्थूल सग्रह कार होता है और दूसरा सूक्ष्मा चारान्तर होता है ॥६॥ देव गुरु बृहस्पति ने सुरेन्द्र को इस नीति के सार को बतलाया था जिससे इन्द्र सर्वज्ञ होगया था और समस्त दैत्यो का हनन करके उसने दिवलोक की प्राप्ति की थी ॥१०॥ राजर्षि और ब्राह्मणो के द्वारा देवो तथा विप्रादि का पूजन करना चाहिए। अश्वमेध का यजन करना चाहिये। इससे महान् पातको से पापो का क्षय हो जाता है ॥ ११ ॥ उत्तम पुरुषो के साथ सङ्गति और पण्डित पुरुषो के साथ सत्कथा तथा जो लोभी अधिक न हो उनके साथ मित्रता करते हुए पुरुष को दुःख नही होता है ॥१२॥ पराई स्त्री—पराया धन—पराई स्त्री स परिहास तथा पराये घर मे निवास कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥ पर पुरुष भी हित सम्पादन करने वाला होता है और बन्धु भी परम अहित करने वाला पराया धन जाना करता है जिस तरह देह मे ही जन्म लेने वाली व्याधि अहित होती है और जङ्गल मे उत्पन्न बूँटी औषध का काम किया करती है ॥१४॥

स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषक. ।
तन्मित्र यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ॥१५
स भृत्यो यो विधेयस्तु तद्बीज यत् प्ररोहति ।
सा भार्या या प्रिय ब्रूते स पुत्रो यस्तु जीवति ॥१६

स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य स जीवति ।
गुणधर्मविहीनो यो निष्फलं तस्य जीवनम् ॥१७
सा भार्य्या सा गृहे दक्षा सा भार्य्या सा प्रियवदा ।
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या पतिव्रता ॥१८
हिता स्नाता सुगन्धा च नित्यञ्च प्रियवादिनी ।
अल्पभक्ताल्पभाषिणी सततं मङ्गलैर्युता ॥१९
सततं धर्मबहुला सततञ्च पतिप्रिया ।
सततं प्रियवक्त्री च सततं ऋतुकामिनी ॥२०
एतदादिक्रियायुक्ता सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी ।
यस्येदृशी भवेद्भार्य्या देवेन्द्रो न स मानुषः ॥२१

वही वस्तुतः बन्धु है जो हित के कार्य करने में युक्त होता है और वह ही वास्तव मे पिता है जो पोषण किया करता है । वह मित्र है जिसमे विश्वास होता है और वही देश अपना देश है जहाँ जीवन के निर्वाह की जीविका होती है ॥१५॥ वह भृत्य है जो विधेय अर्थात् आज्ञानुकारी हो और वही बीज है जो प्ररोहण किया करता है । वही भार्या है जो सदा प्रिय भाषण किया करती है और वही पुत्र है जो जीवित रहता है ॥१६॥ वही पुरुष वास्तव मे जीवित रहा करता है जिसमें गुण विद्यमान होते है और जिसमे धर्म की भावना रहा करती है । जिसमें न तो कोई अच्छे गुण ही हैं और धर्म ही है उसका जीवित रहना भी इस ससार में निष्फल ही हुआ करता है ॥१७॥ भार्या वस्तुतः वही है जो गृह-कार्यों मे दक्ष होती है और सर्वदा प्रिय भाषण करने वाली होती है तथा अपने पति को अपने प्राणो के समान समझती है और पातिव्रत धर्म का पूर्णतया पालन किया करती है ॥१८॥ हित करने वाली—नित्य स्नान करने वाली—सुगन्धित पदार्थों से समन्वित और नित्य ही प्रिय बोलने वाली—अल्प भक्ता—स्वल्प अर्थात् मित भाषण करने वाली तथा निरन्तर माङ्गलिक पदार्थों से संयुत रहने वाली—अनवरत बहुत-सा धर्म का आचरण करने वाली तथा बराबर अपने पति को प्यारी—सर्वदा प्रिय एवं मधुर भाषण करने वाली बराबर ऋतुकाल में कामेच्छा रखने वाली—इत्यादि उपर्युक्त क्रियाओ से युक्त

और समस्त प्रकार के सौभाग्यों का वर्द्धन करने वाली जिस मानव की ऐसी भार्या हो वह साक्षात् देवेन्द्र ही है मनुष्य उसे कभी भी नहीं समझना चाहिए १६।२०।२१॥

यस्य भार्य्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया ।
उत्तरोत्तरवादास्या सा जरा न जरा जरा ॥२२
यस्य भार्य्याश्रितान्यत्र परवेश्माभिकाङ्क्षिणी ।
कुक्रियात्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा जरा ॥२३
यस्य भार्य्या गुणज्ञा च भर्त्तारमनुगामिनी ।
अल्पेऽल्पेन तु सन्तुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया ॥२४
दुष्टा भार्य्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पे गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥२५
त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२६
व्याली कण्ठप्रदेशादपि च फणभृतो भीषणा या च रौद्री ।
या कृष्णा व्याकुलाङ्गी रुधिरनयनसव्याकुला व्याघ्रकल्पा ।
क्रोधे चैवोपवक्त्रा स्फुरदनलशिखा काकजिह्वा कराला
सेव्या न स्त्री विदग्धा परपुरगमना भ्रान्तचित्ता विरक्ता ॥२७
भुजङ्गमे वेश्मनि दृष्टिदृष्टे व्याधौ चिकित्साविनिर्वर्त्तिते च ।
देहे च बाल्यादिवयोऽन्विते च कालावृतोऽसौ लभते धृतिं कः २८

जिसकी भार्या विरूप नेत्रों वाली कश्मला और कलह से प्यार करने वाली और जिसके मुख में उत्तरोत्तर वाद-विवाद बना रहता हो वह भार्या मूर्तिमती जरा (वृद्धता) है और जरा जरा नहीं है ॥ २२ ॥ जिसकी भार्या किसी अन्य पुरुष में आश्रित रहने वाली और सदा दूसरे के घर की ही आकांक्षा रखती है—जिसकी बुरी क्रियाऐं हों और जो लज्जा को त्याग देने वाली हो वह भार्या ही वस्तुत. जरा है अर्थात् वृद्धत्व देने वाली होती है और जो दर-असल जरा है उसे जरा नहीं कहना चाहिए ॥ २३ ॥ जिसकी भार्या गुणों की ज्ञाता हो और अपने स्वामी की सर्वदा अनुगामिनी रहा करती हो तथा अल्प में

अल्प से ही सन्तोष करने वाली हो वही वास्तव मे प्रिया भार्या है और प्रिया प्रिया नहीं होती है ॥२४॥ दुष्टा भार्या अर्थात् अनेक दोषो से भरी हुई स्त्री—शठता करने वाला मित्र—आदेश देने पर फौरन हो उत्तर दे देने वाला भृत्य और जिसमे सदा सर्प का निवास रहता हो ऐसे घर मे रहना ये सब बातें नि सन्देह मृत्यु ही के समान होती है ॥ २५ ॥ दुष्टजनो का साथ छोड दो और सदा साधु पुरुषो का समागम करो। रात दिन पुण्य-कर्म करो तथा नित्य ही सांसारिक समस्त पदार्थों की अनित्यता का ध्यान रक्खो ॥२६॥ कण्ठ प्रदेश से भी व्याली—फलभृत् मे भोषण और जो रौद्री—कृष्णा—व्याकुल अङ्गों वाली—रुधिर जैसे नेत्रो से सव्याकुल—व्याघ्र के तुल्य—क्रोध मे उग्र मुख वाली—स्फुरदनल शिखा वाली—काक के समान जिह्वा वाली—कराल स्त्री चाहे विदग्धा ही क्यो न हो—जो पर पुर मे गमन करने वाली—भ्रान्त चित से युक्त और विरक्त रहने वाली हो उसका कभी भी सेवन नही करना चाहिए ॥२७॥ घर मे मद के आँखों से देख लेने पर और व्याधि के चिकित्सा से विनिवर्तित होने पर तथा वाल्यादिवय से अन्वित देह मे कालावृत कौन पुरुष है जो धैर्य धारण कर सकता है ? ॥२८॥

६५—नीतिसार कथन (२)

आपदर्थे धन रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मान सतत रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥१
त्यजेदेक कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत् ॥
ग्राम जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत् ॥२
वर हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे ।
नरकात् क्षीयते पाप कुगृहान्न निवर्त्तते ॥३
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।
न परीक्ष्य पर स्थान पूर्वमायतन त्यजेत् ॥४
त्यजेद् देशमसद्वृत्त वास सोपद्रव त्यजेत् ।
त्यजेत् कृपणराजान मित्र मायामय त्यजेत् ॥५

अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन पुंसा ज्ञानेन किं बहुशठाकुलसङ्कुलेन ।
रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन ॥६
अदृष्टपूर्वा बहवः सहायाः सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्राः ।
अर्थविहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः ॥७

सूतजी ने कहा—इस संसार में मनुष्य को आपत्ति काल यदि कभी आ जावे तो उसके लिये धन की रक्षा करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि मुसीबत के समय में काम देने को धन अवश्य ही बचा कर सुरक्षित रक्खे। धन के द्वारा स्त्रियों की रक्षा करे अर्थात् दारा की रक्षा करना अधिक महत्व वाला है। धन और दारा—इन दोनों से सदा अपने आपकी रक्षा करे। इन दोनों से प्रमुख स्व स्व—संरक्षण होता है ॥ १ ॥ यदि किसी एक का विनाश होकर पूरे कुल का संरक्षण होता हो तो उस सम्पूर्ण कुल की सुरक्षा के लिये एक का त्याग कर देना चाहिए और पूरे ग्राम की रक्षा के लिये कुल को त्याग देवे। जनपद की रक्षा हो तो एक ग्राम का कुछ भी ध्यान नहीं करना चाहिये। इस प्रकार से बड़े की सुरक्षा में छोटे का त्याग बताया गया है किन्तु अपनी आत्मा का महत्व सबसे अधिक है आत्म-रक्षा के लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी को भी त्याग देना चाहिए ॥ २ ॥ दुष्ट चरित्रों वाले घर से तो नरक का निवास ही अधिक अच्छा है क्योंकि नरक के निवास से तो क्रमशः पापों का क्षय होता है और कुगृह के निवास में तो उल्टा पाप बढ़ता ही है वहाँ क्षीण होने का कोई अवसर ही नहीं है ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् पुरुष एक पैर से चलता है तो एक से स्थित रहा करता है। जब तक अगले दूसरे स्थान को भली भाँति परीक्षण कर देख न लेवे तब तक पहिले स्थान को नहीं छोड़ना चाहिए ॥४॥ असत् वृत्त (चरित्र) वाले देश का त्याग कर देवे और जिस जगह के निवास करने में उपद्रव हो उसे भी त्याग देना चाहिए। जो कंजूस स्वभाव वाला राजा हो उसे छोड़ देवे तथा माया से परिपूर्ण रहने वाले मित्र का त्याग कर देवे ॥ ५ ॥ उस धन से क्या लाभ है जो किसी कृपण (कंजूस) के हाथों में पहुँच गया हो। वह ज्ञान भी व्यर्थ ही होता है जो बहुत-से शठों से आकुल एवं सकुल रहता हो। ऐसा रूप लावण्य भी बिना प्रयोजन का है जिस सौन्दर्य के साथ गुण और पराक्रम

बिल्कुल भी न हो। ऐसा मित्र भी संसार में बेकार ही है जो विपत्ति के समय माने पर विमुख हो जाता हो ॥६॥ इस प्रकार से किसी की भी सहायता करने वाले बहुत लोग पहिले नहीं देखे जाते हैं। तात्पर्य यह है कि विरला ही कोई सहायक होता है। प्राय सभी लोग पदासीन पुरुष के ही मित्र हुआ करते हैं। जो धन से रहित अर्थात् गरीब हो और किसी उच्च पद से भी च्युत हो ऐसे पुरुष के तो दुनिया में स्वजन लोग भी शत्रु बन जाया करते हैं ॥७॥

आपत्सु मित्र जानायात् रणे शूर रह शुचिम् ।
भार्य्यांञ्च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम् ॥८
वृक्ष क्षीणफल त्यजन्ति विहगा शुष्क सर सारसा
निर्द्रव्य पुरुष त्यजन्ति गणिका भ्रष्ट नृप मन्त्रिण ।
पुष्प पर्युषित त्यजन्ति मधुपा दग्ध वनान्त मृगा
सर्वं कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभ ॥९
लुब्धमर्थप्रदानेन श्लाघ्यमञ्जलिकर्मणा ।
मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च याथातथ्येन पण्डितम् ॥१०
सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवा सत्पुरुषा द्विजा ।
इतरा खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिता ॥११
उत्तम प्रणिपातेन शठ भेदेन योजयेत् ।
नीच स्वल्पप्रदानेन सम तुल्यपराक्रमै ॥१२
यस्य यस्य हि यो भावस्तस्य तस्य हि त वदन् ।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवश नयेत् ॥१३
नदीनाञ्च नखीनाञ्च शृङ्गिणा शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव गन्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥१४

सच्चे मित्र की जाँच आपत्ति के समय आने पर ही होती है। महा विपत्ति काल में ही मित्र की परीक्षा करे। युद्ध का समय उपस्थित होने पर ही सच्चे शूर का ज्ञान प्राप्त होता है। एकान्त में शुचिता का ज्ञान करे तथा धन–दौलत के वैभव के नष्ट हो जाने पर भार्या की वास्तविकता ज्ञात होती है और दुर्भिक्ष के

समय में अतिथि–प्रियता जानी जाती है ॥८॥ जिस वृक्ष के समस्त फल क्षीण हो जाते हैं तो फिर उसे पक्षीगण छोड़ दिया करते हैं। सरोवर के जल सूख जाने पर उसे सारस पक्षी छोड़कर अन्यत्र चले जाया करते हैं। जिस व्यक्ति के पास धन नहीं रहता है तो उससे गणिका फिर प्रेम न कर उस त्याग देती है,जो राजा नीति–नियमादि से सब तरह भ्रष्ट हो जाता है तो मन्त्रिगण उसका त्याग कर दिया करते हैं। जो पुष्प बासी और मलिन हो जाता है भ्रमर (भौंरा) उसका त्याग कर देता है। जिस जङ्गल के भाग में दावानल से दाह होगया है उसे मृग त्याग देते हैं। सभी प्राणी कार्यवश होकर ही रमण करते हैं नहीं तो यहाँ कोई भी किसी का प्यारा नहीं होता है ॥ ९ ॥ जो लालची हो उस कुछ धन देकर सन्तुष्ट करे अर्थ से अपने वश में करना चाहिए। जो श्लाघनीय गुणों से समन्वित हो उसे हाथ जोड़कर सन्तुष्ट कर लेवे। जो मूर्ख हो उसको उसके से ही आचार और अभिलाषा के अनुवर्त्तन से सन्तुष्ट करे। जो पण्डित पुरुष हो उसके समक्ष में यथातथ (बिल्कुल सत्य) कथन कर सन्तुष्ट करे ॥१०॥ सद्भावना से देवता–सत्पुरुष और द्विज सन्तुष्ट हुआ करते हैं। इतर लोग खाना–पीना देने से सन्तुष्ट होते हैं किन्तु पण्डित लोग मान देने से ही सन्तुष्ट एवं वशीभूत हो जाया करते हैं ॥११॥ जो उत्तम है उसको प्रणिपात के द्वारा और शठ पुरुष को भेद के द्वारा योजित करना चाहिए। जो नीच हो उसे कुछ थोड़ा-बहुत देकर तथा समान को तुल्य पराक्रम के द्वारा योजित करे ॥१२॥ जिस–जिस का जो भाव हो उसी–उस भाव को बोलते हुए उसके अन्त स्तल में भली भाँति प्रवेश करके मेधावी पुरुष शीघ्र ही उसे अपने वशीभूत कर लिया करता है ॥१३॥ नदियों का—नख रखने वाले जन्तुओं का—जिनके सींग हो उनका–हाथों में हथियार रखने वालों का—स्त्रियों का और राज कुल के लोगों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥१४॥

अर्थनाश मनस्ताप गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१५
हीनदुर्जनसंसर्गमत्यन्तविरहादरः।
स्नेहोऽन्यगेहवासश्च नारीगर्वशीलनाशनम् ॥१६

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीड़ितः ।
केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तराः ॥१७
कोऽर्थं प्राप्य न गर्वितो भुवि नरः कस्यापदो नागताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान् ॥१८
सुहृत्स्वजनबन्धुनं बुद्धिर्यस्य न चात्मनि ।
यस्मिन् कर्मणि सिद्धेऽपि न दृश्येत फलोदयः ॥
विपत्तौ च महद् दुःखं तद् बुधः कथमाचरेत् ॥१९
यस्मिन् देशे न सम्मानं न प्रीतिर्न च बान्धवाः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥२०
धनस्य यस्य राजभ्यो भयं नास्ति न चौरतः ।
मृतञ्च यन्न मुच्येत समर्जयस्व तद्धनम् ॥२१

अपने किसी भी कारण से होने वाले घर के नाश—अपने हृदय मे रहने वाले सन्ताप—अपने घर मे होने वाले दुश्चरित—अपने वञ्चित होने और अपने होने वाले अपमान को बुद्धिमान् पुरुष किसी के सामने प्रकाशित नही किया करते हैं ॥१५॥ हीन तथा दुर्जन पुरुष के साथ संसर्ग—अत्यन्त विरह—आदर—स्नेह—अन्य के घर मे निवास—नारी सच्छील का नाश—इन दोषों मे से किस का कुल है कि जिसमे कोई भी दोष न हो—कौन ऐसा व्यक्ति है जो व्याधि से पीडित न हुआ हो—किसने व्यसन की प्राप्ति नही की है और कौन ऐसा है जिसके पास निरन्तर श्री रही हो ? अर्थात् कोई भी नहीं है ॥१६।१७॥ कौन ऐसा पुरुष है जो धन पाकर गर्व वाला न हुआ है ? इस भूमण्डल में ऐसा कौन है जिसको आपत्तियों ने न घेरा है ? स्त्रियो ने किसके मन को खण्डित नही किया है—राजाओं का प्रिय कौन होता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है ? ऐसा कौन है जो इस महाबली काल के गोचर या अन्तर्गत न हुआ है ? कौन-सा याचक गौरव प्राप्त करता है ? कौन पुमान् ऐसा है जो दुर्जनों की वागुरा मे निपतित होकर अर्थात् दुष्टों के साथ में रहकर क्षेम को प्राप्त हुआ हो—अर्थात्

कोई भी नही है ॥१८॥ सुहृत्-स्वजन और जिसका बन्धु नहीं है और जिसके आरम्भ मे बुद्धि नही है—जिस कर्म के सिद्ध होने पर भी कोई फलोदय नही है तथा विपत्ति में महान् दु.ख है उसे बुध पुरुष कैसे करेगा ॥१९॥ जिस देश मे कोई भी सम्मान नही होता है—न किसी प्रकार की प्रीति है और न कोई बान्धव ही हैं। जहाँ न किसी विद्या का ही आगम है उस देश का परित्याग ही कर देना चाहिए ॥ २० ॥ जिस धन का राजाओ के द्वारा लिये जाने का कोई भय नही है और न चोरो से डर है तथा मृतक को भी जो नही छोडता है उस धन का अर्जन करो ॥२१॥

यदर्जित प्राणहरैः परिश्रमैं मृतस्य त वै विभजन्ति रिक्थिन ॥
कृतञ्च यद् दुष्कृतमर्थलिप्सया तदेव दोपापहतस्य यौतुकम् ॥२२
सञ्चित निहित द्रव्य परामृष्य मुहुर्मुहु ।
आखोरिव कदर्य्यस्य धन दुःखाय केवलम् ॥२३
नग्ना व्यसनिनो रूक्षा कपालाङ्कितपाणय ।
दर्शयन्तीह लोकस्य अदातु फलमीदृशम् ॥२४
शिक्षयन्ति च याचन्ति देहीति कृपणा जना. ।
अवस्थेयमदानस्य माभूदेव भवानपि ॥२५
सञ्चित क्रतुशतैर्न युज्यते याचित गुणवते न दीयते ।
तद् कदर्य्यपरिरक्षित धन चोरपार्थिवगृहे प्रयुज्यते ॥२६
न देवेभ्यो न विप्रेभ्यो बन्धुभ्यो नैव चात्मनि ।
कदर्य्यस्य धन याति अग्नितस्कर राजसु ॥२७
अतिक्लेशेन येऽर्था धर्मस्यातिक्रमेण च ।
अरेर्वा प्रणिपातेन माभूवस्ते कदाचन ॥२८

जो प्राणो का हरण करने वाले घोर तथा महा घोर परिश्रमो के द्वारा अर्जित किया गया है और मृत्यु के पश्चात् दायाद लोग जो भी थारिक्थ हो उस का परस्पर मे विभाग कर लिया करते हैं। ऐसे अर्थ के प्राप्त करने की चाह से जो दुष्कृत किया है वह ही दोपो से अपहृत प्राणी का यौतुक (विवाह का धन)

होता है ॥२२॥ सञ्चित किया हुआ और निहित (दाव ढक कर रक्खा हुआ) तथा बारम्बार परामृष्य द्रव्य आयु की तरह कदर्य्य का धन केवल दुख के लिए होता है ॥२३॥ जो इस ससार मे नग्न रहा करते हैं अर्थात् पहिनने को जिनके पास वस्त्र तक नहीं है—व्यसनों (दुखो) से युक्त और हाथो मे कपाल लेकर भिक्षा मांगने वाले पुरुष, यहाँ दान न करने वाले का ऐसा ही फल हुआ करता है—यह स्पष्टतया दिखला रहे हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार के कृपण अर्थात् अभाव वाले पुरुष हमको दान दो—यह कहते हुए याचना करते हैं और सबको शिक्षा भी दे रहे हैं कि दान न देने के कारण हमारी जैसी यह दशा हुआ करती है। आप लोग ऐसे मत होना ॥२५॥ जो धन जोड जोडकर इकठ्ठा किया है उसका सैंकडो कष्टों मे यदि उपभोग न किया जाता है तथा किसी गुणवान् पुरुष को याचना करने पर नही दिया जाता है तो वह धन बुरा धन है जिसको खूब अच्छी तरह रक्षा करके रक्खा है और उसका प्रयोग राजा या चोरों के घर मे किया जाता है ॥ २६ ॥ जो कदर्य्य (नीच) पुरुष है उसके धन का उपयोग देवो के लिए—विप्रो के लिये—बन्धुओ के लिये और अपने आपके लिए नही होता है वह तो अन्ततोगत्वा अग्नि—तस्कर और राजा के यहाँ पर यो ही चला जाया करता है ॥२७॥ ऐसे जो अर्थ हैं जिनको अत्यन्त क्लेश के द्वारा धर्म के अतिक्रमण करके अथवा शत्रु को प्रणिपात करके प्राप्त किया जाता है वे आपको कभी भी न होवे ॥२८॥

विद्याघातो ह्यनभ्यास स्त्रीणा घात. कुचैलता ।
व्याधीना भोजनाजीर्णं शत्रोर्घातः प्रपञ्चता ॥२९
तस्करस्य वधो दण्डः कुमित्रस्याल्पभाषणम् ।
पृथक्शय्या तु नारीणा ब्राह्मणस्यानिमन्त्रणम् ॥३०
दुर्जना: शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहा स्त्रियः ।
ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम् ॥३१
जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे ।
मित्रञ्चापदि काले च भार्य्याञ्च विभवक्षये ॥३२

स्त्रीणां द्विगुण आहारः प्रज्ञा चैव चतुर्गुणा ।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥३३
न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन स्त्रियं जयेत् ।
न चेन्धनैर्जयेद्वह्निं न मद्येन तृषां जयेत् ॥३४
समांसैर्भोजनैः स्निग्धैर्मद्यैर्गन्धविलेपनैः ।
वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते ॥३५

पढ़ी हुई विद्या का घात अभ्यास न करने से होता है। बुरे वस्त्रों के धारण करने से श्री का घात होता है। किये हुए भोजन के जीर्ण हो जाने से व्याधियों का घात होता है। शत्रु का घात प्रवञ्चता होती है ॥ २९ ॥ तस्कर का वध दण्ड है—कुमित्र का वध अल्प भाषण है—नारियों का दण्ड यही है कि उनकी शय्या पृथक् कर देवे। ब्राह्मण का दण्ड उसको निमन्त्रण का न देना ही होता है ॥ ३० ॥ दुर्जन–शिल्पी–दास–दुष्ट–पटह और स्त्री ये ताडित होकर मार्दव (मुलायमी) को प्राप्त हुआ करते हैं ये सत्कार के पात्र नहीं होते हैं ॥३१॥ कहीं कार्य करने के लिए भेजने पर भृत्यों के कौशल एवं उनकी कार्य क्षमता का ज्ञान होता है। जब कोई व्यसन (दुःख) प्राप्त हो तो बान्धवों की बन्धु भावना का सही ज्ञान हो जाता है। आपत्ति के समय में मित्र की मित्रता का ठीक ज्ञान होता है और वैभव के कम हो जाने पर भी बराबर साथ देती है या नहीं—इस तरह भार्या की जाँच होती है ॥३२॥ पुरुषों से स्त्रियों का दुगुना आहार होता है और प्रज्ञा चौगुनी होती है—व्यवसाय छैः गुना होता है तथा काम आठ गुना हुआ करता है ॥ ३३ ॥ स्वप्न के द्वारा निद्रा पर जय प्राप्त न करे और काम के द्वारा स्त्री पर विजय न करे। वह्नि के ऊपर विजय ईंधन डालकर नहीं करे और मद्य पान करके तृषा को कभी विजित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए ॥३४॥ आमिष से युक्त भोजन—स्निग्ध पदार्थ—मद्य–गन्ध युक्त विलेपन–सुन्दर वस्त्र–मन को रमाने वाले माल्य—इनसे स्त्रियों में कामवासना विजृम्भित (उत्तेजित) होती है ॥३५॥

कृतात्मस्वपि यत्नत्य प्राप्तं मन्मथचेष्टितम् ।
दृष्ट्वा हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥३६

सुवेश पुरुष दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् ।
योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्य सत्यं हि शौनक ॥३७
नद्यश्च नार्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च ।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्यः ३८
नदी पातयते कूल नारी पातयते कुलम् ।
नारीणाञ्च नदीनाञ्च स्वच्छन्दा ललिता गतिः ॥३९
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥४०
न तृप्तिरस्ति शिष्टानामिष्टानां प्रियवादिनाम् ।
सुखानाञ्च सुतानाञ्च जीवितस्य वरस्य च ॥४१
राजा न तृप्तो धनसञ्चयेन न सागरस्तृप्तिमगाज्जलेन ।
न पण्डितस्तृप्यति भाषितेन तृप्तं न चक्षुर्नृपदर्शनेन ॥४२

ब्रह्मचर्य में भी प्राप्त कामदेव की चेष्टाऐं कहने के योग्य हैं । किसी रमणीय पुरुष को जब स्त्री देख लेती है तो उस की योनि प्रक्लिन्न हो जाया करती है ॥३६॥ सुन्दर वेशधारी पुरुष को देखकर वह चाहे भाई हो या अपना पुत्र ही क्यों न हो हे शौनक ! यह मैं बिल्कुल सत्य—सत्य बताता हूँ कि नारियों की योनि क्लिद्यमान होने लगती है ॥३७॥ नदियों का और नारियों का समान ही स्वभाव हुआ करता है । ये स्वतन्त्रता के भाव में गमनादिक करने वाली होती हैं । नदियाँ जलों के द्वारा और नारियाँ दोषों के द्वारा कूल (तट) और कुल (वंश) का निपातन किया करती हैं ॥३८॥ नदी तो तट को गिरा देती है और नारी अपने कुल को पतित कर देती है । नदी और नारी की स्वच्छन्द ललित गति—हुआ करती है ॥३९॥ अग्नि कभी भी काष्ठों से तृप्त नहीं होती है चाहे जितना काष्ठ उसमें डालते रहें । महोदधि सागर नदियों के पात से कभी तृप्त नहीं होता है चाहे जितनी नदियाँ उसमें बराबर अपना पात करती रहें । यमराज कभी भी प्राणियों के अन्त से तृप्त नहीं हुआ करते हैं चाहे असंख्यों भूत प्राणी मृत्यु के ग्रास बनकर वहाँ उसके पास पहुँचते रहा करें । इसी भाँति

वामलोचना नारियाँ पुरुषों के अभिगमन करने से कभी तृप्त नहीं हुआ करती हैं चाहे जितना भी अधिक उनके साथ रमण पुरुष करते रहा करें वे फिर भी अतृप्त ही रहती हैं ।। ४० ।। शिष्ट–इष्ट–प्रियवादी और मूर्ख तथा सुत–जीवित एवं नर इनसे कभी किसी को तृप्ति नहीं होती है ।।४१।। राजा कभी भी धन के सञ्चय से तृप्त एवं सन्तुष्ट नहीं होता है चाहे कितना ही अधिकाधिक धन का वैभव क्यों न हो जावे । सागर कभी जल से तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ है । यद्यपि उसमें असीमित जल रहा करता है । पण्डित भाषण से कभी तृप्त नहीं हुआ करते हैं और नेत्र नृप के दर्शन करने से कभी तृप्ति का लाभ नहीं किया करते हैं—यही इच्छा रहती है कि अभी और अधिक देखते रहें ।।४२।।

स्वकर्मधर्मार्जितजीविताना शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणा गृहेऽपि मोक्ष. पुरुषोत्तमानाम् ।।४३
मनोऽनुकूला. प्रमदा रूपवत्यः स्वलङ्कृताः ।
वास: प्रासादपृष्ठेषु स्वर्गं स्याच्छुभकर्मणा ।।४४
न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया ।
न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विषमा. स्त्रिय ।।४५
शनैर्विद्या शनैरर्था शनै पर्वतमारुहेत् ।
शनै कामश्च धर्मश्च पञ्चैतानि शनै शनै ।।४६
शाश्वतं देवपूजादि विप्रदानश्च शाश्वतम् ।
शाश्वतं सगुणा विद्या सुहृन्मित्रश्च शाश्वतम् ।।४७
ये बालभावान्न पठन्ति विद्या ये यौवनस्था ह्यधनारमदाराः ।
ते शोचनीया इह जीवलोके मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।४८
पठने भोजने चिन्ता न कुर्य्याच्छास्त्रसेवकः ।
सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुड़वेगवान् ।।४६

जो ऐसे उत्तम पुरुष हैं जिनका कि जीवन निर्वाह अपने कर्म और धर्म के द्वारा उपार्जित धन से होता है और जो शास्त्रों में तथा अपनी पत्नी में ही सदा रति रखने वाले हैं–जिनका समस्त इन्द्रियों पर पूर्णतया नियन्त्रण है और जो सर्वदा अतिथियों से प्रीति रखकर उनका सत्कार किया करते हैं उनका मोक्ष

गृह में रहते हुए भी हो जाता है ॥ ४३ ॥ अपने मन के अनुकूल रहने वाली प्रमदाऐं हो जोकि रूप—लावण्य से युक्त तथा वासोऽलङ्कारों से सुवुभूषित हों—प्रासाद के ऊपर भाग में निवास हो तो शुभ कर्मों के फलस्वरूप यह ही साक्षात् स्वर्ग है ॥४४॥ दान—मान—ग्रार्जव (सरलता)—सेवा—शास्त्र और शस्त्र से सर्वथा स्त्रियाँ वश मे नही रहा करती है क्योंकि ये बड़ी विषम होती हैं ॥४५॥ विद्या—अर्थ—पर्वतारोहण—काम और धर्म ये पाँच ऐसे काम हैं जो शनैः—शनैः ही हुआ करते हैं । इन्हे सुम्पन्त कोई भी नही कर सकता है ॥४६॥ देवताओं का पूजन आदि शाश्वत है और विप्रो को दान देना भी शाश्वत कर्म होता है । गुणो से युक्त विद्या—सुहृत् मित्र भी शाश्वत हैं ॥४७॥ जो बाल्यावस्था मे विद्या का अध्ययन नही करते है और जो यौवन की अवस्था में पहुँच कर धन और अपनी दारा के अभाव वाले हैं वे इस जीव लोक मे चिन्ता करने के योग्य पुरुष होते हैं और उन्हे यही कहना चाहिए कि केवल मनुष्य की आकृति मे रहने वाले साक्षात् पशु ही चरण किया करते है ॥४८॥ जो शास्त्रो की सेवा करने वाला है उसे पठन और भोजन के विषय मे चिन्ता नही करनी चाहिए । विद्या के अर्थी को गरुड के समान वेग वाला होकर बहुत दूर देश मे भी चले जाना चाहिए ॥४९॥

ये बालाभावे न पठन्ति विद्या कामातुरा यौवननष्टवित्ताः ।
ते वृद्धकाले परिभूयमानाः सदह्यमानाः शिशिरे यथाब्जम् ॥५०

तर्कोऽप्रतिष्ठ श्रुतयो विभिन्ना. नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्व निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥५१

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन तु ।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मन. ॥५२

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ।
उदीरितार्थ. पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति देशितम् ५३
अर्थाद् भ्रष्टस्तीर्थयात्रां तु गच्छेत्सत्याद् भ्रष्टो रौरवं वै व्रजेच्च ।
योगाद् भ्रष्ट. सत्यधृतिश्च गच्छेत् राज्याद् भ्रष्टो मृगयायां व्रजेच्च ॥

जो बाल भाव में विद्या का पठन नहीं करते हैं और कामातुर होते हुए यौवन में वित्त को नष्ट किया करते हैं वे वृद्धावस्था में परिभूयमान होते हुए शिशिर ऋतु में एक कमलिनी के कमलों की भाँति संदह्यमान होते हैं ॥५०॥ तर्क प्रतिष्ठा से रहित होता है और तर्क की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं है। श्रुतियाँ भी विशेष रूप वाली भिन्न भिन्न हैं। ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जिसका मत भिन्न न हो अर्थात् सभी ऋषियों के मतों में विभिन्नता है। एक मतता नहीं है। ऐसी दशा में धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा हुआ है अर्थात् क्या धर्म का स्वरूप है और कौन-सा धर्म है—यह जान लेना बहुत ही कठिन है। अतएव महान् पुरुषों ने जो मार्ग अपनाया है और वे जिस मतिविधि से करते गये हैं वही मार्ग हमको भी अपनाना चाहिए। उसी में श्रेय होगा ॥५१॥ आकृति—इङ्गित गति—चेष्टा—भाषण—नेत्र और मुख के विकारों से अन्तर्गत मन लक्षित होता है ॥५२॥ पण्डित पुरुष बिना कुछ कहने पर भी तात्पर्य को समझ लिया करते हैं क्योंकि दूसरे के इङ्गित से ही ज्ञान प्राप्त कर लेना बुद्धि का फल हुआ करता है जो बात उदीरित अर्थात् मुख से कही गई है उसे तो एक पशु भी ग्रहण कर लिया करता है जिसमे कुछ भी बुद्धि नहीं होती है। अश्व और हाथी भी देशित आदेश का वहन किया करते हैं ॥५३॥ जो धर्म से भ्रष्ट हो जाता है वह तीर्थ-यात्रा को चला जावे—सत्य से जो भ्रष्ट हो उसे रौरव नरक मे जाना होता है—योग मे भ्रष्ट सत्य-धृति को ग्रहण करे और राज्य से भ्रष्ट मृगया करने जाता है ॥५४॥

६६—नीतिसार कथन (३)

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ॥१
वाग्यन्त्रहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं तथा कापुरुषस्य हस्ते।
न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे अन्धस्य दारा इव दर्शनीया: ॥२
भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरा स्त्रियः।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥३

अग्निहोत्रफला वेदा शीलवृत्तिफलं शुभम् ।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफल धनम् ॥४
वरयेत्कुलजा प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ।
सुरूपा सुनितम्बाञ्च नाकुल ना कदाचन ॥५
अर्थेनापि हि किं तेन यस्यानर्थो तु सङ्गति ।
को हि नाम शिखाजात पन्नगस्य मणि हरेत् ॥६
हविर्दुष्कुलाद् ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
अमेध्यात्काञ्चन ग्राह्यं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥७

श्री सूतजी ने कहा—जो मनुष्य ध्रुव अर्थात् परम निश्चित पदार्थों या विषयों का त्याग करके अध्रुवों का सेवन किया करता है उस पुरुष के त्याग कर देने से ध्रुव तो नष्ट हो जाते हैं और जो अध्रुव हैं वे तो स्वयं ही नष्ट प्राय होते हैं ॥ १ ॥ वाग्यन्त्र से रहित अर्थात् बोलने के अङ्ग से या शक्ति से हीन पुरुष की विद्या उसी प्रकार की होती है जैसे किसी कायर पुरुष के हाथ मे दिया हुआ शस्त्र बेकार होता है। उस व्यक्ति के शरीर में तुष्टि को उत्पन्न नहीं किया करती है जिस तरह देखने के योग्य दारा किसी नेत्रान्ध की तुष्टि नहीं कर सकती है ॥२॥ भोजन से भक्ष्य पदार्थों का प्राप्त होना—उन भोज्य पदार्थों के भोजन करने की शक्ति का रहना अर्थात् खाने तथा पाचन की शक्ति का पाना—रमणी के साथ रति क्रीडा करने की शक्ति—श्रेष्ठ वराङ्गना का पाना—वैभव का पाना और दान करने की शक्ति का हृदय विद्यमान रहना इन छै बातों का इस संसार मे प्राप्त करना किसी साधारण और थोडे तप का फल नहीं है अर्थात् ये सब बातें बहुत बडी तपश्चर्या से ही प्राप्त हुआ करती है ॥३॥ वेदों का फल अग्निहोत्र होना है। शुभ का फल शील वृत्ति का होना होता है। दारा का फल यही होना है कि वह रति क्रीडा मे पुत्र समुत्पन्न करे और धन का फल होता है कि दान दे और उसमे पूर्ण उपभोग करे ॥४॥ प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि ऐसी कन्या के साथ विवाह—सम्बन्ध करे जो किसी अच्छे कुल मे समुत्पन्न हुई हो चाहे वह विशेष रूप—लावण्य से हीन भी हो। जो अकुलीना हो वह चाहे कितनी सुन्दर रूपवती और सुन्दर नितम्बों वाली हो उसके साथ

कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥ उस अर्थ से भी क्या लाभ है जिसकी सङ्गति अनर्थ मे होती है। किसकी शक्ति है कि सर्प की शिखा मे समुत्पन्न मणि को ग्रहण करे ॥६॥ दुष्ट कुल से भी हवि का ग्रहण कर लेना चाहिए और बालक के मुख से निकला हुआ भी सुभाषित को प्राप्त कर लेवे अपवित्र स्थान मे भी गिरे हुए सुवर्ण को ले लेवे तथा स्त्री रूपी रत्न को दुष्कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिए ॥७॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं अमेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमा विद्या स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥८
न राज्ञा सह मित्रत्वं न सर्पो निर्विषः क्वचित् ।
न कुलं निर्मलं तत्र स्त्रीजनो यत्र जायते ॥६

कुले नियोजयेद्भक्ति पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रुमिष्टं धर्मे नियोजयेत् ॥१०
स्थानष्वेव प्रयोक्तव्या भृत्याश्चाभरणानि च ।
न हि चूडामणि पादे शोभते वै कदाचन ॥११

चूडामणिः समुद्रोऽग्निर्घण्टा चाखण्डमम्बरम् ।
अथवा पृथिवीपालो मूर्ध्नि पादे प्रमादतः ॥१२
कुसुमस्तवकस्येव द्वे गती तु मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकाना शीर्यतः पतितो वने ॥१३
पर्णाभूषणसग्रहणोचितो यदि मणिस्तु पदे प्रतिबध्यते ।
किं मणिर्न हि शोभते ततो भवति योजयितुर्वचनीयता ॥१४

विष से भी अमृत के रहत्न को प्राप्त कर लेना चाहिए और अमेध्य स्थान मे भी सुवर्ण को ग्रहण कर लेने पर नीच पुरुष से भी उत्तम विद्या और दुष्ट कुल मे भी स्त्री रत्न को ले लेवे ॥८॥ राजा के साथ मित्रता का भाव नहीं होता है—सर्प कहीं भी विष रहित नहीं हुआ करता है जिस कुल में स्त्री रत्न समुत्पन्न हुआ करता है वह कुल कभी भी निर्मल नहीं होता है ॥६॥ कुल को भक्ति में नियोजित करे—पुत्र को विद्या मे नियोजित करे—शत्रु को व्यसन मे

नियोजित करे और इष्ट को धर्म मे नियोजित करना चाहिए ।।१०।। भृत्य और आभरणों को स्थानो म अर्थात् समुचित स्थलो मे ही प्रयुक्त करना चाहिए। चूडामणि अर्थात् मस्तक पर धारण करने का आभूपण कभी पाद मे धारण करने पर शाभा नही दिया करता है ॥ ११ ॥ चूडामणि–समुद्र–अग्नि–घण्टा और अखण्ड अम्बर अथवा पृथिवी पाल मस्तक पर और पाद पर प्रमाद से ही हुआ करते हैं ।।१२।। पुष्पो के स्तवक (गुच्छा) की भाँति मनस्वी पुरुष की दो गति हुआ करती हैं या तो समस्त लोको के मस्तक पर वह रहते हैं या शीर्ण से पतित हो र वन मे ही पतित हो जाते हैं ।।१३।। कान के भूपण मे सग्रहण करने के योग्य मणि यदि पैर मे बाँध दी जाती है तो क्या मणि वहाँ शोभा नही दिया करती है प्रत्युत वहाँ तो उसके योजित करने वाले की ही वचनीयता (बुराई) होती है ।।१४।।

वाजिवारणलोहाना काष्ठपापाणवाससाम् ।
नारीपुरुपतोयानामन्तर महदन्तरम् ।।१५
कदर्थितस्यापि हि धैर्य्यवृत्तेर्न शक्यते सर्वगुणप्रमाथ ।
अध खलेनापि कृतस्य वह्नेर्नाध शिखा याति कदाचिदेव ।।१६
न सदश्व कशाघात सिंहो न गजर्गजितम् ।
वीरो वा परनिर्दिष्ट न सहेद्धोमनि स्वनम् ।।१७
यदि वा विभवहीन प्रच्युतो वाशु देवास्तु
खलजनसेवा काङ्क्षयेन्नैव नीचम् ।
न तृणमदनकार्य्यं क्षुधार्त्तोऽस्ति सिंह पिबति
रुधिरमुष्ण प्रायश कुञ्जराणाम् ।।१८
सकृद् दुष्टञ्च यो मित्र पुनः सन्धातुमिच्छति ।
स मृत्युमेव गृह्णीयाद् गर्भमश्वतरी यथा ।।१९
शत्रोरपत्यानि प्रियवदानि नोपेक्षितव्यानि बुधैर्मनुष्यै ।
तान्येव कालेपु विपत्कराणि विषस्य पात्राणि हि दारुणानि ।।२०
उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।
पादलग्न करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम् ।।२१

अश्व–वारण–लौह–काष्ठ–पाषाण–वस्त्र–नारी–पुरुष और तोय–इनको अन्तर बहुत बड़ा अन्तर होता है ।।१५।। कदर्थित भी धैर्य वृत्ति वाले का समस्त गुणों का प्रमाप नहीं किया जा सकता है। सत्व के द्वारा नीचे की ओर की हुई अग्नि की भी शिखा कभी भी नीचे को नहीं जाया करती है ।।१६।। अच्छी जाति का घोड़ा कभी कशा (चाबुक) का आघात सहन नहीं किया करता है और सिंह अपने समक्ष में हाथी की गर्जना को नहीं सहा करता है अथवा वीर पुरुष शत्रु के द्वारा निर्दिष्ट भीम ध्वनि को कभी नहीं सहता है ।। १७ ।। यदि भाग्य वश वैभव से रहित होकर शीघ्र ही प्रच्युत हो जावे तो भी स्वाभिमानी पुरुष कभी खलजन की सेवा करना और नीच के पास जाने की इच्छा नहीं किया करता है। अत्यन्त भूख से पीड़ित भी सिंह कभी खाने के कार्य में तृण को ग्रहण नहीं करता है और वह प्रायः हाथियों के उष्ण रुधिर का ही पान करके क्षुधा को शान्त करता है ।।१८।। जो एक बार दुष्ट मित्र के साथ सन्धान करने की इच्छा करता है वह अश्वतरी (खिच्चरी) के गर्भ की भांति मृत्यु को ही ग्रहण किया करता है ।। १९ ।। बुध मनुष्यों के द्वारा शत्रु की सन्तति जो प्रिय बोलने वाली है कभी उपेक्षित नहीं करनी चाहिए क्योंकि समय उपस्थित होने पर वही विपत्ति के करने वाली और विष दारुण पात्र हो जाया करती है ।।२०।। उपकार करने के द्वारा शत्रु को अपने काबू में करके फिर उसी के द्वारा अन्य शत्रु का उद्धार करना चाहिए जिस तरह पैर में लगे हुए एक कांटे को निकाल कर दूर फेंकने के लिए एक अन्य कांटे को हाथ में लिया जाया करता है ।।२१।।

अपकारपरे नित्यं चिन्तयेन्न कदाचन ।
स्वयमेव पतिष्यन्ति कूलजाता इव द्रुमाः ।।२२

अनर्था ह्यर्थरूपाश्च अर्थाश्चानर्थरूपिणः ।
भवन्ति ते विनाशाय दैवायत्तस्य वै सदा ।।२३

कार्यकालोचिताऽऽपा मति सञ्जायते हि वै ।
सानुकूलेषु दैवेषु पुंसः सर्वत्र जायते ।।२४

धनप्रयोगकार्येषु तथा विद्यागमेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज सदैव हि ॥२५
धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चम. ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संस्थितिम् ॥२६
लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं दानशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यते न तत्र दिवसं वसेत् ॥२७
कालविच्छ्रोत्रियो राजा नदी साधुश्च पञ्चम ।
एते यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ॥२८
नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य किल शौनक ।
सर्वं सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कुत्रचित् ॥२९
न सर्ववित्कश्चिदिहास्ति लोके नात्यन्तमूर्खो भुवि चापि कश्चित् ।
ज्ञानेन नीचोत्तममध्यमेन यो यं विजानाति स तेन विद्वान् ॥३०

पराये उपकार करने में कभी विस्मय नहीं करना चाहिए, जो वृक्ष नदी के तट पर खड़े हुए हैं वे तो स्वयमेव ही एक दिन गिर जाँयगे ॥ २२ ॥ भाग्य से उस मे उसके अर्थ अनर्थ स्वरूप और अनर्थ अर्थ स्वरूप विनाश के लिये सदा हो जाया करते हैं । जिस समय मे दैव सानुकूल होता है तो उस वक्त क यं काल मे समुचित पापो से रहित मति समुत्पन्न हो जाती है इसी प्रकार से दैव के अनुकूल होने पर सभी जगह पुरुष को हुआ करता है ॥२३-॥२४॥ धन के प्रयोग करने के कार्यों मे और विद्या के आगम क यों मे–आहार और व्यवहार मे मनुष्य को सदा ही लज्जा के त्याग कर देने वाला रहना चाहिए ॥२५॥ जिस स्थान पर धन–सम्पन्न पुरुष–श्रोत्रिय–राजा–नदी और पाँचवाँ वैद्य नहीं हों वहाँ संस्थिति कभी भी नहीं करनी चाहिए ॥२६॥ लोक-यात्रा–भय—लज्जा—दाक्षिण्य और दान शीलता ये पाँच जहाँ पर विद्यमान नहीं हों वहाँ पर तो एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥ समय का ज्ञाता ज्योतिषी–श्रोत्रिय–राजा–नदी और साधु ये पाँच जिस स्थान मे विद्यमान नहीं हो वहाँ वास नहीं करना चाहिए ॥२८॥ हे शौनक ! एक ही मे ज्ञान की परनिष्ठा नहीं होती है । सभी वस्तुें सब ही पुरुष नहीं जाना करते हैं

क्योकि सर्वज्ञ (सब कुछ का ज्ञाता) कहीं पर भी नही है ॥२९॥ इस भूलोक मे कोई भी सबका ज्ञाता नही है। और इस भूमण्डल मे अत्यन्त मूर्ख भी कोई नही होता है। जो जिसको नीच-मध्यम और उत्तम ज्ञान के द्वारा जानता है उसी से वह विद्वान् होता है ॥३०॥

६७—राजा और भृत्य लक्षण (१)

पार्थिवस्य तु वक्ष्यामि भृत्यानाञ्चैव लक्षणम् ।
सर्वाणि हि महीपाल. सम्यङ्नित्य परीक्षयेत् ॥१
राज्य पालयते नित्य सत्यधर्मपरायण. ।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षिति धर्मेण पालयेत् ॥२
पुष्पात्पुष्प विचिन्वीयान्मूलच्छेद न कारयेत् ।
मालाकार इवारण्ये न यथाङ्गारकारकः ॥३
दोग्धार क्षीरभुञ्जाना विकृत तन्न भुञ्जते ।
परराष्ट्र महीपालैर्भोक्तव्य न च दूषयेत् ॥४
नोधश्छिन्द्यात्तु यो धेन्वा. क्षीरार्थी लभते पयः ।
एव राष्ट्र प्रयोगेण पीड्यमान न वर्जयेत् ॥५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत् ।
पालकस्य भवेद्भूमिः कीत्तिरायुर्यशो बलम् ॥६
अभ्यर्च्य विष्णु धर्मात्मा गोब्राह्मणहिते रतः ।
प्रजाः पालयितु शक्त. पार्थिवो विजितेन्द्रिय ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं तुम्हारे सामने राजा के भृत्यो के लक्षणों के विषय मे बतलाता हूँ। एक महीपाल को नित्य ही इन सबकी भली भाँति परीक्षा करनी चाहिए ॥१॥ सत्य और धर्म मे तत्पर रहता हुआ राजा नित्य राज्य का पालन करता है शत्रुओ की सेनाओ के ऊपर विजय प्राप्त करके इस भूमि का धर्म पूर्वक पालन करे ॥ २ ॥ कुसुम वाटिका से मालाकार एक-एक पुष्प को चुनता है और मूल का कभी अरण्य मे अङ्गारकारक की भाँति उच्छेद नही करता है ॥ ३ ॥ दोग्धागण जो क्षीर का उपभोग करते हैं वे विकृत को

पभी नही भोगते है । महीपालो के द्वारा भी पराये राष्ट्र का उपभोग करना चाहिए किन्तु उसको कभी दूषित नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥ जो धेनु के ऊध (ऐन) को नही छेदता है वही क्षीर के चाहने वाला दूध को प्राप्त किया करता है । इसी प्रकार से पीड्यमान राष्ट्र को प्रयोग से दर्जित न करे ॥ ५ ॥ इस कारण से अपने समस्त प्रयत्नो के द्वारा पृथिवी का अनुपालन राजा को करना उचित है । पालन करने वाले की भूमि होती है और साथ ही कीर्त्ति-आयु— यश और बल भी हुआ करते हैं ॥६॥ धर्मात्मा को भगवान् विष्णु की अभ्यर्चना करके गो और ब्राह्मणो के हित-सम्पादन मे सर्वदा रति रखने वाला होना चाहिए । अपनी इन्द्रियो को जीत लेने वाला राजा ही प्रजा के पालन करने मे समर्थ हुआ करता है ॥७॥

ऐश्वर्य्यमध्रुवं प्राप्य राजा धर्मे मतिश्चरेत् ।
क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायत्त धनादिकम् ॥८
सत्य मनोरमा कामा सत्य रम्या विभूतयः ।
किन्तु वै वनितापाङ्गभङ्गीलोल हि जीवितम् ॥९
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा अपि तर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्रे ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोक, न चात्महितमाचरतीह कश्चित् ॥१०
नि.शक किं मनुष्याः कुरुत परहिते युक्तमग्रे हित
यन्मोदध्व कामिनीभिर्मदनशरहता मन्दमन्दातिदृष्ट्या ।
मा पाप सकुरुध्वं द्विजहरिपरमाः संभजध्व सदैव
आयुर्निःशेषमति स्खलति जलघटीभूतमृत्युच्छलेन ॥११
मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डित. ॥१२
एतदर्थं हि विप्रेन्द्रा राज्यमिच्छन्ति भूभृतः ।
यदेषा सर्वकार्य्येषु वचो न प्रतिहन्यते ॥१३

एतदर्थं हि कुर्वन्ति राजानो धनसञ्चयम् ।
रक्षयित्वा तु चात्मानं यद्धन तद् द्विजातये ॥१४

यह सांसारिक ऐश्वर्य अध्रुव (अनिश्चित) हुआ करता है। इसको प्राप्त करके राजा को धर्म में अपनी मति लगानी चाहिए। जो अपने अधीनता में रहने वाला धनादिक वैभव है वह जब समय आ जाता है तो एक ही क्षण में नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ ये मन को रमण कराने वाले काम सत्य है और ये सुरम्य विभूतियाँ भी सत्य हैं किन्तु यह माननीय जीवन वनिता के अपाङ्ग (कटाक्ष) की भङ्गी (वैचित्र्य) की भाँति अत्यन्त चञ्चल है ॥ ९ ॥ यह जरा (वृद्धावस्था) एक व्याघ्री की भाँति तर्जना करती हुई सामने स्थित रहा करती है और अनेक प्रकार के रोग इस मानव शरीर में शत्रुओं की तरह समुत्पन्न हो जाया करते हैं। यह मनुष्य की आयु प्रतिक्षण फूटे हुए घड़े से जल की भाँति परिस्राव करती चली जाया करती है किन्तु बड़ा ही आश्चर्य का विषय है कि लोगों में कोई भी अपने आत्मा के हित का कुछ भी सम्पादन नहीं किया करता है ॥१०॥ हे मानवो ! आप लोग कैसे निःशङ्क की भाँति हो रहे हो ? दूसरों की भलाई का कार्य अवश्य करो और सबसे पहिले अपना आत्म-हित करना चाहिए। तुम लोग जो कामिनियों के द्वारा कामदेव के बाणों से हत होते हुए मन्द से भी मन्द दृष्टि से मोद प्राप्त करते हो—यह पाप मत करो। सर्वदा ब्रह्मण और हरि भगवान् में परायण होते हुए उनका भजन करो। यह आयु निःशेष हो रही है और जल घटी भूत मृत्यु के बहाने से स्खलित हो रही है ॥११॥ सर्वदा पराई स्त्रियों को अपनी माता के समान देखना चाहिए और दूसरे के धन को एक मिट्टी के ढेले के समान ही समझना चाहिए। समस्त प्राणिमात्र को अपनी माता के समान जो देखता है वही वास्तव में सच्चा पण्डित है ॥१२॥ हे विप्रेन्द्रो ! राजा लोग इसीलिये राज्य की कामना किया करते है कि समस्त कार्यों में इनके वचन का प्रतिघात न होवे ॥१३॥ इसीलिये राजा लोग इस विशाल धन की राशि का सञ्चय किया करते हैं कि अपनी आत्मा की रक्षा करके वह सम्पूर्ण धन द्विजातियों के हित में लगे ॥१४॥

ओंकारशब्दो विप्राणा येन राष्ट्रं प्रवर्द्धते ।
स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिश्च न वध्यते ॥१५
असमर्थाश्च कुर्वन्ति मुनयो द्रव्यसञ्चयम् ।
किं पुनस्तु महीपाल पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥१६
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमान्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१७
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीन पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च ।
ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ति ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥१८
अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः ।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति ॥१९
यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिता ।
इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि ॥२०
येनार्जितास्त्रयोऽप्येते पुत्रा भृत्याश्च बान्धवाः ।
जिता तेन समं भूपैश्चतुरब्धिर्वसुन्धरा ॥२१

विप्रो का ओंकार शब्द है जिसके द्वारा राष्ट्र की प्रवृद्धि हुआ करती है। वह राजा योग से वृद्धिशील होता है और व्याधियो से भी कभी बद्ध नही होता है ॥१५॥ असमर्थ मुनिगण ही द्रव्य का सञ्चय किया करते हैं। राजा फिर किस लिये होता है जोकि अपनी प्रजा को पुत्र की भाँति पालन करता है ॥१६॥ इस ससार मे धन का बडा ही महत्त्व लोग माना करते हैं जिसके पास धन होता हैं उसी के लोग मित्र हुआ करते हैं और जिसके अधीन धन है उसी के बान्धव गण साथी रहा करते हैं। जिसके पास धन है वह ही इस लोक मे एक सम्भ्रान्त पुरुष माना जाता है और धनी पुरुष को महा पण्डित अर्थात् ज्ञाता समझा करते हैं ॥१७॥ जो धन मे विहीन हो जाते हैं उन्हें सासारिक मित्र छोड दिया करते हैं मित्र ही नही धनहीन व्यक्ति को उसके पुत्र—दारा और सुहृज्जन भी त्याग दिया करते हैं और वे सब फिर अर्थ सम्पन्न का आश्रय ले लिया करते हैं। इस लोक मे एक मात्र अर्थ ही पुरुष का बन्धु और सभी कुछ है ॥१८॥ जो शास्त्रीय ज्ञान से रहित है वह राजा वास्तव

मे आधा ही होता है। अन्धा तो चार के द्वारा ही देखा करता है क्योंकि जो शास्त्र से हीन होता है वह कभी देखा नही करता है ॥१६॥ जिस राजा के पुत्र–भृत्य—मन्त्रिगण—पुरोहित और इन्द्रियाँ प्रमुख हैं उसका राज्य अधिक समय तक नही टिकता है ॥२०॥ जिसने पुत्र—भृत्य और बान्धव इन तीनों को अर्जित कर लिया है उसने समस्त राजाओं सहित चारो समुद्रो से युक्त सम्पूर्ण वसुन्धरा को ही जीत लिया है अर्थात् वह समस्त भूमण्डल का अधीश्वर होता है ॥२१॥

लङ्घयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च।
स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च ॥२२
मनस्ताप न कुर्वीत आपद प्राप्य पार्थिव.।
समबुद्धि प्रसन्नात्मा सुखदु खे समो भवेत् ॥२३
धीरा कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिन ।
प्रविश्य वदन राहो कि नोदेति पुन शशी ॥२४
धिविधवशरीरसुखलालितमानवेपु
मा खेदयेद्धनकृश हि शरीरमेव।
सद्दारका ह्यधनपाण्डुसुता श्रुता हि
दु ख विहाय पुनरेव सुख प्रपन्ना. ॥२५
गन्धर्वविद्यामालोक्य वाद्य च गणिकागणा ।
धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रक्षेन्न भूपति ॥२६
कारणेन विना भृत्ये यस्तु कुप्यति पार्थिव ।
स गृह्णाति विषोन्माद कृष्णसर्पविसर्जितम् ॥२७
चापलाद्वारयेद् दृष्टि मिथ्यावाक्यश्च वारयेत्।
मानवे श्रोत्रिये चैव भृत्यवर्गे सदैव हि ॥२८

जो हेतुओं से युक्त और शास्त्रो के समस्त विषयों का लङ्घन किया करता है वह राजा इस लोक और परलोक दोनो से नष्ट हो जाया करता है ॥२२॥ राजा को आपत्ति आजाने पर मन में ताप नहीं करना चाहिए। राजा को तो सुख-दुःख मे समान—सम बुद्धि वाला और प्रसन्न आत्मा वाला

कर्मों में जो जिस कर्म के योग्य हो उसे वहीं पर नियुक्त करना चाहिए ॥१॥ अब मैं भृत्य के विषय में उसका परीक्षण बतलाऊँगा । जिस-जिस भृत्य के जो गुण होते हैं । उसको मैं अब बताता हूँ जो जब-तब कहे गये हैं ॥२॥ जिस तरह से सुवर्ण की चार प्रकार से परीक्षा की जाती है । सुवर्ण का निघर्षण छेदन—तापन और ताडन ये चार परीक्षण के प्रकार हुआ करते हैं । इसी प्रकार भृत्य की भी श्रुत—शील-कुल और कर्म इन चार रीतियों से परीक्षा करनी चाहिए ॥३॥ जो भृत्य कुल और शील के गुणों से युक्त हो तथा सत्य एवं धर्म में परायण हो—रूप वाला और सुप्रसन्न हो ऐसे भृत्य को कोष का अध्यक्ष बनाना चाहिए ॥ ४ ॥ मूल्य और रूप की परीक्षा करने वाला तथा रत्नों की परीक्षा करने वाला और बल तथा अबल के परिज्ञाता को सेनाध्यक्ष किया जाता है ॥५॥ इङ्गित और आकृति के तत्त्व का ज्ञान रखने वाला—बल वाला—देखने में प्रिय लगने वाला—प्रमाद न करने वाला और प्रयत्नशील व्यक्ति को प्रतीहार के पद पर नियुक्त करना कहा जाता है ॥ ६ ॥ मेधावी—बोलने में पटु—प्राज्ञ—सत्य बोलने वाला—जितेन्द्रिय और समस्त शास्त्रों को देख लेने वाला एवं साधु वृत्ति वाले पुरुष को लेखक के पद पर नियुक्त करे ॥७॥

बुद्धिमान्मतिमाश्चैव परचित्तोपलक्षक ।
क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ॥८
समस्तस्मृतिशास्त्रज्ञः पण्डितोऽथ जितेन्द्रियः ।
शौर्य्यवीर्य्यगुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते ॥९
पितृपैतामहो दक्ष शास्त्रज्ञ सत्यवाचकः ।
शुचिश्च कठिनश्चैव सूपकार. स उच्यते ॥१०
आयुर्वेदकृताभ्यास सर्वेषा प्रियदर्शनः ।
आयु शीलगुणोपेतो वैद्य एष विधीयते ॥११
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जपहोमपरायण ।
आशीर्वादपरो नित्यमेष राजपुरोहित. ॥१२
लेखक पाठकश्चैव गणक प्रतिबोधक ।
आलस्ययुक्तश्चे द्राजा कर्मणो वर्जयेत्सदा ॥१३

द्विजिह्वमुद्वेगकरं क्रूरमेकान्तदारुणम् ।
खलस्याहेश्च वदनमपकाराय केवलम् ॥१४

बुद्धिमान् और मति-सम्पन्न—दूसरे के चित्त का अभिप्राय जान लेने वाला—क्रूर तथा जो भी कहा जावे उसे ठीक वैसा ही कह देने वाला जो भृत्य हो उसे दूत के कर्म में नियुक्त करना चाहिए ॥८॥ समस्त शास्त्र और स्मृतियों का ज्ञाता—पण्डित इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला—शूरता तथा बहादुरी के गुणों से युक्त धर्माध्यक्ष नियुक्त करना चाहिए ॥९॥ बापदादाओं से चले आने वाला—परम दक्ष—शास्त्र का ज्ञाता—सत्य बोलने वाला—परम पवित्र—कठिन जो भृत्य हो उसे सूपकार अर्थात् रसोइया के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥१०॥ आयुर्वेद शास्त्र में अभ्यास करने वाला—सबको देखने में परम प्रिय लगने वाला और जो आयु एवं शील के गुणों से युक्त हो उसे वैद्य नियुक्त करे ॥११॥ वेदों तथा वेदों के सम्पूर्ण अङ्ग शास्त्रों के तत्त्वों का ज्ञाता—जप एवं होम में परायण रहने वाला और आशीर्वाद देने में नित्य तत्पर हो उसे राजा का पुरोहित नियुक्त करे। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के गुण राज-पुरोहित में होने चाहिए ॥१२॥ लेखक-पाठक-गणक और प्रतिबोधक यदि आलस्य से युक्त हों तो राजा को चाहिए उसे कर्म से सदा वर्जित कर देवे ॥ १३ ॥ दो जिह्वा वाला—हृदय में उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला—क्रूर—पूर्ण दारुण खल तथा सर्प का मुख जैसा होता है जोकि सर्वदा केवल अपकार के ही लिये हुआ करता है ॥१४॥

दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥१५
अकारणाविष्कृतकोपधारिणः खलाद्भयं कस्य न नाम जायते ।
विषं महाहेर्विषमस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निपतेत्सदा मुखे ॥१६
तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो हन्यात्स न हन्यते ॥१७
दाक्षिण्ययुक्ता मृदुमन्दयानया जितेन्द्रिया सत्यपराक्रमाश्च ।
प्रागेव पश्चाद्विपरीतरूपा ये ते तु भृत्या न हिता भवन्ति ॥१८

निरालस्याः सुसन्तुष्टाः सुस्वप्नाः प्रतिबोधकाः ।
सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभाः ॥१६
क्षान्तिसत्यविहीनश्च क्रूरबुद्धिश्च निन्दकः ।
दाम्भिकः पेटुकश्चैव शठश्च स्पृहयाऽन्वितः ॥
अशक्तो भयभीतश्च राज्ञा त्यक्तव्य एव सः ॥२०
सुसन्धानानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च ।
दुर्गे प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत् ॥२१

जो दुर्जन है वह चाहे कितना ही विद्वान् हो उसका तो परिहार ही कर देना चाहिए। मणि से विभूषित रहने वाला सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता है ? दुर्जन तो विद्यालंकृत होकर भी परम भयानक ही हुआ करता है ॥१५॥ बिना ही किसी उचित कारण के कोप को प्रकट करके उसे धारण करने वाले खल पुरुष से किस को भय उत्पन्न नहीं होता है ? अर्थात् ऐसे खल से भी सभी भयभीत होते हैं। महा सर्प बड़ा विषम होता है जिसका विष भी परम उग्र होता है और खल के मुख से सदा ऐसे बुरे वचन निकला करते जो दुसह होते हैं अर्थात् मर्म भेदी और हृदय विदारक होते हैं॥ १६ ॥ तुल्य अर्थ वाले—समान सामर्थ्य वाले—मर्म (रहस्य) के ज्ञाता—व्यवसायी तथा आधे राज्य का हरण करने वाले भृत्य को जो हनन कर देता है वह फिर नहीं मारा जाता है ॥१७॥ शूरत्व से युक्त—मृदु और मन्द वचन बोलने वाले—जितेन्द्रिय—सत्य पराक्रम वाले प्रथम ही और पीछे से विपरीत स्वरूप वाले जो भृत्य होते हैं वे हित करने वाले नहीं हुआ करते हैं ॥१८॥ बिना आलस्य वाले—परम सन्तोषी—सुन्दर निद्रा लेने वाले—प्रतिबोधक—सुख और दुःख के समय मे समान रूप से रहने वाले तथा धैर्यशाली भृत्य संसार मे बहुत दुर्लभ हुआ करते हैं ॥१९॥ क्षान्ति और सत्य से रहित—क्रूर बुद्धि वाला—निन्दा करने वाला—दम्भ रखने वाला—पेटुक अर्थात् केवल अपने उदर के भरते रहने की चिन्ता करने वाला—शठ—स्पृहा से समन्वित—शक्ति हीन और भय से सर्वदा डरा हुआ जो भृत्य हो उसे राजा को त्याग देना चाहिए ॥२०॥ भली भाँति सन्धान किये हुए अस्त्र और

अनेक प्रकार के शस्त्र अपने दुर्ग में प्रविष्ट करके रखने चाहिए। इसके अनन्तर शत्रु का निपातन करे ॥२१॥

षण्मासमथ वर्षं वा सन्धिं कुर्य्यान्नराधिप. ।
पश्यन्सज्जितमात्मानं पुन. शत्रुं निपातयेत् ॥२२
मूर्खान्नियोजयेद्यस्तु त्रयोऽप्येते महीपते ।
अयशश्चार्थनाशश्च नरके चैव पातनम् ॥२३
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
तेन सम्बद्ध ते राजा सूक्ष्मतो भृत्यवार्य्यत ॥२४
तस्माद् भूमीश्वर प्राज्ञ धर्मकामार्थसाधने ।
नियोजयेद्धि सतत गोब्राह्मणहिताय वा ॥२५

छै मास अथवा एक वर्ष तक राजा को सन्धि करनी चाहिए। जब यह देख लेवे कि अब अपने आपको पूर्णतया सुसज्जित कर लिया है तथा शत्रु का निपातन करना चाहिए ॥२२॥ जो राजा मूर्खों को अनुचित रीति से विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ कर देता है उस राजा को अयश-अर्थनाश और नरक-पतन ये तीनों परिणाम अवश्य ही हुआ करते हैं ॥२३॥ राजा जो भी कुछ शुभ या अशुभ कर्म करता है उसमें भृत्यों के ही कार्य से सूक्ष्मतया राजा बद्ध रहता है इस कारण से भूमीश्वर को धर्म-काम और अर्थ के साधन में प्राज्ञ-पुरुषों की ही नियुक्तियाँ करनी चाहिए और निरन्तर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गौ तथा ब्राह्मणों का हित होता रहे ॥२४।२५॥

६६—नीति शास्त्र कथन (२)

गुणवन्तं नियुञ्जीत गुणहीनं विवर्जयेत् ।
पण्डितस्य गुणाः सर्वे मूर्खे दोषाश्च केवला ॥१
सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥२
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः ।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेत न तु राज्ये खलैः सह ॥३

सावशेषाणि कार्य्याणि कुर्वन्नर्थैश्च युज्यते ।
तस्मात्सर्वाणि कार्य्याणि सावशेषाणि कारयेत् ॥४

मधुहेव दुहेद्राष्ट्रं कुसुमञ्च न पातयेत् ।
वत्सापेक्षी दुहेत्क्षीरं भूमिं गाञ्चैव पार्थिवः ॥५

यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट्पदः ।
तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत सञ्चयम् ॥६

वल्मीकं मधुजालञ्च शुक्लपक्षे तु चन्द्रमाः ।
राजद्रव्यञ्च भैक्ष्यञ्च स्तोकस्तोकेन वर्द्धते ॥७

सूतजी बोले—राजा को सर्वदा गुणवान् का ही नियोजन करना उचित है। जो गुणों से (जोकि अभी ऊपर बताये गये हैं) रहित पुरुष है उसका वर्जन कर देना चाहिए। सद्-असत् के विवेक की बुद्धि रखने वाले पण्डित में सभी गुण हुआ करते हैं और मूर्ख में केवल दोष ही रहते हैं ॥१॥ निरन्तर सत्पुरुषों के साथ सङ्गति करे और सत्पुरुषों के साथ ही अपनी उठक-बैठक भी रक्खे। सत्पुरुषों के साथ विवाद और मैत्री भी करनी चाहिए। जो असत्पुरुष हैं उनके साथ तो उपर्युक्त कुछ भी कार्य न करे ॥२॥ पण्डित वृद्ध-विनीतजन धर्म के ज्ञाता और सत्यवादी पुरुषों के साथ बन्धन में स्थित होकर भी अवस्थित रहे और खलों के साथ राज्य में भी कभी नहीं रहना चाहिए क्योंकि खल सङ्ग का परिणाम सर्वदा बुरा ही होता है ॥३॥ समस्त कार्यों को सावशेष करके ही मनुष्य अर्थों से युक्त हुआ करता है। इस कारण से समस्त कार्यों को सावशेष ही करना चाहिए ॥४॥ मधुहा (भौंरा) की तरह राष्ट्र का दोहन करे और कुसुम का पातन कभी न करे। अर्थात् राष्ट्र से करो के स्वरूप में इस प्रकार से धन का सञ्चय करे जो उसके स्वरूप को कोई दोष न लगे और वह ज्यों का त्यों सुन्दर कुसुम की भाँति सुखी सुशोभित बना रहे। जो वत्स की अपेक्षा रखने वाला है गौ में क्षीर का जिस तरह दोहन किया करता है वैसे ही भूमि का दोहन राजा को करना चाहिए ॥ ५ ॥ जिस क्रम से भ्रमर पुष्पों से मधु को चुना करता है उसी भाँति राजा भी प्रजा से वित्त ग्रहण कर सञ्चय

करे ॥ ६ ॥ वल्मीक–मधु का जाल और शुक्ल पक्ष मे चन्द्रमा तथा राजा का द्रव्य और भैक्ष थोडा–थोडा करके ही बढा करते हैं ॥७॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम् ।
अवन्ध्य दिवस कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥८
वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणा गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृह तपोवनम् ॥९
सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते पात्र कुल शीलेन रक्ष्यते ॥१०
वर विन्ध्याटव्या निवसनमभुक्तस्य मरण
वर सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम् ।
वर भ्रान्तावर्त्ते सभयजलमध्ये प्रविशन
न तु स्वीये पक्षे तु धनमणु देहीति कथनम् ॥११
भाग्यक्षयेषु क्षीयन्ते नोपभोगेन सम्पद ।
पूर्वार्जिते हि सुकृते न नश्यन्ति कदाचन ॥१२
विप्राणा भूषण विद्या पृथिव्या भूषण नृप ।
नभसो भूषण चन्द्र शील सर्वस्य भूषणम् ॥१३
एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्या.
शूरा सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुष केशवेनोपगूढा ।
ते वै दुष्टग्रहस्था कृपणवशगता भैक्ष्यचर्यां प्रयाताः
को वा कस्मिन्समर्थो भवति विधिवशाद् भ्रामयेत्कर्मरेखा ॥१४

अञ्जन का क्षय और वल्मीक का सञ्चय देखकर—दान और अध्ययन कर्मों मे दिवस को सफल करे ॥ ८ ॥ जो राग मे युक्त चित्त वाले पुरुष हैं वे यदि वन मे भी जाकर निवास क्यों न करें वहां पर भी उनको दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं और राग मे निवृत्ति करके पाँचों इन्द्रियों का निग्रह रूपी तप करते हुए घर मे रहते हैं—यह भी एक महान उनकी तपश्चर्या ही है। जो मनुष्य अकुत्सित अर्थात् परम उत्तम कर्म मे प्रवृत्ति रखता है तथा निवृत्त राग

वाले पुरुष के लिए गृह ही तपोवन के तुल्य होता है। राग से निवृत्ति और सत्कर्म ही मुख्यतया लक्ष्य है ॥९॥ सत्य से धर्म की रक्षा की जाती है और योग से विद्या की सुरक्षा होती है। मार्जन करने से पात्र की रक्षा तथा शील वृत्ति से कुल की सुरक्षा हुआ करती है ॥ १० ॥ विन्ध्य के जंगल में निवास करना—भोजन न प्राप्त होने पर भूख से मृत्यु का ग्रास बन जाना—सर्पों से घिरे हुए स्थल में शयन करना तथा कूप में निपात करना—भ्रमण आवर्तों से युक्त भय सहित जल के मध्य में प्रवेश कर जाना अधिक श्रेष्ठ है किन्तु अपने पक्ष वाले लोगों के समक्ष में जाकर थोड़ा-सा धन मुझे दो—इस तरह याचना करके अपना अपमानित बान्धवों के मध्य में जीवन रखना अच्छा नहीं है ॥११॥ भाग्य के नाश होने से ही सम्पदाओं का क्षय हुआ करता है उपभोग करने से कभी भी सम्पत्ति का नाश नहीं होता है। यदि पूर्व जन्म का अर्जित सुकृत विद्यमान है तो सम्पत्ति का कभी भी नाश नहीं होता है ॥ १२ ॥ विप्रों का भूषण केवल एक विद्या ही होती है—पृथिवी का भूषण नृप है—आकाश का आभरण चन्द्रमा है और शील सबका भूषण हुआ करता है अतएव शील वृत्ति का सबसे अधिक महत्त्व होता है ॥ १३ ॥ ये सब चन्द्रमा के समान परमोच्च एवं सुन्दर राजा के पुत्र भीमसेन और अर्जुन आदि अत्यधिक शूरवीर—सत्य प्रतिज्ञा वाले—दिनकर के वपु वाले और साक्षात् केशव भगवान् के द्वारा उपगूढ़ भी थे किन्तु दुष्ट ग्रहों के फेर में अवस्थित होकर ऐसे कार्पण्य के वश में स्थित होगये थे भिक्षा वृत्ति भी उन्हें करनी पड़ी थी। इसलिये यही ज्ञात होता है कि किस दशा में कौन समर्थ हो सकता है। यह कर्मों की रेखा विधि के वश से अच्छे-अच्छों को भी परिभव करा दिया करती है भाग्य सर्वोपरि और सबसे प्रबल हुआ करता है। इसके आगे किसी का भी कुछ वश नहीं चलता है—यह परम सिद्धान्त है ॥१४॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटको भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१५

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दानं मही विप्रमुखस्य मध्ये ।
दत्वा फलं बन्धनमेव लब्धं नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे ॥१६
माता यदि भवेल्लक्ष्मी. पिता साक्षाज्जनार्दनः ।
कुबुद्धिप्रतिपत्तिश्चेत्तद्दण्ड विधृत सदा ॥१७
येन येन यथा यद्यत्पुरा कर्म सुनिश्चितम् ।
तत्तदेवान्तरा भुङ्क्ते स्वयमाहितमात्मनः ॥१८
आत्मना विहित दुःखमात्मना विहित सुखम् ।
गर्भशय्यामुपादाय भुङ्क्ते वै पौर्वदेहिकम् ॥१९
न चान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वताना विविधप्रदेशे ।
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तु क्षम कर्मकृत नरो हि ॥
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तु क्षम कर्मकृत नरो हि ॥२०
दुर्गस्त्रिकूट परिखा समुद्रो रक्षासि योधा परमा च वृत्ति ।
शास्त्रञ्च व तूशनसा प्रदिष्ट स रावण कालवशाद्विनष्ट ॥२१

जिस महाकठिन कर्म ने ब्रह्मा को भी इस ब्रह्माण्ड रूपी भाण्ड के उदर मे एक कुम्हार की भांति नियमित कर दिया है—जिस कर्म ने साक्षात् विष्णु भगवान् को भी दश अवतार धारण करने जङ्गल मे महान् सङ्कट म डाल दिया है—जिस कर्म ने महान् देव रुद्र को कपाल हाथ म लेकर भिक्षाटन करने वाला बना दिया है और जिस कर्म की गति के वश मे ही सूर्यदेव नित्य-प्रति गगन मे भ्रमण किया करते है उस परम प्रबल कर्म के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है। कर्म ही सबसे प्रधान एव प्रमुख होता है जो बडे-बडो को भी अपने अधीन करके घुमाता रहता है ॥१५॥ राजा बलि के समान महान् श्रेष्ठ दान देने वाला—साक्षात् विष्णु वामन रूप धारण करने वाले याचक—भूमि जैसा परमोत्तम दान और विप्र के मुख मे फल देकर भी राजा बलि ने इसके परिणाम मे बन्धन ही प्राप्त किया था। हे दैव ! यथेष्ट फल देने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है। दैव की प्रबलता सबसे अधिक होती है ।१६। यदि माता साक्षात् स्वय महालक्ष्मी हो और पिता साक्षात् भगवान् जनार्दन ही हो तो भी यदि बुरी बुद्धि की प्रतिपत्ति हो तो उसका सदा दण्ड धारण करना

हो पडता है । बुद्धि की शुद्धता का परम महत्त्व जीवन मे होता है ।। १७ ।। जिस–जिस ने जैसा जो पहिले कर्म किया है यह अनिश्चित है कि वह वैसा ही स्वय अपने आपके द्वारा कृत कर्म का फल अवश्य ही भोगा करता है । इस कर्मों के फल को कोई भी शक्ति मिटाने वाली नही है ।।१८।। अपने ही द्वारा दु:ख प्राप्त करने के कर्म किये जाते हैं और अपनी ही आत्मा से सुख भी किया जाता है अर्थात् सुख और दु खो का प्रदान करने वाला यह प्राणी स्वय ही होता है अन्य कोई नही होता । गर्भ की शय्या को प्राप्त कर यह पूर्व जन्म के किये हुओ को भोगा करता है ।।१९।। किये हुए कर्म को मनुष्य आकाश मे—समुद्र के मध्य मे–पर्वतो के विभिन्न प्रदेश मे–माता के मूर्द्धा मे तथा अङ्क में रहकर भी त्याग करने में समर्थ नही होता है । माता के मस्तक पर या उसके अङ्क मे रह कर भी कृत कर्म का त्याग नही कर सकता है अर्थात् किये हुए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पडता है । इससे बचाव कही भी नही हो सकता है ।।२०।। *जिसका दुर्ग त्रिकूट था और उस दुर्ग की परिखा (खाई) समुद्र जैसी* अथाह एव सुविस्तीर्ण थी —राक्षस महाबली जिसके युद्ध करने वाले योधा थे और परमा जिसकी वृत्ति थी । असुर गुरु उशना के द्वारा जिसने सम्पूर्ण शास्त्रो का अध्ययन किया था वह राक्षस राज रावण भी काल के वश मे आकर नष्ट हु गया था ।।२१।।

यस्मिन्वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि ।
यन्मुहूर्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा ।।२२
गच्छन्ति चान्तरिक्षे वा प्रविशन्ति महीतले ।
धारयन्ति दिशः सर्वा नादत्तमुपलभ्यते ।।२३
पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम् ।
पुरा कृतानि कर्माणि ह्यग्रे धावन्ति धावत: ।।२४
कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे ।
वसिष्ठकृतलग्नेऽपि जानकी दु खभाजनम् ।।२५
स्थूलजङ्घो यदा राम शब्दगामी च लक्ष्मण: ।
घनकेशी यथा सीता त्रयस्ते दुःखभाजनम् ।।२६

न पितृकर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा ।
कर्मजन्यशरीरेषु रोगा शारीरमानसा ॥२७
शरा इव पतन्तीह विमुक्ता दृढधन्विन ।
अतो वै शास्त्रगर्भिण्या धिया धीरोऽर्थमीहते ॥२८

जिस अवस्था मे—जिस समय मे—जिस दिन मे—जिस रात्रि मे—जिस मुहूर्त मे और जिस क्षण मे जो भी ऐसा होने वाला होता है वही होकर रहा करता है। इससे अन्यथा कभी नही होता है ॥ २२ ॥ चाहे अन्तरिक्ष मे चले जावें या मही के तल मे प्रवेश करें अथवा सभी दिशाओ में कही भी चले जावें जो नही दिया है वह कही भी नही मिल सकता है ॥२३॥ पहिले जन्म मे जो विद्या का अध्ययन किया है और पहिले जो धन का दान किया है तथा पहिले जन्म मे जो भी कर्म किये हैं वे सभी आगे दौड कर चला करते हैं ॥२४। सम्यक् अच्छे नक्षत्र और शुभ ग्रह होने पर भी इस ससार मे कर्मों की ही प्रधानता होती है। महर्षि वसिष्ठ मनीषी के द्वारा लग्न का शोधन कर निश्चित करने पर भी जानकी को दु खो का भोग करना ही पडा था ॥ २५ ॥ स्थूल जङ्घा वाले राम—शब्द गामी लक्ष्मण और घनकेशी सीता ये तीनों ही दु खो के भाजन हुए थे ॥२६॥ पिड कर्म से पुत्र और पुत्र कर्म से पिता नही होते हैं। शारीरिक और मानसिक रोग कर्म जन्य शरीरो मे हुआ करते हैं ॥२७॥ दृढ धनुष धारी पुरुष के द्वारा छोडे हुए शरो की भांति यहाँ आकर ये निपतित होते हैं। इसलिये शास्त्रो के गर्भ वाली बुद्धि से धीर पुरुष अर्थ की चाह किया करता है ॥२८॥

बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम् ।
तस्या तस्यामवस्थाया भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ॥२९
अनिच्छमानोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः ।
स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत् फलम् ॥३०
प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि त वारयितु न शक्तः ।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे ललाटलेखा न पुन. प्रयाति
(यदस्मदीय न तु तत् परेषाम्) ॥३१॥

सर्पं कूपे गज. स्कन्धे आखुर्विले च धावति ।
नर शीघ्रतरादेव कर्मण क पलायति ॥३२

नाल्पायति हि सद्विद्या दीयमानापि वर्द्धते ।
कूपस्थमिव पानीय भवत्येव बहूदकम् ॥३३

येऽर्था धर्मेण ते सत्या ये धर्मेण गता श्रिय. ।
धर्मार्थी च महाल्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात् ॥३४

अन्नार्थी यानि दु खानि करोति कृपणो जन ।
तान्येव यदि धर्मार्थी न भूय क्लेशभाजनम् ॥३५

बालक—युवा और वृद्ध जो भी शुभ तथा अशुभ कर्म करता है उस-उस अवस्था मे उनका फल जन्म—जन्मान्तर में भोगता है ॥ २९ ॥ इच्छा न करता हुआ भी और विदेश मे स्थित होने वाला भी मानव अपने कर्म रूपी पोत के वात द्वारा उसका फल व ां पहुँचा दिया जाया करता है ।३०। जो प्राप्त होने के योग्य अर्थ होता है उसे मनुष्य अवश्य ही प्राप्त कर लेता है । देव भी उसको रोकने मे समर्थ नहीं होता है । इसलिये मैं इसके लिये कोई भी चिन्ता या शोच नहीं करता हूँ । मुझे विस्मय भी नहीं होता है क्योंकि ललाट में लिखी हुई लेखा को कोई भी बदल नहीं सकता है अर्थात् वह अन्यथा नहीं होगी है । जो हमारे भाग्य मे बदा है अर्थात् हमारे कर्मों के अनुसार जो भी हमारा प्राप्त होने वाला है वह हमको अवश्य ही मिलेगा किसी अन्य को नहीं मिल सकता है ॥३१॥ सर्प कूप मे—गज स्कन्ध में और चूहा बिल मे दौड़ लगाता है । कौन से मनुष्य शीघ्रतर कर्म से पलायन करता है ? ॥३२॥ दूसरो को प्रदान की हुई विद्या कभी भी कम नहीं होती है प्रत्युत वह दूसरो के देने पर अधिक बढती है । कूप मे रहने वाले पानी की तरह वह बहुदक होती है ॥३३॥ जो अर्थ धर्म के द्वारा होते है वे ही सत्य हुआ करते हैं और धर्म पूर्वक प्राप्त की गई है वह ही वास्तविक श्री है । इस लोक मे धर्म का ही अर्थी पुरुष महान् होता है । अतएव अर्थ के कारण मे उसका ही स्मरण रखना चाहिए ॥३४॥ अन्न के चाहने वाला पुरुष अत्यन्त कृपण होता हुआ जिन दुःखों को भोगता है

उन्ही दु खो यदि धर्म का अर्थी करे तो फिर किसी भी क्लेश का वह पात्र ही नही हो सकता है ।।३५।।

सर्वेपामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते ।
योऽन्नार्थैरशुचि शौचान्न मृदा वारिणा शुचि ।।३६
सत्यशौच मन शौच शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूते दया शौच चलशौचश्च पञ्चमम् ।।३७
यस्य सत्यञ्च शौचञ्च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः ।
सत्य हि वचन यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते ।।३८
मृत्तिकाना सहस्रेण उदकाना शतेन च ।
न शुद्धयति दुराचारो भावोपहतचेतन ।।३६
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।४०
न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति ।
न क्रुद्ध परुष ब्रूयादेतत् साधोस्तु लक्षणम् ।।४१
दरिद्रस्य मनुष्यस्य प्राज्ञस्य मधुरस्य च ।
काले श्रुत्वा हित वाक्य न कश्चित्परितुष्यते ।।४२

समस्त प्रकार के शौचो में अन्न की शुचिता का एक अत्यन्त विशेष स्थान होता है । जो अन्न का अर्थी अशुचि हो जावे अर्थात् अनुचित अन्न के सेवन से जो अशुचिता होती है वह जल और मिट्टी से कभी दूर नहीं हो सकती है ।।३६।। सत्यता के पालन करने से शुचिता होती है—शुद्ध—मन के होने से भी शुचिता हुआ करती है और अपनी समस्त इन्द्रियो पर निग्रह एव नियन्त्रण रखने से भी शौच होता है । समस्त प्राणियो पर हृदय मे दया का भाव रखने से शुचिता होती है । पाँचवाँ शौच जो होता है वह अस्थिर हुआ करता है ।।३७।। जिस मानव को सत्य और शौच होना है उसको स्वर्ग का प्राप्त करना कुछ भी दुर्लभ नही होता है । जिसके वचन मे सर्वदा सत्य विराजमान रहता है उसका पुण्य—फल अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक होता है ।। ३८ ।।

भावनाओं से उपहत चेतना वाला दुराचार ऐसा प्रबल होता है कि उसकी अशुचिता सहस्रों बार मृत्तिका से तथा सैकड़ो बार जल से धोने पर भी नष्ट नहीं होती है ।।३९।। जिसके हाथ–पैर और मन सुसंयत होते हैं उसको विद्या–तप और कीर्त्ति की प्राप्ति होती है और वह तीर्थ के फल को प्राप्त किया करता है ।।४०।। जो पुरुष सम्मान के पाने पर प्रसन्न नहीं होता है और अपमान हो जाने पर कभी कोप नहीं किया करता है। जो क्रोध में भरकर कभी अपने मुख से कठोर वचन नहीं बोलता है—यह एक महान् साधु पुरुष के लक्षण होते हैं ।।४१।। दरिद्र मनुष्य के और मधुर प्राज्ञ के समय पर हित वाक्य श्रवण करके कोई परितुष्ट नहीं हुआ करता है ।।४२।।

न मन्त्रबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण च ।
अलभ्य लभ्यते मर्त्यैस्तत्र का परिवेदना ।।४३
अयाचितो मया लब्धो मत्प्रेषित पुनर्गत. ।
यत्रागतस्तत्र गतस्तत्र का परिवेदना ।।४४
एकवृक्षे सदा रात्रौ नानापक्षिसमागम. ।
प्रभातेऽन्यदिश यान्ति का तत्र परिवेदना ।।४५
एकस्वार्थप्रयाताना सर्वेपान्तत्र गामिनाम् ।
यस्त्वेकस्त्वरितो याति का तत्र परिवेदना ।।४६
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक ।
अव्यक्तनिधनान्येव का तत्र परिवेदना ।।४७
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्ध शरशतैरपि ।
कुशाग्रेण तु सस्पृष्ट प्राप्तकालो न जीवति ।।४८
लब्धव्यान्येव लभते गतव्यान्येव गच्छति ।
प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति दु.खानि च सुखानि च ।।४९

मन्त्र–बल–वीर्य —प्रज्ञा और पौरुष से मनुष्य अलभ्य पदार्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये इस अप्राप्ति के विषय मे कुछ भी दु ख नहीं मानना चाहिए ।।४३।। जिस को मैंने कभी याचना नहीं की थी उसे मैंने प्राप्त कर लिया था और मेरा भेजा हुआ वह फिर मुझसे चला गया है। जहाँ से वह

आया था वहीं पर वह चला गया है अर्थात् जिस प्रदाता ने मुझे दिया था उसी ने उसे पुनः ले लिया है तो इसके लिए दु:ख मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए ॥४४॥ एक ही वृक्ष पर रात्रि के समय मे इधर-उधर से अनेक पक्षियो का समागम हो जाया करता है। प्रातःकाल के होने पर वे सभी जो एक साथ रहे थे विभिन्न दिशाओं मे उड़कर चले जाया करते हैं तो इसके लिये कुछ भी परिवेदना नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह समागम तो अस्थायी ही था और उनका वियोग भी होना ही है। तात्पर्य यह है कि यह सासारिक सयोग पिता—पुत्र और भाई-भतीजे आदि का भी ऐसा ही है अतः इस विछोह से कभी भी कोई दु:ख नहीं मानना चाहिए ॥ ४५ ॥ किसी एक ही स्वार्थ के सम्पादन करने के लिये प्रमाण करने वाले राव मे जोकि गमन कर रहे हैं उनमे कोई एक शीघ्रता से चलकर आगे निकल जाया करता है तो इसमे क्या दु:ख की बात है ? संसार में भी यही आगे—पीछे संसार त्याग करने का क्रम रहा करता है ॥४६॥ हे शौनक ! ये समस्त भूतो का आदि कारण अव्यक्त है—मध्यम मे ये सब व्यक्त स्वरूप वाले होते है। इन सबका निधन भी अव्यक्त ही है—इसलिए इस विषय मे दु:ख के मानने की क्या बात है ॥ ४७ ॥ जिसका समय नहीं आया है सैकड़ो शरो मे विद्ध होकर भी कभी नहीं मरा करता है और जिसकी मृत्यु का समय ही उपस्थित होगया है वह एक कुशा के अग्र भाग के स्पर्श से भी मर जाता है और किसी भी उपाय से वह जीवित नहीं रहा करता है। मृत्यु का एक नियत समय होता है शेष सब तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं ॥ ४८ ॥ जो प्राप्त होने वाले होते हैं उन्हीं को मानव प्राप्त किया करता है और जहाँ पर जाना सुनिश्चित होता है वहीं पर वह जाया करता है जिनके प्राप्त होने का योग भाग्य मे बदा है उन्हीं पदार्थों को मानव प्राप्त किया करता है। दु:ख और सुख भी इसी प्रकार से हुआ करते हैं ॥४९॥

ततः प्राप्नोति पुरुषः किं प्रलापं करिष्यति ।
आचोद्यमानानि तथा पुष्पाणि च फलानि च ॥
स्वकालं नातिवर्त्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥५०

शीलं कुलं नैव न चैव विद्या ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धि: ।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षा ॥
तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः ।
तत्र तत्र स्वय याति प्रेष्यमाणः स्वकर्मभिः ॥५२
भूतपूर्वं कृत कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ॥५३
एव पूर्वकृत कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
सुकृत भुङ्क्ष्व चात्मीय मूढ कि परितप्यसे ॥५४
यथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
एव पूर्वकृत कर्म शुभ वा यदि वाऽशुभम् ॥५५
नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥५६

उसी भाग्य के अनुसार पुरुष प्राप्त किया करता है अतएव प्रलाप करना व्यर्थ ही होता है जैसे पूर्व से ही प्रेरित हुए फल और पुष्प स्वतः ही समय पर प्राप्त हुआ करते हैं। इसी भाँति पूर्वकृत कर्म कभी अपने समय का अतिवर्त्तन नही किया करते हैं। समय पर पूर्वकृत कर्मों का फल अवश्य ही प्राप्त होता है ॥५०॥ पूर्व जन्म मे तपश्चर्या के द्वारा जो भाग्य का निर्माण किया है वह समय आ जाने पर फल दिया ही करता है जैसे अपना काल उपस्थित हो जाने पर वृक्ष फलो की उपज किया करते हैं। भाग्योदय मे शील—कुल—विद्या—ज्ञान—गुण और बीज की शुद्धि कारण नही बनते हैं। इन सबसे रहित पुरुष भी पूर्व सुकृत् के कारण महान् भाग्यशाली होता है ॥५१॥ जहाँ पर हनन करने वाला है वहा पर मृत्यु भी है और जहाँ सम्पदाएँ हैं वहाँ श्री विद्यमान रहा करती है। वहाँ—वहाँ पर वह स्वय ही अपने कर्मों के द्वारा प्रेष्यमाण होकर पहुँच जाता है ॥५२॥ पहिले किया हुआ कर्म उसके करने वाले के साथ ही रहता है जिस तरह सहस्रों धेनुओ मे बछडा अपनी माता के ही पास पहुचा करता है ॥५३॥ इसी प्रकार से पूर्व मे किया हुआ कर्म उसके करने वाले के समीप में पहुँचता है और वह कहता है कि हे मूढ ! अपने सुकृत् फल भोगले,

व्यर्थ मे ही क्यो परिताप कर रहा है ॥५४॥ पूर्व जन्म मे किया हुआ कर्म च है वह शुभ हो या अशुभ हो सर्वदा उसके करने वाले के साथ ही रहा करता है ॥५५॥ नीच पुरुष दूसरो के सरसो के बराबर छिद्रो को भी देखा करता है और अपने वेल के फल के बराबर भी अर्थात् बडे बडे दोषो को भी देखते हुए भी नही देखता है ॥५६॥

रागद्वेषादियुक्ताना न सुख कुत्रचिद् द्विज ।
विचार्य्य खलु पश्यामि तत्सुख यत्र निवृ ति ॥५७
यत्र स्नेहो भय तत्र स्नेहो दु खस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दु खानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम् ॥५८
शरीरमेवायतन दु खस्य च सुखस्य च ।
जीवितञ्च शरीरञ्च जात्यैव सह जायते ॥५९
सर्वं परवश दु ख सर्वमात्मवश सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षण सुखदु खयो ॥६०
सुखस्यानन्तर दु ख दु खस्यानन्तर सुखम् ।
सुख दु ख मनुष्याणा चक्रवत्परिवर्त्तते ॥६१
यद्गत तदतिक्रान्त यदि स्यात्तच्च दूरत ।
वर्त्तमानेन वर्त्तेत न स शोकेन बाध्यते ॥६२

हे द्विज ! जो पुरुष राग और द्वेष से युक्त होते हैं उनको कही भी सुख प्राप्त नही हुआ करता है। विचार कर मैं भली भाँति देख रहा हूँ कि सुख वस्तुत वही पर होता है जहाँ निवृ ति होती है ॥५७॥ जहाँ पर स्नेह होता है वहाँ पर भय भी रहता है क्योकि स्नेह दु ख का आधार हुआ करता है । दु खों का मूल स्नेह ही होता है अतएव उस स्नेह के त्याग कर देने पर महान् सुख हो जाता है ॥ ५८ ॥ यह शरीर ही दु ख और सुख का आयतन होता है । जीवित और शरीर जाति से ही साथ उत्पन्न होता है ॥५९॥ पराये अधीन सभी कुछ का रहना दु ख होता है और सबका अपने अधीनता मे रहना सुख होता है । सक्षेप स्वरूप से सुख और दु ख का यही लक्षण होता है । इस ससार मे मनुष्यो को सुख और दु ख एक चक्र की भाति परिवर्तित हुआ करते हैं अर्थात् सुख के बाद दु ख और दु ख के पश्चात् सुख आया ही करता है ॥६०॥

सुख के अनन्तर दुःख और दुःख के अनन्तर सुख आता है। चक्र का परिवर्त्तन भी इसी तरह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे हुआ करता है ।।६१।। जो हो गया वह अति क्रान्त है। जो होने वाला है वह दूर है जो वर्त्तमान से वरतता है वह शोक से बाधित नहीं होता है ।।६२।।

७०—नीतिशास्त्र कथन (२)

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः ।
कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ।।१
शोकत्राणं भयत्राणं प्रीतिविश्वासभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।।२
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।।३
न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ् मित्रे स्वभाजने ।।४
यदीच्छेच्छाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत् ।
द्यूतमर्थप्रयोगञ्च परोक्षे दारदर्शनम् ।।५
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासने वसेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।६
विपरीतरतिः कामः स्वायत्तेषु न विद्यते ।
यत्रापायो बधो दण्डस्तथैव ह्यनुवर्त्तते ।।७

श्री सूतजी ने कहा—इस संसार में कोई भी किसी का मित्र नहीं है और न कोई किसी का शत्रु ही है। यहाँ पर तो कारण के वश होकर ही मित्र तथा शत्रु बना करते हैं ।।१।। शोक से त्राण करने वाला—भय से सुरक्षा का सम्पादक तथा प्रीति एवं विश्वास का पात्र 'मित्र' —यह दो अक्षरों वाला उत्तम रत्न किसने सृजित किया है ? ।।२।। जिसने केवल एक ही बार परम प्रीति एवं भक्ति के भाव से 'हरि'—यह भगवान् के दो अक्षर का पुनीत नाम का उच्चारण किया है उसने मोक्ष की प्राप्ति को गमन करके के लिये

अपने परिकर को बद्ध कर लिया है ॥३॥ स्वभाव से समुत्पन्न मित्र में मनुष्य का जैसा परम गुरुत्व विश्वास होता है वैसा विश्वास अपनी माता—पत्नी—सहोदर भाई—और पुत्र में भी नहीं हुआ करता है ॥४॥ यदि सर्वदा बनी रहने वाली प्रीति को स्थिर रखने की इच्छा है तो वहाँ पर तीन दोषों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए—द्यूत क्रीडा करना, धन के लेने-देने का प्रयोग और परोक्ष में स्त्रियों को देखना या उनसे सम्भाषण करने का काम ॥५॥ अपनी माता-भगिनी-पुत्री इनके साथ विविक्त आसन पर कभी निवास नहीं करना चाहिए क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय अत्यन्त बलवान् होता है और यह महान् विद्वान् को भी कर्षित कर लेता है अर्थात् महान् पाप कर्म करने की ओर खींच लिया करता है ॥६॥ अपने अधीन रहने वालों में विपरीत रति वाला काम नहीं होता है। जहाँ अपाय वध दण्ड है वैसा ही अनुवर्त्तन होता है ॥७॥

अपि कल्पानिलस्यैव तुरगस्य महोदधेः ।
शक्यते प्रसरो वोढुं नह्यारक्तस्य चेतस ॥८
क्षणं नास्ति रहो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता जन ।
तेन शौनक नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥९
एक वै सेवते नित्यमन्य चेतसि रोचते ।
पुरुषाणामलाभेन नारी चैव पतिव्रता ॥१०
जननी यानि कुरुते रहस्य मदनातुरा ।
सुतैस्तानि न चिन्त्यानि शीलविप्रतिपत्तिभि. ॥११
पराधीना निद्रा परहृदयकृत्यानुसरण
सदा हेलाहास्य नियतमपि शोकेन रहितम् ।
परो न्यस्तः काय विटजनखुरैर्दारितगलो
बहूत्कण्ठावृत्तिर्जगति गणिकाया बहुमत ॥१२
अग्निराप: स्त्रियो मूर्खा. सर्पा राजकुलानि च ।
नित्य परोपसेव्यानि सद्य. प्राणहराणि षट् ॥१३
किं चित्र यदि शब्दशास्त्रकुशलो विप्रो भवेत्पण्डित.

किं चित्रं यदि दण्डनीतिकुशलो विप्रो भवेद्धार्मिकः ।
किं चित्रं यदि रूपयौवनवती योषिन्न साध्वी भवेत्
किं चित्र यदि निर्धनोऽपि पुरुषः पाप न कुर्यात्क्वचित् ॥१४

कल्पानिल का—तुरग का और महोदधि का प्रसर जाना जा सकता है किन्तु भरक्त चित्त का नही जान सकते हैं ॥ ८ ॥ हे शौनक ! क्षण मात्र का समय प्राप्त नहीं होता है—एकान्त स्थल भी कभी नही मिलता है और कभी प्रार्थना करने वाला पुरुष भी प्राप्त नही हुआ करता है ऐसे ही तीन कारण रहा करते हैं जिसके कारण से नारियो के सतीत्व रक्षा हो जाया करती है अन्यथा उक्त कारण यदि हो तो फिर नारियो के सतीत्व का वचन महान् कठिन हो होता है ॥६॥ एक पुरुष को तो वह नित्य प्रति सेवन किया करती है तो भी उसके चित्त मे अन्य पुरुष के सेवन करने की रुचि बनी रहा करती है । पुरुषो की प्राप्ति न होने से ही नारी पतिव्रता रहा करती है ॥१०॥ माता मदन से आतुर होकर जिन कर्म कलापो को रहस्य में किया करती है पुत्रो को उन पर चिन्तन नही करना चाहिए क्योंकि वे शील की विप्रति पत्ति करने वाले होते हैं ॥११॥ निद्रा पराधीन होती है—पराये हृदय के कृत्यो का अनुसरण—सदा हेला हास्य नियत शोक से भी रहित होता है । ससार मे गणिका का जीवन ऐसा होता है कि उसका शरीर पैसे के प्राप्त करने के लिये सदा निरत रहना है और विट्जनो के द्वारा उसका गला सदा विदारित रहा करता है—वह बहुतो की उत्कण्ठा को स-तृप्त की वृत्ति वाली और बहुत से लोगो की इच्छा पूर्ण करने वाली मानी गई है ॥१२॥ अग्नि—जल—स्त्रीगण—सर्प और राजकुल ये नित्य परोपसेव्य अर्थात् दूसरो के सेवन करने के योग्य होते हैं और ये छे सद्य प्राणो के हरण करने व ले भी हैं ॥१३॥ इसमे कौन-सी आश्चर्य की बात है कि यदि शब्द शास्त्र मे कुशल प्रिय पण्डित होता है । यह भी कोई विचित्र बात नही है कि दण्ड नीति मे कुशल विप्र धार्मिक है । इसमे भी कुछ विचित्रता नही है कि रूप—लावण्य से सम्पन्न स्त्री सती—साध्वी न रहे और यह भी कुछ अद्भुत बात नही है कि कोई निर्धन पुरुष कही भी कोई पाप कर्म नही करता है ॥१४॥

नात्मछिद्रं परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च ।
गृहे कूर्म इवाङ्गानि परभावञ्च लक्षयेत् ॥१५
पातालतलवासिन्य उच्चप्राकारछादिताः ।
यदि नो चिकुरोद्भेदः स्त्रिया. केनोपलभ्यते ॥१६
समधर्मा हि मर्मज्ञस्तीक्ष्ण स्वजनकण्टक ।
न तथा बाधते शत्रु कृतवैरो बहिःस्थित ॥१७
स पण्डितो यो ह्यनुरञ्जयेद्वै मिष्टेन बाल विनयेन शिष्टम् ।
अर्थेन नारी तपसा हि देवान्सर्वांश्च लोकांश्च सुसंग्रहेण ॥१८
छलेन मित्र कलुषेण धर्म परोपतापेन समृद्धिभावम् ।
सुखेन विद्या परुषेण नारी वाञ्छति वै ये न च पण्डितास्ते ॥१९
फलार्थी फलिन वृक्ष यश्छिन्द्याद् दुर्मतिनर ।
निष्फल तस्य वै कार्य्यं तन्मूल दोषमाप्नुयात् ॥२०
साधनो हि तपस्वी च दूरतो वै कृतश्रम. ।
मद्यपा स्त्री सतीत्येव विप्र न श्रद्दधाम्यहम् ॥२१

कभी भी अपने छिद्र अर्थात् अपने आपके दोष या त्रुटि को दूसरो को नही देना चाहिए और दूसरे के छिद्र को भी न देवे। घर मे कछुए के अङ्गो की भांति परभाव को देखना चाहिए ॥ १५ ॥ पाताल तल की निवास करने वाली और उच्च प्रकार से छादित स्त्रियो का यदि चिकुरोद्भेद न हो तो वे किसके द्वारा प्राप्त की जाया करती है ? ॥१६॥ वैर करने वाला और बाहिर रहने वाला शत्रु उस प्रकार की बाधा नही किया करता है जैसी बाधा करने वाला समान धर्म वाला—मर्म का ज्ञाता—तीक्ष्ण अपना जन कण्टक होता है ॥१७॥ वही पुरुष वास्तव में पण्डित है जो अपने मीठे भाषण से बालको का अनुरञ्जन किया करता है और विनय के भाव से शिष्ट पुरुषो को प्रसन्न किया करता है—धन से नारी को—तपश्चर्या से देवो को—समस्त लोगो को सुसग्रह से अनुरञ्जन करते हैं उनको ही पण्डित कहते हैं। जो छल से मित्र को—कलुष से धर्म को—परोपताप से समृद्धि के भाव को—सुख से विद्या को और कठोरता

से नारी को जो चाहते हैं वे पण्डित पुरुष नहीं कहे जा सकते हैं ॥१८॥-॥१९॥ फलों की इच्छा रखने वाला पुरुष यदि फलों से युक्त वृक्षों का छेदन करता है तो वह मनुष्य दुर्मति ही होता है। ऐसे पुरुष का काय निष्फल ही होता है और उसका मूल दोष को प्राप्त होता है। हे विप्र! साधन सम्पन्न तपस्वी हो—दूर से श्रम करने वाला–मद्यपान करने वाली स्त्री सती है—यह मैं कभी भी श्रद्धा के साथ विश्वास नहीं करता हू ॥२०।२१॥

न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपित मित्र सर्वं गुह्य प्रकाशयेत् ॥२२
सर्वभूतेषु विश्वास सर्वभूतेषु सात्त्विक ।
स्वभावमात्मना गुह्यमेतत्साधोर्हि लक्षणम् ॥२३
यस्मिन्कस्मिन्कृते कार्य्ये कर्त्तारमनुवर्त्तते ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि धैर्य्यबुद्धिन्तु कारयेत् ॥२४
वृद्धा स्त्रियो नव मद्यं शुष्क मांस त्रिमूलकम् ।
रात्रौ दधि दिवा स्वप्न विद्वान्पद् परिवर्जयेत् ॥२५
विष गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम् ।
विष कुशिक्षिता विद्या अजीर्णे भोजन विषम् ॥२६
प्रिय दानमकुण्ठस्य नीचस्योच्चासन प्रियम् ।
प्रिय दान दरिद्रस्य यूनश्च तरुणी प्रिया ॥२७
अत्यम्बुपान कठिनाशनञ्च धातुक्षयो वेगविधारणञ्च ।
दिवाशयो जागरणञ्च रात्रौ षड्भिर्नराणा निवसन्तिरोगा ॥२८

जो विश्वास का पात्र नहीं है उसमें कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए और जो मित्र है उसको विश्वास का पात्र रहते हुए भी उसका भी पूर्णतया विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि यदि किसी समय म वह विश्वस्त मित्र कुपित हो जाता है तो फिर सभी कुछ गोपनीय बातों को प्रकाशित कर दिया करता है ॥२२॥ समस्त प्राणियों में विश्वास रखना और सब प्राणियों म सात्त्विक भाव का रखने वाला होना और अपने भाव को अपने ही आपके द्वारा गोपनीय रखना–य एक साधु पुरुष का लक्षण होता है ॥ २३ ॥ जिस किसी कार्य के

करने पर कर्त्ता का अनुवर्त्तन करता है सर्वथा वर्त्तमान भी धैर्य बुद्धि को करे ॥२४॥ वृद्धा स्त्री—नवीन मद्य—शुष्क आमिष—त्रिमूलक—रात्रि में दधि और दिन में सोना ये छै कार्य विद्वान् पुरुष को वर्जित कर देने चाहिए ॥२५॥ दरिद्र पुरुष को गोष्ठी करना विष के तुल्य है और वृद्ध पुरुष को तरुणी विष के समान होती है। कुत्सित सीखी हुई विद्या विषवत् है और पहिला किया हुआ भोजन जब तक जीर्ण न हो जावे ऐसी दशा में और भोजन का कर लेना भी विष के समान होता है ॥ २६ ॥ कुण्ठा रहित को दान प्रिय होता है और नीच को उच्छ्वास लेना प्रिय होता है। दरिद्र को दान प्रिय लगता है और युवा पुरुष को तरुणी परम प्रिय प्रतीत हुआ करती है ॥२७॥ अत्यन्त अधिक जल का पान करना—कठिन वस्तुओं का खाना—धातु का क्षय होना और वेगों का रोक लेना अर्थात् मल मूत्रादि के त्याग करने के वेग को रोकना—दिन में शयन करना—रात्रि में जागरण करना—इन छै कार्यों से मनुष्यों के शरीर में रोग निवास किया करते है ॥२८॥

बालातपश्चाप्यतिमैथुनञ्च श्मशानधूमं करतापनञ्च ।
रजस्वलावक्त्रनिरीक्षणञ्च सुदीर्घमायुस्त्वपि कर्षयेच्च ॥२६
शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि ।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥३०
सद्यः पक्वघृतं द्राक्षा बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ।
उष्णोदकं तरुच्छाया सद्यः प्राणकराणि षट् ॥३१
कूपोदकं वटच्छाया नारीणाञ्च पयोधरः ।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम् ॥३२
सद्योबलकरास्त्रीणि बालाभ्यङ्गसुभोजनम् ।
सद्योबलहरास्त्रीणि अध्वा च मैथुनं ज्वरः ॥३३
शुष्कं मांसं पयो नित्यं भार्य्यामित्रैः सहैव तु ।
न भोक्तव्यं नृपैः सार्द्धं वियोगं कुरुते क्षणात् ॥३४
कुचैलिनं दन्तमलापधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम् ।
सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥३५

प्रातःकालीन सूर्य का आतप—अत्यन्त मैथुन—श्मशान भूमि की धूँआ हाथों का तपाना—रजस्वला स्त्री के मुख को देखना—ये कार्य सुदीर्घ आयु का भी कर्षण किया करते हैं ॥ २९ ॥ शुष्क मांस—वृद्धा स्त्री—बाल सूर्य—तरुण (हाल का ही जमा हुआ) दधि—प्रभात काल में मैथुन और निद्रा ये कार्य सद्यः प्राणों के हरण करने वाले हुआ करते हैं ॥३०॥ ताजा पकाया हुआ घृत—दाख बाला स्त्री—क्षीर का भोजन—उष्ण जल—वृक्ष की छाया—ये छै पदार्थ तुरन्त ही प्राणों का प्रदान करने वाले होते हैं ॥३१॥ कुए का जल—वट वृक्ष की छाया नारियों का पयोधर—ये वस्तुऐं शीतकाल में तो उष्ण होते हैं और उष्णकाल में शीतल रहा करते हैं ॥ ३२ ॥ तुरन्त ही बल को प्रदान करने वाली तीन वस्तुऐं हुआ करती हैं—बाला स्त्री—अभ्यङ्ग (तैल का मालिश और उबटन) और सुन्दर सुस्वादु भोजन तुरन्त ही बल के हरण करने वाली तीन वस्तुऐं होती हैं—मार्ग का चलना—मैथुन और ज्वर का शरीर में प्रवेश करना ॥३३॥ शुष्क मांस—पय और नित्य भार्या मित्रों के साथ भोजन कभी नहीं करे और राजाओं के साथ भोजन करना क्षणमात्र में वियोग किया करता है ॥३४॥ बुरे अर्थात् फटे—पुराने एवं मैले वस्त्र धारण करने वाले पुरुष को—दाँतों में मैल के धारण करने वाले मानव को—बहुत अधिक भोजन करने वाले मनुष्य को—निष्ठुर वाक्य बोलने वाले नर को और सूर्य के उदय और अस्त के समय में शयन करने वाले व्यक्ति को चाहे साक्षात् चक्रपाणि ही क्यों न हों—श्री छोड़ कर चली जाया करती है ॥३५॥

निर्ये छेदस्तृणानां धरणिविलिखनं पादयोश्चापमार्ष्टिः
दन्तानामप्यशौच मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम् ।
द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयन ग्रासहासातिरेकः
स्वाङ्गे पीठे च वाद्य निधनमुपनयेत्केशवस्यापि लक्ष्मीम् ॥३६
शिरः सुधौत चरणौ सुमार्जितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम् ।
अनग्नशायित्वमपर्वमैथुन चिरप्रनष्टां श्रियमानयन्ति पट् ॥३७
यस्य तस्य तु पुष्पस्य पाण्डरस्य विशेषतः ।
शिरसा धार्य्यमाणस्य अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते ॥३८

दीपस्य पश्चिमा छाया छाया शय्यासनस्य च ।
रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति ॥३९
बालातपः प्रेतधूमः स्त्री वृद्धा तरुणं दधि ।
आयुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरजः ॥४०
गजाश्वरथधान्यानां गवाश्चैव रजः शुभम् ।
अशुभञ्च विजानीयात्खरोष्ट्राजाविकेषु च ॥४१
गवां रजो धान्यरज पुत्रस्याङ्गभव रज. ।
एतद्रजो महाशस्त महापातकनाशनम् ॥४२

नित्य प्रति तिनको का तोडना—भूमि पर लिखना—पादो की अपमार्ष्टि—दांतो की अशुचिता—मलिन वस्त्रो का धारण करना—केशो को रूखा रखना—दोनों सन्धि कालो के समय मे निद्रा करना—बिना वस्त्र के नग्न होकर शयन करना—बडे-बडे ग्रास लेना तथा अत्यन्त हास्य का करना—अपने अङ्ग पर और पीठ पर वाद्य का रखना—ये कार्य भगवान् केशव की भी लक्ष्मी का निधन कर दिया करते हैं ॥३६। भली भाँति धोया हुआ सिर और भली विधि से धोये हुए अर्थात् स्वच्छ किये हुए पैर—वराङ्गना का सेवन—अल्प भोजन—नग्न न होकर शयन करना—पर्व दिवसो को छोडकर मैथुन करना—ये छै कार्य ऐसे हैं जो कि चिरकाल से नष्ट हुई भी लक्ष्मी को पुन. प्राप्त करा दिये करते हैं ।३७। जिस किसी के पुष्प को विशेष कर पाण्डर के पुष्प को सिर पर धारण करने वाले की अलक्ष्मी का प्रतिहनन हो जाता है ॥३८॥ दीपक की पश्चिम छाया—शय्या आसन की छाया और रजक का तीर्थ वहाँ पर सर्वदा अलक्ष्मी निवास किया करती है ॥३९॥ बालातप—प्रेत धूम—वृद्धा स्त्री—तरुण दधि और सम्मार्जनी की धूल इन वस्तुओ का सेवन आयु की कामना रखने वाले पुरुष को कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ ४० ॥ हाथी—अश्व—रथ और धान्यों की रज तथा गौओ के पदो से उठी हुई रज शुभ होती है। गधा—ऊँट—बकरी और भेडो के द्वारा उत्थित रज अशुभ जाननी चाहिए ॥४१॥ गौओं की रज और पुत्र के अङ्ग से उठी हुई रज महान् प्रशस्त होती है तथा महान् पातकों का नाश करने वाली हुआ करती है ॥४२॥

अजारजः खररजो यत्तु मम्मार्जनीरजः ।
एतद्रजो महापाप महाकिल्विषकारकम् ॥४३
शूर्पवातो नखाग्राम्बु स्नानवस्त्रमृजोदकम् ।
मार्जनीरेणुः केशाम्बु हन्ति पुण्य पुराकृतम् ॥४४
विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिनोस्तथा ।
अन्तरेण न गन्तव्य हयस्य वृषभस्य च ॥४५
स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेवने ।
भोगास्वादेषु विश्वास कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥४६
न विश्वसेदविश्वस्त विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्न मूलादपि निकृन्तति ॥४७
वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति ।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतित प्रतिबुध्यते ॥४८
नात्यन्त मृदुना भाव्य नात्यन्त क्रूरकर्मणा ।
मृदुनैव मृदु हन्ति दारुणेनैव दारुणम् ॥४९

बकरी के पैरो से उठी हुई रज—गधे के द्वारा उत्थित रज और बुहारी से उठी हुई रज—ये तीनो रज महा पाप मय होती है और महान् किल्विषो के करने वाली हुआ करती है ॥४३॥ सूप की हवा—नखो के अग्र भाग का जल—स्नान वस्त्र की मृजा का जल—मार्जनी की रेणु और केशो का जल—ये पूर्व जन्म मे किये हुए पुण्य का भी हनन कर देते हैं ॥४४॥ दो विप्रो के मध्य से—विप्र और वह्नि के बीच से—दम्पत्ति के मध्य से—स्वामियो के मध्य से और हय तथा वृषभ के अन्तर से कभी नही जाना चाहिए ॥४५॥ स्त्रियो मे—राजा—अग्नि—सर्प मे—स्वाध्याय मे—शत्रु के सेवन मे—भोगो के आस्वादो मे कौन प्राज्ञ पुरुष विश्वास करने के योग्य होता है अर्थात् कोई भी समझदार व्यक्ति इन उपर्युक्तो मे विश्वास नही करता है ॥ ४६ ॥ जो विश्वास का पात्र व्यक्ति नही है उसका तो विश्वास कभी करना ही नही चाहिए किन्तु जिसे अपना विश्वस्त समझा जाता है उसमे भी अत्यन्त विश्वास नही करना चाहिए । विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है वह मूल से भी निकृतन कर दिया करता है ॥४७॥ वैरी

के साथ सन्धि करके यदि विश्वस्त होकर अवस्थित रहा करता है तो निश्चय ही वह वृक्ष के अग्र भाग पर सोया हुआ होता है जो पतित होकर ही प्रति बुद्ध हुआ करता है ॥४८॥ मानव को इस संसार में अत्यन्त मृदु नहीं होना चाहिए और इस लोक में प्रत्यधिक क्रूरकर्म करने वाला भी कभी नहीं होना चाहिए। जो मृदु है उसका मृदु होकर ही हनन करे और जो दारुण प्रकृति का हो उसका हनन दारुण होकर ही करे ॥४६॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं नात्यन्तं मृदुना तथा।
सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥५०
नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च ॥५१
अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति यान्ति च।
मार्जार इव लम्फेत तथा प्रार्थयते नरः ॥५२
पूर्वं पश्चाच्चरन्त्यार्ये सदैव बहुसम्पदः।
विपरीतमनार्य्ये यथेच्छसि तथा चर ॥५३
षट्कर्णो भिद्यन्ते मन्त्रश्चतुःकर्णश्च धार्य्यते।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्यन्तो न बुध्यते ॥५४
तथा गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः ॥५५
एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता।
कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगनं यथा ॥५६

इस जगती तल में अत्यन्त सरल अर्थात् सीधा भी न रहे और न बहुत अधिक कोमल स्वभाव वाला ही होकर व्यवहार करे क्योंकि अति सीधे और मृदु सर्वदा हानि ही उठाया करते हैं। वन में जाकर देखो जो सीधे वृक्ष होते हैं उनको लोग काम में लाने के लिये काट लिया करते हैं और टेढ़े-मेढे वृक्ष वहीं पर ही खड़े रहते हैं क्योंकि वे किसी के उपयोग में नहीं होते हैं ॥५०॥ जो फलों से लदे-फदे वृक्ष होते हैं उनकी शाखाऐं नीचे को झुक जाया करती हैं अर्थात् नमन शील होती हैं। इसी प्रकार से गुणों से सम्पन्न पुरुष भी परम

विनम्र हुआ करते हैं। जो सूखे हुए वृक्ष होते हैं वे और महा मूर्ख न तो भेदन ही किये जाते हैं और वे न कभी नवा ही करते हैं ॥५१॥ दुःखों के प्राप्त करने की कभी कोई प्रार्थना नहीं किया करता किन्तु वे बिना बुलाये ही जिस तरह आया करते हैं और चले जाते हैं उसी तरह प्रार्थना करने वाला मनुष्य मार्जार की भाँति सम्फल किया करता है ॥५२॥ जो आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष होते हैं उनमें सदैव आगे और पीछे सम्पदाऐं अत्यधिक मात्रा में विचरण किया करती हैं। जो अनार्य हैं उनमें इसके विपरीत होता है। अब तुमको जो भी मार्ग अच्छा लगे वही अपनाना चाहिए ॥५३॥ छैं कानों में पहुँचने वाली गुप्त बात भिद्यमान हो जाया करती है अर्थात् फैल जाया करती है और उसकी गोपनीयता नहीं रहती है। जो बात केवल दो ही आदमियों में चार कानों तक रहती है उसमें गोपनीयता रहा करती है। जो केवल दो ही कानों तक अर्थात् एक ही आदमी तक रहती है वह तो ऐसी ही परम गुप्त एवं गोपनीय रहा करती है कि उसे मनुष्य तो क्या ब्रह्मा भी नहीं जान सकता है ॥५४॥ उस गौ से क्या लाभ है जो न तो दूध ही देती है और न कभी गर्भिणी ही होती है। इसी भाँति ऐसे पुत्र से भी क्या फल होता है जो न तो विद्वान् हो और न धार्मिक ही हो। *ऐसे पुत्र का तो उत्पन्न होना बिल्कुल व्यर्थ ही होता है ॥५५॥* चाहे केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हो किन्तु वह एक ही यदि सुपुत्र है और श्रीमान् तथा विद्या में युक्त है तो उस सिंह के समान पुरुष से समस्त कुल चन्द्रमा के द्वारा आकाश की भाँति सुशोभित हो जाता है ॥५६॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥५७
एको हि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम् ।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः ॥५८
शरीमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥५९
जायमानो हरेद्दारान्वर्द्धमानो हरेद्धनम् ।
म्रियमाणो हरेत्प्राणान्नास्ति पुत्रसमो रिपुः ॥६०

केचिन्मृगमुखा व्याघ्रा केचिद् व्याघ्रमुखा मृगा ।
तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वास पदे पदे ॥६१
एक क्षमावता दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेन क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥६२
एतदेवानुमन्येत भोगा हि क्षणभङ्गिन ।
स्निग्धेषु च विदग्धस्य मतयो वै ह्यनाकुला. ॥६३

वन मे कोई एक ही वृक्ष हो जो सुगन्ध युक्त पुष्पो से परिपूर्ण हो तो उस एक सुवृक्ष से ही सम्पूर्ण वन सुवासित हो जाया करता है जैसे एक सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल प्रख्यात हो जाया करता है ॥५७॥ गुणों से सम्पन्न एक ही पुत्र सबसे श्रेष्ठ है गुण हीन सैकडो पुत्रो से भी क्या लाभ है । एक ही चन्द्रमा पूरे व्यापक अन्धकार का नाश कर दिया करता है जिसे सहस्राधिक तारागण रहते हुए भी नष्ट करने की क्षमता नही रखते हैं ॥५८॥ पुत्र का लालन पाँच वर्ष की अवस्था तक करना चाहिए अर्थात् पाँच वर्ष तक यह कुछ अनुचित मार्ग भी अपनाये तो लाड मे ही उसे वर्जित कर देवे । इसके पश्चात् जब उसे कुछ बुरे-भले का थोडा-सा ज्ञान हो जाता है तो छै वर्ष से दस वर्ष तक अर्थात् पन्द्रह की आयु तक बालक को ताडना देनी चाहिए डाट-फटकार से उसे सुमार्ग पर लावे । जब सोलहवें वर्ष मे वह पदार्पण करे तो फिर उसके साथ एक मित्र की भाँति व्यवहार करे ॥५६॥ पुत्र उत्पन्न होता हुआ ही पत्नी का हरण किया करता है अर्थात् स्त्री के यौवन की आभा का नाश कर पति-मिलन के अयोग्य बना देता है । जब वह बडा हो जाता है तो धन का हरण किया करता है अर्थात् पिता की समस्त सम्पदा का पूरा अधिकारी बनकर उसको अपने हाथ मे ले लिया करता है । यदि पुत्र पिता के सामने ही मृत्यु का ग्रास हो जाता है तो पिता को महान् वेदना होती है मानो उसके प्राण ही छिन्न जाया करते है । ऐसा पुत्र के समान अन्य कोई भी शत्रु नही है जिसके लिये लोग दारुण सन्तापित रहते है ॥६०॥ कुछ मृग अर्थात् पशु व्याघ्र के समान मुख वाले हुआ करते है और कुछ व्याघ्र मृग के तुल्य मुख वाले होते है । इसके यथार्थ स्वरूप के परिज्ञान प्राप्त करने मे पद-पद पर अविश्वास हुआ करता है ॥६१॥ क्षमा

धारण करने वाले पुरुष सब प्रकार से अच्छे माने जाते हैं किन्तु उनमें एक ही बड़ा भारी दोष होता है कि जो क्षमा से युक्त पुरुष होता है उसे लोग शक्ति से हीन समझने लग जाया करते है ॥ ६२ ॥ यही माना जाता है कि सांसारिक समस्त भोग क्षण भंगुर होते हैं तो भी स्निग्धों में विदग्ध पुरुष की बुद्धि अनाकुल होती है ॥६३॥

ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता मृते पितरि शौनक ।
सर्वेषां स पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालकः ॥६४
कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्त्तते ।
समोपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च ॥६५
बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि वध्यते ॥६६
अपहृत्य परस्वं हि यस्तु दानं प्रयच्छति ।
स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥६७
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥६८
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥६९
नाश्नन्ति पितरो देवाः क्षुद्रस्य वृषलीपतेः ।
भार्य्याजितस्य नाश्नन्ति यस्याश्चोपपतिर्गृहे ॥७०

हे शौनक ! पिता के मृत हो जाने पर ज्येष्ठ भाई पिता के ही तुल्य होता है। वह सबका अनुपालन करने वाला हुआ करता है और सबका इसीलिये पिता होता है ॥६४॥ जो भी उससे छोटे होते हैं उन सबके साथ उसका व्यवहार समान होता है, जिस प्रकार से तुल्य उपभोग करने वाले और जीवन बिताने वाले पुत्रों में हुआ करता है ॥६५॥ अत्यल्प शक्ति वाले भी यदि बहुत से एकत्रित होकर एक समुदाय में संघटित हो जाते हैं तो महान् दारुण शक्तिशाली हो जाया करते हैं जैसे एक-एक तिनके से बनी हुई मोटी रस्सी इतनी मजबूत

हो जाया करती है कि उसमें फिर हाथी जैसे महान् बलवान् पशु को भी बाँध लेने की शक्ति हो जाया करती है ।।६६।। दूसरे का धन अपहरण कर जो फिर उसका दान दिया करता है उसके दान करने वाला पुरुष नरक का गामी होता है और वास्तव में उस दान का यही फल भी होता है ।।६७।। देवोत्तर सम्पत्ति का अपहरण या विनाश करने से—ब्राह्मण का धन हरण करने से और ब्राह्मणों का अतिक्रमण करने से कुलों की अकुलता हो जाती है अर्थात् समस्त कुलों का नाश हो जाया करता है ।।६८।। ब्राह्मण के हनन करने वाले—सुरा का पान करने वाले—चोरी करने वाले और व्रत को भग्न करने वाले पुरुष की सत्पुरुषों ने निष्कृति अर्थात् प्रायश्चित्त बताया है किन्तु जो कृतघ्न होता है। उसका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है। किये गये उपकार को न मानने वाला पुरुष कृतघ्न कहा जाता है ।।६९।। शूद्र और वृषली (शूद्रा) के स्वामी के यहाँ देवगण और पितर गण भोजन नहीं किया करते हैं। जो भार्या के द्वारा जीता हुआ हो अर्थात् भार्या का ही जिस पर पूर्ण प्रभाव हो और जिसकी भार्या का कोई उप-पति घर में रहता हो उसके यहाँ भी देव—पितर असन्तुष्ट होते हुए भोजन नहीं किया करते हैं। ७०।।

अकृतज्ञमनार्य्यंश्च दीर्घरोषमनार्जवम् ।
चतुरो विद्धि चाण्डालाञ्जात्या जायेत पञ्चमः ।।७१

नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धिः शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया ।
वह्निरल्पोऽप्यसंग्राह्य कुरुते भस्मसाज्जगत् ।।७२

नवे वयसि यः शान्त स शान्त इति मे मतिः ।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ।।७३

पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्वसाधारणाः श्रियः ।
मदीया इति मत्वा वै न हि हर्षयुतो भव ।।७४

चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्ते नष्टे धातवो यान्ति नाशनम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति ।।७५

ये चार पुरुष स्वभाव और कर्म के कारण ही चाण्डाल हुआ करते हैं

एक वह जो किये हुए उपकार को नहीं माना करता है। दूसरा वह जो अनार्य होता है अर्थात् जिसमे आर्य होने की श्रेष्ठता का पूर्णतया अभाव होता है। तीसरा वह जिसमे बहुत ही लम्बे समय तक रोप विद्यमान रहता है अर्थात् जिसका क्रोध हृदय मे घर बना कर किसी भी प्रकार से निकलता ही नहीं है और चौथा वह है जो सरलता से रहित अर्थात् सदा कुटिल वृत्ति वाला होता है। पाँचवाँ चाण्डाल तो वही है जो उस चाण्डाल जाति से समुत्पन्न होता है ॥७१॥ दुष्ट बुद्धि वाला साधारण भी शत्रु भी अवज्ञा से अर्थात् इस भावना से कि यह मामूली शत्रु हमारा क्या बिगाड सकता है कभी भी उपेक्षा करने के योग्य नहीं होता है अग्नि का छोटा-सा कण भी सग्रह नहीं करने के योग्य ही होता है क्योंकि वह सम्पूर्ण जगत् को ही भस्मसात् कर दिया करता है अर्थात् उस सामान्य सी अग्नि मे भी सब कुछ जला कर राख बना देने की क्षमता विद्यमान रहा करती है ॥ ७२ ॥ नई उठती हुई अवस्था में जिसमे स्वाभाविक रूप से कभी शान्ति हुआ ही नहीं करती है जो पुरुष शान्ति से युक्त रहा करता है वही वास्तव में शान्त प्रकृति वाला पुरुष होता है—ऐसा मेरा विचार है जब उम्र ढल जाती है तो सम्पूर्ण शरीर की धातुऐं क्षीण हो जाया करती हैं उस समय मे तो सभी को शान्ति आ जाया करती है क्योंकि किसी भी तरह की शक्ति रहा ही नहीं करती है ॥७३॥ हे विप्रेन्द्र ! मार्गों की भाँति स्त्रियों का उपभोग सबके लिये साधारण होता है अर्थात् जिस तरह मार्गों मे सभी के चलने–फिरने का अधिकार होता है वैसे ही स्त्रो के भोगने का भी सबको हक हुआ करता है। यह स्त्री मेरी ही है ऐसा मानकर कभी भी प्रसन्नता से युक्त मत होओ। ऐसा मान लेना उचित नहीं है क्योंकि स्त्री मे सभी का अधिकार रहा करता है ॥७४॥ यह शरीर धातुओ के वश मे रहने वाला और चित्त के अधीन ही हुआ करता है। जब चित्त ही नष्ट हो जाता है तो सम्पूर्ण धातुऐं भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये चित्त की सर्वदा रक्षा करनी चाहिए। जब चित्त स्वस्थ रहता है तो धातुऐं भी शरीर मे उत्पन्न होकर सबल एव समर्थ होती हैं। शरीर मे चित्त की ही प्रधानता होती है ॥७५॥

७१—नीति शास्त्र कथन (३)

कुभार्य्यांश्च कुमित्रञ्च कुराजानं कुपुत्रकम् ।
कुकन्याञ्च कुदेशञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥१
धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरङ्गतं
पृथ्वी वन्ध्यफला जना. कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
मर्त्याः स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥२
धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् ।
परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम् ॥३
कुपुत्रे निर्वृतिर्नास्ति कुभार्य्यायां कुतो रतिः ।
कुमित्रे नास्ति विश्वासः कुराज्ये नास्ति जीवितम् ॥४
परान्नञ्च परस्वञ्च परशय्याः परस्त्रियः ।
परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि श्रियं हरेत् ॥५
आलापाद् गात्रसम्पर्शात्सिंसर्गात्सह भोजनात् ।
आसनाच्छयनाद्यानात्पापं सङ्क्रमते नृणाम् ॥६
स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति ।
गावो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तम ॥७

सूतजी ने कहा—दुष्ट स्वभाव वाली भार्या और कुत्सित मित्र तथा बुरा राजा एवं कुपुत्र—बुरी कन्या और बुरे देश को दूर से ही त्याग देना चाहिए ।१। अब वर्तमान कलियुग का प्रभाव बताते हैं—यह युग ऐसा है कि इसमें धर्म तो ऐसा चला गया है कि कहीं भी नाम को भी दिखाई नहीं देता है—तप भी इस समय में चला गया है अर्थात् तपस्या जिसे कहते हैं—वह भी कोई नहीं जानता है । सत्य तो नाम मात्र को भी कलियुग में कहीं है ही नहीं—वसुन्धरा कोई वस्तु है इसकी सत्ता तक मर्यादा को कोई भी जानता ही नहीं है । समस्त भूमि का भाग ऐसा है कि इसमें जैसी उपज होनी चाहिए वह कहीं भी नहीं होती है । मनुष्य प्रायः सभी कपट का व्यवहार करने वाले हैं और जो ब्राह्मण

लोग हैं वे बहुत अधिक बतबने होगये हैं अर्थात् चचलता से पूर्ण हैं। कलियुग मे मनुष्य स्त्रियो के वश मे रहा करते हैं। स्त्रियाँ अधिक चचल हैं। नीच जाति के मनुष्य उन्नतिशील हो गये है। इस कलिकाल मे जीवन बहुत ही कष्टमय है। वे मनुष्य परम धन्य एव भाग्यशाली हैं जो अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके और मर गये हैं ॥ २ ॥ इस घोर कलियुग के समय मे उन मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्यो को इसीलिये परम धन्य कहते है कि वे न तो इस समय में होने वाले देश के टुकडो मे बट जाने वाली भगता को देख रहे हैं और न कुलो के क्षय को ही देखते हैं। दूसरो मे अपने चित्त को रमाने वाली दाराओ को और बुरे व्यसनो मे फँसे हुए पुत्रों को भी वे मर जाने के कारण नहीं देख रहे हैं ॥३॥ कुपुत्र मे निवृ ति नही होती है और जो कुभार्या है उसमे रति भी कैसे हो सकती है। कुमित्र मे विश्वास नही होता है और बुरे राज्य मे जीवन कैसे रह सकता है ॥४॥ पराया अन्न—पराया धन–दूसरे की शय्या–पराई स्त्री पराये घर मे निवास ये इन्द्र की भी श्री का हरण करने वाले कार्य होते हैं ॥५॥ बात-चीत करने से–गात्र (शरीर) के स्पर्श से–सङ्गति से—साथ मे बैठ कर भोजन करने से–आसन पर स्थित होने से–साथ में शयन से और साथ मे गान करने से मनुष्यो के पाप का सक्रमण हुआ करता है अर्थात् दूसर का पाप लग जाया करता है ॥६॥ स्त्री अधिक रूप–लावण्य के होने से नष्ट हो जाया करती हैं—क्रोध से तपस्या का नाश होता है–दूर प्रचार से मार्ग और शूद्र के अन्न से श्रेष्ठ द्विज का नाश हो जाता है ॥७॥

आसनादेकशय्याया भोजनात्पङ्क्तिसङ्करात् ।
तत सक्रमते पाप घटाद्घट इवोदकम् ॥८
लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणा. ।
तस्माच्छिष्यञ्च पुत्रञ्च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥९
अध्वा जरा देहवता पर्वताना जल जरा ।
असभोगश्च नारीणा वस्त्राणामातपो जरा ॥१०
अधमा. कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमा ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महता धनम् ॥११

मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम्।
प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं धनेन किमायुषा ॥१२
अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥१३
वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभूक्षिता नाशनिरीक्षणाश्च।
धनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्माणि समारभन्ति ॥१४

एक ही आसन पर स्थिति करने से—एक ही शय्या पर शयन करने से—एक साथ ही बैठ कर भोजन करने से और पवित्र के साङ्कर्य होने से अर्थात् मिल जाने से घट से दूसरे घट में जल लाने की भाँति एक से दूसरे में पाप का सङ्क्रमण हुआ करता है ॥ ८ ॥ लाड–प्यार करने में बहुत से दोष समुत्पन्न हो जाया करते हैं और ताडना करने में अधिक गुण होते हैं। इसलिये अपने शिष्य और पुत्र को सर्वदा ताडना ही देनी चाहिए केवल लालन नहीं करे ॥९। देह-धारियों के लिये मार्ग का गमन करना जरा अर्थात् वार्धक्य है—पर्वतों के लिये जल ही जरा है अर्थात् उनको क्षीणता पहुँचाने वाला होता है—नारियों के साथ सम्भोग न करना ही उनकी वृद्धता के करने वाली जरा है और वस्त्रों को आतप में रखना जरा है ॥१०॥ जो अधम श्रेणी के मानव होते हैं वे सदा कलह ही चाहा करते हैं—मध्यम श्रेणी के पुरुष सन्धि की इच्छा रखते हैं तथा उत्तम कोटि के मनुष्य मान के इच्छुक होते हैं क्योंकि महान् पुरुषों का एकमात्र धन मान ही हुआ करता है ॥११॥ मान ही अर्थ का मूल है क्योंकि मान की प्राप्ति के लिये ही अर्थ की इच्छा की जाया करती है। यदि मान है तो फिर उसके होने पर अर्थ से क्या प्रयोजन है। जिसके मान का दर्प ही भ्रष्ट होगया है उसको धन और आयु से भी क्या लाभ है अर्थात् फिर तो उसका धन और जीवन दोनों ही इस संसार में व्यर्थ हैं ॥१२॥ अधम पुरुष ही धन की इच्छा किया करते हैं—जो मध्य श्रेणी के लोग हैं वे धन और मान दोनों ही की अभिलाषा रखा करते हैं। उत्तम श्रेणी पुरुष केवल मान ही चाहते हैं क्योंकि महान् पुरुषों का धन तो मान ही हुआ करता है ॥१३॥ वन में भूखे भी सिंह कानों का नमन नहीं किया करते हैं और न कभी भक्ष्य का ही निरीक्षण करते

हैं। इसी प्रकार से धन से हीन पुरुष भी जो अच्छे कुलों में उत्पन्न हुए हैं कभी भी नीच कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् धन की प्राप्ति के लिये बुरे काम कभी नहीं करते हैं ॥१४॥

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने ।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥१५
वणिक्प्रमादी भृतकश्च मानी भिक्षुर्विलासी ह्यधनश्च कामी ।
वराङ्गना चाप्रियवादिनी च न ते च कर्माणि समारभन्ति ॥१६
दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा ।
परोपकारेषु नरस्य मृत्यु प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च ॥१७
कान्तावियोगः स्वजनापमान ऋणस्य शेष कुजनस्य सेवा ।
दारिद्र्यभावाद्विमुखाश्च मित्रा विनाग्निना पञ्च दहन्ति तीव्रा.१८
चिन्तासहस्रे षु च तेषु मध्ये चिन्ताश्चतस्रोऽप्यसिधारतुल्या ।
नीचापमान क्षुधित कलत्र भार्या विरक्ता सहजोपरोध ॥१९
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च ।
इष्टा च भार्या वशवर्त्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च ॥२०
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गा मीना हता पञ्चभिरेव पञ्च ।
एक. प्रमाथी स कथ न घात्यो य सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥२१

वन में सिंह का कभी किसी ने अभिषेक नहीं किया है अर्थात् उसे किसी ने वन के राज्य का राजा नहीं बनाया है और न कोई संस्कार ही ऐसा किया गया है किन्तु वह नित्य अपने ही अन्यूर्जित सत्त्व वाला होने के कारण से ही वहाँ समस्त वन के जीवों का राजा बन गया है ॥ १५ ॥ प्रमाद (लापरवाही) शील वैश्य अर्थात् व्यापार-व्यवसाय करने वाला—मान रखने वाला भृतक अर्थात् सेवा वृत्ति करने वाला मानव—विलासशील भिक्षु और बिना धन वाला कामी तथा अप्रिय बोलने वाली वराङ्गना कभी अपने कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् ये लोग अपने कर्मों में कभी सफल नहीं हो सकते हैं ॥ १६ ॥ दान शील पुरुष का दरिद्री होना—अर्थ सम्पन्न पुरुष का कृपण होना—पुत्र आज्ञाकारी न होना—दुष्ट पुरुष की सेवा करना

और पर के अपकार करने में मृत्यु का हो जाना ये पाँच दुश्चरित हुआ करते हैं ॥ १७ ॥ अपनी कान्ता से विछोह का हो जाना—अपने जनों के द्वारा या अपने ही जनों के मध्य में अपमान का होना—ऋण का शेष बना रहना—बुरे पुरुष की सेवा का करना और दारिद्र्य के होने के कारण मित्रों का विमुख हो जाना ये पाँच कार्य ऐसे है जो बिना ही अग्नि के बहुत तीव्र दाह किया करते हैं अर्थात् रात-दिन हृदय को बुरी तरह से जलाते रहते हैं ॥१८॥ यों तो मनुष्यों को सहस्रों प्रकार की चिन्ताऐं इस सांसारिक जीवन में रहा करती हैं किन्तु उन सब में चार चिन्ताएँ छुरे की धार के समान अति दुःख-दायिनी होती हैं, वे ये हैं—नीच पुरुष के द्वारा अपमान का होना—भार्या का भूखा रहना—पत्नी का अपने विषय में विरक्त रहना और सहज उपरोध का होना ॥ १९ ॥ पुत्र का वंश गत होना—अर्थोपार्जन करने वाली विद्या का अपने पास रहना—रोगों का न होना—सज्जन पुरुषों की सङ्गति का रहना—भार्या का प्यार और अपने वश में रहना ये पाँच कारण ऐसे हैं जो दुःख के मूल का उद्धरण करने वाले होते हैं ॥ २० ॥ कुरङ्ग (हरिण)—मातङ्ग (हाथी)—पतङ्ग—भृङ्ग (भौंरा) और मीन (मछली) ये पाँच पाँचों से ही हत होते हैं । हरिण श्रवणेन्द्रिय के अधीन होकर वाद्य सुनने में ऐसा खो-सा जाता है कि शिकारी उसे मार देता है—मातङ्ग मदोन्मत्तता से—पतङ्ग दीपक की लौ पर प्रेम करने से—भृङ्ग पुष्पपराग के आस्वादन से और मीन रसास्वादन से मृत्यु का ग्रास होता है । इन सब में एक-एक इन्द्रिय का ही आकर्षण मौत के मुँह में डाल दिया करता है तो जो मानव अपनी सभी इन्द्रियों के अर्थात् पाँचों के अधीन होता है वह क्यों नहीं नाश के योग्य है अर्थात् अवश्य ही होना चाहिए ॥ २१ ॥

अधीरः कर्कशः स्तब्धः कुचैलः स्वयमागतः ।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥२२
आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः ॥२३

पर्वतारोहणे तोये गोकुले दुष्टनिग्रहे ।
पतितस्य समुत्थाने शस्ता ह्येते गुणाः स्मृता. ।।२४
अभ्रच्छाया खले प्रीति. परनारीषु सङ्गति. ।
पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च ।।२५
अस्थिर जीवित लोके ह्यस्थिर धनयौवनम् ।
अस्थिर पुत्रदाराद्य धर्म कीर्त्तियशः स्थिरम् ।।२६
शत जीवितमत्यल्प रात्रिस्तद्र्द्ध हारिणी ।
व्याधिशोकजरायासैरर्द्ध तदपि निष्फलम् ।।२७
आयुर्वर्षशत नृणा परिमित रात्रौ तदर्द्ध हृतं
तस्यार्द्ध स्थितकिञ्चिदर्द्धमधिक वालस्य काले हृतम् ।
किञ्चिद्वन्धुवियोगदुःखमरणैर्भू पालसेवागत
शेष वारितरङ्गगर्भचपल मानेन कि मानिनाम् ।।२८

जो विप्र धैर्य हीन—कर्कश (कठोर)—स्तब्ध—बुरे तथा मलिन वस्त्रों वाला और अपने आप ही बिना आह्वान के आया हुआ हो—ये पाँच प्रकार के ब्राह्मण चाहे बृहस्पति के समान ही विद्वान् क्यो न हो कभी पूजा के योग्य नही हुआ करते हैं ।। २२ ।। आयु—कर्म—चरित्र—विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें देहधारी के जन्म के साथ ही निश्चित हो जाया करती हैं ।। २३ ।। पर्वत के आरोहण मे—जल मे—गायो के कुल मे और दुष्ट पुरुषो के विग्रह मे पडे हुए मानव या प्राणी के समुत्थान करने मे जो प्रयत्न किया करते हैं उनके गुण बहुत ही प्रशसा माने गये है ।। २४ ।। मेघो की छाया—खल पुरुष मे प्रीति करना—पराई नारी के साथ सङ्गति—यौवन और धन का होना— ये पाँच भाव स्थिर नही होते हैं ।। २५ ।। इस लोक मे जीवन का रहना अस्थिर है और धन तथा यौवन भी स्थिर नही रहने वाला होता है । पुत्र एव दारा आदि का सुख भी अस्थिर होता है । केवल इस लोक मे किया हुआ धर्म—कीर्त्ति और यश ही स्थिर होता है ।। २६ ।। सौ वर्ष की मानव की परमायु बताई जाती है किन्तु वह भी विचार किया जावे तो बहुत ही अल्प होती है क्योंकि उस आयु का आधा भाग तो रात्रियों मे केवल शयन करने में ही नष्ट

हो जाया करता है । बची हुई आधी आयु मे व्याधि–शोक–वार्धक्य के आयास हुआ करते हैं । इन सब के होने के कारण वह भी फल रहित हो जाया करती है ॥२७॥ मानवो की परिमित सौ वर्ष की उम्र मे आधी रात्रियो मे समाप्त हो जाती है । उस शेष आधी का आधा भाग बाल्यकाल मे अज्ञानावस्था मे ही नष्ट हो जाया करता है । बचा हुआ चौथाई भाग रहा उसमे बन्धुवियोग का दुख—राजा की सेवा आदि मे समय नष्ट हो जाता है अब बहुत ही थोड़ा सा भाग रह जाता है जो कि जल की तरङ्ग के गर्भ के समान चञ्चल होता है । इस मे भी मानी लोग मान जो किया करते हैं वह निष्फल ही होता है । अर्थात् इस बहुत ही स्वल्प जीवन मे मान करने से क्या लाभ है ॥२८॥

अहोरात्रमयो लोके जरारूपेण सञ्चरेत् ।
मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवन पन्नगो यथा ॥२९
गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रत स्वपतो न चेत् ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम् ॥३०
अहितहितविचारशून्यबुद्धे श्रुतिभमये बहुभिर्वितर्कितस्य ।
उदरभरणमात्रतुष्टबुद्धे पुरुषपशो पशोश्च को विशेष: ॥३१॥
शौर्ये तपसि दाने च यस्य न प्रथित यश ।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव स: ॥३२
सञ्जीवित क्षणमपि प्रथित मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशो भिरभज्यमाने ।
तन्नामजीवितमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञा काकोऽपि
जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३३
किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन
मित्रेण किं भवतीति मदाङ्कितेन च ।
सिंहव्रतञ्चरत गच्छत मा विषाद काकोऽपि
जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३४
यो वात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे
दीने दया न कुरुते न च मित्रकार्ये ।

किं तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके
काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३५

इस लोक मे दिन और रात्रि के स्वरूप मे समय निकल कर जरा के रूप में मानव को लाकर डाल दिया करता है अर्थात् रात दिन व्यतीत होते-होते मनुष्य को बुढ़ापा आ जाता है और मृत्यु उपस्थित होकर सर्प के द्वारा पवन की भाँति प्राणियों को ग्रस लिया करता है ॥२९॥ यदि चलते–ठहरते, जागते–सोते हुए भी समस्त जीवों के हित के लिये कुछ भी नहीं किया जाता है तो फिर यों ही सम्पूर्ण जीवन का बिता देना एक पशु के ही समान हुआ करता है ॥३०॥ अपने हित और अहित के विचार से शून्य बुद्धि वाले और श्रुति के समय में बहुतों के द्वारा विसर्जित तथा केवल अपने ही उदर के भरण से तुष्ट बुद्धि वाले पुरुष का जो एवं पशु के ही समान होना है और पशु मे क्या अन्तर रहता है ? ॥३१॥ जिस पुरुष का शूरता—तपश्चर्या —दान—विद्या और अर्थ के लाभ करने मे ससार मे यश प्रथित नहीं हुआ है उसका जन्म तो केवल अपनी माता के यौवन की छटा को नाश करने के लिये होता है ॥३२॥ सत् जीवन एक क्षण का भी प्रथित होना है जोकि मानव अभग्नमान विज्ञान–विक्रम और यश के द्वारा जीवित रहा करते हैं । ज्ञाता पुरुष ऐसे ही जीवन को वास्तविक जीवित कहते हैं और यों तो एक कौआ भी बलि को खाकर बहुत समय तक जीवित रहा करता है । इसी की भाँति जीवन मे क्या लाभ है ॥३३॥ जो जीवन धन और मान से रहित होता है उससे क्या लाभ है और जो सर्वदा सशङ्कित रहने वाला हो ऐसे मित्र से भी क्या प्रयोजन है। हे मानव ! तू सिंह के समान व्रत में रत रह और कभी भी विषाद मत करे । कौए की तरह बलि खाकर जीवन चिरकाल तक रखना किसी भी काम का जीवन नहीं होता है ॥३४॥ जो मनुष्य अपने लिये—गुरु—भृत्य वर्ग—दीन–दुखिया पर दया नहीं करता है और न कभी मित्र के ही किसी कार्य मे आता है ऐसे मनुष्य के जीवन से इस मनुष्य लोक मे क्या फल है अर्थात् ऐसे मानव का जीवन सर्वथा निष्फल ही होता है । यों तो अधिक समय तक एक कौवा भी बलि खाकर अपना जीवन *किया करता है जिससे और किसी को लाभ नहीं आता है ॥३५॥*

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥३६
स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता ।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः ॥३७
स्वपुरो वै कापुरुष स्वपुरो मूषिकाञ्जलिः ।
असन्तुष्ट कापुरुष. स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥३८
अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथे जलम् ।
वेश्याराग· खले प्रीति पडैते बुद्बुदोपमाः ॥३९
वाचा विहितसार्थेन लोको न च सुखायते ।
जीवित मानमूल हि माने म्लाने कुत· सुखम् ॥४०
अबलस्य बल राजा बालस्य रुदित बलम् ।
बल मूर्खस्य मौनत्व तस्करस्यानृत बलम् ॥४१
यथा यथा हि पुरुष· शास्त्र समधिगच्छति ।
तथा तथाऽस्यमेधा स्याद्विज्ञानञ्चास्य रोचते ॥४२

जिसके त्रिवर्ग से शून्य दिवस आते हैं और यों ही चले जाया करते हैं वह मानव लुहार की धोंकनी की भाँति केवल श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं माना जाता है अर्थात् उसका जीवन निष्प्रयोजन ही होता है ॥३६॥ स्वाधीन वृत्ति वाले ही का जीवन सर्वदा सफल होता है। जो पराधीन वृत्ति वाला होता है और पराये अधीन कर्मों वाला होता है वह जीवित रहता हुआ भी मृत के ही समान होता है ॥३७॥ अपने पुर वाले कायर पुरुष होते है, अपने पुर वाली मूषिकाञ्जलि है। असन्तुष्ट कापुरुष थोड़े से ही सन्तोष प्राप्त कर लिया करता है ॥३८॥ मेघों की छाया—तृणों से अग्नि का बनाना—नीच पुरुषों की सेवा—मार्ग में जल—वेश्या का राग (स्नेह) और खल पुरुष में प्रीति—ये छै काम बुलबुले के ही तुल्य क्षण स्थायी हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ केवल वाणी से सार्थ, अर्थात् सहयोग से लोगों को सुख नहीं हुआ करता है। यह जीवन तो मान के मूल वाला होता है। जब वह मान ही म्लान हो जाता है तो फिर जीवन में सुख कैसे हो सकता है ॥४०॥ जो बलहीन कमजोर पुरुष होते हैं उनका बल

तो राजा ही होता है वे राजा के पास न्याय की पुकार किया करते हैं—बालको का जब वश नहीं चलता है तो उन्हें रो देना होता है यही उनका बल है—मूर्ख का बल मौन हो जाना है और तस्कर आदमी का बल मिथ्या भाषण एवं झूठा व्यवहार हुआ करता है ।।४१।। जैसे जैसे पुरुष को शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होना है वैसे-वैसे ही इसकी मेधा की वृद्धि होती है और इसकी विज्ञान की रुचि बढ़ती जाया करती है ।।४२।।

यथा यथा हि पुरुष कल्याणे कुरुते मतिम् ।
तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रिय ।।४३
लोभप्रमादविश्वासै पुरुषो नश्यति त्रिभिः ।
तस्माल्लोभो न कर्त्तव्य. प्रमादो नो न विश्वसेत् ।।४४
तावद्भयस्य भेतव्य यावद्भयमनागतम् ।
उत्पन्ने तु भये तीव्रे स्थातव्य वै ह्यभीतवत् ।।४५
ऋणशेषश्चाग्निशेष व्याधिशेष तथैव च ।
पुन. पुन प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेष न कारयेत् ।।४६
कृते प्रतिकृत कुर्य्याद्धिसिते प्रतिहिंसितम् ।
न तत्र दोष पश्यामि दुष्टे दोष समाचरेत् ।।४७
परोक्षे कार्य्यहन्तार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृश मित्र मायामयमरिन्तथा ।।४८
दुर्जनस्य हि सङ्गेन सुजनोऽपि विनश्यति ।
प्रसन्नमपि पानीय कर्दमै कलुषीकृतम् ।।४९

जैसे-जैसे मनुष्य कल्याण में अपनी बुद्धि किया करता है वैसे-वैसे ही वह सब जगह लोक का परम प्रिय होकर सम्बन्ध किया करता है ।।४३।। इस जगती तल में मनुष्य लोभ-प्रमाद और विश्वास—इन तीनों से नाश को प्राप्त होता है। इसलिए लोभ नहीं करना चाहिए—प्रमाद (लापरवाही) न करे और हर एक का विश्वास भी नहीं करना चाहिए ।। ४४ ।। भय से तभी तक डरना चाहिए। जब तक वह भय अपने से दूर रहता है और आता नहीं है। जब भय निकट आ ही जाता है और तीव्र रूप धारण कर लेता है तो फिर

एकदम निडर होकर उसके समक्ष में स्थित होकर उसकी प्रतिक्रिया करनी चाहिए ।।४५।। ऋण का बाकी रह जाना—रोग का कुछ अंश बच जाना और अग्नि का कुछ भी थोड़ा सा भाग रह जाना फिर बार-बार बढ़ कर उग्र रूप धारण कर लिया करता है। इसलिए इन तीन चीजों को तो बिल्कुल निःशेष ही करके रहना चाहिए ।।४६।। जो जैसा भी व्यवहार बुरा-भला करता है उसका जवाब भी वैसे ही व्यवहार से देना चाहिए। यदि कोई हिंसा पूर्ण व्यवहार करे तो उसके साथ प्रतिहिंसा ही करे—इसमें कोई भी दोष नहीं दिखाई देता है—दुष्ट पुरुष के साथ शाठ्य ही करना उचित होता है ।।४७।। जो समक्ष में तो परम प्रिय भाषण करने वाला हो और पीठ पीछे कार्य को नष्ट कर देने वाला रहा करता हो ऐसे माया से परिपूर्ण शत्रु की भाँति मित्र का त्याग ही कर देवे ।। ४८ ।। दुर्जन पुरुष के सङ्ग से सज्जन पुरुष भी विनष्ट हो जाया करते हैं जिस तरह स्वच्छ जल को भी कीचड़ से मैला कर दिया जाया करता है ।।४९।।

सर्वरभुङ्क्ते जन सो हि द्विजायार्थो हि यस्य वै ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्विज पूज्य. प्रयत्नत ।।५०
तद् भुज्यते यद् द्विजभुक्तशेष स बुद्धिमान्यो न करोति पापम् ।
तत्सौहृद यत्क्रियते परोक्षे दम्भैविना य क्रियते स धर्म ।।५१
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्म स नो यत्र न सत्यमस्ति नैतत्सत्य यच्छलेनानुविद्धम् ।।५२
ब्राह्मणोऽपि मनुष्याणामादित्यश्चैव तेजसाम् ।
शिरोऽपि सर्वगात्राणा व्रताना सत्यमुत्तमम् ।।५३
तन्मङ्गल यत्र मन. प्रसन्न तज्जीवन यत्र परस्य सेवा ।
तदर्जित यत्स्वजनेन भुक्त तद् गर्जित यत्समरे रिपूणाम् ।।५४
सा स्त्री या न मद कुर्यात्स सुखी तृष्णयोज्झित: ।
तन्मित्र यत्र विश्वास पुरुष स जितेन्द्रिय ।।५५
तत्र मुक्तादरस्नेहो विलुप्तं यत्र सौहृदम् ।
तदेव केवल श्लाघ्य यस्यात्मा क्रियते स्तुती ।।५६

जिसका धन द्विजों के लिये होता है अर्थात् जिस धनी के धन से विप्र लाभान्वित हुआ करते हैं वह ही भली भाँति भोग करने का सुख प्राप्त करता है। अतएव सभी प्रकार के प्रयत्नों से सर्वदा द्विज की पूजा करनी चाहिए।५०। जो द्विजों के उपभोग से शेष रहता है वही भोग की वस्तु हुआ करती है। बुद्धिमान् वही पुरुष है जो कभी पाप कर्म नहीं करता है—सौहृद वास्तव में वही है जो पीठ पीछे किया जावे और धर्म वही है जो बिना किसी दम्भ (कपट या दिखावा) के किया जाया करता है ॥ ५१ ॥ उसे सभा या समिति नहीं कहा जा सकता है जिसमें वृद्ध अर्थात् अनुभवशील पुरुष न हों—वृद्ध भी उन्हें नहीं कहना चाहिए जो न्याय सङ्गत धर्म की बातें नहीं कहते हैं। धर्म भी वही होता है जिसमें सत्यता विद्यमान है और सत्य वही है जो छल-कपट से अनुविद्ध न हो ॥५२॥ मनुष्यों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है—तेजों में सर्वाधिक सूर्यदेव हैं—शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों में शिर सर्वोत्तम अङ्ग होता है और व्रतों में सत्य का व्रत ही सबसे उत्तम व्रत है ॥५३॥ मङ्गल कार्य वही है जिसमें मानव का मन प्रसन्नता का अनुभव किया करता है। जीवन वही सार्थक एवं सफल होता है जिसमें दूसरों की सेवा का कार्य किया जावे। कमाई वही है जिसका उपभोग अपने मनुष्यों के द्वारा किया जावे और गर्जना करना वही सफल है जो संग्राम में शत्रुओं के समक्ष में की जाती है ॥ ५४ ॥ स्त्री वह ही सुख प्रदान करने वाली है जो कभी मद नहीं किया करती है। सच्चा सुखी वही मनुष्य होता है जिसे तृष्णा नहीं होती है। मित्र वही होता है जिसमें पूर्ण विश्वास किया जा सकता है और वास्तव में प्रशस्त पुरुष वह ही होता है जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत रक्खा है ॥ ५५ ॥ जिसमें सौहृद विलुप्त हो जाता है अर्थात् सौहार्द का भाव ही नहीं रहा करता है वहाँ स्नेह और आदर भी छूट जाता है। प्रशंसा के योग्य वही है जिसकी स्तुति आत्मा के द्वारा की जाया करती है ॥५६॥

नदीनामग्निहोत्राणां भारतस्य कुलस्य च।
मूलान्वेषो न कर्त्तव्यो मूलाद्दोषेण हीयते ॥५७

लवणजलान्ता नद्य स्त्रीभेदान्तश्च मैथुनम् ।
पैशुन्य जनवार्त्तान्ति वित्त दुखकृतान्तकम् ॥५८
राज्यश्रीर्ब्रह्मशापान्ता पापान्त ब्रह्मवर्चसम् ।
आचार घोपवासान्त कुलस्यान्त स्त्रिय प्रभो ॥५९
सर्वे क्षयान्ता निलया पतनान्ता समुच्छ्रिताः ।
सयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्त हि जीवितम् ॥६०
यदीच्छेत्पुनरागन्तु नातिदूरमनुव्रजेत् ।
उदकान्तान्निवर्त्तेत स्निग्धवर्णाच्च पादपात् ॥६१
अनायके न वस्तव्य न वा च वहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्य तथा च वालनायके ॥६२
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवनं ।
पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥६३

नहीं जाना चाहिए। जहाँ भी कोई जलाशय हो वहीं से पहुँचा कर वापिस लौट आना चाहिए अथवा स्निग्ध वर्ण वाले वृक्ष से वापिस लौट आवे ॥६१॥ जिस स्थल—ग्राम या नगर--देश में कोई नायक न हो वहाँ निवास नहीं करे और जहाँ बहुत से नायक हो वहाँ पर भी निवास नहीं करना चाहिए। स्त्री जहाँ की प्रमुख नायक हो वहाँ और बालक जिसका नायक हो वहाँ पर भी निवास करना उचित नहीं है ॥६२॥ स्त्री की रक्षा एवं पोषण बचपन में पिता किया करता है—यौवन की दशा में स्त्री का पालक एवं रक्षक पति होता है। वृद्धावस्था में स्त्री की सुरक्षा पुत्र किया करता है। स्त्रियों के जीवन में स्वतन्त्र रहकर अपने निर्वाह का कभी कोई अवसर ही नहीं होता है ॥६३।

त्यजेद्वन्ध्यामष्टमेऽब्दे नवमे तु मृतप्रजाम्।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यश्चाप्रियवादिनीम् ॥६४
अनर्थित्वान्मनुष्याणां भिया परिजनस्य च।
अर्थादपेतमर्य्यादास्त्रयस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥६५
अश्वं श्रान्तं गजं मत्तं गावः प्रथमसूतिका.।
अनूदके च मण्डूकान्प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ॥६६
अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः कामातुराणां न भयं लज्जा।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां लवणं न तेजः ॥६७
कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यवरस्य च।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च ॥६८
सुखं स्वपित्यनृणवान्व्याधिमुक्तश्च यो नरः।
सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः ॥६९
अम्भस. परिमाणेन उन्नतं कमलं भवेत्।
स्वस्वामिना बलवता भृत्यो भवति गर्वितः ॥७०

जो पत्नी वन्ध्या हो उसकी प्रतीक्षा सात वर्ष तक करे और यदि उसका ग्यारह स्थिर रहता है तो आठवें वर्ष में उसका त्याग कर दूसरी पत्नी लानी चाहिए। जिसके सन्तान उत्पन्न तो होती है वन्ध्या नहीं है किन्तु उत्पन्न होकर मर जाया करती हो उस पत्नी को नवम वर्ष में त्याग देवे। सन्तति भी हो

और जीवित भी रहे किन्तु केवल कन्या ही उत्पन्न होती हो उसका त्याग ग्यारहवें वर्ष में कर दूसरी पत्नी लावे और जो कभी भी प्रिय भाषण न कर सर्वदा अप्रिय बोलने वाली स्त्री हो तो उसका त्याग तुरन्त ही कर देना चाहिए ॥६४॥ स्त्रियों के पातिव्रत धर्म बने रहने के तीन कारण होते हैं जिससे वे अपने पतियों के साथ रहा करती हैं। एक तो यह कि उनको ऐसे पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त नहीं होता है कि उनसे वे रमणेच्छा की प्रार्थना करें—दूसरा यह कारण होता है कि परिजन के लोगों का भय उनके हृदय में रहा करता है कि कोई जान या देख लेगा तो अपयश हो जावगा। तीसरा यह है कि स्त्रियाँ अर्थ से अपेत मर्यादा वाली हुआ करती हैं अर्थात् धन से मर्यादा का त्याग कर देने वाली होती हैं अब धन उन्हें मिलता रहता है वे मर्यादा को किसी प्रकार से कायम बनाये रहा करती हैं। धर्म समझ कर पातिव्रत का पालन करने वाली तो विरल ही होती हैं ॥ ६५ ॥ थके हुए अश्व को—मदोन्मत्त हाथी को और पहिली बार ब्याई हुई गौ को तथा बिना जल के रहने वाले मण्डूकों को मनुष्य को दूर से ही परिवर्जित कर देना चाहिए ॥ ६६ ॥ जो अर्थ के आतुर होते हैं अर्थात् धन के लालची मनुष्य हैं उनका न तो कोई बन्धु होता है और न कोई मित्र ही हुआ करता है क्योंकि उनके लिए धन ही परम प्रिय वस्तु होती है। जो काम के वश भूत मनुष्य हैं उन्हे कोई भी भय और लोक-लज्जा नहीं हुआ करते हैं वे तो एकदम अन्धे से होकर कामवासना की पूर्ति करना ठीक समझते हैं। जो चिन्ता से आतुर होते हैं उनको कभी भी सुख और निद्रा नहीं हुआ करते हैं और भूख से पीड़ित पुरुषों को सदा और तेज नहीं रहता है ॥६७॥ जो बिचारा दरिद्र है उसे सुख की निद्रा कैसे हो सकती है ? दूसरे के द्वारा भेजे हुए दूत और पराई स्त्री में आसक्ति रखने वाले पुरुष तथा दूसरों के धन को हरण करने वाले पुरुष को भी नींद नहीं आया करती है ॥६८॥ जो ऋण से मुक्त होता है और व्याधियों से रहित होता है वह मनुष्य सुखपूर्वक निद्रा का आनन्द प्राप्त किया करता है। जो दाराओं की सन्तति से रहित होता है वह सावकाश होता हुआ सोया करता है ॥६९॥ जल के परिमाण से कमल उन्नत हो जाया करता है अर्थात् जल यदि बढ़ जाता है तो कमल भी उतना

ही बढ जाया करता है । अपने बलवान् स्वामी के द्वारा भृत्य गर्व से युक्त हुआ करता है ।।७०।।

स्थानस्थितस्य पद्मस्य मित्रौ वरुणभास्करौ ।
स्थानच्युतस्य तस्यैव क्लेशशोषणकारकौ ।।७१
पदे स्थितस्य मित्रा ये ते तस्य रिपुतां गताः ।
भानौ पद्मे जले प्रीतिः स्थलोद्धरणशोषणं ।।७२
स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिता. ।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः ।।७३
आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भाषितम् ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।।७४
वृथा वृष्टिः समुद्रस्य तृप्तस्य भोजन वृथा ।
वृथा दान समृद्धस्य नीचस्य सुकृत यथा ।।७५
दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थितः ।
हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरत. ।।७६
मुखभङ्गः स्वरो दीनो गात्रस्वेदो महद्भयम् ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचत. ।।७७

अपनी उत्पत्ति के स्थान पर स्थित रहने वाले कमल के वरुण और भास्कर दोनों ही मित्र होते हैं अर्थात् उसके विकास करने वाले हुआ करते हैं । जब कमल अपने स्थान से च्युत हो जाता है तो ये वरुण–भास्कर दोनों ही उसके क्लेश एवं शोषण करने वाले हो जाया करते हैं ।।७१।। पद पर स्थित के जो मित्र हुआ करते हैं वे ही पदच्युत होने पर शत्रु का स्वरूप धारण कर लिया करते हैं । भानु की जल मे रहने पर तो कमल में प्रीति होती है और स्थल पर उसका उद्धरण होते ही वही भानु उस कमल को शोषण करने वाला हो जाया करता है ।। ७२ ।। जो अपने समुचित स्थान पर स्थित रहा करते हैं वे पूजा के योग्य होते हैं और जो पद पर अवस्थित रहते हैं वे भी पूजे जाया करते हैं । स्थान से भ्रष्ट हो जाने पर केश—दाँत और नख कभी भी पूजित एवं ...ब समादृत नहीं हुआ करते हैं ।। ७३ ।। आचार मानव के कुल को प्रकट

कर दिया करता कि यह कैसे कुल में समुत्पन्न हुआ है। भाषित शरीर को प्रकट करता अर्थात् भाषण से उसके शरीर के ज्ञान का परिचय हो जाता है। सम्भ्रम स्नेह को व्यक्त कर देता है और शरीर से उसके भोजन का ज्ञान हो जाता है कि कैसा भोजन इसे मिलता है क्योंकि शारीरिक पुष्टि भोजन से ही हुआ करती है ॥ ७४ ॥ समुद्री भाग में वृष्टि का होना निष्फल होता है और पहिले ही से तृप्त है उसको भोजन खिलाना व्यर्थ है। समृद्धि से सम्पन्न पुरुष को दान देना बेकार है जैसे नीच का सुकृत व्यर्थ होता है ॥ ७५ ॥ चाहे कोई कितने ही दूरस्थ देश में क्यों न हो यदि हृदय में उसके लिये स्थान है तो वह समीप में ही रहा करता है। जो हृदय से निकल जाता है तो वह चाहे समीप में ही क्यों न स्थित हो वह दूर ही रहता है ॥ ७६ ॥ मुख का भङ्ग करना—दीनता से भरा हुआ स्वर—शरीर में पसीने का होना और बड़ा भारी भय का रहना—ये सब बातें याचना करने वाले पुरुष को होती हैं। ये ही मरणासन्न व्यक्ति के भी लक्षण होते हैं। तात्पर्य यह है कि याचना का काम मृत्यु के समान ही होता है ॥ ७७ ॥

कुब्जस्य कीटघातस्य वातान्निष्कासितस्य च ।
शिखरे वसनस्तस्य वर जन्म न याचितम् ॥७८
जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनतां गतः ।
कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम् ॥७९
माता शत्रु पिता वैरी बाला येन न पाठिता ।
सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये बका यथा ॥८०
विद्या नाम कुरूपरूपमधिक विद्यातिगुप्त धन
विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणा गुरु ।
विद्या बन्धुजनार्त्तिनाशनकरी विद्या पर दैवत
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः ॥८१
गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्य लग्नश्चैव तु दृश्यते ।
अशेषं हरणीयस्य विद्या न ह्रियते परैः ॥८२
शौनकाय नीतिसार विष्णु सर्वधनानि च ।

कथयामास वै पूर्वं तत्र शुश्राव शङ्कर ॥
शङ्कराच्च श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च ॥८३

कुब्डा—कीटपात—वात से निष्कासित और शिखर पर निवास करने वाले का जन्म याचना करने वाले के जन्म से कहीं अच्छा होता है। याचना वृत्ति बहुत ही गर्हित होती है ॥७८॥ अखिल ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान् विष्णु को भी जब याचना करने के कर्म में प्रवृत्त हुए तो उनको भी बौना बनना पड़ा था। भगवान् से अधिक अन्य कौन हो सकता है। जो कोई भी हो जब याचना करता है तो सबको ही छोटापन धारण करना ही पड़ता है॥ ७९ ॥ वह माता शत्रु है और वह पिता बैरी है जिसने अपने बालक को लिखा—पढ़ाकर सुशिक्षित नहीं बनाया है। जो अशिक्षित होते हैं वे सभा के मध्य में हंसों में बगुलों की भांति शोभा नहीं दिया करते हैं ॥८०॥ विद्या कुरूप पुरुष का भी एक विशेष रूप सौन्दर्य होती है। विद्या अत्यन्त ही गुप्त धन है। विद्या मानव को साधु बना देने वाली—समस्तजनों के प्रिय के करने वाली और विद्या गुरुओं की भी गुरु होती है। विद्या एक बन्धुजन के तुल्य होती है। विद्या आर्त्ति (पीड़ा) के नाश करने वाली होती है। विद्या परम देवता है। विद्या की पूजा राजाओं के यहां होती है अर्थात् विद्या से युक्त विद्वान् मनुष्य का समादर राजा लोग भी किया करते हैं। जो ऐसे अनेक अद्भुत चमत्कारों से परिपूर्ण विद्या से हीन होता है वह मनुष्य पशु के ही समान होता है ॥ ८१ ॥ घर के अन्दर छिपा कर रक्खा हुआ भी धन दिखलाई दे जाता है। घर का सब धन हरण करने के योग्य होता है अर्थात् लोग ले लिया करते हैं किन्तु विद्या रूपी धन ही ऐसा धन है जिसको दूसरे लोग नहीं ले सकते हैं॥ ८२ ॥ भगवान् विष्णु ने शौनक के लिए यह नीति का सार और समस्त व्रत कहे थे। वहां पर शङ्कर ने इनका श्रवण किया था। भगवान शङ्कर से वेद व्यास महर्षि ने सुना था और व्यास से हम लोगों ने श्रवण किया था ॥८३॥

७२—तिथियों के व्रत

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि हरिर्यैः सर्वदो भवेत्।
सर्वमासर्क्षतिथिषु चारेद् हरिरर्चित ॥१ ~

एकभक्तेन नक्तेन उपवासफलादिना ।
ददाति धनधान्यादि पुत्रराज्यजयाशया ॥२
वैश्वानरः प्रतिपदि कुबेरः पूजितोऽर्थदः ।
उपोष्य ब्रह्मा प्रतिपद्यर्चितः श्रीस्तथाश्विनीम् ॥३
द्वितीयाया यमो लक्ष्मीर्नारायण इहार्थदः ।
तृतीयायां त्रिदेवाश्च गौरीविघ्नेशशङ्करान् ॥४
चतुर्थ्यां च चतुर्व्यूह पञ्चम्यामर्चितो हरि ।
कार्त्तिकेयो रवि षष्ठ्या सप्तम्या भास्करोऽर्थद ॥५
दुर्गाष्टम्या नवम्याञ्च मातरोऽथ दिशोऽर्थदा ।
दशम्याञ्च यमश्चन्द्र एकादश्यामृषीन्यजेत् ॥६
द्वादश्याञ्च हरि काम त्रयोदश्या महेश्वर ।
चतुर्दश्या पञ्चदश्या ब्रह्मा च पितरोऽर्थदा ॥७
अमावस्या पूजनीयाश्च वारा वै भास्करादय ।
नक्षत्राणि च योगाश्च पूजिता सर्वदायका ॥८

ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! अब मैं उन व्रतों के विषय में तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ जिन व्रतों के द्वारा भगवान् हरि समस्त पदार्थ प्रदान करने वाले हो जाते हैं अर्थात् सभी कुछ दे दिया करते हैं । भगवान् हरि सभी मास-नक्षत्र-तिथि और वारों से समन्वित होते हैं ॥ १ ॥ एक ही समय में रात्रि में उपवास फल आदि के द्वारा पुत्र-राज्य और जय की आशा से धन-धान्यादि देता है उसको अभीष्ट की सिद्धि होती है ॥ २ ॥ वैश्वानर और कुबेर प्रतिपदा के दिन पूजित होने पर अर्थ के दाता होते हैं । उपवास करके प्रतिपदा में ब्रह्मा-श्री और अश्विनी को अर्चित करे ॥३॥ द्वितीया (दोज) तिथि में यम-लक्ष्मी और नारायण की अर्चा करे तो ये अर्थ प्रदान करते हैं । तृतीया तिथि में गौरी-विघ्नेश्वर गणपति और शङ्कर इन तीनों देवों की अर्चा करे ॥ ४ ॥ चतुर्थी तिथि में चतुर्व्यूह का यजन करे और पञ्चमी तिथि में भगवान् हरि का समर्चन करना चाहिए । स्वामी कार्त्तिकेय और भास्कर देव का पूजन षष्ठी तिथि में करे । सप्तमी तिथि में सूर्यदेव की पूजा करने से यह अर्थ प्रदान किया

करते हैं ॥५॥ दुर्गाष्टमी और नवमी तिथि में माताओं का और दिशाओं का पूजन करने से ये अर्थ प्रदान करने वाली होती हैं। दशमी तिथि में यम तथा चन्द्रमा का एवं एकादशी तिथि में ऋषियों का यजन करना चाहिए ॥६॥ द्वादशी तिथि के दिन भगवान् हरि यजन करने से कामनाओं की पूर्ति किया करते हैं और त्रयोदशी (तेरस) तिथि में भगवान् महेश्वर का पूजन करना चाहिए। चतुर्दशी और पञ्चदशी तिथियों में ब्रह्मा का तथा पितरों का पूजन करने से ये अर्थ का प्रदान करते हैं ॥७॥ अमावस्या तिथि में वार और भास्कर आदि—नक्षत्र तथा योग पूजित होकर सब कुछ प्रदान करने वाले हैं ॥८॥

७३—अनङ्गत्रयोदशी व्रत

मार्गशीर्षे सिते पक्षे व्यासानङ्गत्रयोदशी ।
मल्लिकाज दन्तकाष्ठं धत्तूरैः पूजयेच्छिवम् ॥१
अनङ्गायेति नैवेद्यं मधु प्राश्याथ पौषके ।
योगेश्वरं पूजयेच्च विल्वपत्रैः कदम्बजम् ॥
दन्तकाष्ठञ्चन्दनादि नैवेद्यं शष्कुली ददेत् ॥२
माघे नटेश्वरायाच्यं कुन्दमौक्तिकमालया ।
प्लक्षेण दन्तकाष्ठञ्च नैवेद्यं पूरिका मुने ॥३
वीरेश्वरं फाल्गुने तु पूजयेत्तु मरूवकैः ।
शर्कराशाकमण्डाश्च चूतजं दन्तधावनम् ॥४
चैत्रे यजेत्सुरूपाय कर्पूरं प्राशयेद्दति ।
दन्तधावनं वटजं नैवेद्यं शष्कुली ददेत् ॥५
पूजा च मोदकैः शम्भोर्वैशाखेऽशोकपुष्पकैः ।
महारूपाय नैवेद्यं गुड़भक्तं ह्युदुम्बरम् ॥६
दन्तकाष्ठं प्राशयेच्च ददेज्जातीफलं तथा ।
प्रद्युम्नं पूजयेज्ज्येष्ठे चम्पकैर्विल्वजं ददेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में अनङ्गत्रयोदशी के दिन मल्लिका के पुष्प—दन्त काष्ठ और धतूरा के पुष्पों से

भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए ॥१॥ 'अनङ्गाय' इत्यादि मन्त्र के द्वारा नैवेद्यों से मधु का प्राशन करावे । इसके अनन्तर पौष मास में बिल्व पत्रों के द्वारा कदम्बज में पूजन करे और दन्त काष्ठ एवं चन्दन आदि—नैवेद्य और शष्कुली (पूड़ी) समर्पित करे ॥ २ ॥ माघ के महीना में मरेश्वर के लिये कुन्द तथा मौक्तिक की माला से अभ्यर्चना करे । हे मुने ! ध्वक्ष में दन्तकाष्ठ—नैवेद्य एवं पूरिका समर्पित करे ॥३॥ फाल्गुन मास में वीरेश्वर का मरुवक के पुष्पों से अर्चना करे और शर्करा-शाक तथा मण्ड एवं आम्र की दन्त धावन समर्पित करना चाहिए ॥ ४ ॥ चैत्र मास में सुरूप के लिये यजन करे और कर्पूर का प्राशन करावे । वट के वृक्ष की दन्तधावन—नैवेद्य तथा शष्कुली समर्पित करना चाहिए ॥५॥ वैशाख के महीना में भगवान् शम्भु का अर्चन मोदकों (लड्डुओं) के द्वारा तथा अशोक के पुष्पों से करे । महारूप के लिये नैवेद्य—गुड़—भक्त और गूलर की दन्त धावन का प्राशन करावे और जाती फल समर्पित करना चाहिए । ज्येष्ठ मास में प्रद्युम्न की पूजा करे तथा चम्पक के पुष्पों से अर्चना करे और बिल्व वृक्ष की दन्त धावन तथा लवङ्गाशन निवेदित करे ॥६।७॥

लवङ्गाशनमाषाढे उमाभर्तेतिनाशन. ।
अगुरु दन्तकाष्ठञ्च तमपामार्गकंयजेत् ॥८
श्रावणे करवीरञ्च शम्भवे शूलपाणये ।
गन्धाशनं घृतार्घ्यञ्च करवीरञ्चशोधनम् ॥६
सद्योजातं भाद्रपदे बकुलैः पूपकैर्यजेत् ।
गन्धपर्णो मदनजमाश्विने च सुगन्धिपम् ॥१०
चम्पकैः स्वर्णधाम्यादौ यजेन्मोदकसम्पद. ।
खादिर दन्तकाष्ठञ्च कार्तिके रुद्रमर्चयेत् ॥११
यदर्थ्या दन्तकाष्ठञ्च दशमो दशमाशनः ।
क्षीरशाकप्रदः पद्मै रुद्राग्ने निरमर्चयेत् ॥१२
रतिपुष्पमनङ्गञ्च स्वर्णमण्डलसंस्थितम् ।
गन्धाद्यैदेवमाहूय तिलशेषादि होमयेत् ॥१३

जागरं गीतवादित्रं प्रभातेऽभ्यर्च्य वेदयेत् ।
द्विजाय शय्या पात्रञ्च छत्र वस्त्रमुपानहौ ॥१४
गान्द्विजं भोजयेद्भक्त्या कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
एतदुद्यापनं सर्वं व्रतेषु ध्येयमीदृशम् ।
फलञ्च श्रीयुतारोग्यसौभाग्यसर्वभाग्भवेत् ॥१५

आषाढ़ मास में 'उमाभद्र'—इसके द्वारा शिव का अर्चन करे और अगुरु अपामार्ग दन्त काष्ठ से यजन करना चाहिए ॥८॥ श्रावण मास में शूल पाणि शम्भु के लिये करवीर—गन्धासन—घृत आदि के द्वारा यजन करे तथा करवीर की दातुन समर्पित करे ॥९॥ भाद्रपद मास में सद्योजात का बकुल के पुष्प और धूप (गुग्ग) से यजन करना चाहिए। यह गन्धर्वीय है। मदनज सुराधिप का अर्चन आश्विन में करे। स्वर्ण वायु आदि में चम्पक के पुष्पों के द्वारा मोदकों का सम्प्रदान करते हुए पूजन करे तथा खदिर की दातुन समर्पित करे। कार्तिक मास में रुद्र का अर्चन करे ॥१०।११॥ बदरी वृक्ष की दन्त काष्ठ देवे। दशमाशन दर्दीन और क्षीर तथा शाक का प्रदान करने वाले को वर्ष के अन्त में पद्मों के द्वारा शिव का पूजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ स्वर्ण मण्डल में संस्थित रति से युक्त अनङ्ग का गन्धासन आदि के द्वारा यजन करे और दश सहस्र तिल तथा व्रीहि आदि की सामग्री से होम करना चाहिए ॥१३॥ रात्रि में जागरण और गीत वादित्र करके प्रातःकाल में अभ्यर्चना करना चाहिए। ब्राह्मण के लिये शय्या—पात्र—छत्र—वस्त्र और जूते आदि समर्पित करे तथा गो-द्विज का भोजन करावे तो मनुष्य सफलता की प्राप्ति किया करता है। समस्त व्रतों का यह इस प्रकार का उद्यापन होता है। इसका फल—श्री से युक्त आरोग्य-सौभाग्य और सम्पूर्ण पदार्थों का लाभ होता है ॥१४।१५॥

७४—अखण्डद्वादशी, अगस्त्यार्घ्य और रम्भा तृतीया

व्रतं कैवल्यदमनमखण्डद्वादशी वदे ।
मार्गशीर्षे सिते पक्षे गव्याशी समुपोषितः ॥१

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं दद्यान्मासचतुष्टयम् ।
पञ्चव्रीहियुतं पात्रं विप्रायेदमुदाहरत् ॥२
सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मयाऽखण्डव्रतं कृतम् ।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥३
यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम ।
तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्त्युत ॥४
सक्तुपात्राणि चैत्रादौ श्रावणादौ घृतान्वितान् ।
व्रतकृद् व्रतपूर्णन्तु स्त्रीपुत्रस्वर्गभाग्भवेत् ॥५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं कैवल्य के शमन करने वाला अखण्ड-द्वादशी का व्रत बतलाता हूँ—मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में गव्य का प्राशन करके समुपोषित रहे ॥१॥ द्वादशी के दिन में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। चार मास तक विप्र को पाँच व्रीहियों से युक्त पात्र देवे और यह कहे कि सात जन्मों में जो मैंने अखण्ड व्रत किया है हे भगवन्! वह आपके प्रसाद से यहाँ अब अखण्ड हो जावे ॥२।३॥ जिस तरह से यह समस्त जगत् अखण्ड है और पुरुषों में उत्तम आप भी अखण्ड हैं वैसे ही ये सम्पूर्ण व्रत भी अखण्ड मेरे होते हैं ॥४॥ चैत्र आदि मासों में सत्तुओं से पूर्ण पात्र और श्रावण आदि महीनों में घृत से युक्त अन्न के करने वाले को देने चाहिए तभी व्रत पूर्ण होता है और वह फिर स्त्री-पुत्र और स्वर्ग के भोग प्राप्त करने वाला हो जाता है ॥५॥

अगस्त्यार्घ्यव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
अप्राप्ते भास्करे कन्यां सति भागे त्रिभिर्दिनैः ॥६
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय मूर्तिं सम्पूज्य वै मुने ।
काशपुष्पमयीं कुम्भे प्रदोषे कृतजागरः ॥७
दध्यक्षताद्यैः संपूज्य उपोष्य प्रातरुत्सवम् ।
पञ्चरत्नसमायुक्तं हेमरौप्यसमन्वितम् ॥८
सप्तधान्ययुतं पात्रं दधिचन्दनचर्चितम् ।
अगस्त्य नमस्तेति मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत् ॥९

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयो पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥१०
शूद्रस्त्र्यादिरनेनैव त्यजेद्धान्य फल रसम् ।
दद्याद् द्विजातये कुम्भ सहिरण्य सदक्षिणम् ॥
भोजयेच्च द्विजान्सप्त वर्षान्कृत्वा तु सर्वभाक् ॥११

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम अगस्त्यार्घ्य व्रत के विषय मे बतलाते हैं। यह व्रत भुक्ति अर्थात् सम्पूर्ण सासारिक सुखो का उपभोग और मुक्ति अर्थात् बारम्बार ससार मे जन्म और मरण के आवागमन से छुटकारा पाना—ये दोनो ही प्रदान किया करता है। कन्या पर भास्कर के अप्राप्त होने पर तीन दिन तक अगस्त्य के लिये अर्घ्य देना चाहिए। हे मुने ! प्रदोष कृत जागरण वाला होकर कुम्भ म काश पुष्पमयी मूर्त्ति का भली भाँति पूजन करके अर्थात् दधि–अक्षत आदि से पूजन कर और फल पुष्पो से उपोषित होकर पाच वर्णों से समायुक्त–हेम एव रौप्य से समन्वित–सात धान्यो से युक्त दधि एव चन्दन से चर्चित पात्र को "अगस्त्य खलमान"—इत्यादि मन्त्र मे अर्घ्य देवे ॥६।७।८।९॥ हे काश के पुष्प के प्रतीकाश ! हे अग्नि और मारुत से जन्म ग्रहण करने वाले ! मित्रावरुण के पुत्र ! हे कुम्भयोने ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१०॥ इसके द्वारा शूद्र–स्त्री आदि का त्याग कर देना चाहिए। द्विजाति के लिये धान्य—फल–रस–दक्षिणा के सहित कुम्भ और वे हिरण्य के सहित भी हो, प्रदान करना चाहिए। ब्राह्मणो को भोजन करावे। इस प्रकार से सात वर्ष तक करने पर समस्त पदार्थों की प्राप्ति करने वाला मनुष्य होता है ॥११॥

रम्भातृतीया वक्ष्ये च सौभाग्यश्रीसुतादिदाम् ।
मार्गशीर्षे सिते पक्षे तृतीयायामुपोषित ॥१२
गौरी यजेद्बिल्वपत्रै कुशोदककरस्तत ।
चाद्म्बदो गिरिसुता पौषे मरुत्वकैर्यजेत् ॥१३
कर्पूराद कुशरदा मल्लिकादन्तकाष्ठकृत् ।
माघ सुभद्रा कह्लारैर्घृताशा मण्डकप्रद ॥१४

जातीपुष्पं पद्मजाञ्च पञ्चगव्याशनो यजेत् ॥
घृतोदनञ्च वर्षान्ते सपत्न यान्द्विजान्यजेत् ॥२१
उमामहेश्वर पूज्य प्रदद्याच्च गुड़ादिकम् ।
वस्त्रच्छत्रसुवर्णाद्यं रात्रौ च कृतजागरः ।
गीतावाद्यैर्ददेत्प्रातर्गवाद्यं सर्वमाप्नुयात् ॥२२

ज्येष्ठ मास में नारायणी देवी का शत पत्रों के द्वारा खाँड का दान करते हुए लवङ्ग का प्राशन करके यजन करना चाहिए। आषाढ मास मे माधवी देवी का यजन करे ॥१७॥ तिलों का प्राशन करें—क्षीरान्न वटक का प्रदान करे और बिल्व पत्रों से पूजन करे—गूलर की दन्त धावन करे। श्रावण में तगरी से श्री का यजन करना चाहिए—मल्लिका की दन्त धावन-क्षीर का दान करे और उत्तमा का पूजन करे। भाद्रपद मास में पद्म पुष्पों के द्वारा यजन करे। शृङ्गद का प्राशन करे और गुड आदि का दान करना चाहिए ॥१८।१९॥ आश्विन मास मे राजपुत्री का जवा के पुष्पों से यजन करे—रात्रि में जीरकों का प्राशन करे। नैवेद्य कृशर मे कार्तिक में जाती के पुष्पों के द्वारा पद्मजा का यजन करे—पञ्चगव्य का प्राशन करे। वर्ष के अन्त में घृतोदन का सपत्नीक द्विजो को भोजन करावे। उमा महेश्वर का पूजन कर गुडादि का दान करे तथा वस्त्र-छत्र और सुवर्णादि से रात्रि मे जागरण करे—गीत वाद्यादि करे और प्रातःकाल के समय में गो आदि का दान करे तो समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है।२०।२१।२२।

७५—चातुर्मास्य, मासोपवास व्रत

चातुर्मास्यव्रतान्यूचे एकादश्यां समाचरेत् ।
आषाढ्यां पौर्णमास्यां वा सर्वेण हरिमर्च्य च ॥१
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥२
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियाम्यहम् ।
तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥३
एवमभ्यर्च्य गृह्णीयाद्व्रताचनजपादिकम् ।
सर्वाघञ्च क्षयं याति चिकीर्षेद्यो हरेर्व्रतम् ॥४

स्नात्वा यश्चतुरो मासानेकभक्तेन पूजयेत् ।
विष्णुं स याति विष्णोर्वै लोकं मलविवर्जितम् ॥५
मद्यमाससुरात्यागी वेदविद्धरिपूजनात् ।
तैलवर्जी विष्णुलोकं विष्णुभावकृच्छ्रपादकृत् ॥६
एकरात्रोपवासाच्च देवो वैमानिको भवेत् ।
श्वेतद्वीपं त्रिरात्रात्तु व्रजेत्पष्ठान्नकृन्नर ॥७
चान्द्रायणाद्धरेर्धाम लभेन्मुक्तिमयाचिताम् ।
प्राजापत्ये विष्णुलोकं पराकव्रतकृद्धरिम् ॥८
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिघृताशन ।
गोमूत्रयावकाहार पञ्चगव्यकृताशन ॥
शाकमूलफलत्यागी रसवर्जी च विष्णुभाक् ॥९

श्री ब्रह्माजी ने कहा - अब मैं चातुर्मास्य व्रतों को बतलाता हूँ। इसको एकादशी में अथवा आषाढ़ी पूर्णिमा में समस्त उपचारों के द्वारा समर्चन कर करना चाहिए। भगवान् हरि से प्रार्थना करे कि हे देव! मैंने यह व्रत आपके समक्ष में ग्रहण किया है। हे केशव! आपके प्रसन्न होने पर मेरा यह व्रत निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त हो जावे ॥१।२॥ हे देव! इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि यह व्रत अपूर्ण रहे और मैं मर जाऊँ तो हे जनार्दन! आपके प्रसाद से यह व्रत सम्पूर्ण हो जावे ॥३॥ इस प्रकार से प्रार्थना करते हुए भगवान् का अभ्यर्चन कर व्रत और जप आदि को ग्रहण करना चाहिए। जो इस विधि से हरि के व्रत को करने की इच्छा करे तो समस्त अर्थों का क्षय हो जाता है ॥ ४ ॥ जो चार मास तक स्नान करके एक भक्त पूजन करे वह विष्णु की सान्निध्य एवं विष्णुलोक की प्राप्ति कर लेता है मल से रहित होता है ॥५॥ वेदों का वेत्ता पुरुष मद्य-मांस और सुरा का त्याग करने वाला हरि का पूजन करे-तैल का त्याग कर देवे और विष्णु के पूजन में कृच्छ्र पाद करे तो वह विष्णु-लोक में विष्णु की प्राप्ति किया करता है ॥६॥ एक रात्रि के उपवास से देव-के विमान में गमन करने वाला होता है। तीन रात्रि के उपवास से षष्ठान्न कृत् मानव श्वेत द्वीप को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ चान्द्रायण व्रत से हरि के धाम को

प्राप्ति किया करता है और अप्रार्थित मुक्ति को प्राप्त करता है। प्राजापत्य व्रत से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। पराक व्रत करने वाला हरि को प्राप्त करता है ॥८॥ सक्तु (सतुआ) और यावक का भिक्षाशन करने वाला—पय, दधि तथा घृत का अशन करने वाला—गोमूत्र और यावक का आहार करने वाला तथा पञ्चगव्य का अशन करने वाला—शाक—मूल और फलों का त्याग करने वाला और रसों को वर्जित रखने वाला व्रती विष्णु के सान्निध्य को प्राप्त किया करता है ॥ ९ ॥

व्रतं मासोपवासाख्यं सर्वोत्कृष्टं वदामि ते।
वानप्रस्थो यतिर्नारी कुर्य्यान्मासोपवासकम् ॥१०
आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥११
अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव।
अर्चये त्वामनश्नंस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु ॥१२
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लयोरहम्।
म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥१३
हरिं यजेत्त्रिषवणस्नायी गन्धादिभिर्व्रती।
गात्राभ्यङ्गं गन्धलेपं देवतायतने त्यजेत् ॥१४
द्वादश्यामथ संपूज्य प्रदद्याद् द्विजभोजनम्।
ततश्च पारणं कुर्य्याद्धरेर्मासोपवासकृत् ॥१५
दुग्धादिप्राशनं कुर्य्याद् व्रतस्थो मूर्च्छितोऽन्तरा।
दुग्धाद्यैर्न व्रतं नश्येद्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१६

श्री ब्रह्माजी बोले—अब मैं समस्त व्रतों से भी परम उत्कृष्ट व्रत जिसको मासोपवास नाम से कहा जाता है तुम्हें बतलाता हूँ। इस मासोपवास नामक व्रत को वानप्रस्थ—यति और नारी को करना चाहिए ॥१०॥ आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपोषित होकर इस व्रत को तीस दिन के लिये ग्रहण करना चाहिए ॥११॥ भगवान् से व्रतारम्भ करने के पूर्व प्रार्थना करे—हे भगवन्! मैं आज से लेकर जब तक आपका उत्थापन हो तब तक के लिये

इस व्रत को ग्रहण करता हूँ । बिना खाये हुए तीस दिन तक मैं आपकी अर्चना करूँगा ॥१२॥ हे विष्णो ! कार्त्तिक और आश्विन मासों के मध्य में शुक्ल पक्षों की द्वादशियों के अन्तराल में यदि मेरी मृत्यु हो जावे तो मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरे इस व्रत का उस विघ्न से भङ्ग नहीं होना चाहिए ॥१३॥ त्रिकाल में सन्ध्या और स्नान करने वाले व्रती को गन्धाक्षत के द्वारा भगवान् श्री हरि का यजन करना चाहिए । व्रती पुरुष को देव के आयतन में गात्रों का अभ्यङ्ग और गन्ध का लेपन नहीं करना चाहिए ॥१४॥ द्वादशी के दिन में भली भाँति पूजन करके इसके अनन्तर द्विजों को भोजन समर्पित करे । इसके पश्चात् स्वयं पारणा करे जिसने कि हरि के मास का उपवास किया है ॥१५॥ व्रत में स्थित रहने वाला पुरुष यदि व्रत के कारण अशक्त होकर मध्य में मूच्छित हो जावे तो उसको दुग्ध आदि का प्रदान कर देना चाहिए । दुग्ध आदि कतिपय पदार्थ ऐसे हैं उनके सेवन करने पर व्रत का नाश नहीं हुआ करता है और वह दुग्धादि के सेवन करने वाला भी व्रती भुक्ति एवं मोक्ष दोनों ही के प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी होता है ॥१६॥

७६—भीष्मपञ्चक व्रत

व्रतानि कार्त्तिके वक्ष्ये स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत् ।
एकभक्तेन नक्तेन मासमयाचितेन वा ॥१
दुग्धशाकफलाद्यैर्वा उपवासेन वा पुनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ॥२
सदा हरेर्व्रतं श्रेष्ठं ततः स्याद्दक्षिणायने ।
चातुर्मास्ये ततस्तस्मात्कार्त्तिके भीष्मपञ्चकम् ॥३
व्रतं श्रेष्ठतरं शुक्लस्यैकादश्यां समाचरेत् ।
स्नायात्त्रिकालं पित्रादीन्यवाद्यैरर्चयेद्धरिम् ॥४
यजेन्मौनी घृताद्यैश्च पञ्चगव्येन वारिभिः ।
स्नापयित्वाऽथ कर्पूरकुङ्कुमैश्चानुलेपयेत् ॥५
घृताक्तगुग्गुलं धूपं दद्यात् पञ्चदिनं हरेः ।
नैवेद्यं परमान्नं तु जपेदष्टाक्षरं शतम् ॥६

ॐ नमो वासुदेवाय घृतव्रीहितिलादिकम् ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण स्वाहान्तेन तु होमयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं कार्त्तिक मास में होने वाले व्रतों को बतलाता हूँ । सर्व प्रथम स्नान कर भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । मास पर्यन्त एक समय रात्रि मे अथवा अयाचित भोजन करे । अथवा दुग्ध—शाक और फलादि का सेवन करे या उपवास करे । ऐसी विधि से व्रत करने वाला पुरुष सब तरह के पापो से छुटकारा पाकर और समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर अन्त मे भगवान् हरि के सान्निध्य मे पहुँच जाया करता है ॥१।२॥ हरि का यह व्रत सदा ही श्रेष्ठ होता है । दक्षिणायन में सूर्य होने पर उससे भी अधिक उत्तम होता है । चातुर्मास्य मे इससे भी अधिक श्रेष्ठ होता है । और इसमें भी कार्त्तिक मास भीष्म पञ्चक में उत्तम होता है । इससे भी श्रेष्ठ व्रत कार्त्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी मे होता है । त्रिकाल मे स्नान करे और पितृगण आदि का यवादि के द्वारा यजन करे और श्री हरि की अर्चना करनी चाहिए ॥३।४॥ मौन व्रत धारण कर घृत आदि—पञ्चगव्य—जल से स्नान करावे और कर्पूर आदि प्रमुख सुगन्धित पदार्थों के द्वारा अनुलेपन करे ॥ ५ ॥ द्विज को घृत से युक्त गुग्गुलु के द्वारा पाँच दिन तक धूप का दाह करना चाहिए । परमान्न का नैवेद्य समर्पित करे और अष्टोत्तर शत जाप करे ॥ ६ ॥ जाप का मन्त्र जपने के पश्चात् "ॐ नमो वासुदेवाय"—इस आठ अक्षरो वाले मन्त्र से 'स्वाहा' यह अन्त मे लगा कर घृत—व्रीहि और तिल आदि की सामग्री से होम करना चाहिए ॥७॥

प्रथमेऽह्नि हरे पादौ यजेत्पद्मैर्द्वितीयके ।
बिल्वपत्रैर्जानुदेशं नाभिं गन्धेन चापरे ॥८
स्कन्धौ बिल्वजवाभिश्च पञ्चमेऽह्नि शिरोऽर्चयेत् ।
मालत्या भूमिशायी स्याद् गोमयं प्राशयेत्क्रमात् ॥९
गोमूत्रं क्षीरदधि च पञ्चमे पञ्चगव्यकम् ।
नक्तं कुर्यात्पञ्चदश्या व्रती स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१०

एकादशीव्रतं नित्यं तत्कुर्य्यात्पक्षयो द्वंयो ।
अघौघनरक हन्यात्सर्वद विष्णुलोकदम् ॥११
एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी ।
नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥१२
दशाम्येकादशी यत्र तत्रस्थाश्चासुरादयः ।
द्वादश्या पारण कुर्य्यात्सूतके मृतके चरेत् ॥१३
चतुर्दशी प्रतिपदि पूर्वमिश्रामुपावसेत् ।
पौर्णमास्याममावास्या प्रतिपन्मिश्रिता मुने ॥१४
द्वितीया तृतीयामिश्रा तृतीयाञ्चाप्युपावसेत् ।
चतुर्थ्या सङ्गता नित्य चतुर्थीञ्चानया युताम् ।
पञ्चमी षष्ठीसयुक्ता षष्ठ्या युक्ताञ्च पञ्चमीम् ॥१५

प्रथम दिन म हरि के चरणो का पद्मो के द्वारा यजन करे द्वितीय दिन में विल्व पत्रो के द्वारा जानु भाग का यजन करे । तीसरे दिन गन्ध के द्वारा भगवान् की नाभि का समर्चन करे ॥८॥ चतुर्थ दिन में विल्व दल और जल से स्कन्धो का यजन करे और पाँचवें दिन मे मालती से शिर का अर्चन करना चाहिए । भूमि में शयन करने वाला होवे और क्रम से गोमय का प्राशन करे । गोमूत्र-क्षीर—दधि और पश्चम में पञ्चगव्य करे । पञ्चदशी मे रात्रि को करे । इस प्रकार से करने पर व्रत करने वाला भुक्ति एव मुक्ति दोनो को प्राप्त करने वाला होता है ॥ ९।१० ॥ दोनो पक्षो मे नियम से नित्य ही एकादशी का व्रत करना चाहिए अघो के समूह वाले नरक से निवृत्ति होती है । यह व्रत समस्त पदार्थों का प्रदान करने वाला और विष्णु लोक के प्रदान करने वाला होता है ॥ ११ ॥ एकादशी—द्वादशी तथा निशान्त में त्रयोदशी करे । जहां पर नित्य ही एकादशी होती है वहां पर साक्षात् भगवान् हरि सन्निहित रहा करते हैं ॥१२॥ जहां पर दशमी और एकादशी हो अर्थात् दशमी विद्धा एकादशी हो वहां पर असुर निवास रहा करते है द्वादशी तिथि मे पारण करना चाहिए । सूतक और मृतक में करे ॥ १३ ॥ प्रतिपदा मे पूर्व मिश्रा चतुर्दशी का उपवास करे । हे मुने ! पूर्णमासी के अमावस्या में पूर्व मिश्रित करे ॥ १४ ॥ तृतीया

मिश्रा द्वितीया का और तृतीया का उपवास करे। चतुर्थी में संयुक्ता का नित्य और इससे युत चतुर्थी का उपवास करे। षष्ठी से संयुक्त पञ्चमी और षष्ठी से युक्त पञ्चमी का उपवास करे ॥१५॥

७७—शिवरात्रि व्रत

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये कथाञ्च सर्वकामदम् ।
यथा च गौरी भूतेशं पृच्छति स्म परं व्रतम् ॥१
माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ।
तस्यां जागरणाद्रुद्रः पूजितो भुक्तिमुक्तिदः ॥२
कामयुक्तो हरिः पूज्यो द्वादश्यामिव केशवः ।
उपोषितैः पूजितः सन्नरकात्तारयेत्तथा ॥३
निषादश्चाम्बुदे राजा पापी सुन्दरसेनकः ।
स कुक्कुरैः समायुक्तो मृगान्हन्तुं वनं गतः ॥४
मृगादिकमसम्प्राप्य क्षुत्पिपासार्दितो गिरौ ।
रात्रौ तडागतीरेषु निकुञ्जे जाग्रदास्थितः ॥५
तत्रास्ति लिङ्गं सरक्षञ्छरीरञ्चाक्षिपत्ततः ।
पर्णानि चापतन्मूर्ध्नि लिङ्गस्यैव न जानतः ॥६
तेन धूलिनिरोधाय क्षिप्तं नीरञ्च लिङ्गके ।
शरः प्रमादेनैकस्तु प्रच्युतः करपल्लवात् ॥७
जानुभ्यामवनौ गत्वा लिङ्गं स्पृष्ट्वा गृहीतवान् ।
एवं स्नानं स्पर्शनञ्च पूजनं जागरोऽभवत् ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम शिवरात्रि के व्रत के विषय में वर्णन करते हैं। उसकी कथा भी कहते हैं। यह व्रत समस्त कामों के प्रदान करने वाला है। भगवती गौरी ने इस परम व्रत के विषय में भूतेश भगवान् से पूछा था ॥१॥ ईश्वर ने कहा—माघ और फाल्गुन मासों के मध्य में कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में होता है। उस चतुर्दशी की रात्रि में जागरण करके भगवान् की पूजा करने पर रुद्रदेव परम प्रसन्न होते हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों को

प्रदान किया करते हैं ॥२॥ काम युक्त केशव श्री हरि द्वादशी की भाँति पूजा के योग्य होते हैं। उपोषित होकर मानवों के द्वारा पूजित हरि नरक से तारण किया करते है ॥३॥ अर्बुद मे निषाद राजा पापी और सुन्दर सेना वाला था। वह कूकरो से युक्त होकर मृगो का हनन करने के लिये वन मे गया था ॥४॥ उसे वहाँ वन मे मृग आदि का कोई भी शिकार नहीं मिला तो वह भूख और प्यास से पीड़ित होकर पर्वत मे रात्रि के समय में तालाब के किनारे पर निकुञ्ज में जागरण करता हुआ हो स्थित रहा था ॥५॥ वहाँ पर एक शिव की लिंग मूर्ति थी। वहाँ पर शरीर की रक्षा करता खिन्न होगया था। लिंग का ज्ञान न करते हुए ही मस्तक पर पत्ते गिर गये थे ॥६॥ उसने धूलि के हटाने के लिये लिंग पर जल डाल दिया था। प्रमाद के कारण ही उसके हाथ से एक शर च्युत होगया। उसने घुटनो के बल भूमि पर स्थित होकर लिंग का स्पर्श करके उसे ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार से स्नान-स्पर्शन-पूजन और उसका जागरण होगया ॥७।८॥

प्रातर्गृहागतो भार्य्यादत्तान्नं भुक्तवान्स च।
काले मृतो यमभटैः पाशैर्बद्ध्वा तु नीयते ॥९
तदा मम गणैर्युद्धे जित्वा मुक्तीकृत स च।
कुक्कुरेण सहैवाभूद् गणो मत्पार्श्वगोऽमलः ॥१०
एवमज्ञानतः पुण्य ज्ञानात्पुण्यमथाक्षयम्।
त्रयोदश्या शिव पूज्य कुर्य्यात्तु नियम व्रती ॥११
प्रातर्देव चतुर्दश्या जागरिष्याम्यह निशि।
पूजा दान तपो होम करिष्याम्यात्मशक्तितः ॥१२
चतुर्दश्या निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि।
भोक्ष्येऽह भुक्तिमुक्त्यर्थं शरण मे भवेश्वर ॥१३
पञ्चगव्यामृतै. स्नाप्य अन्तकाले गुरुं श्रित।
ॐ नमो नमः शिवाय गन्धाद्यैः पूजयेद्धरम् ॥१४

जब प्रातःकाल हुआ तो वह वहाँ से घर आ गया था और भार्या के द्वारा दिया हुआ अन्न उसने खाया था। जब उसके मृत्यु का समय आया तो

यमदूतो के द्वारा पाशों से बाँध कर वह ले जाया गया था ॥९॥ तब हे पार्वति ! मेरे गणों ने मार्ग में ही यम के दूतो से युद्ध करके उन्हें पराास्त कर दिया था और उस निषाद राजा को यमदूतों से मुक्त कर दिया था। वह फिर अपने कुत्तो के साथ ही सर्वदा मेरे ही पास में निवास करने वाला परम शुद्ध गण होगया था ॥ १० ॥ इस प्रकार से अज्ञान से किये हुए पुण्य का ऐसा अद्भुत पुण्य होता है और यदि ज्ञान पूर्वक इस चतुर्दशी का व्रत एवं पूजन तथा जागरण करे तो उसका तो अक्षय पुण्य होता है। त्रयोदशी के दिन भगवान् शिव का पूजन करके व्रती को नियम ग्रहण करना चाहिए ॥११॥ व्रती को भगवान् शिव से प्रार्थना करनी चाहिए—हे देव ! मैं चतुर्दशी मे रात्रि के समय में जागरण करूँगा—यह प्रार्थना प्रातःकाल मे चतुर्दशी के दिन करे। और यह भी निवेदन करे कि मैं अपनी शक्ति के अनुसार पूजा—दान—तप और होम भी करूँगा ॥१२॥ चतुर्दशी के दिन निराहार रहूगा और हे शम्भो ! मैं फिर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे भवेश्वर ! भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति के लिये आप मेरे शरण (रक्षक) होवें ॥ १३ ॥ पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान कराकर अन्तकाल मे गुरु का आश्रय ग्रहण करे। "ॐ नमो नमः शिवाय."—इस मन्त्र से गन्धाक्षतादि पूजोपचारो के द्वारा हर का पूजन करना चाहिए ॥१४॥

तिलतण्डुलव्रीहींश्च जुहुयात्सघृतं चरुम् ।
हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्वा शृणुयाद् गीतसकथाम् ॥१५
अर्द्ध रात्रे त्रियामे च चतुर्थे च पुनर्यजेत् ।
मूलमन्त्रं तथा जप्त्वा प्रभाते तु समापयेत् ॥१६
अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम् ।
क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर ॥१७
यन्मयाद्य कृतं पुण्यं यद्रुद्रस्य निवेदितम् ।
त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम् ॥१८
प्रसन्नो भव मे श्रीमन्गृहं प्रति च गम्यताम् ।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः ॥
भोजयेद्ध्यानलिष्ठांश्च वस्त्रछत्रादिकं ददेत् ॥१९

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक ।
यन्मया श्रद्धया दत्तं प्रीयता तेन मे प्रभु. ॥२०
इति समाप्य च व्रती कुर्य्याद् द्वादशवार्षिकम् ।
कीर्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य शैव पुरं व्रजेत् ॥२१
द्वादशेष्वपि मासेषु प्रकुर्य्यादिह जागरम् ।
व्रती द्वादश सभोज्य दीपदः स्वर्गमाप्नुयात् ॥२२

तिल-तण्डुल—व्रीहि को घृत के सहित चरु बनाकर हवन करे और पूर्णाहुति देकर गीत तथा कथा का श्रवण करे ॥ १५ ॥ अर्ध रात्रि में—तीन प्रहर समाप्त होने पर और चतुर्थ प्रहर में फिर उस महारात्रि में पूजन करना चाहिए । मूल मन्त्र का जाप करता रहे और प्रातःकाल में उसे समाप्त करना चाहिए ॥१६॥ शिव से प्रार्थना करे— हे देव ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह व्रत बिना किसी विघ्न बाधा के अर्चित किया है । हे समस्त जगतो के स्वामिन् ! आप तो इस त्रिलोकी के अधिपति हैं हे हर ! मेरी त्रुटियो को क्षमा कर दीजिए ॥१७॥ हे देव ! मैंने जो आज यह पुण्य काय किया है और जो कुछ भी मैंने भगवान् रुद्र को अर्पित किया है । यह सभी कुछ आपकी ही कृपा से मैंने साङ्ग समाप्त किया है ॥१८॥ हे श्रीमन् ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये और अब आप गृह के प्रति गमन करिए । आपके दर्शन मात्र से ही मैं परम पवित्र होगया हू—इसमें तनिक भी सशय नही है । इसके पश्चात् जो शिव के ध्यान मे एक निष्ठ हो उनको भोजन करावे और वस्त्र एवं छत्र आदि का दान करे ॥१९॥ हे देवो के भी आदि देव ! आप भूतो के ईश हैं और लोकों के ऊपर अनुग्रह करने वाले है । मैंने जो कुछ भी श्रद्धा से समर्पित किया है । उससे प्रभु आप मुझ पर प्रसन्न हो ॥ २० ॥ इस प्रकार से इसे समाप्त करे और व्रती को चाहिए कि इस व्रत को बराबर निरन्तर बारह वर्ष तक करे । इसका यह फल होता है कि इस ससार मे अतुल कीर्ति—श्री—पुत्र और राज्य—वैभव प्राप्त करके अन्त समय मे शिव के पुर में वह गमन किया करता है ॥ २१ ॥ यह बारहों मासो मे जागरण करे । व्रत करने वाला पुरुष बारह को भोजन कराकर दीप-दान करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥२२॥

७८—एकादशी माहात्म्य

मान्धाता चक्रवर्त्यासीदुपोष्यैकादशी नृपः ।
एकादश्या न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥१
दशम्येकादशीमिश्रा गान्धार्य्या समुपोषिता ।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्ता परिवर्जयेत् ॥२
दशम्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा ॥३
द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।
एकादशी कलापि स्यादुपोष्या द्वादशी तथा ॥४
एकादशी द्वादशी च विशेषेण त्रयोदशी ।
त्रिमिश्रा सा तिथिर्ग्राह्या सर्वपापहरा शुभा ॥५
एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमथवा द्विज ।
त्रिमिश्रान्चैव कुर्वीत न दशम्या युता क्वचित् ॥६
रात्रौ जागरणं कुर्वन्पुराणश्रवणं नृपः ।
गदाधरं पूजयञ्च उपोष्यैकादशीद्वयम् ॥
रुक्माङ्गदो ययौ मोक्षमन्ये चैकादशीव्रतम् ॥७

पितामह ने कहा—मान्धाता नाम वाला एक चक्रवर्त्ती राजा था। वह एकादशी के दिन उपवास किया करता था। दोनों पक्षों की एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए॥ १ ॥ गान्धारी ने दशमी से मिश्रित एकादशी का उपवास किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके पुत्र नष्ट होगये थे। इसलिये ऐसी एकादशी का वर्जन कर देना चाहिए ॥२॥ दशमी और एकादशी जहाँ पर होती है वहाँ पर हरि सन्निहित होते है। जब बहुत से वचनों के विरोध से सन्देह हो तो वहाँ पर द्वादशी का ही ग्रहण करना चाहिए अर्थात् द्वादशी के दिन ही उपवास करे और त्रयोदशी मे पारण करे अर्थात् व्रत को खोले। एकादशी की एक कला भी हो तो द्वादशी का व्रत करे ॥३।४॥ एकादशी–द्वादशी और विशेष रूप से त्रयोदशी इस प्रकार से त्रिमिश्रा तिथि यदि हो तो उसका ग्रहण करना चाहिए। यह सम्पूर्ण पापो के हरण करने वाली

परम शुभ तिथि हुआ करती है ॥५॥ हे द्विज ! अथवा एकादशी का उपवास करे या द्वादशी का करे। मिश्रा त्रिमिश्रित (एकादशी—द्वादशी और त्रयोदशी) तिथि का उपवास करे किन्तु दशमी से युक्त एकादशी का उपवास कभी भी नहीं करना चाहिए ॥६॥ एकादशी के उपवास को कर रात्रि में जागरण करे और पुराणों का श्रवण करे। इस प्रकार से भगवान् गदाधर का पूजन करते हुए मास के दोनों पक्षों की एकादशी का उपवास करना चाहिए ॥७॥

१७६—भुक्ति मुक्तिकर पूजा विधि

येनार्चनेन वै लोको जगाम परमा गतिम्।
तमर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥१
सामान्यमण्डलं न्यस्य धातारं द्वारदेशतः।
विधातारं तथा गङ्गां यमुनाञ्च महानदीम् ॥२
द्वारश्रियञ्च दण्डञ्च प्रचण्डं वास्तुपूरुषम्।
मध्ये चाधारशक्तिञ्च कूर्मञ्चानन्तमर्चयेत् ॥३
भूमिं धर्मं तथा ज्ञानं वैराग्यैश्वर्यमेव च।
अधर्मादींश्च चतुरः कन्दनालञ्च पङ्कजम् ॥४
कर्णिकां केशरं सत्त्वं राजसन्तामसं गुणम्।
सूर्य्यादिमण्डलान्येव विमलाद्याश्च शक्तयः ॥५
दुर्गां गणं सरस्वतीं क्षेत्रपालञ्च कोणके।
आसनं मूर्तिमभ्यर्च्य वासुदेवं बलं स्मरम् ॥६
अनिरुद्धं महात्मानं नारायणमथार्चयेत्।
हृदयादीनि चाङ्गानि शङ्खादीन्यायुधानि च ॥७
श्रियं पुष्टिञ्च गरुडं गुरुं परगुरुं यजेत्।
इन्द्रादीन्दिक्पतीनागमूर्ध्वं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥८
विष्वक्सेनमथैशान्यां प्रोक्तः पूजनमागमे।
गरुडश्चार्चितो देवो येनैव विधिपूर्वकम् ॥९
न तस्य सम्भवो भूयः ममाग्रेऽस्मिन्महात्मनः।
पुण्डरीकाय सम्पूज्य प्रत्यागत्य गदाधरम् ॥१०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह लोक जिस अर्चन के द्वारा परम गति को प्राप्त हुआ था। अब मैं उसी अर्चन के विषय मे बतलाता हूं। यह अर्चन परम भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ सामान्य मण्डल का न्यास करके द्वार देश पर धाता–विधाता–गगा और महा नदी यमुना का अर्चन करे द्वार श्री–दण्ड—प्रचण्ड–वास्तु पुरुष–मध्य मे आधार शक्ति—कूर्म और अनन्त की अर्चना करे ॥ २।३ ॥ भूमि—धर्म–ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य—चार अधर्म आदि–कन्दनाल–पङ्कज—कर्णिका—केशर–सत्त्व—राजस एव तामस सूर्य—सूर्यादि मण्डल—विमला आदि शक्तियाँ–दुर्गा—गण और सरस्वती का अर्चन करे। कोण मे क्षेत्रपाल—आसन–मूर्त्ति का अभ्यर्चन करके वासुदेव–बल–स्मर–महान् आत्मा वाले अनिरुद्ध और इसके अनन्तर नारायण का अर्चन करना चाहिए। हृदय आदि अगो का तथा शङ्ख आदि आयुधो का यजन करे ॥४।५॥ ॥६।७॥ श्री–पुष्टि–गरुड—गुरु और पर गुरु की अर्चना करे। दिशाओं मे इन्द्र आदि दिक्पालो का—नीचे के भाग मे नाग का और ऊर्ध्व भाग मे ब्रह्मा का अर्चन करे ॥ ८ ॥ ऐशानी दिशा म विश्वक्सेन का पूजन आगम में बताया गया है। जिसके द्वारा विधि पूर्वक एक बार समभ्यर्चित देव इस प्रकार से किये गये हो उस पूजा करने वाले महात्मा का जन्म इस ससार म नही होता है। पुण्डरीक के लिये ब्रह्मा का और गदाधार का पूजन करना चाहिए ॥९।१०॥

८०—एकादशी व्रत विधान

माघमासे शुक्लपक्षे मूर्य्यर्क्षेण युता पुरा।
एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता ॥१
आश्चर्यन्तु व्रत कृत्वा पितॄणामनृणोऽभवत्।
भीमद्वादशी विख्याता प्राणिना पुण्यवर्द्धिनी ॥२
नक्षत्रेण विनाप्येषा ब्रह्महत्यादि नाशयेत्।
विनिहन्ति महापाप कुनृपो विषय यथा ॥३
यपुत्रस्तु कुल यद्वत् भार्य्या च पति यथा।
अधर्मश्च यथा धर्म कुमन्त्री च यथा नृपम् ॥४

अज्ञानेन यथा ज्ञानं शौचताशौचतो यथा ।
अश्रद्धया यथा श्राद्धं सत्यञ्चैवानृतैर्यथा ॥५

हिमं यथोष्णमाहन्यादनर्थं चार्थसञ्चयः ।
यथा प्रकीर्त्तनाद्दानं तपो वै विस्मयाद्यथा ॥६

अशिक्षया यथा पुत्रो गावो दूरगतैर्यथा ।
क्रोधेन च यथा शान्तिर्यथा वित्तमवर्द्धनात् ॥७

ज्ञानेनैव यथा विद्या निष्कामेन यथा फलम् ।
तथैव पापनाशाय प्रोक्तेयं द्वादशी शुभा ॥८

न चापि नैमिष क्षेत्र कुरुक्षेत्र प्रभासकम् ।
कालिन्दी यमुना गङ्गा न चैव न सरस्वती ॥९
न चैव सर्वतीर्थानि एकादश्या समो न हि ।
न दान न जपो होमो न चान्य सुकृत क्वचित् ॥१०
एकत पृथिवीदानमेकतो हरिवासर ।
ततोऽप्येका महापुण्या इयमेकादशी वरा ॥११
अस्मिन्वराहपुरुष कृत्वा देवन्तु हाटकम् ।
घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वै ताम्रभाजने ॥१२
सर्वबीजभृतोविन्वा सितवस्त्रावगुण्ठिते ।
सहिरण्यप्रदोपाद्यं कृत्वा पूजा प्रयत्नत ॥१३

नैमिषारण्य का परम पावन क्षेत्र—कुरुक्षेत्र का पवित्र धाम—प्रभास क्षेत्र—कालिन्दी–यमुना—गङ्गा और सरस्वती जैसे अत्यन्त पावन तीर्थ एवं अन्य भी समस्त महान् तीर्थ मिलकर भी इस एकादशी के समान नहीं है । इस एकादशी की समता रखने वाले जप—दान–तप–होम और अन्य कोई भी कहीं सुकृत् ऐसा नहीं है ॥९।१०।११॥ एक ओर तो इस सम्पूर्ण मही मण्डल के दान का पुण्य–फल और एक ओर हरिवासर है । इससे भी महान् पुण्य वाली यह परम श्रेष्ठ एक इकादशी होती है ॥१२॥ इस घट के ऊपर नवीन ताम्र के पात्र मे वराह पुरुष देव की स्वर्ण की मूर्ति बना कर रक्खे ॥१३॥ समस्त बीजों को धारण करने वाले और सित वस्त्र से अवगुण्ठित करे । हिरण्य प्रदीप आदि के सहित प्रयत्न पूर्वक पूजा करे ॥१४॥

वराहाय नम पादौ क्रोडाकृति नम कटिम् ।
नाभि गभीरघोषाय उर श्रीवत्सधारिणे ॥१४
बाहु सहस्रशिरसे ग्रीवा सर्वेश्वराय च ।
मुख सर्वात्मने पूज्य ललाट प्रभवाय च ॥१५
केशा शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिण ।
विधिना पूजयित्वा तु कुर्यात् जागरण निशि ॥१६

श्रुत्वा पुराणं देवस्य माहात्म्यप्रतिपादकम् ।
प्रातर्विप्राय दत्वा च याचकाय शुभाय तत् ॥१७
कनकक्रोडसहितं सन्निवेद्य परिच्छदम् ।
पश्चात्तु पारणं कुर्य्याद्यातितृप्त सकृद्व्रती ॥१८
एवं कृत्वा नरो विद्वान्न भूय स्तनपो भवेत् ।
उपोष्यैकादशी पुण्या मुच्यते वै ऋणत्रयात् ॥
मनोऽभिलषितावाप्तिं कृत्वा सर्वव्रतादिकम् ॥१६

"वराहाय नम "—इससे चरणो का पूजन करे—क्रोडाकृति नम '—इससे कटि का यजन करे—गभीर घोषाय नम —इसे नाभिका—' श्री वत्स धारिणे नम '—इससे उर का यजन करे ॥१४॥ 'सहस्र शिरसे नम —इससे बाहु की—'सर्वेश्वराय नम '—इस मन्त्र से ग्रीवा की— सर्वात्मने नम '—इस मन्त्र से मुख की— प्रभवाय नम '—इससे ललाट की पूजा करनी चाहिए ॥ १५ ॥ 'शतमयूखाय नम '—इस मन्त्र से चक्री देव के केशो का यजन करे । इस प्रकार से विधि पूर्वक अर्चना करके रात्रि मे जागरण करे ॥ १६ ॥ देव के माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाले पुराण का श्रवण करे । प्रात काल के होने पर किसी याचना करने वाले परम शुभ विप्र के लिये कनक की क्रोड के सहित परिच्छद युक्त उसको सन्निवेदित कर दान करे । इसके पीछे पारण करे किन्तु सकृत् व्रत करने वाला अत्यन्त तृप्ति पूर्वक पारण नही करे ॥१७।१८॥ इस प्रकार से इस व्रत को गाङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष पुन शरीर को धारण करने वाला नही होता है । इस परम पुण्यमयी एकादशी का उपवास करके मनुष्य तीनो ऋणो मे छुटकारा पा जाया करता है । इस सम्पूर्ण व्रत आदि को करके मनुष्य समस्त अभिलषितो की प्राप्ति किया करता है ॥१६॥

८१ — विविध व्रत कथन

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि यैस्तुष्ट सर्वदो हरि ।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रत तच्च तपो मतम् ॥१
नियमास्तु विशेषा स्युर्व्रतस्यास्य यमादय. ।
नित्य त्रिषवण स्नायादधश्शायी जितेन्द्रिय. ॥२

स्त्रीशूद्रपतितानां तु वर्जयेदभिभाषणम् ।
पवित्राणि च पञ्चैव जुहुयाच्चैव शक्तित ॥३
कृच्छ्राण्येतानि सर्वाणि चरेत्सुकृतवान्नर ।
मेशानां रक्षणार्थन्तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥४
कांस्य माष मसूरञ्च चणक कोरदूषकम् ।
शाक मधु परान्नञ्च वर्जयेदुपवासवान् ॥५
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।
उपवासेन दुष्येत्तु दन्तधावनमञ्जनम् ॥६
दन्तकाष्ठ पञ्चगव्य कृत्वा प्रातर्व्रतञ्चरेत् ।
असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ॥
उपवास प्रदुष्येत दिवास्वप्नाक्षमैथुनात् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास देव ! अब हम उन व्रतों के विषय में वर्णन करेंगे जिनके करने से भगवान् हरि पूर्णतया सन्तुष्ट होकर सभी कुछ प्रदान किया करते हैं। यह शास्त्रों में बताया हुआ नियम है और यह व्रत एक प्रकार का परम तप माना गया है ॥१॥ व्रत करने के पूरे वर्ष के लिये यमादि कुछ विशेष नियम होते हैं। इसमें नित्य ही तीन बार दिन में स्नान कर सन्ध्या वन्दना त्रिकाल किया करे-भूमि में शयन करे और समस्त इन्द्रियों को जीतकर अपने वश में करे ॥ २ ॥ स्त्री-शूद्र और पतित पुरुषों के साथ अभिभाषण नहीं करे। पाँचों पवित्रों को अपनी शक्ति के अनुसार हवन करे ॥३॥ सुकृती पुरुष को इन सम्पूर्ण कृच्छ्रों का समाचरण करना चाहिए। वर्णों की रक्षा के लिये द्विगुण व्रत करना चाहिए ॥४॥ उपवास करने वाले पुरुष को कांस्य पात्र-माष (उर्द)-मसूर-चना-कोरदूषक-शाक-मधु-पराया अन्न इन सबका त्याग कर देना चाहिए ॥५॥ पुष्प-अलङ्कार-नवीन वस्त्र-धूप-गन्ध-अनुलेपन-दन्त और अञ्जन ये समस्त पदार्थ उपवास में दूषित करने वाले हैं ॥ ६ ॥
[illegible] और पञ्चगव्य करके प्रातःकाल में व्रत का चरण करे। बार-बार [illegible] न करने से और एकबार ताम्बूल के भक्षण करने से—दिन में सोने से

और मक्ष मैथुन से उपवास दूषित हो जाया करता है। अतः ये सभी काम नहीं करें ।।७।।

क्षमा सत्य दया दान शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
देवपूजाग्निहवने सन्तोषास्तेयमेव च ।।८
सर्वव्रतेष्वय धर्म. सामान्यो दशधा स्मृतः ।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमनक्तं निशि भोजनम् ।।९
गोमूत्रञ्च पलं दद्यादर्द्धाङ्गुष्ठन्तु गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलत्रयम् ।।१०
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ।
गायत्र्या चैव गन्धेति आप्यायस्व दधिग्रहः ।।
तेजोऽसीति च देवस्य ब्रह्मकृच्छ्रव्रतं चरेत् ।।११
अग्न्याधानं प्रतिष्ठान्तु यज्ञदानव्रतानि च ।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखला ।।
माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत् ।।१२

क्षमा—सत्य—दया—दान—शौच—इन्द्रियों का निग्रह—देव पूजा—अग्नि में हवन—सन्तोष और अस्तेय—इन समस्त व्रतों में सामान्य धर्म दश प्रकार का होता है। नक्षत्रों के दर्शन से नक्त होता है। रात्रि में अनक्त भोजन करे ।।८।९।। गोमूत्र एक पल देवे और आधा अंगूठा के बराबर गोमय देवे—सात पल क्षीर और तीन पल दधि देना चाहिए ।।१०।। घृत एक पल-एक पल कुशोदक देवे। गायत्री से और 'गन्ध'—इत्यादि मन्त्र से दधि ग्रह को आप्यायित करे। 'तेजोऽसि'—इस मन्त्र से देव का ब्रह्म कृच्छ्र व्रत का चरण करना चाहिए ।।११।। अग्न्याधान—प्रतिष्ठा—यज्ञ—दान—व्रत—वेद व्रत—वृषोत्सर्ग—चूडाकरण—मेखला—माङ्गल्य और अभिषेक ये कार्य मलमास में वर्जित कर देने चाहिए ।।१२।

दर्शाद्दर्शस्य चान्द्रः स्यात्त्रिंशाहोभिस्तु सावनः ।
रविसंक्रमणात्सौरो नाक्षत्र. सप्तविंशति. ।।१३
सौरो मासो विवाहाय यज्ञादौ सावनस्थितिः ।

युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ॥
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा ॥१४
प्रतिपदाप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् ।
एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥१५
प्रारब्धतपसा स्त्रीणां रजो हन्याद् व्रतं न हि ।
अन्यैर्दानादिकं कुर्य्यात्कायिकं स्वयमेव च ॥१६
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।
दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डनं भवेत् ॥१७
असामर्थ्ये शरीरस्य पुत्रादीन्कारयेद् व्रतम् ।
व्रतस्थं मूर्च्छितं विप्रं जलानि चानुपाययेत् ॥१८

दर्शादर्श का अन्त सावन तीस दिन में होता है। रवि के सङ्क्रमण से सौर मास होता है और नक्षत्रों का सत्ताईस दिन का होता है ॥१३। विवाह के लिये सौर मास होता है और यज्ञादि में सावन की स्थिति होती है। छै-सात-आठ और रन्ध्र में युग्माग्नि कृत भूत होते हैं। रुद्र से अर्थात् एकादशी से युक्त द्वादशी और चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा तथा प्रतिपदा से युक्त अमावस्या—इन तिथियों का युग्म महान् फल वाला होता है। इसका व्यस्त होना पुरा कृत महान् पुण्य का हनन कर देता है ॥१४।१५॥ पहिले जिन स्त्रियों ने इस व्रत का आरम्भ कर दिया है उनको बाद में जो रजो दर्शन होता है वह व्रत का हनन नहीं किया करता है। अन्यों के द्वारा और स्वयमेव ही कायिक दानादिक करना चाहिए ॥१६॥ क्रोध से प्रमाद से अथवा लोभ से यदि व्रत का भङ्ग हो जाता है तो तीन दिन तक भोजन नहीं करना चाहिए और शिर का मुण्डन भी करे ।१७। यदि स्वयं के शरीर की सामर्थ्य न हो तो अपने पुत्र आदि के द्वारा इस व्रत को कराना चाहिए। व्रत में अवस्थित विप्र यदि मूच्छित हो जावे तो उसे जल पिला देना चाहिए। ऐसी दशा में जलपान से व्रत की भग्नता नहीं हुआ करती है ॥१८॥

८२—दष्टोद्धरण पंचमी व्रत

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतानि व्यास शृण्वथ ।
वैश्वानरपद याति शिखिव्रतमिद स्मृतम् ॥
प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रद ॥१
चैत्रादौ कारयेच्चैव ब्रह्मपूजा यथाविधि ।
गन्धपुष्पार्चनैर्दानैर्माल्यादिभिर्मनोरमं. ॥
सहोमै पूजयेद्देव सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२
कार्तिके तु सितेऽष्टम्या पुष्पहारेण वत्सरम् ।
पुष्पादिदाता रूपेप्सु रूपभागी भवेन्नर ॥३
कृष्णपक्षे तृतीयाया श्रावणे श्रीधर श्रिया ।
व्रती सवस्त्रा शय्याश्च फल दद्याद् द्विजातये ॥४
शय्या दत्त्वा प्रार्थयेच्च श्रीधराय नम श्रिये ।
उमा शिव हुताशश्च तृतीयायाश्च पूजयेत् ॥५
हविष्यमन्न नैवेद्य देय मदनक तथा ।
चैत्रादौ फलमाप्नाति उमया मे प्रभाषितम् ॥६
फाल्गुनादितृतीयाता लवण यस्तु वर्जयेत् ।
समाप्ते शयन दद्याद् गृहञ्चोपस्करान्वितम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास देव ! अब मैं प्रतिपदा आदि के व्रतों को बतलाता हू । तुम इनका श्रवण करो । यह शिखि व्रत इस नाम से कहा गया है । इसके करने से वैश्वानर के पद को प्राप्त होता है । प्रतिपदा तिथि मे एक बक्त अशन करने वाला होवे । व्रत के समाप्त होने पर कपिला गौ का दान करे ॥१॥ चैत्र आदि मास मे विधि पूर्वक ब्रह्म पूजा करावे । गन्ध—पुष्प आदि के द्वारा अर्चना से— दान से— परम सुन्दर माल्यादि से और होम के द्वारा देव का यजन करे । इससे मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है ॥२॥ कार्तिक मास मे सित पक्ष म अष्टमी तिथि के दिन पुष्पों के हार से यजन करे और वत्सर पर्यन्त पुष्प आदि का दान करने वाला पुरुष रूप–लावण्य की

इच्छा रखने वाला मनुष्य सब को प्राप्त किया करता है ।। ३ ।। कृष्ण पक्ष में श्रावण मास की तृतीया में श्री से युक्त भगवान् श्रीधर का अर्चन करे और पती को वस्त्रों से समन्वित शय्या तथा फल ब्राह्मण को दान देवे ।।४।। शय्या का दान करके प्रार्थना करे—श्रीधर श्री के लिये नमस्कार है । और तृतीया में उमा—शिव और हुताश की पूजा करनी चाहिए ।।५।। चैत्रादि में हविष्य अन्न नैवेद्य और मदनक का दान करना चाहिए । इसका करने वाला फल की प्राप्ति करता है । यह उमा से मेरा प्रभाषित है ।६।। फाल्गुन से आदि लेकर तृतीया के अन्त तक जो लवण को वर्जित कर देता है और इस व्रत की समाप्ति होने पर शय्या का दान करे तथा समस्त सामान से समन्वित गृह का दान करे ।७।

सपूज्य विप्रमिथुन भवानि प्रीयतामिति ।
गौरी लोके वसेन्नित्य सौभाग्यकरमुत्तमम् ।।८
गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्ति सरस्वती ।
मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मी. शिवा नारायणी क्रमात् ।।
मार्गतृतीयामारभ्य अवियोगादि चाप्नुयात् ।।९
चतुर्थ्या सितमाघादौ निराहारो व्रतान्वित. ।
दत्त्वा तिलांस्तु विप्राय स्वय भुङ्क्ते तिलदोकम् ।।
वर्षद्वये समाप्तिश्च निर्विघ्नादि समाप्नुयात् ।।१०
ग. स्वाहा मूलमन्त्रोऽय प्रणवेन समन्वितः ।
ग्लो ग्ला हृदये गा गी गू हू ह्री ह्री शिर शिखा ।।
गू वर्म गोञ्च गौ नेत्र गोञ्च आवाहनादिषु ।।११
आगच्छोल्काय गन्धोल्क पुष्पोल्कधूपकोल्ककः ।
दीपोल्काय महोल्काय बलिश्चाय विसर्जनम् ।।१२
सिद्धोल्काय च गायत्री न्यासोऽङ्गुष्ठादिरीरित- ।
ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय
धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।।१३।।
पजयेत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा ।

गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च ॥
अमाघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे ॥१४

विप्र के जोडे का भली भाँति पूजन कर प्रार्थना करे—हे भवानि ! आप प्रसन्न होइये। इससे गोरी के लोक मे नित्य ही वह निवास किया करता है और यह उत्तम सौभाग्य के करने वाला होता है ॥८॥ गोरी—काली—उमा—भद्रा—दुर्गा—कान्ति—सरस्वती—मङ्गला—वैष्णवी—लक्ष्मी—शिवा और नारायणी—इनका क्रम से अर्चन करे। मार्ग शीर्ष की तृतीया से इनका आरम्भ करे। इससे अवियोग आदि की प्राप्ति करता है ॥९॥ माघादि मे सित पक्ष मे चतुर्थी तिथि के दिन व्रत से युक्त होकर निराहार रहे। विप्र को तिलो का दान करके स्वय तिलोदक का भोजन करे। इस व्रत की समाप्ति दो वर्ष मे होनी है। इसे निर्विघ्न होकर समाप्त करे ॥१०॥ प्रणव से युक्त 'ग-स्वाहा'—यह इसका मूल मन्त्र होता है। ग्लो—ग्ला—इसका हृदय मे न्यास करे। गा—गी—गूं—इसका शिर मे न्यास करे। हू—ह्री—ह्रौ—इसका शिखा मे न्यास करे। गू वर्म है, गो और गी नेत्र हैं और गो—यह आवाहन आदि मे है ॥११॥ उल्कालिये गन्धोल्क पुष्पोल्क धूपकोल्क आओ, दीपोल्क महोल्क के लिये इसके अनन्तर बलि का विसर्जन करे। सिद्धोल्क लिये गायत्री तथा अगुष्ठादि ईरित न्यास है। मन्त्र यह है—ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्र तुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयत्' ॥१२॥१३॥ ये गण तिल होमो के द्वारा पूजे जाने चाहिए। 'गणाय गणपतये-कूष्माण्डकाय च स्वाहा—अमोघोल्काय, एकदन्ताय, त्रिपुरान्तकारिणे स्वाहा'—इस मन्त्र से होम करे ॥१४॥

ॐ श्यामदन्तविकरालास्याहवेशाय वै नमः ।
पद्मदंष्ट्राय स्वाहान्तमुद्रा वै नर्तनं गणे ॥
हस्तातालञ्च हसन सोभाग्यादिफल भवेत् ॥१५
मार्गशीर्षे तथा शुक्लचतुर्थ्यां पूजयेद् गणम् ।
अब्द प्राप्नोति विद्या श्रीकीर्त्यायु पुत्रसन्ततिम् ॥१६
सोमवारे चतुर्थ्याञ्च समुपोष्यार्चयेद् गणम् ।
जपञ्जुह्वस्मरन्नित्य स्वर्गं निर्विघ्नतां व्रजेत् ॥१७

यजेच्छुक्लचतुर्थ्यां यः खण्डलड्डुकमोदकैः ।
विघ्नार्चनेन सर्वान्वै कामान् सौभाग्यमाप्नुयात् ॥
पुत्रादिकं मदनकैर्मदनाख्या चतुर्थ्यपि ॥१८
ॐ गणपतये नमः चतुर्थ्यन्तं यजेद् गणम् ।
मासे तु यस्मिन्कस्मिंश्चिज्जुहुयाद् वा जपेत्स्मरेत् ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१९
विनायकं मूर्त्तिकाद्यं यजेदेभिश्च नामभिः ।
सोऽपि सद् गतिमाप्नोति स्वर्गमोक्षसुखानि च ॥२०
गणपूज्य एकदन्तो वक्रतुण्डश्च त्र्यम्बकः ।
नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः ॥
धूम्रवर्णो बालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः ।२१
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादशं वै यजेद् गणम् ।
पृथक्समस्तं मेधावी सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२२

"ॐ श्याम दन्त विकरालास्या हवेदाय वै नम'—'पदादष्टाय स्वाहा'—इन मन्त्रो से मन्त्र मुद्रा कर गण मे नर्तन करे । हाथो मे ताली बजाकर हास्य करे तो सौभाग्य आदि के फल का भागी होता है ॥१५॥ मार्ग शीर्ष मास मे शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में गण की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त करे तो विद्या—श्री—कीर्ति—आयु और पुत्र सन्तति को मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥ १६ ॥ सोमवार के दिन चतुर्थी तिथि मे उपवास करके गण का अर्चन करे । जप—हवन—स्मरण नित्य करता हुआ पुरुष बिना किसी विघ्न—बाधा के स्वर्ग की प्राप्ति करता है ॥ १७ ॥ शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन यजन करना चाहिए और वह खाँड के लड्डू तथा मोदको से करे । विघ्नार्चन से मनुष्य समस्त कामो को और सौभाग्य को प्राप्त करता है । मदनको से यजन करे तो पुत्र आदि को प्राप्त करता है । अतएव इस चतुर्थी का नाम मदनाख्या है ॥ १८ ॥ 'ॐ गणपतये नमः'—इस मन्त्र से चतुर्थ्यन्त गण का यजन करे । जिस किसी भी मास मे हवन करे—जप करे तथा इसका स्मरण करे । ऐसा करने से सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओ के फल प्राप्त होते है और सब विघ्नो का

नाश हो जाता है ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण मूर्तियों में आद्य भगवान् विनायक था इन उक्त नामों के द्वारा यजन करना चाहिए। वह पुरुष भी सद्गति को प्राप्त करता है और स्वर्ग-निवास के समस्त सुखों का उपभोग करता है तथा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। २०॥ वे दश नाम ये हैं—गणों के परम पूज्य-एकदन्ती-वक्र तुण्ड-त्र्यम्बक-नील ग्रीव-लम्बोदर-विकट-विघ्न राजक-धूम्र वर्ण-भाल चन्द्र और दशवां नाम इनका विनायक होता है। गणपति—हस्ति मुख ये दो नाम और हैं। इनसे द्वादश गण का यजन करे। चाहे पृथक्-पृथक् इनका यजन करे या समस्तों का एक साथ ही पूजन करे तो मेधावी पुरुष समस्त अभीष्ट काम-नाओं की प्राप्ति किया करता है ॥२१।२२॥

श्रावणे चाश्विने भाद्रे पञ्चम्यां कार्त्तिके शुभे।
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालीयो मणिभद्रकः ॥२३
ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ।
घृताद्यैः स्नापिता ह्येते आयुरारोग्यस्वर्गदा. ॥२४
अनन्तं वासुकिं शङ्खं पद्मं कम्बलमेव च।
तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रञ्च शङ्खकम् ॥२५
कालीयं तक्षकञ्चापि पिङ्गलं मासि मासि च।
यजेद्भाद्रसिते नागानष्टौ मुक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥२६
द्वारस्योभयतो लेख्या श्रावणे तु सिते यजेत्।
पञ्चम्यां पूजयेन्नागानन्ताद्यान्महोरगान् ॥२७
क्षीरं सर्पिश्च नैवेद्यं देयं सर्वविषापहम्।
नागा अभयहस्ताश्च दशोद्धरणपञ्चमी ॥२८

श्रावण मास में-आश्विन की महीने में-भादो में या शुभ कार्तिक मास में पञ्चमी तिथि के दिन वासुकि—तक्षक—कालीय-मणि भद्रक-ऐरावत धृत-राष्ट्र—कर्कोटक और धनञ्जय इनको घृत आदि से स्नापित करके यजन करे तो आयु—आरोग्य और स्वर्ग के प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥२३।२४॥ अनन्त-वासुकि-शङ्ख-पद्म-कम्बल—कर्कोटक-धृतराष्ट्र-शङ्खक—कालीय-तक्षक और पिंगल नाग का भाद्रपद के सित पक्ष में और प्रत्येक मास-मास में यजन

करे तो आठ नागों का मोचन कर मनुष्य दिवलोक का गमन करता है ॥ २५॥२६ ॥ गृह के द्वार के दोनों ओर इनका आलेखन करे और श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में यजन करे। अनन्त आदि नागों तथा महान् उरगों का पञ्चमी तिथि में पूजन करना चाहिए ॥२७॥ समस्त प्रकार के विषों के अपहरण करने वाले क्षीर—घृत और नैवेद्य का समर्पण करे। समस्त नाग अभय हस्त वाले होते हैं। यह दष्ट किये हुओं के उद्धरण करने वाली पञ्चमी होती है ॥२८॥

८३—सप्तमी आदि के व्रत

एवं भाद्रपदे मासि कार्त्तिकेयं प्रपूजयेत् ।
स्नानदानादिकं सर्वमस्यामक्षय्यमुच्यते ॥
सप्तम्यां प्राशयेच्चापि भोज्य विप्रान् रविं यजेत् ॥१
ॐ खखोल्कायमृतत्वं प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा ।
अष्टम्यां पारणं कुर्य्यान्मरिचं प्राश्य स्वर्गभाक् ॥२
सप्तम्यां नियतः स्नात्वा पूजयित्वा दिवाकरम् ।
दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्तण्डः प्रीयतामिति ॥३
खर्जूरं नारिकेलं वा प्राशयेन्मातुलुङ्गकम् ।
सर्वे भवन्तु सफला मम कामाः समन्ततः ॥४
संपूज्य देवं सप्तम्यां पायसेनाथ भोजयेत् ।
विप्रांश्च दक्षिणां दत्त्वा स्वयश्चाथ पयः पिबेत् ॥५
भक्ष्यं चोष्यं तथा लेह्यं ओदनेति प्रकीर्त्तितम् ।
धनपुत्रादिकामस्तु त्यजेदेतदनोदनः ॥६
वाय्वाशी विजयेच्छुश्च कुर्य्याद्विजयसप्तमीम् ।
अद्यादर्कञ्च कामेच्छुरुपवासेत कामदम् ॥७
गोधूममापयवषष्टिककास्यपात्रं पापाणपिष्टमधुमैथुनमद्यमांसम् ।
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलांश्च विवर्जयेद्यः
तस्योषितं भवति सप्तसु सप्तमीषु ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसी प्रकार से भाद्र पद मास मे स्वामि कार्त्तिकेय का पूजन करना चाहिए। स्नान—दान आदि सब इसमे अक्षय हो जाता है। सप्तमी मे परमोत्तम भोज्य पदार्थ ब्राह्मणों को खिलावे और रवि का यजन करे ॥१॥ इसके यजन करने का मन्त्र—'ॐ खखोल्कायामृतत्व प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा'—यह होता है। फिर अष्टमी के दिन पारणा करे अर्थात् उपवास के व्रत को खोले। मरिच का प्राशन करके स्वर्ग के निवास का फल प्राप्त करता है। इतिमरिच सप्तमी ॥ २ ॥ सप्तमी तिथि में नियत रूप से स्नान करके भगवान् दिवाकर का पूजन करे और इसके अनन्तर भगवान् मार्त्तण्ड मुझ पर प्रसन्न हो यह कहकर विप्रों को फल देवे। खर्जूर अथवा नारियल या मातुलुङ्ग का प्राशन करावे और यह प्रार्थना करे कि मेरे समस्त काम सभी ओर से सफल होवे' ॥३।४॥ इति फल सप्तमी विधानम्। सप्तमी के दिन देव का भली-भाँति पूजन करके विप्रों को पायस (खीर) से भोजन करावे और उन्हे दक्षिणा समर्पित करे। इसके पश्चात् स्वयं भी पय का पान करे ॥ ५ ॥ भक्ष्य—चोष्य और लेह्य अोदन—यह कहा गया है। धन और पुत्र आदि की कामना रखने वाला इसका त्याग कर देवे और अनोदन रहे ॥ ६ ॥ इति अनोदन सप्तमी विधानम्। जो विजय की इच्छा रखने वाला हो वह वायु का अशन करता हुआ विजय सप्तमी को करे और अर्क का अदन करे। कामेच्छु कामद का उपवास करे ॥ ७ ॥ गोधूम (गेंहू)—माष (उर्द)—यव (जौ)—षष्टिक और काँसे के पात्र—पाषाण पिष्ट मधु—मैथुन—मदिरा—माँस—अभ्यञ्जन—अञ्जन और तिल इन सबका त्याग कर देवे तो उसका उपवास सात सप्तमियों में होता है ॥८॥

८४—रोहिणी अष्टमी व्रत

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः।
दूर्वा गौरी गणेशश्च फलपुष्पैः शिवं यजेत ॥१
फलश्रीह्यादिकरणैः शम्भवे नमः शिवाय च।
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि ह्यष्टमी सर्वकामभाक् ॥
अनग्निपक्वमश्नीयान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२

कृष्णाष्टम्याञ्च रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्चनं हरे ।
कार्य्या विद्धापि सप्तम्या हन्ति पाप त्रिजन्मकम् ॥३
उपोषितोऽर्चयेन्मन्त्रैस्तिथिभान्ते च पारणम् ।
योगाय योगपतये गोविन्दाय नमो नम. ॥४
स्नानमन्त्र । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये
यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नम. ।
अर्चनमन्त्र' । विश्वाय विश्वेश्वराय
विश्वपतये गोविन्दाय नमो नम ॥५
शयनमन्त्र । सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय
सर्वसम्भवाम गोविन्दाय नमो नम ।
स्थण्डिले पूजयेद्देव सचन्द्रा रोहिणीन्तथा ॥६
शङ्खे तोय समादाय भपुष्पफलचन्दनम् ।
जानुभ्यामवनी गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भाद्रपद मास मे शुक्ल पक्ष की अष्टमी मे उपवास करके दूर्वा–गौरी—गणेश और शिव का फल तथा पुष्पो से यजन करे ॥१॥ फल और व्रीहि आदि उपकरणो के द्वारा शम्भु के लिये और शिव के लिये नमस्कार है । हे दूर्वे ! तुम अमृत जन्मा हो । यह अष्टमी समस्त कामनाओं के फल देने वाली है । जो अग्नि मे पक्व न हो उसका अशन करे तो ब्रह्महत्या से भी मोचन हो जाया करता है ॥ २ ॥ इति दूर्वाष्टमी विधानम् । कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जबकि रोहिणी नक्षत्र हो, अर्ध रात्रि के समय मे भगवान् हरि का अर्चन करे । सप्तमी तिथि से विद्धा अष्टमी तिथि को यजन करे तो तीन जन्मों के पापो का हनन होता है ॥ ३ ॥ उपोषित होकर तिथि तथा नक्षत्र के अन्त मे मन्त्रो से अर्चना करनी चाहिए और फिर पारणा करे । योग के लिये–योग पति के लिये और गोविन्द के लिये वारम्वार नमस्कार है ॥४॥ ॥५॥ स्नान का मन्त्र यह है–"यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञ सम्भवाय गोविन्दाय नमो नम " । अर्चना का मन्त्र यह है–"विश्वाय विश्वेश्वराय विश्व पतये गोविन्दाय नमो नम" । शयन का मन्त्र यह है—"सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय सर्व

मम्भवाय गोविन्दाय नमो नम "। स्थण्डिल में देव का पूजन करे तथा चन्द्र सहित रोहिणी का पूजन करे ॥६॥ शङ्ख में जल भरकर पुष्प फल और चन्दन उसमें मिलावे। घुटनों के बल भूमि पर बैठ कर चन्द्रदेव के लिये अर्घ्य निवेदित करे ॥ ७ ॥

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्के म रोहिण्या सहितो मम ॥८
श्रियै च वसुदेवाय नन्दाय च बलाय च।
यशोदायै ततो दद्यादर्घ्यं फलसमन्वितम् ॥६
अनव वामन शौरि वैकुण्ठ पुरुषोत्तमम्।
वासुदेव हृषीकेश माधव मधुसूदनम् ॥१०
वराह पुण्डरीकाक्ष नृसिंह दैत्यसूदनम्।
दामोदर पद्मनाभ केशव गरुडध्वजम् ॥११
गोविन्दमच्युत देवमनन्तमपराजितम्।
अधोक्षज जगद्बीज स्वर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥१२
अनादिनिधन विष्णु त्रिलोकेश त्रिविक्रमम्।
नारायण चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१३
पीताम्बरधर दिव्य वनमालाविभूषितम्।
श्रीवत्साङ्क जगद्धाम श्रीपति श्रीधर हरिम् ॥१४
य देव देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नम ॥
नामान्येतानि सकीर्त्य गरयर्थं प्रार्थयेत्पुन ॥१५

चन्द्र देव को अर्घ्य समर्पित करने के समय में प्रार्थना करे—हे क्षीर सागर से जन्म ग्रहण करने वाले देव ! आपका समुद्भव अत्रि मुनि के नेत्रों से हुआ है। हे शश के अङ्क वाले देव ! आप रोहिणी अपनी भार्या के सहित मेरे इस समर्पित अर्घ्य को ग्रहण करें ॥८॥ इसके अनन्तर श्री के लिये–वसुदेव को–नन्द को–बलराम को और यशोदा के लिए फलों से समन्वित अर्घ्य समर्पित करना चाहिए ॥६॥ अघ से रहित–वामन–शौरि–वैकुण्ठ—पुरुषोत्तम–वासुदेव–

हृषीकेश–माधव–मधुसूदन–वराह–पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले–नृसिंह–दैत्य सूदन—दामोदर—पद्मनाभ—केशव—गरुडध्वज–गोविन्द–अच्युत– अनन्तदेव–अपराजित—अधोक्षज–जगत् के बीज अर्थात् कारण स्वरूप–इसलोक का सृजन स्थिति और अन्त करने वाले–आदि और निधन से रहित–तीनों लोकों के ईश–त्रिविक्रम—विष्णु—नारायण–चार बाहुओं वाले–शङ्ख–चक्र और गदा के धारण करने वाले—पीत अम्बरों के धारण करने वाले–दिव्य वनमाला से विभूषित–श्री वत्स का अङ्क धारण करने वाले—जगत् के धाम–श्री के स्वामी–श्रीधर–हरि और जिस देव को देवी देवकी ने वसुदेव से समुत्पन्न किया था जो भीम ब्रह्म की गुप्ति के लिये स्थित हैं उन ब्रह्मात्मा के लिये मेरा नमस्कार है ॥ १० से १५॥

त्राहि मा सर्वपापघ्न दु खशोकार्णवात्प्रभो ॥१६
देवकीनन्दन श्रीश हरे ससारसागरात् ।
दुर्वृत्तास्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ॥
सोऽह देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मा शोकसागरात् ॥१७
पुष्कराक्ष निमग्नोऽह महत्यज्ञानसागरे ।
त्राहि मा देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता ॥१८
स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम. ॥
शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक् ॥१९
त्राहि मा देवदेवेश हरे ससारसागरात् ।

इन उपर्युक्त शुभ भगवन्नामों का सकीर्त्तन करके फिर सुगति प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करे—हे देवकी के नन्दन आप श्री के स्वामी हैं और समस्त सासारिक दु ख एव पापों के हरण करने वाले हैं। हे विष्णो ! जो आपका एक-एक बार भी स्मरण करता है वह चाहे कैसा भी दूषित आचार एव चरित्र वाला हो उसको प्रभु इस संसार रूपी सागर से तार दिया करते हैं। हे देव ! मैं भी अत्यन्त दुर्वृत्त अर्थात् दुष्ट चरित्र वाला हूँ। आप मुझको शोक के सागर से सुरक्षित करें ॥१६।१७॥ हे पुष्कर (कमल) के समान नेत्रों वाले ! मैं इस

महान् अज्ञान के समुद्र मे निमग्न हो रहा हूँ। हे देवो के भी देव स्वामिन्! मेरा त्राण करो। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नही है ॥१८॥ अपना जन्म धारण करके ही आप वासुदेव हुए हैं—आप सर्वदा गौ और ब्राह्मणो के हित सम्पादन करने वाले हैं। आप इस सम्पूर्ण जगत् के हित करने वाले हैं। ऐसे गोविन्द कृष्ण आपके लिये बारम्बार प्रणाम है। सर्वत्र शान्ति होवे–शिव अर्थात् मङ्गल होवे और धन तथा विशेष ख्याति और राज्य की प्राप्ति करने वाला होवे ॥१९॥

८५—बुधाष्टमी व्रत

नक्ताशी त्वष्टमीं यावद्वर्षान्ते चैव धेनुदः।
पौरन्दरपदं याति सद् गतिश्च व्रतेऽच्युत ॥१
शुक्लाष्टम्यां पौषमासे महारुद्रे ति साधु वै।
मत्प्रीतये व्रतकृत शतसाहस्रिकं फलम् ॥२
अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा।
भविष्यति तदा तस्यां व्रतमेतत्कथा पुरा ॥
तस्यां नियमकर्त्तारो न स्यु: खण्डितसम्पदः ॥३
तण्डुलस्याष्टमुष्टीना वर्जयित्वाऽङ्गुलिद्वयम्।
भक्तं शक्तिश्रद्धाभ्यां मुक्तिकामी हि मानवः ॥४
आम्रपत्रपुटे कृत्वा यो भुंक्ते कुशावेष्टिते।
फलम्बिपाम्लिकोपेतं काम्य तस्य फलं भवेत् ॥५
बुधं पञ्चोपचारेण पूजयित्वा जलाशये।
शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्करी तण्डुलान्विताम् ॥६
बुं बुधायेति बीजः स्यात्स्वाहान्तः कमलादिकः।
बाणचापधरं श्याम दले चाङ्गानि मध्यतः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे अच्युत! वर्ष पर्यन्त अष्टमी के दिन रात्रि में अशन करे और वर्ष के अन्त मे धेनु का दान करे तो इस व्रत मे पुरन्दर (इन्द्र) के पद को प्राप्त होता है और उस व्रत करने वाले की सद्गति हो जाया करती

है ।।१।। पौष मास मे शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि मे महा रुद्र–इस साधु व्रत को मेरी प्रीति के लिये करे तो सैकडो–सहस्रो गुना फल प्राप्त होता है ।। २ ।। जब दोनो पक्षो मे अष्टमी तिथि बुधवार से संयुत होगी उस समय मे उस अष्टमी मे यह व्रत होता है । यह प्राचीन कथा है । उस अष्टमी मे नियमो के करने वाले कभी भी खण्डित सम्पदा वाले नही हुआ करते हैं अर्थात् उनकी सम्पत्ति कभी नष्ट नही होती है ।। ३ ।। मुक्ति की कामना रखने वाले मनुष्य को आठ मुट्ठियो के चावलो का भक्त (भात) दो अँगुलियाँ छोडते हुए सद्भक्ति और श्रद्धा के साथ आम के पत्तो के पुट में (दोना) मे करके कुशा से वेष्टित आसन पर भोजन करना चाहिए । वह कलम्बिकाम्लिका से युक्त हो तो उसका काम्य फल प्राप्त होता है ।।४।५।। जलाशय मे पाँच पूजन के प्रमुख उपचारो के द्वारा बुध का पूजन करे और अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवे जोकि तण्डुलों से अन्वित कर्करी हो ।।६।। कमला जिसके आदि मे और स्वाहा जिसके अन्त मे है ऐसा 'बुं बुधाय"–यह बीज होता है । मध्य मे बाण और चाप को धारण करने वाला श्याम रूप और दलो मे अङ्ग होने चाहिए ।।७।।

बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम् ।
पुरे पाटलिपुत्राख्ये वीरो नाम द्विजोत्तमः ।।८
रम्भा भार्य्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तमः ।
दुहिता विजयानाम्नी धनपालो वृषोऽभवत् ।।९
गृहीत्वा कौशिकस्तञ्च ग्रीष्मे गङ्गां गतोऽरमत् ।
गोपालकैर्वृषश्चौरैः क्रीडन्नपहृतो बलात् ।।१०
गङ्गातः स च उत्थाय वनं बभ्राम दुःखितः ।
जलार्थं विजया चागाद् भ्रात्रा सार्द्धञ्च साप्यगात् ।।११
पिपासितो मृणालार्थी आगतोऽथ सरोवरम् ।
दिव्यस्त्रीणाञ्च पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्यथ विस्मितः ।।१२
स ता गत्वा ययाचेऽन्नं सानुजोऽहं बुभुक्षितः ।
स्त्रियोऽन्न वन्व्रत कर्त्तुं दास्यामश्च कुरु व्रतम् ।।१३

परयर्थ घनपालार्थं पूजयामासतुर्बुधम् ।
पुटद्वयं गृहीत्वान्नं बुभुजाते प्रदत्तकम् ॥१४

परम पुण्य स्वरूपा बुधाष्टमी की कथा कृतिजनो को श्रवण करनी चाहिए। पाटिल पुत्र (पटना) नाम वाले नगर मे वीर नाम धारी एक द्विज था ॥८॥ उसकी पत्नी का नाम राम था और उसका कौशिक नाम वाला एक उत्तम पुत्र था। विजया नाम वाली उसकी पुत्री थी और धनपाल वृष था ॥६॥ कौशिक उस धनपाल को लेकर ग्रीष्म ऋतु में गङ्गा नदी पर चला गया था और वहाँ क्रीडासक्त होगया था। वहाँ पर गोपालक चोरो के द्वारा वह वृष बल पूर्वक अपहरण कर लिया गया था ॥१०॥ वह कौशिक गङ्गा मे जो जल क्रीडा कर रहा था वहाँ से उठकर परम दु खित होता हुआ वन में भ्रमण करने लगा था जल लाने के लिये वहाँ विजया आगई थी और भाई के साथ वह भी चली गई ॥११॥ वह प्यासा और मृणालका इच्छुक वह इसके अनन्तर सरोवर पर आ गया था। वहाँ पर उसने दिव्य (देवो की) स्त्रियो की पूजार्चना आदि को देखकर अत्यन्त विस्मय किया था। उसने उन स्त्रियो के पास मे पहुँच कर कुछ अन्न की याचना की थी और उनसे निवेदन किया था कि मैं अपनी अनुजा के साथ अत्यन्त भूखा हू। उन अर्चना करने वाली स्त्रियो ने उससे कहा था कि तुम भी इस व्रत को करो। हम तुमको प्रसादि देवेंगी ॥ १२।१३ ॥ कन्या ने पति की प्राप्ति के लिये और कौशिक ने धनपाल वृष को प्राप्त करने के लिये बुध की पूजा की थी। इसके उपरान्त दो पुट मे दिये हुए अन्न को उन दोनो ने खाया था ॥१४॥

स्त्रियो गतो च धनदो धनपालमपश्ययाम् ।
चोरैर्दत्त गृहीत्वाथ प्रदोषे प्राप्तवान् गृहम् ॥१५
वीरस्च दुःखितं नत्वा राज्ञो सुतो यथासुखम् ।
कन्यास्च युवती दृष्ट्वा कस्मै देया सुता मया ॥१६
यमायेत्यब्रवीद् दुःखात्साचाराद् व्रतमत्फलात् ।
स्वर्गं गतो च पितरो व्रतं राज्याय कौशिकः ॥१७

है ॥१॥ पौष मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में महा रुद्र–इस साधु व्रत को मेरी प्रीति के लिये करे तो सैंकडो–सहस्रों गुना फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जब दोनों पक्षों में अष्टमी तिथि बुधवार से सयुत होगी उस समय में उस अष्टमी में यह व्रत होता है। यह प्राचीन कथा है। उस अष्टमी में नियमों के करने वाले कभी भी खण्डित सम्पदा वाले नहीं हुआ करते हैं अर्थात् उनकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती है ॥ ३ ॥ मुक्ति की कामना रखने वाले मनुष्य को आठ मुट्ठियों के चावलों का भक्त (भात) दो अँगुलियाँ छोडते हुए सद्भक्ति और श्रद्धा के साथ आम के पत्तों के पुट में (दोना) में करके कुशा से वेष्टित आसन पर भोजन करना चाहिए। वह कलम्बिकाम्लिका से युक्त हो तो उसका काम्य फल प्राप्त होता है ॥४।५॥ जलाशय में पाँच पूजन के प्रमुख उपचारों के द्वारा बुध का पूजन करे और अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवे जोकि तण्डुलों से अन्वित कर्करी हो ॥६॥ कमला जिसके आदि में और स्वाहा जिसके अन्त में है ऐसा 'बुं बुधाय"–यह बीज होता है। मध्य में बाण और चाप को धारण करने वाला श्याम रूप और दलों में अङ्ग होने चाहिए ॥७॥

बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम् ।
पुरे पाटलिपुत्राख्ये वीरो नाम द्विजोत्तमः ॥८
रम्भा भार्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तम. ।
दुहिता विजयानाम्नी धनपालो वृषोऽभवत् ॥९
गृहीत्वा कौशिकस्तञ्च ग्रीष्मे गङ्गां गतोऽरमत् ।
गोपालकैर्वृ षश्चौरैः क्रीडन्नपहृतो बलात् ॥१०
गङ्गातः स च उत्थाय वनं बभ्राम दुःखितः ।
जलार्थं विजया चागाद् भ्राता सार्द्धं च साप्यगात् ॥११
पिपासितो मृणालार्थी आगतोऽथ सरोवरम् ।
दिव्यस्त्रीणाञ्च पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्यथ विस्मित. ॥१२
स ता गत्वा ययाचेऽन्नं सानुजोऽहं बुभुक्षितः ।
स्त्रियोऽन्नं चव्रतं कर्त्तुं दास्यामश्च कुरु व्रतम् ॥१३

शुक्लाष्टम्यामश्वयुजे उत्तराषाढया युता ।
सा महानवमीत्युक्ता स्नानदानादि चाक्षयम् ॥३
नवमी केवला चापि दुर्गाश्चैव तु पूजयेत् ।
महाव्रत महापुण्य शङ्कराद्यैरनुष्ठितम् ॥४
अयाचितादि षष्ठ्याद्यौ राजा शत्रुजयाय च ।
जपहोमसमायुक्त कन्या वा भोजयेत्सदा ॥५
दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा मन्त्रोऽय पूजनादिषु ।
दीर्घाकाराभिर्मात्राभिर्नवदेव्यो नमोऽन्तिका ॥६
षड्भिः पदैर्नम. स्वाहा वषडादि हृदादिकम् ।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्त विन्यस्य पूजयेच्छिवाम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि मे जबकि पुनर्वसु नक्षत्र हो अशोक वृक्ष की आठ कलिकाओं का जो पुरुष उस दिन पान किया करते हैं वे कभी भी शोक की प्राप्ति नही करते हैं अर्थात् उन्हे कभी कोई शोक होता ही नहीं है ॥ १ ॥ पान करने के समय मे यह प्रार्थना करे कि हे अशोक ! आप भगवान् हर के परम अभीष्टतम हो और आपका उद्भव मधु मास म होता है । मैं शोक से प्रतीव सन्तप्त होकर तुम्हारा पान करता हूं । अतएव कृपया मुझे सदा शोक से रहित कर दो ॥२॥ इति अशोकाष्टमी विधानम् ब्रह्माजी ने कहा—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि मे जोकि उत्तराषाढा नक्षत्र से युक्त हो । वह महा नवमी इस नाम से कही गई है । इस दिन म जो स्नान एव दान आदि किये जाते हैं वे सब अक्षय हो जाते हैं ॥ ३ ॥ यदि केवल नवमी हो तो भगवती दुर्गा की उस दिन पूजार्चना करनी चाहिए । यह महा व्रत महान् पुण्य प्रद होता है । इसको शङ्कर आदि ने किया है ॥४॥ षष्ठी आदि मे अयाचित आदि का ग्रहण करे । राजा को अपने शत्रु पर जय प्राप्त करने के लिये इसे करना चाहिए । जप—होम से समायुक्त होकर सदा कन्याओं को भोजन करावे ॥५॥ पूजन आदि कर्मों मे 'दुर्गे ! दुर्गे ! रक्षिणी स्वाहा'—इस मन्त्र का प्रयोग करे । दीर्घ आकार वाली मात्राओं से नौ देवियों के अन्त में नम —इस शब्द का प्रयोग करे । छै पदों के द्वारा नम —स्वाहा—वषट् आदि

चक्रेऽयोध्यामहाराज्यं दत्त्वा च भगिनी यमे ।
यमोऽपि विजयामाह गृहस्था भव मे पुरे ॥१८
अपश्यन्मातरं स्वा सा पाशयातनया स्थिताम् ।
अथोद्विग्ना च विजया ज्ञात्वा विमुक्तिदं व्रतम् ॥१९
चक्रे च सा ततो मुक्ता माता तस्याः कृतव्रता ।
व्रतपुण्यप्रभावेण स्वर्गं गत्वावसत्सुखम् ॥२०

इसके पश्चात् स्त्रियाँ और धनद चले गये। उन दोनो ने धनपाल को वहाँ देखा था। चोरो के द्वारा प्रदत्त धनपाल को लेकर वह प्रदोष के समय में अपने घर मे प्राप्त हो गया था॥ १५ ॥ परम दु खित वीर को प्रणाम करके रात्रि मे सुख पूर्वक सो गया था। कन्या को यौवन की अवस्था मे देखकर उसे बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं इस कन्या को किसे समर्पित करूँ ॥१६॥ आचार से समन्वित इस व्रत के सत्फल से वह दुख से यम से यह बोला—मेरे माता-पिता दोनो स्वर्गगामी होगये और कौशिक ने राज्य की प्राप्ति के लिये व्रत किया था। अयोध्या के महान् राज्य को देकर भगिनी को यम को दे दिया था। वह यम भी विजया से बोला—अब तुम मेरे पुर मे गृहस्थ धर्म पालन करने वाली हो जाओ ॥१७।१८॥ फिर उस पाशाया तनया ने अपनी माता को वहाँ पर अवस्थित देखा था। इसके अनन्तर उस विजया ने विमुक्ति के प्रदान करने वाले इस व्रत का ज्ञान प्राप्त करके बहुत हो उद्वेग किया था। इसके पश्चात् उसने भी इस व्रत को किया था और इससे उसकी माता मुक्त हो गई थी। इस व्रत के परम पुण्य के प्रभाव से वह स्वर्ग लोक में पहुँच कर वहाँ सुख पूर्वक निवास करने लगी थी ॥१९।२०॥

८६—महानवमी व्रत

अशोककलिका ह्यष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्या न ते शोकमवाप्नुयुः ॥१
त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥२

कुम्भांश्च मोदकान्दद्याज्जागरं कारयेन्निशि ।
स्नात्वा पीत्वाऽर्चयित्वा तु कृतपुष्पाञ्जलिर्वदेत् ।।६
नमो नमस्ते गोविन्द बुध श्रवणसञ्ज्ञक ।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।।१०
प्रीयतां देवदेवेशो विप्रेभ्यः कलशान्ददेत् ।
नद्यास्तीरेऽथवा कुर्य्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।११

"ॐ नमः श्रीपतये"—इससे वक्षः स्थलका और "ॐ नमः सर्वास्त्रधारिणे"—इससे भुजाओं का यजन करे । "ॐ नमो व्यापकाय"—यह मन्त्र कह कर कुक्षियों का और "ॐ नमः केशवाय"—इससे बुध को उदर का यजनार्चन करना चाहिए ।।७।। 'ॐ नमः त्रैलोक्य पतये'—इससे मेढ़का—"ॐ नमः सर्व पतये"—इससे दोनों जांघों का तथा "ओ नमः सर्वात्मने"—इससे चरणों का यजन करे । इसके पश्चात् नैवेद्य घृत पायस—कुम्भों को और मोदकों को समर्पित करे । रात्रि में जागरण करे । स्नान करके—पान करके और अर्चना करके अञ्जलियों में पुष्प लेकर प्रार्थना करे ।। ८।६ ।। हे श्रवण संज्ञा वाले बुध ! हे गोविन्द ! आपको बारम्बार प्रणाम है । आप मेरे अघों के समूह का क्षय करके समस्त प्रकार के सुखों के प्रदान करने वाले होवें ।।१०।। हे देवों के देवों के भी स्वामिन् ! आप मुझ पर प्रसन्नता करें । फिर उन कलशों को विप्रों के लिये दान कर देवे । इस कार्य क्रम का अनुष्ठान किसी नदी के तट पर करे तो सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति होती है ।।११।।

८८—मदनत्रयोदशी आदि के व्रत

कामदेवत्रयोदश्यां पूजा दमनकादिभिः ।
रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः ।।१
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
योऽब्दमेकं न भुञ्जीत भुक्तिभाक् शिवपूजनात् ।।२
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्कार्त्तिक्यां भवनं शुभम् ।
सूर्य्यलोकमवाप्नोति धामव्रतमिदं शुभम् ।।३

महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ॥
सङ्गमे सरितां स्नानं बुधयुक्ता महाफला ॥४
कुम्भे सरत्ने सजले यजेत्स्वर्णं तु वामनम् ।
सितवस्त्रयुगच्छन्न छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥५
ॐ नमो वासुदेवाय शिरः संपूजयेत्ततः ।
श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै नमः ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम श्रावण की द्वादशी के विषय में वर्णन करते हैं जो भुक्ति और मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाली होती है। एकादशी हो अथवा द्वादशी तिथि हो किन्तु श्रवण नक्षत्र से संयुत होनी चाहिए। वह तिथि विजया कही गई है। इसमें हरि की पूजा अक्षय पुण्य-फल वाली होती है ॥१॥ एक वक्त अर्थात् एकबार रात्रि के भोजन से-तथा अयाचित भोजन से-उपवास से और भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन से अद्वादशिक नहीं होता है। अर्थात् द्वादशी व्रत का नाश करने वाला नहीं होता है ॥२॥ कांसे का पात्र—माँस—क्षौद्र (मधु)—लोभ—मिथ्या भाषण—व्यायाम—व्यवाय (मैथुन)—दिन में शयन (निद्रा) करना—अञ्जन—शिलापिष्ट (पत्थर से या पाषाण पर पिसे हुए पदार्थ) और मसूर इन सबका द्वादशी में वर्जन कर देना चाहिए ॥३॥ भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र से अन्वित हो उसे एक सबसे बड़ी द्वादशी समझना चाहिए। इसके उपवास का महान् फल होता है। संगम में सरिताओं का स्नान बुध से युक्त हो तो महान् फल वाली होती है ॥ ४ ॥ रत्नों से परिपूर्ण एवं जल से भरे हुए कुम्भ में स्वर्ण में वामनदेव का यजन करे जो दो श्वेत वस्त्रों से समाच्छन्न हो और छत्र और उपानत् के युग से समन्वित होवें ॥५॥ इसके अनन्तर "ॐ नमो वासुदेवाय"—इस मन्त्र का उच्चारण करके शिर का यजन करे। "ॐ नमः श्रीधराय"—इससे मुख का और "ॐ नमः कृष्णाय"—इससे कण्ठ की अर्चना करनी चाहिए ॥६॥

नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे ।
व्यापकाय नमः कुक्षौ केशवायोदरं बुधः ॥७
त्रैलोक्यपतये मेढ्रं जङ्घे सर्वभृते नमः ।
सर्वात्मने नमः पादौ नैवेद्यं घृतपायसम् ॥८

कुम्भांश्च मोदकान्दद्याज्जागरं कारयेन्निशि ।
स्नात्वा पीत्वाऽर्चयित्वा तु कृतपुष्पाञ्जलिर्वदेत् ।।६
नमो नमस्ते गोविन्द बुध श्रवणसंज्ञक ।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।।१०
प्रीयतां देवदेवेशो विप्रेभ्यः कलशान्ददेत् ।
नद्यास्तीरेऽथवा कुर्य्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।११

"ॐ नमः श्रीपतये"—इससे वक्षः स्थलका और "ॐ नमः सर्वास्त्रधारिणे"—इससे भुजाओं का यजन करे । "ॐ नमो व्यापकाय"—यह मन्त्र कहकर कुक्षियों का और "ॐ नमः केशवाय"—इससे बुध को उदर का यजनार्चन करना चाहिए ।।७।। "ॐ नमः त्रैलोक्य पतये"—इससे मेढ्का—"ॐ नमः सर्व पतये"—इससे दोनों जांघों का तथा "ओं नमः सर्वात्मने"—इससे चरणों का यजन करे । इसके पश्चात् नैवेद्य घृत पायस—कुम्भों को और मोदकों को समर्पित करे । रात्रि में जागरण करे । स्नान करके—पान करके और अर्चना करके अञ्जलियों में पुष्प लेकर प्रार्थना करे ।। ८।६ ।। हे श्रवण संज्ञा वाले बुध ! हे गोविन्द ! आपको बारम्बार प्रणाम है । आप मेरे अघों के समूह का क्षय करके समस्त प्रकार के सुखों के प्रदान करने वाले होवें ।।१०।। हे देवों के देवों के भी स्वामिन् ! आप मुझ पर प्रसन्नता करें । फिर उन कलशों को विप्रों के लिये दान कर देवे । इस कार्य क्रम का अनुष्ठान किसी नदी के तट पर करे तो सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति होती है ।।११।।

८८—मदनत्रयोदशी आदि के व्रत

कामदेवत्रयोदश्यां पूजा दमनकादिभिः ।
रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः ।।१
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
योऽब्दमेकं न भुञ्जीत भुक्तिभाक् शिवपूजनात् ।।२
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्कार्त्तिक्यां भवनं शुभम् ।
सूर्य्यलोकमवाप्नोति धामव्रतमिदं शुभम् ।।३

अमावस्या पितृणाञ्च दत्तं जलादि चाक्षयम् ।
नक्ताभ्याशी वारनाम्ना यजन्वारिणि सर्वभाक् ॥४
द्वादशर्क्षाणि विप्रर्षे प्रतिमासन्तु यानि वै ।
तन्नाम्ना तेऽच्युत तेषु सम्यक्सपूजयेन्नर. ॥५
केशव मार्गशीर्षे तु इत्यादौ कृत्तिकादिका ।
घृतहोमश्चतुर्मास कृसरञ्च निवेदयेत् ॥६
आषाढादौ पायसन्तु विप्रास्तेनैव भोजयेत् ।
पञ्चगव्यजले स्नान नैवेद्यं नक्तमाचरेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव त्रयोदशी के दिन दमनक आदि के द्वारा रति और प्रीति से समायुक्त होकर करे तो शोक से रहित और महा सम्मान से विभूषित हो जाता है ॥१॥ इति मदन त्रयोदशी पूजा विधानम् । शुक्ल और कृष्ण पक्षो की चतुर्दशी तिथि मे तथा अष्टमी तिथि के दिन मे जो एक वर्ष पर्यन्त भोजन न करे अर्थात् उपवास करे एव भगवान् महेश्वर शिव का पूजन करे तो उसे समस्त भोगो की प्राप्ति हुआ करती है । इति चतुर्दश्यष्टमी व्रत विधानम् ॥२॥ कार्त्तिकी मे तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करके शुभ भवन का दान करे तो वह सूर्यलोक को जाया करता है । यह परम शुभ धाम व्रत कहलाता है ॥ ३ ॥ अमावस्या तिथि के दिन पितृगणोंश्वरो को दिया हुआ जल अर्थात् किया हुआ तर्पण अक्षय होता है । नक्त अर्थात् रात्रि के अभ्यास वाला वार के नाम से वारि मे (जल मे) यजन करता हुआ सभी कुछ की प्राप्ति करने का श्रेय लाभ किया करता है । इति वार व्रतानि ॥ ४ ॥ हे विप्रर्षे ! प्रतिमास मे जो बारह नक्षत्र होते हैं उनके नामो से उनमे मनुष्य को भगवान् अच्युत का भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥५॥ मार्ग शीर्ष में कृत्तिका आदि मे केशव का यजन करे । चार मास तक घृत को होमें और कृसर को निवेदित करे ॥६॥ आषाढादि में पायस का होम करे, इसे ही समर्पित करे और पायस (खीर) से ही विप्रो को भोजन करावे । पञ्चगव्य के जल से स्नान करे और नैवेद्य से रात्रि मे समाचरण करना चाहिए ॥७॥

अर्वाग्विसर्जनाद् द्रव्य नैवेद्य सर्वमुच्यते ।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्य भवति क्षणात् ॥८

पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्य भुञ्जते स्वयम् ।
एवं संवत्सरस्यान्ते विशेषेण प्रपूजयेत् ॥९
नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धि समुपैति पुण्यम् ।
ऐश्वर्यवित्ता द सदाऽक्षय मे तथास्तु मे सन्ततिरक्षयैव ॥१०
यथाच्युत त्वं परत परस्मात्स ब्रह्मभूत परत परस्मात् ।
तथाच्युत मे कुरु वाञ्छित सदा मया कृत पापहराप्रमेय ॥११
अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् ।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१२

विसर्जन करने के पूर्व म सब द्रव्य नैवेद्य कहा जाया करता है । जगत् मे नाथ भगवान् के विसर्जित कर देन पर एक ही क्षण मे वह सब निर्माल्य हो जाता है ॥८॥ पञ्चरात्र के ज्ञाता मुख्य नैवेद्य को स्वय खाते हैं । इस प्रकार से संवत्सर के अन्त मे विशेष रूप से पूजन करना चाहिए ॥९॥ प्रार्थना इस तरह करे—हे अच्युत ! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है । मेरे सम्पूर्ण पापो का सक्षय हो जावे और मेरे पुण्य की वृद्धि होवे । मेरा ऐश्वर्य और वित्त आदि सदा अक्षय हो जावे और इसी भाँति मेरी सन्तति भी अक्षय हो जावे ॥१०॥ हे अच्युत देव ! जिस प्रकार से आप पर से भी पर हैं और पर से पर मे अव-स्थित आप ब्रह्म भूत हैं वैसे ही हे अच्युत ! आप सदा मेरे वाञ्छित को भी कर देवे । हे अप्रमेय देव ! आप सदा किय हुए पापो को हरण कर देवें ॥११॥ हे अच्युतान द ! हे गोविन्द ! आप प्रसन्न हूजिए । हे अमेयात्मन् ! जो भी कुछ मेरा अभीष्ट मनोरथ हो वह अक्षय हो जाव । हे पुरुषोत्तम ! आप मुझ पर ऐसी ही कृपा कर देवे ॥१२॥

युग्माद्रि सप्तवर्षाणि आयु श्रीसद् गति नर ।
उपोष्यैकादशीमष्टमष्टमीञ्च चतुर्दशीम् ॥१३
सप्तमी पूजयेद्विष्णु दुर्गां शम्भु रवि क्रमात् ।
तेन लोक समाप्नोति सर्वांश्चाक्षय निर्मल ॥१४
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन दानाद्यै पूजयन्सर्वदेवता ॥
सर्वः सर्वासु तिथिषु भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१५

धनदोऽग्नि. प्रतिपदि नासत्यो दस्र अर्चित ।
श्रीर्यमश्च द्वितीयाया पञ्चम्या पार्वती श्रिया ॥१६
नागाः षष्ठ्या कार्त्तिकेयः सप्तम्या भास्करोऽर्थद. ।
दुर्गाष्टम्या मातरश्च नवम्यामथ तक्षकः ॥१७
दशम्यामिन्द्रो धनद एकादश्या मुनीश्वरा. ।
द्वादश्याञ्च हरिः कामस्त्रयोदश्या महेश्वर. ॥
चतुर्दश्या पञ्चदश्या ब्रह्मा च पितरोऽपरे ॥१८

इस व्रत को सात वर्ष तक जो मनुष्य करता है वह आयु—श्री और सद्गति को प्राप्त किया करता है। एकादशी—अष्टमी और चतुर्दशी का एक वर्ष तक उपवास करे ॥१३॥ सप्तमी का—दुर्गा–शम्भु और क्रम से रवि का पूजन करे। इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य मल रहित परम शुद्ध होकर उन्हीं के लोक को पहुँच जाता है और उसके सम्पूर्ण काम पूर्ण हो जाते हैं॥ १४॥ एक भक्त भोजन से जोकि रात्रि में ही किया जावे तथा अयाचित भोजन से जो बिना माँगे ही प्राप्त हो जावे—शाक दि के द्वारा रहकर उपवास करके सब देवताओं का पूजन करने वाले सब सभी तिथियों में इस व्रत का पालन करे तो वे भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त किया कर करते हैं ॥१५॥ प्रतिपदा तिथि में अग्नि का अर्चन धन प्रदान करने वाला होता है। नासत्य—दस्र—श्री और यम की अर्चना द्वितीया में करे और पञ्चमी तिथि में श्री से युक्त पार्वती एवं नागों का यजन करना चाहिए। षष्ठी तिथि में स्वामि कार्त्तिकेय का पूजन करे। सप्तमी में भगवान् भुवन भास्कर का अर्चन धन प्रदान करने वाला होता है। दुर्गाष्टमी में मातृगण का यजन करे। नवमी में तक्षक का पूजन करे। दशमी तिथि में इन्द्र की अर्चना धन देने वाली है। एकादशी में मुनीश्वरों का यजन करे। द्वादशी में हरि भगवान् का पूजन करना चाहिए। त्रयोदशी में कामदेव का और चतुर्दशी में महेश्वर का एवं पञ्चदशी में ब्रह्मा एवं दूसरे पितरों का यजन करना चाहिए ॥१६॥१७॥१८॥

८६—सूर्य वंश कीर्तन

राज्ञां वंशान्प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितानि च ।
विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च तस्य वै ॥१

ततोऽदितिर्विवस्वांश्च ततो विवस्वतः सुतः ।
मनुरिक्ष्वाकुः शर्यातिर्नृ गो धृष्टः पृषध्रकः ॥
नरिष्यन्तश्च नाभागो दिष्टः शशक एव च ॥२
मनोरासीदिला कन्या सुद्यु म्नोऽस्य सुतोऽभवत् ।
इलाया तु बुधाज्जातो रजोरुद्रपुरूरवाः ।
सुतास्त्रयश्च सुद्यु म्नादुत्कलो विनतो गयः ॥३
अभूच्छूद्रो गोवधात्तु पृषध्रस्तु मनोः सुतः ।
करूषात्क्षत्रिया जाता कारूषा इति विश्रुताः ॥४
दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्स च ।
तस्माद्भलन्दनः पुत्रो वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥५
ततः प्रांशुः खनित्रोऽभूद् भूपस्तस्मात्ततः क्षुपः ।
क्षुपाद्विंशोऽभवत्पुत्रो विंशाज्जातो विविंशकः ॥६
विविंशाच्च खनीनेत्रो विभूतिस्तत्सुतः स्मृतः ।
करन्धमो विभूतेस्तु ततो जातोऽप्यविक्षित. ॥७

श्री हरि ने कहा—अब हम राजाओं के वंशों का तथा वंशों के अनुचरितों का वर्णन करते हैं। भगवान् विष्णु की नाभि में समुत्पन्न कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। उन ब्रह्मा के अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया था। इनके पश्चात् अदिति समुत्पन्न हुई और उस अदिति से विवस्वान् उत्पन्न हुए थे। विवस्वान् के पुत्र मनु हुए। इक्ष्वाकु—शर्याति—नृग—धृष्ट—पृषध्रक नरिष्यन्त—नाभाग—दिष्ट और शशक समुत्पन्न हुए थे ॥ १।२ ॥ मनु की इला नाम धारिणी कन्या हुई और सुद्युम्न नाम वाला इसका पुत्र उत्पन्न हुआ था। इला में बुध से रजो रुद्र पुरूरवा उत्पन्न हुए। सुद्युम्न से तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे जिनके नाम उत्कल—विनत और गय थे हुए थे ॥ ३ ॥ गोवध से शूद्र हुआ था पृषध्र मनु का पुत्र था। करूष से कारूष नाम से विख्यात होने वाले क्षत्रिय समुत्पन्न हुए थे ॥४॥ दिष्ट का पुत्र नाभाग था जो कि वैश्यता को प्राप्त होगया था। उससे अर्थात् नाभाग से भलन्दन नामक बालक ने जन्म ग्रहण किया था और भलन्दन का पुत्र वत्स प्रीति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५॥ इससे प्रांशु खनित्र शूर हुआ और इसका पुत्र क्षुप नामधारी हुआ। क्षुप का पुत्र विंश हुआ

और विंश से विविंशक की उत्पत्ति हुई थी ॥ ६ ॥ विविंश से खनीनेत्र नामक पुत्र पैदा हुआ तथा खनीनेत्र का पुत्र विभूति नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। विभूति का पुत्र करन्धम और करन्धम से अविविक्षित नाम वाले आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥

> मरुत्तोऽविक्षितस्यापि नरिष्यन्तस्ततः स्मृतः ।
> नरिष्यन्तात्तमो जातस्ततोऽभूद्राजवर्द्धनः ॥८
> राजवर्द्धात्सुधृतिश्च नरोऽभूत्सुधृतेः सुत ।
> नराच्च केवलः पुत्रः केवलाद् धुन्धुमानपि ॥९
> धुन्धुमतो वेगवाश्च बुधो वेगवतः सुतः ।
> तृणबिन्दुर्बुधाज्जातः कन्या चैलविला तथा ॥१०
> विशाल जनयामास तृणबिन्दोरलम्बुषा ।
> विशालाद्धेमचन्द्रोऽभूद्धेमचन्द्राच्च चन्द्रक ॥११
> धूम्राश्वश्चैव चन्द्रात्तु धूम्राश्वात्सृञ्जयस्तथा ।
> सृञ्जयात्सहदेवोऽभूत्कृशाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१२
> कृशाश्वात्सोमदत्तस्तु ततोऽभूज्जनमेजयः ।
> तत्पुत्रश्च सुमन्त्रिश्च एते वैशालका नृपा ॥१३
> शर्यातिस्तु सुकन्याऽभूत् सा भार्य्या च्यवनस्य तु ।
> अनन्तो नाम शर्यातिरनन्ताद्रेवकोऽभवत् ॥
> रैवतो रेवतस्यापि रेवताद्रेवती सुता ॥१४

अविविक्षित का सुत मरुत् हुआ और फिर उस मरुत् से नरिष्यन्त नाम वाला पुत्र हुआ था। नरिष्यन्त से तम और तम का पुत्र राज वर्द्धन समुत्पन्न हुआ था। इस राज वर्द्धन से धृति और सुधृति का सुत नर नामधारी उत्पन्न हुआ था। नर का पुत्र केवल और इसका पुत्र धुन्धुमान् हुआ था ॥८।९॥ धुन्धुमान् का वेगवान् और वेगवान् का बुध तथा बुध का पुत्र तृणबिन्दु और एक ऐलविला नाम धारिणी कन्या हुई थी ॥ १० ॥ तृण बिन्दु से अलम्बुषा ने विशाल को उत्पन्न किया था। विशाल से हेमचन्द्र ने जन्म लिया था और हेमचन्द्र से चन्द्रक नाम वाला आत्मज समुत्पन्न हुआ था ॥११॥ चन्द्र से धूम्राश्व

सृञ्जय, सृञ्जय से सहदेव और सहदेव से कृशाश्व नामक सुत ने जन्म लिया था ॥१२॥ कृशाश्व का पुत्र सोमदत्त और सोमदत्त से जनमेजय ने उत्पत्ति प्राप्त की थी। इसका पुत्र सुमन्ति हुआ था। ये सब वैशालक नाम से विख्यात होने वाले नृप हुए थे। १३ ॥ शर्याति राजा के एक कन्या हुई थी जोकि च्यवन महर्षि की भार्या हुई थी। शर्याति के एक अनन्त नामक पुत्र हुआ और अनन्त का सुत रैवत उत्पन्न हुआ था। रैवत रेवत का पुत्र हुआ था और रेवत से रेवती नाम वाली एक पुत्री भी पैदा हुई थी ॥१४॥

धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्रं वैश्यक तद्बभूव ह ।
नाभागपुत्रो नेदिष्टो ह्यम्बरीषोऽपि तत्सुतः ॥१५
अम्बरीषाद्विरूपोऽभूत्पृषदश्वो विरूपतः ।
रथीनरश्च तत्पुत्रो वासुदेवपरायणः ॥१६
इक्ष्वाकोस्तु त्रयः पुत्रा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ।
इक्ष्वाकुजो विकुक्षिस्तु शशाद. शशभक्षणात् ॥१७
पुरञ्जयः शशादाच्च ककुत्स्थाख्योऽभवत्सुत. ।
अनेनास्तु ककुत्स्थाच्च पृथु. पुत्रस्त्वनेनसः ॥१८
विश्वरातः पृथो पुत्र आर्द्रोऽभूद्विश्वरातत. ।
युवनाश्वोऽभवच्चार्द्रात् श्रावस्तो युवनाश्वतः ॥१९
बृहदश्वस्तु श्रावस्तात्तत्पुत्र कुवलाश्वकः ।
धुन्धुमारो हि विख्यातो दृढाश्वश्च ततोऽभवत् ॥२०
चन्द्राश्वः कपिलाश्वश्च हर्यश्वश्च दृढाश्वतः ।
हर्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूद्धिताश्वश्च निकुम्भत. ॥२१

धृष्ट का धार्ष्टक क्षत्रिय हुआ था जोकि वैश्यक होगया था। नाभाग का पुत्र नेदिष्ट हुआ और नेदिष्ट का पुत्र अम्बरीष हुआ था ॥१५॥ राजा अम्बरीष से विरूप उत्पन्न हुआ और विरूप से पृषदश्व की समुत्पत्ति हुई थी। उसका पुत्र रथीनर नामक हुआ जो सर्वदा भगवान् वासुदेव की भक्ति में परायण रहा करता था ॥१६॥ इक्ष्वाकु राजा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम विकुक्षि निमि और दण्डक थे। इक्ष्वाकु से समुत्पन्न विकुक्षि शश के भक्षण करने से

शशाद कहलाया गया था ॥ १७ ॥ शशाद से पुरञ्जय उत्पन्न हुआ था और इसका पुत्र ककुत्स्थ नाम वाला हुआ था। ककुत्स्थ से अनेना और इसका पुत्र पृथु नामधारी उत्पन्न हुआ था ॥१८॥ पृथु का विश्वरात हुआ और विश्वरात से आर्द्र पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। आर्द्र से युवनाश्व और युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त नाम वाला था ॥ १९ ॥ श्रावस्त का पुत्र बृहदश्व और इसका पुत्र कुवलाश्वक हुआ। धुन्धुमार परम विख्यात हुआ था और इसके उपरान्त दृढाश्व से चन्द्राश्व कपिलाश्व और हर्यश्व उत्पन्न हुए थे। हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से हिताश्व समुत्पन्न हुआ था ॥२०।२१॥

पूजाश्वश्च हिताश्वाच्च तत्सुतो युवनाश्वकः।
युवनाश्वाच्च मान्धाता बिन्दुमत्यास्ततोऽभवत् ॥२२
मुचुकुन्दोऽम्बरीषश्च पुरुकुत्सस्त्रयः सुताः।
पञ्चाशत्कन्यकाश्चैव भार्यास्ताः सौभरेर्मुनेः ॥२३
युवनाश्वोऽम्बरीषाच्च हरितो युवनाश्वतः।
पुरुकुत्सान्नर्मदायां त्रसदस्युरभूत्सुतः ॥२४
अनरण्यस्ततो जातो हर्य्यश्वोऽप्यनरण्यतः।
तत्पुत्रोऽभूद् वसुमनास्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः ॥२५
त्रय्यारुणस्तस्य पुत्रस्तस्य सत्यरतः सुतः।
यस्त्रिशङ्कुः समाख्यातो हरिश्चन्द्रोऽभवत्ततः ॥२६
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो हरितो रोहिताश्वतः।
हरितस्य सुनश्चञ्चुश्चञ्चोश्च विजयः सुतः ॥२७
विजयाद्रुरुको जज्ञे रुरुकात्तु वृकः सुत।
वृकाद्बाहुर्नृपोऽभूच्च बाहोस्तु सगरः स्मृतः ॥२८

हिताश्व का पुत्र पूजाश्व और पूजाश्व का पुत्र युवनाश्वक हुआ था। युवनाश्व से मान्धाता की समुत्पत्ति हुई और मान्धाता का पुत्र बिन्दुमत्य हुआ था। इनके मुचुकुन्द—अम्बरीष और पुरुकुत्स ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे और पचास कन्याएँ हुई थीं जो सौभरि मुनि की भार्याएँ हुई थीं ॥२२।२३॥ अम्बरीष से युवनाश्व और युवनाश्व से हरित पुत्र हुआ था। पुरुकुत्स से नर्मदा में

असद्दस्यु नामक आत्मज की उत्पत्ति हुई थी ॥२४॥ उससे अनरण्य हुआ और अनरण्य से हर्यश्व समुत्पन्न हुआ। इसका पुत्र वसुमना पैदा हुआ और वसुमना से त्रिधन्वा पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥२५॥ इसके यहाँ त्र्यारुण नामधारी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था और इसका पुत्र सत्यरत हुआ था जोकि त्रिशंकु—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ ॥२६॥ हरिश्चन्द्र नृपति का पुत्र रोहिताश्व हुआ था और रोहिताश्व से हरित नामक सुत का जन्म हुआ था। हरित के पुत्र का नाम चञ्चु था और चञ्चु के पुत्र विजय ने जन्म धारण किया था ॥२७॥ विजय से रुरुक पुत्र पैदा हुआ और रुरुक से वृक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। वृक से बाहुनृप अवतीर्ण हुआ और बाहु का पुत्र सगर नामक हुआ था ॥२८॥

पष्टिपुत्रसहस्राणि सुमत्या सगरोद्भवः ।
केशिन्यामेक एवासौ असमञ्जससंज्ञक. ॥२९
तस्यांशुमान्सुतो विद्वान्दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।
भगीरथो दिलीपाच्च यो गङ्गामानयद्भुवम् ॥३०
श्रुतो भगीरथसुतो नाभागश्च श्रुतात्किल ।
नाभागादम्बरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषतः ॥३१
सिन्धुद्वीपस्यायुतायुः ऋतुपर्णस्तदात्मजः ।
ऋतुपर्णात्सर्वकामः सुदासोऽभूत्तदात्मज· ॥३२
सुदासस्य च सौदासो नाम्ना मित्रसहः स्मृतः ।
कल्मापपादसंज्ञश्चदमयन्त्या तदात्मज. ॥३३
अश्मकारुयोऽभवत्पुत्रो ह्यश्मकान्मूलकोऽभवत् ।
ततो दशरथो राजा तस्य चैलविल सुतः ॥३४
तस्य विश्वमह पुत्रः खट्वाङ्गश्च तदात्मजः ।
खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च दीर्घबाहोर्ह्य जः सुतः ॥३५

राजा सगर से सुमति नाम धारिणी भार्या में साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे। केशिनी नामक पत्नी में एक ही असमञ्जस नाम वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥२९॥ इसका अंशुमान् हुआ था। अंशुमान् का सुत परम विद्वान् दिलीप

हुआ था और इस राजा दिलीप का पुत्र भगीरथ नाम वाला समुत्पन्न हुआ था जिसने अपनी अत्यन्त उग्र तपस्या से गङ्गा का यहाँ भूलोक में आगमन कराया था ।।३०।। भगीरथ के पुत्र का नाम श्रुत हुआ और श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ था। अम्बरीष का पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था।। ३१ ।। सिन्धु द्वीप का सुत अयुतायु हुआ और इसका पुत्र ऋतुपर्ण नाम वाला हुआ। ऋतुपर्ण से सर्व काम समुत्पन्न हुआ और इसका पुत्र सुदास हुआ था ।।३२।। सुदास का सुत सौदास समुत्पन्न हुआ जो नाम से मित्रसह कहलाता था। उसका पुत्र दमयन्ती में कल्माष पाद नाम वाला पैदा हुआ था ।।३३।। इसका पुत्र अश्मक नामधारी था और अश्मक से मूलक समुत्पन्न हुआ इसके पुत्र का नाम राजा दशरथ था। इसका पुत्र ऐलविल हुआ था ।।३४।। ऐलविल का आत्मज विश्वसह हुआ और विश्वसह का पुत्र खट्वाङ्ग उत्पन्न हुआ था। खट्वाङ्ग से दीर्घ बाहु सुत की समुत्पत्ति हुई तथा दीर्घ बाहु से अज नृपति ने पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था ।।३५।।

तस्य पुत्रो दशरथश्चत्वारस्तत्सुताः स्मृताः ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताश्च महाबलाः ।।३६

रामात्कुशलवौ जातौ भरतात्तार्क्षपुष्करौ ।
चित्राङ्गदश्चन्द्रकेतू लक्ष्मणात्सम्बभूवतुः ।।३७

सुबाहुशूरसेनौ च शत्रुघ्नात्सम्बभूवतुः ।
कुशस्य चातिथिः पुत्रो निषधो ह्यतिथेः सुतः ।।३८

निषधस्य नलः पुत्रो नलस्य च नभाः स्मृतः ।
नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तदात्मजः ।।३९

देवानीकस्तस्य पुत्रो देवानीकादहीनकः ।
अहीनकाद्रुरुजज्ञे पारियात्रो रुरोः सुतः ।।४०

पारियात्राद्दलो जज्ञे दलपुत्रश्छलः स्मृतः ।
छलाद्वुक्थस्ततो वुक्थाद्वज्रनाभस्ततो गणः ।।४१
उषिताश्वो गणाज्जज्ञे ततो विश्वसहोऽभवत् ।
हिरण्यनाभस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रः पुष्यकः स्मृतः ।।४२

इन्हीं महाराज अज के प्रतापी दशरथ नृप का जन्म हुआ था जिनके चार पुत्र बताये जाते हैं जिनके नाम श्रीराम—लक्ष्मण—भरत और शत्रुघ्न ये थे। ये चारों महान् बलवान् हुए थे ॥३६॥ श्रीरामचन्द्र महाराज से कुश और लव ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। भरत के तार्क्ष और पुष्कर—लक्ष्मण के चित्रांगद और चन्द्र केतु नामधारी दो-दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥ ३७ ॥ शत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नाम वाले दो सुतों की उत्पत्ति हुई थी। कुश के पुत्र का नाम अतिथि था और अतिथि का पुत्र निषध हुआ ॥ ३८ ॥ निषध का नल—नल का नभा नामक पुत्र हुआ। नभा से पुण्डरीक तथा इसका पुत्र क्षेमधन्वा हुआ था ॥३९॥ क्षेमधन्वा का देवानीक और इसका पुत्र अहीनक नाम वाला था। अहीनक से रुरु ने जन्म लिया था और रुरु का पुत्र पारियात्र नाम वाला हुआ था ॥४०॥ पारियात्र का पुत्र दल हुआ तथा दल का पुत्र छल नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। छल से उक्थ और इसका पुत्र वज्र नाभ हुआ। तथा वज्र नाभ से शङ्ख नामक पुत्र ने जन्म धारण किया था ॥ ४१ ॥ शङ्ख से व्युषिताश्व हुआ फिर इसका पुत्र विश्वसह उत्पन्न हुआ था। इसके पुत्र का नाम हिरण्य नाभ और हिरण्य नाभ का आत्मज पुष्य नाम वाला हुआ था ॥४२॥

महारोम्णः स्वर्णरोमा ह्रस्वरोमा तदात्मजः ।
सीरध्वजो ह्रस्वरोम्णः तस्य सीताभवत्सुता ॥४९

पुष्पक के पुत्र का नाम ध्रुव सन्धि और इसके पुत्र का नाम सुदर्शन हुआ था। सुदर्शन से अग्नि वर्ण और इससे पद्म वर्ण हुआ ॥४३॥ पद्म वर्ण पुत्र शीघ्र तथा इसका सुत मरु नामधारी हुआ। मरु से प्रसश्रुत और इससे उदावसु पुत्र हुआ था ॥४४॥ उदावसु के यहाँ नन्दि वर्द्धन ने जन्म लिया तथा इसका पुत्र सुकेतु और सुकेतु के पुत्र का नाम देवरात एवं इसके यहाँ बृहदुक्थ उत्पन्न हुआ था ॥४५॥ बृहदुक्थ के पुत्र का नाम महावीर्य्य था तथा इसका पुत्र सुधृति हुआ था। सुधृति के सुत का नाम धृष्टकेतु और इसके यहाँ हर्यश्व ने पुत्र रूप में जन्म धारण किया था ॥ ४६ ॥ हर्यश्व से मरु हुआ तथा इसके पुत्र का नाम प्रतीन्धक था। प्रतीन्धक से कृति और इसके आत्मज का नाम देवमीढ था ॥४७॥ देवमीढ से विबुध उत्पन्न हुआ—विबुध से महाधृति—इसके पुत्र का नाम कृतिरात तथा इसके पुत्र का नाम महारोमा हुआ था ॥ ४८ ॥ महारोम के स्वर्ण रोमा और इसके सुत का नाम ह्रस्वरोमा हुआ था। ह्रस्वरोमा से सीरध्वज नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। इसी सीरध्वज की पुत्री का नाम सीता था ॥४९॥

भ्राता कुशध्वजस्तस्य सीरध्वजात्तु भानुमान् ।
शतद्युम्नो भानुमतः शतद्युम्नाच्छुचिः स्मृतः ॥५०
ऊर्जनामा शुचेः पुत्रः सनद्वाजस्तदात्मजः ।
सनद्वाजात्कुलिर्जातोऽनञ्जनस्तु कुलेः सुतः ॥५१
अनञ्जनात्तु कुलजित्तस्यापि चाधिनेमिकः ।
श्रुतायुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुपार्श्वश्च तदात्मजः ॥५२
सुपार्श्वात्सृञ्जयो जातः क्षेमारिः सृञ्जयात्स्मृतः ।
क्षेमारितस्त्वनेनाश्च तस्य रामरथः स्मृतः ॥५३
सत्यरथो रामरथात्तस्मादुपगुरुः स्मृतः ।
उपगुरोरुपगुप्तः स्वागतश्चोपगुप्ततः ॥५४
स्वनरः स्वागताज्जज्ञे सुवर्चास्तस्य चात्मजः ।
सुवर्चसः सुपार्श्वस्तु सुश्रुतश्च सुपार्श्वतः ॥५५

जयस्तु सुश्रुताज्जज्ञे जयात्तु विजयोऽभवत् ।
विजयस्य ऋत पुत्रः ऋतस्य सुनयः सुतः ॥५६
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्याद्धृतिः स्मृतः ।
वहुलाश्वो धृते. पुत्रो वहुलाश्वात्कृतिः स्मृतः ॥५७
जनकस्य द्वयं वंश उक्तो योगसमाश्रयः ॥५८

सीता के भाई का शुभ नाम कुशध्वज था। सीरध्वज से भानुमान् हुआ भानुमान् के पुत्र का नाम शतद्युम्न था। शतद्युम्न से शुचि की उत्पत्ति हुई थी ॥५०॥ शुचिका पुत्र ऊर्ज नाम था और इसके पुत्र सनद्वाज था। सनद्वाज से कुलि उत्पन्न हुआ इसके अनञ्जन सुत हुआ था ॥ ५१ ॥ अनञ्जन से कुलजित् उत्पन्न हुआ तथा इसके पुत्र का नाम अधिनेमिक था। इसके श्रुतायु हुआ और श्रुतायु का पुत्र सुपार्श्व नामधारी पैदा हुआ था ॥५२। सुपार्श्व से सृञ्जय हुआ सृञ्जय से क्षेमारि पुत्र हुआ। क्षेमारि के पुत्र का नाम अनेना था तथा इसके रामरथ नामक सुत ने जन्म लिया था ॥५३॥ रामरथ के पुत्र का नाम सत्यरथ था और इसके सुत उपगुरु नाम वाला हुआ था। उपगुरु के उपगुप्त हुआ तथा उपगुप्त के स्वागत नामधारी पुत्र हुआ था ॥५४॥ स्वागत से स्वनर हुआ तथा इस स्वनर से सुवर्चा का जन्म हुआ सुवर्चा के सुपार्श्व हुआ इसके पुत्र का नाम सुश्रुत हुआ था ॥५५॥ सुश्रुत से जय नामक सुत ने जन्म लिया—जय से विजय के पुत्र का नाम ऋत था—ऋत का पुत्र सुनय था ॥ ५६ ॥ सुनय से वीतहव्य नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। वीतहव्य से धृति हुआ। धृति का पुत्र बहुलाश्व था। बहुलाश्व से कृति ने जन्म धारण किया था ॥५७॥ यह जनक का वंश योग समाश्रय कहा गया है ॥५८॥

६०—चन्द्रवंश कीर्तन (१)

सूर्य्यस्य कथितो वंश सोमवंश शृणुष्व मे ।
नारायणसुतो ब्रह्मा ब्रह्मणोऽत्रेः समुद्भवः ॥
अत्रेः सोमस्तस्य भार्य्या तारा सुरगुरोः प्रिया ॥१
सोमात्तारा बुधं जज्ञे बुधपुत्रः पुरूरवाः ।
बुधपुत्रादथोर्वश्या षट् पुत्रास्तु श्रुतात्मकः ॥
विश्वावसुः शतायुश्च आयुर्धीमानमावसुः ॥२

अमावसोर्भीमनामा भीमपुत्रश्च काञ्चनः ।
काञ्चनस्य सुहोत्रोऽभूज्जह्नुश्चाभूत्सुहोत्रत. ।।३
जह्नो सुमन्तुरभवत्सुमन्तोरपजापकः ।
बलाकाश्वस्तस्य पुत्रो बलाकाश्वात्कुशः स्मृत ।।४
कुशाश्व कुशनाभश्चामूर्त्तरथो वसु कुशात् ।
गाधि. कुशाश्वात्सञ्जज्ञे विश्वामित्रस्तदात्मज ।।५
कन्या सत्यवती दत्ता ऋचीकाय द्विजाय सा ।
ऋचीकाज्जमदग्निश्च रामस्तस्याभवत्सुत ।।६
विश्वामित्राद्देवरातमधुच्छन्दादय. सुता ।
आयुषो नहुषस्तस्मादनेका रजिरम्भकौ ।।७

श्री हरि भगवान् ने कहा—आपने कहे हुए सूय वश का तो भली भाँति श्रवण कर लिया है अब मुझसे सोम वश का श्रवण करो। भगवान् आदि पुरुष नारायण का पुत्र ब्रह्मा हुए थे और फिर उन परमपितामह ब्रह्माजी से अत्रि का समुद्भव हुआ था। अत्रि से सोम की उत्पत्ति हुई। उसकी भार्या तारा हुई थी जोकि सुरों के गुरु की प्रिया थी ।। १ ।। सोम से तारा ने बुध को समुत्पन्न किया था। इस बुध के पुत्र का नाम पुरूवा था। इस बुध के पुत्र से उर्वशी म छै पुत्र हुए थे। उनके नाम—श्रुतात्मक—विश्वावसु—शतायु—आयु—धीमान् और अमावसु ये थे ।। २ ।। अमावसु से भीम नाम वाला पुत्र हुआ था। भीम से काञ्चन—काञ्चन से सुहोत्र और सुहोत्र से जह्नु की उत्पत्ति हुई थी ।। ३ ।। इसका पुत्र सुमन्तु और सुमन्तु का सुत अपजापक हुआ। इसका पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्व से कुश पैदा हुआ था ।।४।। कुश से कुशाश्व—कुशनाभ—अमूर्त्तरथ और वसु हुए थे। कुशाश्व से गाधि की उत्पत्ति हुई। गाधि नृप के पुत्र विश्वामित्र हुए ।। ५ ।। एक कन्या सत्यवती नाम वाली थी जिसको ऋचीक द्विज के लिये दे दिया था। ऋचीक से जमदग्नि उत्पन्न हुए और जमदग्नि से परशुराम का जन्म हुआ था ।। ६ ।। विश्वामित्र से देवरात मधुच्छन्द आदि पुत्र समुत्पन्न हुए थे। आयु का पुत्र नहुष राजा हुआ। इसके पुत्रों का नाम अनेका और रजिरम्भक थे ।।७।।

क्षत्रवृद्ध. क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रश्चाभवन्नृप ।
काश्यकाशगृत्समदा सुहोत्रादभवस्त्रय' ॥८
गृत्समदाच्छौनकोऽभूत्काश्याद्दीर्घतमास्तथा ।
वैद्यो धन्वन्तरिस्तस्मात्केतुमाश्च तदात्मज ॥९
भीमरथ केतुमतो दिवोदासस्तदात्मज ।
दिवोदासात्प्रतर्दन शत्रुजित्सोऽत्र विश्रुत ॥१०
ऋतध्वजस्तस्य पुत्रो ह्यलर्कश्च ऋतध्वजात् ।
अलर्कात्सन्नतिर्जज्ञे सुनीत सन्नते सुत ॥११
सत्यकेतु सुनीतस्य सत्यकेतोर्विभु सुत ।
विभोस्तु सुविभु पुत्र सुविभो सुकुमारक ॥१२
सुकुमाराद्धृष्टकेतुर्वीतिहोत्रस्तदात्मज ।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽभूद्भर्गभूमिस्तदात्मज ॥१३
वैष्णवा स्युर्महात्मान इत्येते काशयो नृपा ।
पञ्चपुत्रशतान्यासन्रजे शक्रेण संहृता ॥१४

क्षत्र वृद्ध से सुहोत्र नृप हुआ । सुहोत्र के काश्य—काशगृत और समद ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥८॥ गृत्समद से शौनक हुआ—काश्य से दीर्घतमा हुआ । उससे वैद्य धन्वन्तरि हुआ और इसका पुत्र केतुमान् हुआ था ॥ ९ ॥ केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ और इसका पुत्र दिवोदास नाम वाला हुआ था । दिवोदास से प्रतर्दन हुआ जो कि इस मही मण्डल में शत्रुजित्—इस नाम से प्रसिद्ध था ॥१०॥ इसका पुत्र ऋतध्वज हुआ और इसका आत्मज अलर्क हुआ था । अलर्क से सन्नति ने जन्म प्राप्त किया और सन्नति का सुत सुनीत नामधारी हुआ था ॥११॥ सुनीत का पुत्र सत्यकेतु हुआ और इसका पुत्र विभु नामधारी हुआ था । विभु के सुविभु और सुविभु का सुत सुकुमारक हुआ था ॥ १२ ॥ सुकुमार से धृष्टकेतु तथा धृष्टकेतु का पुत्र वीतिहोत्र उत्पन्न हुआ । वीतिहोत्र का सुत भर्ग और इसके भर्गभूमि ने जन्म लिया था ॥ १३ ॥ ये काश्य समस्त नृप वैष्णव हुए थे और महान् आत्मा वाले थे । रजि के पाँच सौ पुत्र थे जो कि इन्द्र के द्वारा संहृत किये गये थे ॥१४॥

प्रतिक्षत्रः क्षत्रवृद्धात्सञ्जयश्च तदात्मजः ।
विजयः सञ्जयस्यापि विजयस्य कृतः सुत. ॥१५
कृताद् वृषघनश्चाभूत्सहदेवस्तदात्मज. ।
सहदेवाददीनोऽभूज्जयत्सेनोऽप्यदीनतः ॥१६
जयत्सेनात्सकृतिश्च क्षत्रधर्मा च सकृतेः ।
यतिर्ययातिः संयातिरयातिर्वै कृतिः क्रमात् ॥
नहुषस्य सुताः ख्याता ययातेर्नृपतेस्तथा ॥१७
यदुश्च तुर्वसुश्चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ॥१८
सहस्रजित्क्रोष्टुमना रघुश्चैव यदोः सुतः ।
सहस्रजित' शतजित्तस्माद् वै हयहैहयौ ॥१९
अनरण्यो हयात्पुत्रो धर्मो हैहयतोऽभवत् ।
धर्मस्य धर्मनेत्रोऽभूत्कुन्तिर्वै धर्मनेत्रतः ॥२०
कुन्तेर्बभूव साहञ्जिर्महिष्माश्च तदात्मजः ।
भद्रश्रेण्यस्तस्य पुत्रो भद्रश्रेण्यस्य दुर्दम ॥२१

क्षत्र वृद्ध से प्रतिक्षत्र उत्पन्न हुआ था और इसका पुत्र सजय उत्पन्न हुआ। संजय का पुत्र विजय हुआ और विजय का कृत नामक सुत समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥ कृत से वृषघन हुआ और इसका पुत्र सहदेव नाम वाला उत्पन्न हुआ था। सहदेव से अदीन की उत्पत्ति हुई और अदीन से जयत्सेन नामक पुत्र हुआ था ॥१६॥ जयत्सेन से सकृति नाम वाले सुत की उत्पत्ति हुई और इसका पुत्र क्षत्रधर्मा नामधारी समुत्पन्न हुआ था। कृति के क्रम से यति-ययाति—संयाति और अयाति उत्पन्न हुए थे। राजा नहुष के पुत्र तथा ययाति नृप के पुत्र परम प्रसिद्ध हुए थे ॥ १७ ॥ देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया था। वार्ष-पार्वणी शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु—अनु और पुरु को जन्म ग्रहण कराया था ॥ १८ ॥ यदु के सहस्रजित्—क्रोष्टुमना और रघु ये पुत्र उत्पन्न हुए थे। सहस्रजित् के शतजित् पैदा हुआ और शतजित् के हय तथा हैहय नामक दो पुत्र पैदा हुए थे ॥१९॥ हय से अनरण्य हुआ और हैहय से धर्म नाम वाला सुत हुआ। धर्म का पुत्र धर्मनेत्र और इसका सुत कुन्ति नाम वाला पैदा हुआ था ॥ २० । कुन्ति

का साहञ्जि हुआ और साहञ्जि का पुत्र महिष्मान् हुआ था। इसके पुत्र का नाम भद्रश्रेण्य था और भद्रश्रेण्य के—दुर्दम हुआ ॥२१॥

धनको दुर्दमाच्चैव कृतवीर्य्यश्च धानकि ।
कृताग्नि कृतकर्मा च कृतोग सुमहाबला ॥२२
कृतवीर्य्यादर्जुनोऽभूदर्जुनाच्छूरसेनक ।
जयध्वजो मधु शूरो वृषण पञ्च सुव्रता ॥२३
जयध्वजात्तालजङ्घो भरतस्तालजङ्घत ।
वृषणस्य मधु पुत्रो मधोर्वृष्ण्याचादिवशक ॥२४
क्रोष्टोर्विजनिवान्पुत्र आहिस्तस्य महात्मन ।
आहेरुशङ्कु सजज्ञे तस्य चित्ररथ सुत ॥२५
शशबिन्दुश्चित्ररथात्पत्न्योर्लक्षञ्च तस्य ह ।
दशलक्षञ्च पुत्राणा पृथुकीर्त्यादयो वरा ॥२६
पृथुकीर्त्ति पृथुजय पृथुदान पृथुश्रवा ।
पृथुश्रवसोऽभूत्तम उशनास्तमसोऽभवत् ॥२७
तत्पुत्र शितगुर्नाम श्रीरुक्मकवचस्तत ।
रुक्मश्च पृथुरुक्मश्च ज्यामघ पालितो हरि ॥२८

दुर्दम के धनक—कृतवीर्य—धानकि—कृताग्नि—कृतकर्मा और कृतोग ये महान् बलवान् पुत्र हुए थे ॥ २२ ॥ कृतवीर्य से अर्जुन हुआ और अर्जुन से शूर सेनक पुत्र हुआ तथा अन्य जयध्वज—मधु—शूर—वृषण ये चार भी हुए थे। ये पाँचो पुत्र बड़े सुन्दर व्रत वाले थे ॥२३॥ जयध्वज से तालजंघ और तालजंघ से भरत की उत्पत्ति हुई। वृषण के पुत्र का नाम मधु था और मधु से वृष्णि आदि वंश करने वाला हुआ ॥ २४ ॥ क्रोष्टुका निजनिवान् पुत्र हुआ और इस महान् आत्मा वाले के पुत्र का नाम आहि था। आहि का सुत उशङ्कु था और उशङ्कु का सुत चित्ररथ हुआ था ॥ २५ ॥ चित्ररथ से शशबिन्दु ने जन्म धारण किया था। इसके दश पत्नियाँ थी तथा दश लाख पुत्र हुए थे जोकि पृथुकीर्ति आदि परम श्रेष्ठ हुए थे ॥२६॥ उनमें पृथुकीर्त्ति—पृथुजय—पृथुदान और पृथुश्रवा ये मुख्यतम एवं उत्तम थे। पृथुश्रवा के तम नामक पुत्र ने जन्म लिया था और

तम से उशना उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ उशना का पुत्र शितगु और इससे फिर श्री रुक्म कवच पैदा हुआ था। श्रीरुक्म कवच के रुक्म—पृथुरुक्म—ज्यामघ—पालित और हरि हुए ॥२८॥

श्रीरुक्मकवचस्यैते विदर्भो ज्यामघात्तथा ।
भार्यायाञ्चैव शैव्याया विदर्भात्क्रथकौशिकौ ॥२६
रोमपादो रोमपादाद्वभ्रुर्बभ्रोर्धृ तिस्तथा ।
कौशिकस्य ऋचि पुत्र ततश्चैद्यो नृप किल ॥३०
कुन्ति किलास्य पुत्रोऽभूत्कुन्तेर्वृष्णि सुत स्मृत ।
वृष्णेश्च निवृति पुत्रो दशार्हो निवृतेस्तथा ॥३१
दशार्हस्य सुतो व्यामा जीमूतश्च तदात्मज ।
जीमूताद्विकृतिर्जज्ञे ततो भीमरथोऽभवत् ॥३२
ततो मधुरथो जज्ञे शकुनिस्तस्य चात्मज ।
करम्भिक शकुने पुत्रस्तस्य देवमत स्मृत ॥३३
देवक्षत्रो देवमतो देवक्षत्रान्मधु. स्मृत ।
कुरुवशो मधो पुत्रो ह्यनुश्च कुरुवशतः ॥३४
पुरुहोत्रो ह्यनो पुत्रो ह्यशुश्च पुरुहोत्रत ।
सत्वथ त. सतश्चाशोस्ततो वै सात्वतो नृप. ॥३५

ये उपर्युक्त सभी पुत्र रुक्म कवच के हुए थे। ज्यामघ का पुत्र विदर्भ हुआ और विदर्भ से शैव्या नाम वाली भार्या मे क्रथ और कौशिक दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥ २६ ॥ रोमपाद बभ्रु हुआ और बभ्रु से धृति उत्पन्न हुआ। कौशिक के पुत्र का नाम ऋचि था और इसके बाद चैद्य नृपति हुआ था ॥३०॥ इसके पुत्र का नाम कुन्ति था तथा कुन्ति के वृष्णि नामक पुत्र ने जन्म लिया था। वृष्णि से निवृति की उत्पत्ति हुई तथा निवृति के पुत्र का नाम दशार्ह हुआ था ॥३१॥ दशार्ह के व्योमा नामधारी सुत ने जन्म लिया था और व्योमा का आत्मज जीमूत पैदा हुआ था। जीमूत से विकृति ने जन्म ग्रहण किया था और इसके भीमरथ सुत समुत्पन्न हुआ ॥३२॥ इसके पश्चात् मधुरथ पैदा हुआ और मधुरथ का पुत्र शकुनि हुआ। शकुनि का सुत करम्भि था और इसका पुत्र

उससे सञ्जय और सञ्जय के पुत्र का नाम कुलि था। कुलिका सुत युगन्तर नाम वाला था। ये सब शैवेय नाम से कहे गये थे।३९।४०। अनमित्र के वंश में वृष्णि—श्वफल्क और चित्रक सुत थे। श्वफल्क से उसकी भार्या गान्दिनी में अक्रूर ने जन्म धारण किया था जोकि परम विष्णु के भक्त थे॥ ४१॥ अक्रूर के पुत्र का नाम उपमद्गु था और उपमद्गु के पुत्र का नाम देवद्योत था। अक्रूर के देववान् और उपदेव दो पुत्र कहे गये हैं॥४२॥

पृथुर्विपृथुश्चित्रस्य अन्तकस्य शुचिः स्मृतः।
कुकुरो भजमानस्य तथा कम्बलबर्हिषः॥४३
धृष्टस्तु कुकुराज्जज्ञे तस्मात्कापोतरोमकः।
तदात्मजो विलोमा च विलोम्नस्तुम्बुरुः सुतः॥४४
तस्माच्च दुन्दुभिर्जज्ञे पुनर्वसुरतः स्मृतः।
तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकस्य तु॥४५
देवकश्चोग्रसेनश्च देवकाद्देवकी त्वभूत्।
वृकदेवोपदेवा च सहदेवा सुरक्षिता॥४६
श्रीदेवी शान्तिदेवी च वसुदेव उवाह ताः।
देवश्चानुपदेवश्च सहदेवासुतौ स्मृतौ॥४७
उग्रसेनस्य कंसोऽभूत्सुनामा च वटादयः।
विदूरथो भजमानाच्छूरश्चाभूद्विदूरथात्॥४८
विदूरथसुतस्याथ शूरस्यापि शमी सुतः।
प्रतिक्षत्रश्च शमिन स्वयम्भोजस्तदात्मज॥४९

सहदेवा—सुरक्षिता—श्रीदेवी—शान्ति देवी इन सभी के साथ विवाह कर लिया था। सहदेवा के देव और अनुपदेव ये दो पुत्र थे ॥४५।४६।४७॥ उग्रसेन नृप के पुत्र का नाम कम था और भी सुनाम तथा वटादि थे। भजमान से विदूरथ और विदूरथ से शूर हुआ ॥४८॥ विदूरथ के पुत्र शूर के समी नामक सुत था। समी के पुत्र का नाम प्रतिक्षत्र था और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज था ॥४६॥

हृदिकश्च स्वयम्भोजात्कृतवर्मा तदात्मजः।
देवः शतधनुश्चैव शूराद्वै देवमीढुषः ॥५०
दश पुत्रा मारिषाया वसुदेवादयोऽभवन्।
पृथा च श्रुतदेवी च श्रुतकीर्त्ति श्रुतश्रवाः ॥५१
राजाधिदेवी शूराच्च पृथा कुन्तेः सुतामदात्।
सा दत्ता कुन्तिना पाण्डोस्तस्या धर्मानिलेन्द्रकैः ॥५२
युधिष्ठिरो भीमपार्थौ नकुलं सहदेवकं।
माद्रयां नासत्यदस्राभ्यां कुन्त्यां कर्णः पुराऽभवत् ॥५३
श्रुतदेव्यां दन्तवक्रो जज्ञे वै युद्धदुर्मदः।
सन्तर्द्दनादयः पञ्च श्रुतकीर्त्यांश्च कैकयात् ॥५४
राजाधिदेव्यां विन्दश्च अनुविन्दश्च जज्ञिरे।
श्रुतश्रवा दमघोषात्प्रजज्ञे शिशुपालकम् ॥५५
पौरवी रोहिणी भार्या मदिरानकदुन्दुभेः।
देवकीप्रमुखा भद्रा रोहिण्यां बलभद्रकं ॥५६
सारणाद्यां शठश्चैव रेवत्यां बलभद्रतः।
निशठश्चोल्मुकौ जातौ देवक्यां षट् च जज्ञिरे ॥५७

स्वयम्भोज से हृदिक और फिर हृदिक का पुत्र कृतवर्मा समुत्पन्न हुआ था। शूर से देव—शतधनु और देवमीढुष हुए थे ॥५०॥ मारिषा से वसुदेव प्रभृति दश पुत्र थे। पृथा—श्रुतदेवी—श्रुतकीर्ति—श्रुतश्रवा और राजाधि देवी शूर से और कुन्ति की पुत्री पृथा को दिया था। कुन्ति के द्वारा दी हुई उसने पाण्डु से धर्म—वायु और इन्द्र के द्वारा युधिष्ठिर—भीम और अर्जुन तथा नकुल एवं सहदेव माद्री में नासत्य और दस्र से उत्पन्न थे। पहिले कुन्ती में कर्ण उत्पन्न

हो चुका था ।।५१।५२।५३।। श्रुत देवी में दन्तवक्र ने जन्म लिया था जोकि युद्ध में दुर्मद था। अन्तर्धान प्रभृति पाँच कैकय से श्रुति कीर्त्ति में थे ।।५४। राजाधि देवी में विन्द और अनुविन्द ने जन्म ग्रहण किया था। श्रुत श्रवा ने दमघोष से शिशुपाल को जन्म दिया था। ५५।। आनक दुन्दुभि की पौरवी और रोहिणी तथा मदिरा भार्या थी। देवकी जिनमें प्रमुख थी जोकि भद्रा थी। रोहिणी में बलभद्र हुए ।।५६।। बलभद्र से रेवती नाम वाली पत्नी में सारण प्रभृति और शठ उत्पन्न हुए। निशठ और उन्मुक आदि छे देवकी से थे ।।५७।।

कीर्त्तिमाश्च सुषेणश्च उदार्य्यो भद्रसेनक ।
ऋजुदासो भद्रदेव कंस एवावधीच्च तान् ।।५८
सकर्षण सप्तमोऽभूदष्टम कृष्ण एव च ।
षोडशस्त्रीसहस्राणि भार्य्याणाञ्चाभवन्हरे ।।५९
रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
श्रेष्ठा जाम्ववती चाष्टौ जज्ञिरे ता सुतान्वहून् ।।६०
प्रद्युम्नश्चारुदष्णश्च प्रधाना साम्व एव च ।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्ककुद्मिन्या महावल ।।६१
अनिरुद्धात्सुभद्रायां वज्रो नाम नृपोऽभवत् ।
प्रतिवाहुर्वज्रसुनश्चारुस्तस्य सुतोऽभवत् ।।६२
वह्निस्तु तुर्वसोर्वंशे वह्नेर्भार्गोऽभवत्सुत ।
भार्गाद्भानुरभूत्पुत्रा भानो पुत्र करन्धम ।।६३

देवकी के प्रथम पुत्र का नाम कीर्त्तिमान् था और फिर सुषेण—उदार्य—भद्र सेनक—ऋजुदास—भद्रदेव थे। इन सबको राजा कंस ने मार दिया था ।। ५८ ।। सातवाँ पुत्र देवकी के सङ्कर्षण और आठवें पुत्र साक्षात् श्रीकृष्ण ने अवतीर्ण होकर जन्म धारण किया था। हरि के सोलह हजार भार्याएँ थीं। रुक्मिणी—सत्यभामा—लक्ष्मणा—चारु हासिनी श्रेष्ठा जाम्बवती इस तरह ये आठ पटरानियाँ थी। इन आठों प्रमुख भार्याओं ने बहुत से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ।।५९।६०।। उनमें प्रद्युम्न—चारुदष्ण और साम्ब ये प्रधान पुत्र थे। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध महान् बलशाली की उत्पत्ति थी जोकि अनिरुद्ध ने सुभद्रा

में वज्र नाभ नामक नृप को समुत्पन्न किया था। वज्र का पुत्र प्रतिव हुआ था और इनका सुतचारु नाम वाला हुआ था ॥ ६१।६२ ॥ तुर्वसु के वंश में वह्नि और वह्नि का सुत भार्ग हुआ था। भार्ग से भानु की उत्पत्ति तथा भानु के पुत्र के रूप में करन्धम ने जन्म प्राप्त किया था ॥६३॥

करन्धमस्य मरुतो द्रुह्योर्वंशं निबोध मे ।
द्रुह्योस्तु तनयः सेतुरारद्धश्च तदात्मजः ॥
आरद्धस्यैव गान्धारो धर्मो गान्धारतोऽभवत् ॥६४
घृतस्तु धर्मपुत्रोऽभूद् दुर्गमश्च घृतस्य तु ।
प्रचेता दुर्गमस्यैव अनोर्वंशं शृणुष्व मे ॥६५
अनोः स्वभानरः पुत्रस्तस्मात्कालञ्जयोऽभवत् ।
कालञ्जयात्सृञ्जयोऽभूत्सृञ्जयात्तु पुरञ्जयः ॥६६
जनमेजयस्तु तत्पुत्रो महाशालस्तदात्मजः ।
महामना महाशालादुशीनर इति स्मृतः ॥६७
उशीनराच्छिबिर्जज्ञे वृषदर्भः शिवेः सुतः ।
महामनोजात्तितिक्षो पुत्रोऽभूच्च रुषद्रथः ॥६८
हेमो रुषद्रथाज्जज्ञे सुतपा हेमतोऽभवत् ।
बलिः सुतपसो जज्ञे अङ्गवङ्गकलिङ्गकाः ॥६९
अन्ध्र पौण्ड्रश्च बालेया अनपानस्तथाङ्गतः ।
अनपानाद्दिविरथस्ततो धर्मरथोऽभवत् ॥७०

करन्धम का पुत्र मरुत हुआ था। अब मुझसे तुम द्रुह्यु के वंश का परिचय प्राप्त करो। द्रुह्यु का पुत्र सेतु था और इनका पुत्र आरद्ध हुआ। आरद्ध के तनय का नाम गान्धार था और गान्धार से धर्म नामक आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥६४॥ धर्म का पुत्र घृत और घृत का सुत दुर्गम एवं दुर्गम का तनय प्रचेता था। अब अनु के वंश का श्रवण मुझसे करो ॥६५॥ अनु का पुत्र स्वभानर—स्वभानर का पुत्र कालञ्जय और कालञ्जय से सृञ्जय एवं सृञ्जय से पुरञ्जय पुत्र था ॥६६॥ इस पुरञ्जय का सुत जनमेजय था और जनमेजय का तनय महाशाल था। महाशाल से महामना हुआ था जो उशीनर इस नाम

से कहा गया था ।।६७।। उशीनर से शिवि—शिवि से वृषदर्भ—तितिक्षु महामनोज से रुपद्रथ पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ।। ६८ ।। रुपद्रथ से हेम जन्मा और हेम से सुतपा हुआ था। सुतपा स बलि था। अङ्ग—वङ्ग और कलिङ्ग का उत्पन्न हुए। वङ्ग से अन्ध्र—पौण्ड्र—वालेया और अनपाल हुए थे। अनपाल से विदिरथ और इससे धर्मरत सुत पैदा हुआ था ।।६६।७०।।

रोमपादो धर्मरथाच्चतुरङ्गस्तदात्मज ।
पृथुलाक्षस्तस्य पुत्रश्चम्पोऽभूत्पृथुलाक्षत ।।७१
चपम्पुत्रश्च हर्यंङ्गस्तस्य भद्ररथ सुत ।
बृहत्कर्मा सुतस्तस्य बृहद्भानुस्ततोऽभवत् ।।७२
बृहन्मना बृहद्भानोस्तस्य पुत्रो जयद्रथ ।
जयद्रथस्य विजयो विजयस्य धृति सुत ।।७३
धृतेर्धृ तव्रत पुत्रः सत्यधर्मा धृतव्रतात् ।
तस्य पुत्रस्त्वधिरथ कर्णस्तस्य सुतोऽभवत् ।।
वृषसेनस्तु कर्णस्य पुरुवशान् शृणुष्व मे ।।७४

धर्मरत से रोमपाद नामधारी पुत्र ने जन्म प्राप्त किया था तथा रोमपाद के पुत्र का नाम चतुरङ्ग था। इसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ और पृथुलाक्ष से चम्प ने जन्म धारण किया था ।।७१।। चम्प के तनय का नाम हर्यंङ्ग था और इसका पुत्र भद्ररथ हुआ था। भद्ररथ के पुत्र का नाम बृहत्कर्मा था फिर इसके बृहद्भानु नामक पुत्र ने जन्म लिया था ।। ७२ ।। बृहद्भानु के बृहन्मना तथा फिर इसका पुत्र जयद्रथ हुआ था। जयद्रथ के सुत विजय नामधारी था और विजय के यहाँ धृति नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था ।।७३।। धृति से धृतव्रत ने जन्म ग्रहण किया और इसके सत्यधर्मा था। सत्यधर्मा का पुत्र अधिरथ और इसके कर्ण नामक पुत्र था। कर्ण के वृषसेन हुआ अब तुम मुझसे पुरु के वंश का श्रवण करो ।।७४।।

६१—चन्द्रवंश कीर्तन (२)

जनमेजय पुरोश्चाभू-मनस्युर्जनमेजयात् ।
तस्य पुत्रश्चाभयद सम्वुश्चाभयदादभूत् ।।१

सम्भोर्वहुगतिः पुत्रः सजातिस्तस्य चात्मजः ।
चरसजातिश्च सजातेः रौद्राश्वश्च तदात्मजः ॥२
ऋतेयुः स्थण्डिलेयुश्च कक्षेयुश्च कृतेयुकः ।
जलेयु सन्ततेयुश्च रौद्राश्वस्य सुता वराः ॥३
रतिनार ऋतेयोश्च तस्य प्रतिरथः सुतः ।
तस्य मेधातिथि पुत्रस्तत्पुत्रश्चैनिलः स्मृतः ॥४
ऐनिलस्य तु दुष्यन्तो भरतस्तस्य चात्मजः ।
शकुन्तलाया सजज्ञे वितथो भरतादभूत् ॥५
वितथस्य पुत्रो मन्युर्मन्योश्चैव नरः स्मृतः ।
नरस्य सस्कृति. पुत्रो गर्गो हि सकृते. सुतः ॥६
गर्गादमन्युः पुत्रो वै शिनिः पुत्रो व्यजायत ।
मन्युपुत्रान्महावीर्य्यादुरुक्षय सुतोऽभवत् ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—पुरु का पुत्र जनमेजय था । और जनमेजय से प्रचन्यु नाम वाला सुत था । इसका पुत्र अभयद और अभयद से सम्भु का जन्म हुआ था ॥१॥ सम्भु का पुत्र बहुगति—बहुगति का तनय सजाति—सजाति का पुत्र वत्सजाति और इसका पुत्र रौद्राश्व हुआ था ॥२॥ रौद्राश्व के कई पुत्र हुए थे । उनके नाम ऋतेयु—स्थण्डिलेयु—कक्षेयु—कृतेयुक—जलेयु—सन्ततेयु ये हैं । ये सब बहुत श्रेष्ठ थे ॥३॥ ऋतेयु के पुत्र रतिनार हुआ और इसका पुत्र प्रतिरथ हुआ था । प्रतिरथ का पुत्र मेधातिथि और इसका पुत्र ऐनिल कहा गया था ॥४॥ ऐनिल के पुत्र का नाम दुष्यन्त और दुष्यन्त का सुत भरत था । राजा भरत से शकुन्तला मे वितथ का जन्म हुआ था ॥५॥ वितथ का सुत मन्यु—मन्यु का नर—नरका संकृति और सकृति का तनय गर्ग था ॥६॥ गर्ग से अमन्यु अमन्द से शिनि—मन्यु के पुत्र शिनि से जोकि महान् वीर्य—पराक्रम वाला था उरुक्षय नामधारी तनय हुआ था ॥७॥

उरुक्षयात्त्रय्यारुणिर्व्यू हस्तनाच्च मन्युजात् ।
सुहोत्रस्तस्य हस्ती च ह्यजमीढद्विमीढकौ ॥८
हस्तिनः पुरुमीढश्च कण्वोऽभूदजमीढत. ।
कण्वान्मेधातिथिर्जज्ञे यत. काण्वायना द्विजाः ॥९

अजमीढाद् बृहदिपुस्तत्पुत्रश्च बृहद्धनु ।
बृहत्कर्मा तस्य पुत्रस्तस्य पुत्रो जयद्रथ ॥१०
जयद्रथाद्विश्वजिच्च सेनजिच्च तदात्मज ।
रुचिराश्व सेनजित पृथुसेनस्तदात्मज ॥११
पारस्तु पृथुसेनस्य पाराद् द्वीपोऽभवन्नृप ।
नृपस्य समर पत्र सुकृतिश्च पृथो सुत ॥१२
विभ्राज सुकृते पुत्रोविभ्राजादश्वहाऽभवत् ।
कृत्या तस्माद् ब्रह्मदत्तो विष्वक्सेनस्तदात्मज ॥१३
यवीनरो द्विमीढस्य धृतिमाश्च यवीनरात् ।
धृतिमत सत्यधृतिदृढनेमिस्तदात्मज ॥१४

उरुक्षय से त्रय्यारुणि तथा मन्यु के पुत्र व्यूहक्षत्र से सुहोत्र हुआ–सुहोत्र का हस्ती और अजमीढ–द्विमीढक पुत्र हुए थे ॥८॥ हस्ती का पुत्र पुरुमीढ और अजमीढ का सुत कण्व हुआ था। कण्व से मेधातिथि ने जन्म लिया था। इस कारण से ये काण्वायन द्विज कहे गये थे ॥९॥ अजमीढ से बृहदिपु और इसका पुत्र बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनु का पुत्र बृहत्कर्मा और इसका सुत जयद्रथ था।१०। जयद्रथ से विश्वजित् और सेनजित् पुत्र थे। सेनजित् का आत्मज रुचिराश्व और रुचिराश्व का पुत्र पृथुसेन था ॥ ११ ॥ पृथुसेन से पार—पार से द्वीप—द्वीप से नृप और नृप से समर था। पृथु का पुत्र सुकृति था ॥ १२ ॥ सुकृति वीर्य से विभ्राज ने शरीर धारण किया। विभ्राज से अश्वह था। इससे कृत्या में ब्रह्मदत्त हुआ और इसका आत्मज विष्वक्सेन था ॥ १३ ॥ द्विमीढ का सुत यवीनर और यवीनर से धृतिमान् ने जन्म लिया था। धृतिमान् का पुत्र सत्यधृति और इसका पुत्र दृढनेमि नामधारी हुआ था ॥१४॥

दृढनेमे सुपार्श्वोऽभूत्सुपार्श्वात्सन्नतिस्तथा ।
कृतस्तु सन्नते पुत्र कृतादुग्रायुधोऽभवत् ॥१५
उग्रायुधाच्च क्षेम्योऽभूत्सुधीरस्तु तदात्मज ।
पुरञ्जय सुधीराच्च तस्य पुत्रो विदूरथ ॥१६
अजमीढान्नलिन्याच नीलो नाम नृपाऽभवत् ।
नीलाच्छान्तिरभूत्पुत्र सुशान्तिस्तस्य चात्मज ॥१७

सुशान्तेश्च पुरुर्जातो ह्यर्कस्तस्य सुतोऽभवत् ॥
अर्कस्य चैव हर्यश्वो हर्यश्वान्मुकुलोऽभवत् ॥१८
यवीनरो बृहद्भानु कम्पिल्ल सृञ्जयस्तथा ।
पाञ्चालान्मुकुलाज्जज्ञे शरद्वान् वैष्णवो महान् ॥१६
दिवोदासो द्वितीयोऽस्य अहल्याया शरद्वत ।
शतानन्दोऽभवत्पुत्रस्तस्य सत्यधृति सुत ॥२०
कृप कृपी सत्यधृतेरुर्वश्या वीर्य्यहानित ।
द्रोणपत्नी कृपी जज्ञे अश्वत्थामानमुत्तमम् ॥२१

दृढनेमि का पुत्र सुपार्श्व था। सुपार्श्व से सन्नति ने जन्म प्राप्त किया था। सन्नति का पुत्र कृत हुआ और कृत से उग्रयुध ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ उग्रायुध से क्षेम्य का जन्म हुआ और इससे फिर सुधीर की उत्पत्ति हुई थी। सुधीर से पुरञ्जय ने जन्म लिया और इसका सुत विदूरथ था ॥ १६ ॥ अजमीढ से नलिनी नाम धारिणी भार्या में नील नाम वाले नृप ने जन्म धारण किया था। नील से शान्ति नामक पुत्र हुआ और इसका पुत्र सुशान्ति नाम वाला था। १७॥ सुशान्ति से पुरु—पुरु से अर्क—अर्क से हर्यश्व और हर्यश्व से मुकुल की उत्पत्ति हुई थी ॥ १८ ॥ पाञ्चाल से यवीनर—बृहद्भानु—कम्पिल्ल तथा सृञ्जय हुए थे। मुकुल से महान् विष्णु का भक्त शरद्वान् था ॥१६॥ इस शरद्वान् के द्वितीय दिवोदास ने अहल्या में जन्म लिया था। इसका पुत्र शतानन्द और शतानन्द का पुत्र सत्यधृत था ॥२०॥ सत्यधृति के कृप और कृपी उर्वशी के द्वारा वीर्य की हानि से हुए थे। द्रोण की पत्नी कृपी से अश्वत्थामा ने जन्म ग्रहण किया था जोकि परम उत्तम था ॥२१॥

दिवोदासाभिमन्युश्च मित्रयोश्चयवनोऽभवत् ।
सुदासश्च्यवनाज्जज्ञे सौदासस्तस्य चात्मज ॥२२
सहदेवस्तस्य पुत्र सहदेवात्तु सोमक ।
जन्तुस्तु सोमकाज्जज्ञे पृषतश्चापरो महान् ॥२३
पृषताद् द्रुपदो जज्ञे धृष्टद्युम्नस्ततोऽभवत् ।
धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्ऋक्षोऽभूदजमीढत ॥२४

से महान् धार्मिक भीष्म नृपति, गङ्गा से हुए थे। इसी शान्तनु नृपति से मल्लाह की पुत्री सत्यवती से चित्राङ्गद और विचित्र नाम वाले दो पुत्र थे। विचित्र वीर्य की अम्बा और अम्बालिका दो भार्याएँ थी जोकि देवव्रत (भीष्म) लाये थे। उन दोनो भार्य्याओं से धृतराष्ट्र और पाण्डु इन दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी उनकी एक दासी से विदुर का जन्म था ॥ ३४।३५।३६ ॥ महर्षि व्यासदेव के नियोग से जोकि केवल दर्शन मात्र के स्वरूप वाला था, गान्धारी से धृतराष्ट्र उत्पन्न था। धृतराष्ट्र से दुर्योधनादि सौ पुत्र (कौरव) हुए और पाण्डु से कुन्ती से केवल पाँच पुत्र (पाण्डव नामधारी) थे ॥३७॥ उन पाण्डवों से अर्जुन से प्रतिवन्ध्य—श्रुत सोम और श्रुतकीर्त्ति पुत्र द्रौपदी में शतानीक तथा श्रुतकर्मा क्रम से पाँच थे ॥३८॥ देवक—घटोत्कच और सवर्ण अभिमन्यु—सुहोत्र और निरमित्र थे। अभिमन्यु से परीक्षित ने जन्म ग्रहण किया था ॥३९॥ इस परीक्षित के जनमेजय पैदा हुआ। इसके आगे जो भावी पुत्र हुए उनका अब श्रवण करो ॥४०॥

९२—हरि अवतार कथन

धर्मादीन्पालयामास अवतीर्णो हरिः प्रभुः।
दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये ॥१
मत्स्यादिकस्वरूपेण अवतारं करोत्यजः।
मत्स्यो भूत्वा हयग्रीवं दैत्यं हत्वाजिकण्टकम् ॥२
वेदानानीय मन्वादीन्पालयामास केशवः।
मन्दरं धारयामास कूर्मो भूत्वा हिताय च ॥३
क्षीरोदमथने वैद्यो देवो धन्वन्तरिर्ह्यभूत्।
बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः ॥४
आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं सुश्रुताय स उक्तवान्।
अमृतं पाययामास स्त्रीरूपी च सुरान् हरिः ॥५
अवतीर्णो वराहोऽथ हिरण्याक्षं जघान ह।
पृथिवीं धारयामास पालयामास देवताः ॥६
नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपुं रिपुम्।
दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इन उपर्युक्त नृपादि के वंशों का पालन भगवान् ने अवतीर्ण होकर किया था। इनमें जो आसुरी वृत्ति वाले दैत्य गण थे उनके किये हुए अधर्म का नाश किया था और वेदों के द्वारा प्रतिपादित धर्म की रक्षा के लिये ही भगवान् ने समय-समय पर अवतार ग्रहण किया था ॥ १ ॥ उस अजन्मा प्रभु ने मत्स्य आदि के स्वरूप में अवतार लिया था। भगवान् ने मत्स्य होकर अर्थात् मत्स्यावतार ग्रहण करके धर्म के कण्टक रूपी हयग्रीव दैत्य का हनन किया था और वेदों तथा मनु आदि को यहाँ लाकर केशव भगवान् ने पालन किया था। कूर्म का अवतार लेकर प्रभुने जगत् के हित-सम्पादन करने के लिये मन्दराचल को अपने ऊपर धारण किया था ॥२॥३॥ क्षीरोदधि के मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि वैद्य हो गये थे अर्थात् धन्वन्तरि का का अवतार धारण किया। जिस समय समुद्र से उत्थित हुए थे उस समय उनके के हाथ में अमृत से परिपूर्ण एक कमण्डलु था ॥ ४ ॥ उन भगवान् धन्वन्तरि ने आठों अङ्गों से पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र को सुश्रुत को बताया था। मोहिनी एक परम सुन्दरी ललना का स्वरूप धारण कर हरि भगवान् ने वह अमृत देवगणों को पिला दिया था ॥ ५ ॥ एक वराह का अवतार ग्रहण किया था और वराह रूप में अवतीर्ण होकर महान् बली दुष्ट दैत्य हिरण्याक्ष का वध किया था। इस भूमि को धारण किया था और देवों की सुरक्षा की थी ॥६॥ इसके अनन्तर फिर नरसिंह अवतार हुआ था और हिरण्यकशिपु शत्रु का विदारण किया था। समस्त दैत्यों का वध किया था और वेदोक्त धर्म आदि का प्रतिपालन किया था ॥७॥

ततः परशुरामोऽभूज्जमदग्नेर्जगत्प्रभुः ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं चक्रे निःक्षत्रियां हरिः ॥८
कार्त्तवीर्यं जघानाजौ कश्यपाय महीं ददौ ।
यागं कृत्वा महाबाहुर्महेन्द्रे पर्वते स्थितः ॥९
ततो रामो भविष्णुश्च चतुर्धा दुष्टमर्दनः ।
पुत्रो दशरथाज्जज्ञे रामश्च भरतानुजः ॥१०
लक्ष्मणश्चाथ शत्रुघ्नो रामभार्या च जानकी ॥११

रामश्च पितृसत्यार्थं मातृभ्यो हितमाचरन् ।
शृङ्गवेर चित्रकूट दण्डकारण्यमागत ॥१२
नासा शूर्पणखायाश्च छित्त्वाथ खरदूषणम् ।
हत्वा स राक्षस सीतापहारिरजनीचरम् ॥१३
रावण चानुज तस्य लङ्कापुर्यां विभीषणम् ।
रक्षोराज्ये च संस्थाप्य सुग्रीवहनुमन्मुखैः ॥१४
आरुह्य पुष्पक सार्द्धं सीतया पतिभक्तया ।
सुमहापतिव्रतया सोऽयोध्या स्वपुरी गतः ॥१५

इसके अनन्तर जगत् के प्रभु ने जमदग्नि से परशुराम का अवतार धारण किया था और हरि ने इस भूमि को इक्कीस बार ऋषियो से रहित कर दिया था अर्थात् क्षत्रियो का सहार किया था। ८॥ युद्ध मे कार्त्तवीर्य का हनन किया था और भूमि को कश्यप ऋषि को दान दिया था। महेन्द्र पर्वत पर स्थित होकर महाबाहु ने याग किया था ॥६॥ इसके पश्चात् दुष्टो के मर्दन करने वाले भविष्णु राम ने चार रूपो मे दशरथ से पुत्र रूप मे जन्म ग्रहण किया था। उन चारो के नाम राम—छोटे भाई भरत—लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे। श्रीराम की भार्या का नाम जानकी था ॥१०।११॥ श्रीराम ने पिता के सत्य वचन की रक्षा करने के लिए और माताओ के हित का आचरण करते हुए वे दण्डकारण्य मे चित्रकूट पर्वत पर शृङ्गवेर पुर मे आगये थे॥ १२ ॥ वहाँ वन मे रावण की बहिन शूर्पणखा के नासिका का छेदन कराकर खरदूषण तथा सीता के अपहरण करने वाले राक्षसराज रावण का वध किया था। उसके राज्यासन पर रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्कापुरी मे राज्य देकर सुग्रीव और हनुमान आदि प्रमुख बन्दरो तथा पतिभक्त सीता के साथ पुष्पक विमान पर समारूढ होकर श्रीराम अपनी महा पतिव्रता पत्नी के सहित पुनः अयोध्यापुरी मे आगये थे ॥१३।१४।१५॥

राज्यञ्चकार देवादीन्पालयामास स प्रजा. ।
धर्मसंरक्षण चक्रे अश्वमेधादिका क्रतून् ॥१६
सुमहापतिव्रतया रेमे रामो यथासुखम् ।
रावणस्य गृहे सीता स्थित्वापि न हि रावणम् ॥१७

कर्मणा मनसा वाचा सा गता राघव विना ।
पतिव्रता तु सा सीता अनसूया यथैव तु ॥१८

पतिव्रतायाः सीताया माहात्म्य कथयाम्यहम् ।
कौशिको ब्राह्मणः कुष्ठी प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरा ॥१६

त तथा व्याधित भार्य्या पति देवमिवार्चयत् ।
निर्भर्त्सितापि भर्त्तार तममन्यत दैवतम् ॥२०

भर्त्रोक्ता सानयद्वेश्या शुल्कमादाय चाधिकम् ।
पथि शूले तदा प्रोतमचौर चौरशङ्कया ॥२१

माण्डव्यमतिदु खार्त्तमन्धकारेऽथ स द्विजः ।
पत्नीस्कन्धसमारूढश्चालयामास कौशिकः ॥२२

फिर अयोध्यापुरी में राज्यासन पर समभिषिक्त होकर उन्होने राज्य का शासन किया था और उन श्रीराम ने देव आदि का तथा अपनी प्रजा का पालन किया था । श्रीराम ने धर्म का पूरी तरह से सरक्षण किया था और अश्वमेध आदि यज्ञों को सविधि किया था ॥१६॥ परम सुन्दरी एव महा पतिव्रता पत्नी जानकी के साथ राम ने सुख पूर्वक रमण किया था । रावण के घर मे रहकर भी जानकी ने रावण को कर्म–मन और वाणी से भी राघव के बिना स्वीकार नही किया था । सीता तो अनुसूया की भाँति ही अत्यन्त उत्तम कोटि की महान् पतिव्रत के पालन करने वाली थी ॥१७।१८॥ पतिव्रता सीता का माहात्म्य मैं बतलाता हू—पुराने समय मे प्रतिष्ठान मे कौशिक ब्राह्मण कुष्ठी था ॥१६॥ उस व्याधि से युक्त पति की सेवा उसकी भार्या ने देवता की भाँति की थी । अपने स्वामी के द्वारा फटकारे जाने पर भी उस स्वामी का वह देवता ही मानती थी ॥२०॥ स्वामी के द्वारा कहे जाने पर उसने अधिक शुल्क देकर वेश्या को समीप में लाने का काम किया था । उस समय मे मार्ग में शूल मे प्रोत अचौर को चोर की शङ्का से अत्यन्त दु खित माण्डव्य अन्धकार में था । उस कौशिक द्विज ने अपनी पत्नी के कन्धे पर स्थित होते हुए चालित किया था ॥२१।२२॥

पादावमर्पणात्क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह ।
सूर्य्योदये मृतिस्तस्य येनाह चालितः पदा ॥२३

तच्छ्रुत्वा प्राह तद्भार्य्या सूर्य्यो नोदयमेष्यति ।
तत सूर्य्योदयाभावादभवत्सतत निशा ॥२४
बहून्यब्दप्रमाणानि ततो देवा भय ययु ।
ब्रह्माण शरण जग्मुस्तामूचे पद्मसम्भवः ॥२५
प्रशाम्यते तेजसैव तपस्तेजस्त्वनेन वै ।
पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकर ॥२६
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवता तथा ।
तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूया तपस्विनीम् ॥२७
प्रसादयत वै पत्नी भानोरुदयकाम्यया ।
तं सा प्रसादिता गत्वा ह्यनसूया पतिव्रता ॥२८
कृत्वादित्योदय सा च त भर्तारमजीवयत् ।
पतिव्रतानसूयाया सीताभूदधिका किल ॥२९

पद के अवमपण से अत्यन्त क्रुद्ध माण्डव्य ने उस द्विज से कहा था कि जिसने पैर से मुझे चालित किया था वह सूर्योदय होने पर मृत हो जायगा ।२३। यह श्रवण करके उसकी भार्या ने कहा—सूर्य उदित ही नहीं होगा । इससे सूर्योदय के अभाव होने के कारण निरन्तर रात्रि होगई थी ॥२४॥ इस प्रकार से बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । तब तो समस्त देवो को बहुत भय होगया था और सब मिलकर ब्रह्माजी की शरण मे पहुँच गये थे । उन देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा ॥ २५ ॥ तप का तेज इस तेज के द्वारा ही प्रशान्त किया जा रहा है । यह पतिव्रता का माहात्म्य है कि भगवान् भुवन भास्कर देव उदित नही हो रहे हैं ॥२६॥ सूर्य के उदय न होने से मनुष्यो को बहुत हानि हो रही है और आप लोगों का भी बडा नुकशान होना है । इसलिये परम पतिव्रता अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया तपस्विनी को प्रसन्न करो । भानुदेव के उदय होने की कामना तभी पूर्ण हो सकती है । वे सब देवगण पतिव्रता अनसूया के पास पहुचे और उसे प्रसन्न किया था ॥२७।२८॥ उसने आदित्य का उदय करा दिया और द्विज की मृत्यु होने पर उसे भी जीवित कर दिया था । उस पतिव्रता अनसूया से भी अधिक पतिव्रता सीता हुई थी ॥२९॥

॥ इति प्रथमखण्डसमाप्तम् ॥